प्रो०डॉ० रमाशङ्कर त्रिपाठी

महापुराण

समकथा-कोश

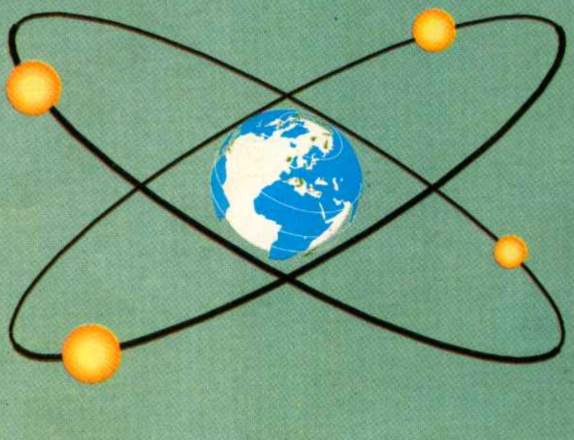

भारतीय विद्या संस्थान

॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

महापुराण समकथा-कोश

लेखक :

प्रो० डॉ० रमाशङ्कर त्रिपाठी

नव्य-व्याकरणाचार्य,

पुराणेतिहासाचार्य (लब्धस्वर्णपदक),

सांख्य-योगाचार्य (लब्धस्वर्णपदक),

एम०ए०, पी-एच०डी० (यू०जी०सी० स्कालर),

शास्त्र-चूडामणि,

"काशी-रत्न"

प्रकाशक :

भारतीय विद्या संस्थान

वाराणसी - 221002

प्रकाशक

भारतीय विद्या संस्थान

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

सी. २७/५९, जगतगंज, वाराणसी-२२१००२

संस्कृत भवन

16311

❖

ISBN - 81-87415-61-4

संस्करण - दिसम्बर, २००४

मूल्य : ४००.००

❖

अक्षर संयोजक :

ज्योति कम्प्यूटर्स

जैतपुरा, वाराणसी-२२१००१

समर्पण

विरक्ति, त्याग एवं तपस्या की त्रिवेणी के तीर्थराज प्रयाग;
ज्ञान, विज्ञान तथा भक्ति के मूर्तिमान् स्वरूप;
अपने दर्शन, ध्यान और संस्पर्श से जगत् को पवित्र करने वाले;
श्री १००८ जगद्गुरु डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामिजी
श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासन,
जङ्गमवाड़ी मठ, वाराणसी
को
श्रद्धा सहित समर्पित !

– रमाशङ्कर त्रिपाठी

प्राक्कथन

मेरा गाँव अतिप्रसिद्ध गुरुओं का निवास-स्थान रहा। शैशव से किशोरावस्था तक वहाँ निवास करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है । शिशिरऋतु में शीतत्राण हेतु अलाव के चतुर्दिक् अग्नि-ताप का सेवन करते हुए एवं ग्रीष्म की सान्ध्य बेला में अपने-अपने द्वार पर बिछी चारपाइयों पर लेटे हुए पण्डितों में प्राय: विभिन्न शास्त्र-चर्चाएँ हुआ करती थीं। यही स्थिति अपने-अपने खलिहानों की रखवाली करने वाले विद्वानों की भी थी। शास्त्र-विमर्शों में पुराण-चर्चाएँ प्रमुख थीं। अत: बाल्यावस्था से ही पौराणिक कथाओं को सुनते-सुनते उनमें अगाध श्रद्धा के भाव का उदित होना स्वाभाविक था। शनैः-शनैः श्रद्धा के भाव ने जिज्ञासा का रूप धारण किया। उसी समय मन में अकल्प सङ्कल्प ने जन्म लिया कि—'भविष्य में अवसर सुलभ होने पर पौराणिक वाङ्मय की प्रसिद्ध सारी कथाओं को एकत्र सङ्कलित करूँगा, उनका एक बृहत् कोश बनाऊँ।' आगे चलकर पुराण पर, शिवमहापुराण पर, शोध करने का अवसर भी सुलभ हुआ। पुराणों के इसी सतत सम्पर्क के फलस्वरूप प्रस्तुत कार्य ने विग्रह ग्रहण किया है।

प्रारम्भ में इस महान् कार्य को अति विशालरूप प्रदान करने का विचार था, आग्रह था। इसके कम से कम बीस विशाल बाल्यूम प्रकाशन की योजना में थे। यह सामूहिक कार्य था। बीस वर्ष का काल-खण्ड इसके लिये विचारित था। मेरे काल-कवलित हो जाने पर भी इस अखण्ड ज्ञान-दीप के प्रज्वलित रहने की आशा थी, सम्भावना थी। सोचा था विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इस कार्य में भरपूर सहयोग देगा। धन और विद्वज्जन की कमी बाधक नहीं बनेगी। कार्यारम्भ हो जाने पर पूर्ति की व्यवस्था होगी ही।

किन्तु आज से ठीक साढ़े तीन वर्ष पूर्व विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली, के कार्यालय में मुझे साक्षात्कार की विडम्बना के लिये बुलाया गया। उन दिनों प्रोफेसर हरिगौतम यू०जी०सी० के चेयरमैन थे। विद्वान् विशेषज्ञों एवम् अधिकारियों से मेरा साक्षात्कार करवाया गया। 'अष्टादश-महापुराण-समकथा-कोश' पर चर्चा हुई। किन्तु योजना के प्रत्येक पक्ष पर विचार करते हुए यू०जी०सी० के अधिकारी ने मुझसे स्पष्ट कहा—'आप अवकाश-प्राप्त प्रोफेसर हैं। अत: इतनी विशाल योजना आपकों नहीं प्रदान की जा सकती है। कोई सहायक भी नहीं प्राप्त होगा। केवल तीन वर्षों के लिये एक बड़ी शोध-योजना (Major Research Project) आप को प्रदान की जा सकती है। इस पर प्राय: तीन लाख व्यय होगा। अब आप जैसा निर्णय करें, वैसा किया जाय।'

अधिकारी के इस कथन को सुनकर मुझे निराशा और आश्चर्य की सम्मिलित अनुभूति हुई। मैंने, विशेषज्ञों के समक्ष ही, उन महोदय से कहा—'ठीक है। साधन

के अनुसार सामग्री तैयार होती है। जैसी आप की सहायता प्राप्त होगी वैसा ही कार्य सम्पन्न होगा । अब इस विशालकार्य को अति लघु रूप प्रदान करना होगा।' फलतः यू०जी०सी० द्वारा सीमित सहायता प्राप्त हुई। मैंने यथासमय कार्यारम्भ कर दिया । इस स्वल्प कार्यावधि में मेरा यह सतत प्रयास रहा है कि कोश-निर्माण की इस प्रक्रिया में अधिक-से अधिक प्रारम्भिक अक्षरों (अल्फावेट्स) का प्रयोग किया जाय। प्रायः प्रत्येक स्वर एवं व्यञ्जनों से प्रारम्भ शब्दों का, कुछ-न-कुछ, प्रयोग अवश्य हो जाय। अति प्रसिद्ध कथाओं को भी समेटने की लालसा हृदय में हिलोरे ले रही थीं। कार्य मैंने श्रम और ईमानदारी से किया है। इसमें मैं सफलता-देवी का कहाँ तक कृपा-पात्र बन सका हूँ—यह आकलन करना निर्मत्सर, विशुद्ध-अन्तःकरण वाले विद्वानों का कार्य है। हाँ, यहाँ कालिदास की यह उक्ति मेरे स्मृति-पटल पर रह-रहकर अवश्य उभर रही है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितिर्षुदुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।। रघु० १/२

पौराणिक वाङ्मय-जलधि अपनी विशालता और गह्वरता के लिये अति प्रसिद्ध है। इसे एकाकी पार करना यदि असम्भव नहीं तो अति कठिन अवश्य है। फिर भी मैंने पूरी शुचिता के साथ कार्य किया है—यह मैं निःसङ्कोच डिंडिमघोष से कह सकता हूँ। आशा है, विद्वज्जन इसे मेरा बाल-चापल्य नहीं समझेंगे। मेरा यह कार्य विशाल सुदृढदुर्ग के द्वार का उद्घाटनमात्र है। काल-निरवधि है। पृथिवी विपुल है। कोई-न-कोई अवश्य ऐसा पैदा होगा जो मेरे स्वप्न को साकार करेगा। पौराणिक-सम-कथा-कोश का अखण्ड, अविकल समग्र स्वरूप प्रस्तुत करेगा।

यहाँ यह निर्देश कर देना आवश्यक है कि प्रस्तुत कोश के निर्माण में अष्टादशमहापुराणों के स्थान पर, देवीभागवत एवं वायुपुराण को मिलाकर बीस पुराणों का संग्रह किया गया है।

योजना (*Project*) की सार्थकता –

१. आज भौतिकता-प्रधान, कम्प्यूटर-प्रणाली से प्रभावित, अति व्यस्त मानव के पास न तो पर्याप्त समय है और न गहराई में प्रविष्ट होकर कार्य करने की प्रवृत्ति ही है । प्रत्येक व्यक्ति कार्य करने की संक्षिप्त, अति संक्षिप्त, पद्धति, समास-पद्धति, अपनाना चाहता है । इस प्रकार के विद्यार्थियों, शोधार्थियों, आलोचकों, विद्वानों और इतिहासकारों को, विशाल पौराणिक वाङ्मय में पसरी हुई (प्रसृत) तमाम समान, एक जैसी, कथाओं को एकत्रित कर, सङ्कलित कर, सहायता पहुँचाकर, स्वल्प समय में विशाल कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करना इस योजना की प्रमुख सार्थकता है ।

२. तत्तत्पुराणों से समान कथाओं का सङ्कलन करते समय उनमें साम्य एवं वैषम्य का निर्देश भी यत्र-तत्र, यथासम्भव, कर दिया गया है । यह दिङ्निर्देशमात्र है । विपुलता का कार्य पाठकों के बुद्धि-वैभव पर छोड़ दिया गया है । पुराणों में

उपलब्ध सम-कथाओं के अनुशीलन-परिशीलन से, उनके विकास-क्रम के आधार पर, पुराणों का ऐतिह्य (History), पूर्वापर क्रम एवं काल निर्धारित करने में पूरा सम्बल प्राप्त होगा । इससे पौराणिक वाङ्मय के ऐतिह्य की सही-सही संरचना में पूरी-पूरी सहायता उपलब्ध होगी । मेरा दृढ मत है कि पौराणिक ऐतिह्य की संरचना में जिन सामग्रियों की आवश्यकता होती है, उनमें यह सर्वप्रधान है, सर्वोत्तम है ।

३. सम-कथा-कोश को तैयार करते समय पुराणों की उत्तमर्णता (Creditorness) और अधमर्णता (Apposite of creditorness) का भी जहाँ-तहाँ निर्देश कर दिया गया है । इसका पल्लवन पाठक-गण अध्ययन के आधार पर स्वयं कर लेंगे । यह उत्तमर्णता और अधमर्णता भी इतिहास-रचना का प्रमुख आधार है ।

४. आवश्यकता के अनुसार फुट-नोट के रूप में शोधपरक टिप्पणियाँ भी दी गई हैं । इन टिप्पणियों से भावी शोधकर्ताओं का मार्ग सरल एवं सम्बलयुक्त (With Provision for a Journey) होगा ।

५. पुराणों में प्रक्षिप्त अंश, जो बाद में संयुक्त किये गये हैं, उनका भी निर्देश, यद्यपि सर्वत्र नहीं, किन्तु यत्र-तत्र, कर दिया गया है । शोधकर्ता की विचार-सरणि के लिये यह भी एक लघु मार्गदर्शन है ।

इस प्रकार अपने सीमित साधन और स्वल्प कालावधि में प्रस्तुत पुस्तक को, नई नवेलन दुल्हन की तरह, विविध अलङ्करणों से सजाकर आकर्षक एवं लोकोपयोगी बनाने का भरपूर प्रयास किया गया है। यदि इस कार्य से विद्वन्मण्डली का कुछ भी उपकार हुआ तो मैं अपनी प्रायः तीन वर्ष की तपस्या सफल समझूँगा, अपने को धन्य-धन्य मानूँगा।

प्रस्तुत कृति पुराण-कथाओं की पूरी-पूरी अनुकृति नहीं है। इसे स्वरूप प्रदान करने के पूर्व पौराणिक कथाओं का गहन अध्ययन किया गया है। मन्थन कर उनके सार को आत्मसात् कर अपनी भाषा में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत करते समय इस बात की सतत सावधानी रक्खी गयी है कि विभिन्न पुराणों की सम-कथाओं का परस्पर साम्य-वैषम्य उभर कर सामने आ जाय। शोध के लिये उपयोगी कोई सामग्री छूटने न पाये। हृदय पुराण से लिया गया है। किन्तु इसे कलेवर अपनी ओर से प्रदान किया गया है। कलेवर भी ऐसा-वैसा नहीं! यह ऐसा दिव्य-भव्य हो कि इस रचना को पढ़ने के लिये पकड़ने वाला व्यक्ति बिना अन्त तक पहुँचे इसे छोड़े ही नहीं। ऐसा कहने के साथ एक बार पुनः मुझे विद्वानों की शरण ग्रहण करनी पड़ेगी। क्योंकि यथार्थ को नापने का मीटर तो उन्हीं के हाथों में है। वे ही यह बतला सकते हैं कि लेखक का श्रम कितना सफल है, अनुसन्धाता का अनुसन्धान कितना सारवान् है। उसके कथन में कितना दम है, कितना दम्भ है।

इस ग्रन्थ को पूर्ण करने में प्रायः तीन वर्षों का समय, अध्यवसाय एवं चिन्तन लगा है। जब-तब कठिनाइयों के अम्बार ने अम्बर छूने का प्रयास किया है । विगत शारद नवरात्र के चतुर्थ दिन माँ दुर्गा के मन्दिर में मुझे मानों मृत्यु ने ही गोद में उठा

लेने का प्रयास किया। अपार जन-सम्मर्द के मध्य से, पृथिवी पर गिरे हुए मुझे किसी-किसी प्रकार बाहर सुरक्षित निकाला गया। उस समय साक्षात् कराल काल मेरी आँखों के समक्ष नर्तन कर रहा था। किन्तु कृष्ण-कृपा का विपलु सम्बल पाकर साहस ने सबको धता बताते हुए कार्य को पूर्णता के द्वार तक पहुँचा ही दिया। धन्य है कृष्ण-कृपा, गजब है प्रभु की रीति।

योजना की स्वीकृति में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तात्कालिक अध्यक्ष प्रो० हरि गौतम, लेखन की अवधि में सेवा के माध्यम से शरीर को स्वस्थ रखने के प्रयास में अर्धाङ्गिनी शान्ति त्रिपाठी, योजना के अथ से इति तक के सारे कार्यालयीय कार्यों को, उलझी झंझटों को सुलझाने में ज्येष्ठ पुत्र एडवोकेट डॉ० बालकृष्ण त्रिपाठी एवं आवश्यक ग्रन्थों को मनोयोग के साथ सुलभ कराने में संकाय के ग्रन्थालयी डॉ० वीरेन्द्र कुमार मिश्र को मैं कभी भी विस्मृत नहीं कर सकता। इन्हें मैं हृदय से साभार धन्यवाद, साधुवाद प्रदान करता हूँ। इनके सहयोग के बिना मैं इस कार्य को पूर्ण ही न कर पाता। ये सभी हमारे इस कार्य के समवायि कारण हैं। आवश्यक पत्रों को प्रस्तुत और अग्रसारित करने में सहृदयता का परिचय प्रदर्शित करने वाले संकाय-प्रमुख प्रो० बालशास्त्री, वैदिक-दर्शन-विभाग के भारत-प्रसिद्ध विद्वान् विभागाध्यक्ष प्रो० सुधांशुशेखर शास्त्री एवं हमारे कार्यों में सर्वदा वैशाखी **(Helper)** *की भूमिका निभाने वाले प्रो० डॉ०कृष्णकान्त शर्मा के प्रति यदि मैं कृतज्ञता व्यक्त करना भूल जाऊँ तो यह आत्मघातसदृश महापातक होगा। इनकी अहैतुकी कृपा के प्रति मैं सादर श्रद्धावनत हूँ। कार्य को सतत प्रचलित रखने हेतु सदा सहायता करने वाले पुत्रकल्प डॉ० सुबोध कुमार पाण्डेय, साहित्याचार्य, एम०ए०, पी-एच०डी० , प्रूफ-रीडिंग में सहायता करने वाले, मध्यम पुत्र, आनन्द कृष्ण त्रिपाठी तथा समय-समय पर आर्थिक सहायता से कार्यावरोध को हटाने वाले आत्मज गोपालकृष्ण त्रिपाठी को मेरा हार्दिक आशीष है—'शिवास्ते पन्थानः ।'*

भारतीय-विद्या-संस्थान के तरुण सञ्चालक प्रिय कुलदीप जैन एवं रोहित कुमार जैन, अतिशय तत्परता के साथ इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने के लिये, साधुवाद के पात्र हैं, आशीष के सत्पात्र हैं ।

अन्त में मैं राधा-कृष्ण के चरण-कमलों में प्रणतिपुरःसर यही कामना कर रहा हूँ कि यह ग्रन्थ मनीषियों, विद्वानों, शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों की समान रूप से अपेक्षित विनम्र सेवा कर उन सबके आशीष का भागीदार बने ।

रमाशङ्कर त्रिपाठी
'कृष्ण-कदम्ब'
बी. ३२/५२-ए, नरिया,
वाराणसी-५

दीपावली
वि.सं. २०६१
१२/११/२००४

विषय-सूची

१.	अनिरुद्ध-कथा	....	१
२.	ऊषा-कथा	....	१०
३.	कार्तिकेय-कथा	....	२२
४.	कालभैरव-कथा	....	४१
५.	कूर्मावतार-कथा	....	४४
६.	कृष्ण-कथा	....	५०
७.	गंगा-कथा	....	१०३
८.	गणेश-कथा	....	११५
९.	जय-विजय-कथा	....	१३१
१०.	ज्योतिर्लिङ्ग-कथा	....	१३४
११.	त्रिपुर-कथा	....	१४६
१२.	नारद-कथा	....	१५७
१३.	नीलकण्ठ-कथा	....	१६३
१४.	नृसिंह-कथा	....	१६७
१५.	परशुराम-कथा	....	१८३
१६.	पार्वती-कथा	....	२००
१७.	बलराम-कथा	....	२२४
१८.	ब्रह्मा की कथा	....	२३५
१९.	मत्स्यावतार-कथा	....	२४२
२०.	राधा-कथा	....	२४७
२१.	राम-कथा	....	२४९
२२.	लिंग-कथा	....	२९४
२३.	वामन-कथा	....	२९८
२४.	वाराह-कथा	....	३२०
२५.	वीरभद्र-कथा	....	३२९
२६.	शिव-कथा	....	३३७
२७.	सती-कथा	....	३४१
२८.	**संदर्भ-ग्रन्थ-सूची**	....	३५८

महापुराण-समकथा-कोश

अनिरुद्ध-कथा

ब्रह्ममहापुराण

अनिरुद्ध कृष्ण के पौत्र और प्रद्युम्न के पुत्र थे। कृष्ण का साला रुक्मी था। यह रुक्मिणी का बड़ा भाई था। रुक्मी अपनी किशोरावस्था से ही कृष्ण से ईर्ष्या करता था। किन्तु आगे चलकर सम्बन्ध को सामान्य बनाने की दृष्टि से उसने अपनी पौत्री का विवाह कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के साथ कर दिया। यहाँ यह ध्यान रखना है कि अनिरुद्ध का यह विवाह अपने मामा की पुत्री से ही हुआ है। उन दिनों रुक्मी भोजकट में निवास करता था। अत: अनिरुद्ध के विवाह की बारात भोजकट गई। उस बारात में श्रीकृष्ण के साथ बलराम आदि सभी यादव गये थे।

विवाह की विधि पूरी हो जाने पर कलिङ्गराज आदि दुष्ट राजाओं की सलाह से रुक्मी ने बलराम को द्यूत-क्रीडा के लिये आमन्त्रित किया। बलराम को द्यूत-क्रीडा का महान् शौक था। अत: वे उन दुष्टहृदय राजाओं के साथ द्यूत-क्रीडा के लिये चले गये। इस क्रीडा में छोटे पणों को पहले तो रुक्मी ने जीता। किन्तु जब बलराम ने कोटिनिष्क (तात्कालिक मुद्रा) का पण रक्खा तो रुक्मी हार गया। परन्तु हारने पर भी वह बार-बार यही कहता रहा कि मैं जीत गया, बलराम हार गये।[१] इस पर कलिङ्गराज और रुक्मी उनकी हँसी उड़ाते रहे। उनके इस व्यवहार को देखकर बलराम क्रुद्ध हो उठे। आकाशवाणी ने भी बलराम के जीतने का समर्थन किया। इससे बलराम का क्रोध अपार हो उठा। उन्होंने द्यूत के पाशों (अष्टापदों) से ही मारकर रुक्मी की हत्या कर दी और कलिङ्गराज के दाँतों को तोड़ डाला ।[२] बलराम का क्रोध इतना महान् था कि उन्होंने एक सुवर्ण के स्तम्भ को उखाड़ लिया और उसी से मार-मार कर वहाँ आये हुए राजाओं को भगा दिया । सर्वत्र भगदड़ मच गई ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने जब यह सुना कि बलराम ने रुक्मी का वध कर दिया है तो वे कुछ भी न बोले, क्योंकि उनके समक्ष पत्नी रुक्मिणी और बड़े भाई

---

१. अजयद्बलदेवोऽथ प्राहोच्चैस्तं जितं मया ।
ममेति रुक्मी प्राहोच्चैरलीकोक्तैरलं बलम् ॥ *ब्रह्ममहापुराण,* ९२/१९

२. ततो बल: समुत्थाय क्रोधसंरक्तलोचन: ।
जघानष्टापदेनैव रुक्मिणं स महाबल: ॥ *ब्रह्ममहापुराण,* ९२/२३

बलराम दोनों का भय विराजमान था ।[१] अतः वर-वधू को लेकर यदुवंशियों के साथ वे द्वारका लौट आये ।[२]

पद्ममहापुराण

कृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न कामदेव के अंश थे। रुक्मी की बेटी से उनका विवाह हुआ था । उससे उनका जो पुत्र हुआ उसका नाम अनिरुद्ध था । अनिरुद्ध का विवाह बाणासुर की कन्या ऊषा के साथ हुआ था। उस विवाह की कथा इस प्रकार है-

एक समय ऊषा ने स्वप्न में एक अतिसुन्दर तरुण को देखा। उसने चित्ताकर्षक उस युवक के साथ स्वप्न में ही प्रेमालाप किया । जागने पर उसे सामने न देखकर वह विक्षिप्त-सी हो उठी । वह भाँति-भाँति से विलाप करने लगी। ऊषा की एक सखी थी। उसका नाम था चित्रलेखा । चित्रलेखा नें ऊषा से उसकी विक्षिप्तता का कारण पूछा। अपनी प्राणप्रिया सखी से ऊषा ने सारी बात सच-सच बतला दी।

चित्रलेखा ने एक वस्त्र लिया। उसने उस पर सम्पूर्ण देवों और श्रेष्ठ मनुष्यों के चित्र को अङ्कित करके ऊषा को दिखलाया। प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध के चित्र को देखकर वह सहसा चिल्ला उठी—'यही है, यही है'। ऐसा कहकर उसने अनिरुद्ध के चित्र को अपनी छाती से लगा लिया ।

ऊषा की बात को सुनकर चित्रलेखा दैत्यों की बहुत सी मायाविनी स्त्रियों को साथ लेकर द्वारका गई। उस समय रात की बेला थी। अनिरुद्ध अपने अन्तःपुर में शयन कर रहे थे। चित्रलेखा ने उन्हें माया से मोहित करके बाणासुर के प्रासाद में लाकर ऊषा की सजी-धजी शय्या पर सुला दिया। निद्रा की समाप्ति पर अनिरुद्ध ने अपने आप को रमणीय पर्यङ्क पर सोया हुआ पाया। वहीं पास में ही समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न, विचित्र वस्त्राभूषण से अलङ्कृत तथा सुवर्णवर्णाभ, सुकेशी ऊषा बैठी हुई थी । उसके बाद ऊषा की प्रसन्नता से अनिरुद्ध उसके साथ रहकर विहार करने लगे । दिन आनन्द से व्यतीत हो रहे थे ।

इस प्रकार लगातार एक मास तक अनिरुद्ध ऊषा के साथ उसके प्रासाद में रहे। एक दिन अन्तःपुर निवासिनी कुछ वृद्ध स्त्रियों ने उन्हें देख लिया। फिर उन सबने इसकी सूचना बाणासुर को दी। सूचना के मिलते ही बाणासुर क्राधे से लाल हो गया। उसने अपने शूर-वीर सेवकों को उस कुमार को पकड़ लाने के लिये प्रेषित किया। सेवक राजा के प्रासाद पर चढ़ गये और राजकुमारी के

---

१. बलेन निहतं श्रुत्वा रुक्मिणं मधुसूदनः ।
नोवाच वचनं किञ्चद्रुक्मिणीबलयोर्भयात् ॥ *ब्रह्ममहापुराण,* ९२/२७

२. अनिरुद्ध की अधिक जानकारी के लिये आगे देखिये इसी पुराण की 'ऊषा-कथा'।

शयनागार में शयन करते हुए अनिरुद्ध को पकड़ने के लिये आगे बढ़े। अपने को पकड़ने के लिये आते देखकर अनिरुद्ध ने अनायास ही प्रासाद का एक स्तम्भ उखाड़ लिया और उसी से मार-मार कर बेहाल कर उन्हें भगा दिया।

अनिरुद्ध के बल-पौरुष की बात सुनकर बाणासुर को महान् कौतूहल हुआ। इसी समय देवर्षि नारद ने आकर बाणासुर को बतलाया कि ऊषा के अन्त:पुर में सम्प्रति निवास कर रहा तरुण श्रीकृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध है। इस बात को ज्ञातकर असुरराज ने धनुष-बाण लिया और स्वयं पहुँच गया अनिरुद्ध के पास उन्हें पकड़ने के लिये । पहले तो अनिरुद्ध ने उसका प्रतिकार करने का साहस किया। किन्तु अन्त में बाणासुर ने नागपाश में बाँध कर उन्हें अन्त:पुर में ही कैद कर दिया।

इधर द्वारका में देवर्षि नारद के मुख से यह समस्त समाचार ज्यों-का-त्यों ज्ञात कर भगवान् श्रीकृष्ण यादवों की विशाल वाहिनी लेकर बाणासुर पर आक्रमण कर दिये।

पूर्वकाल की बात है। बाणासुर ने भगवान् शङ्कर की आराधना की। शंकर उसकी आराधना से प्रसन्न हो उठे। उन्होंने असुरराज से वर माँगने को कहा। इस पर उसने महेश्वर से यह वर माँगा था कि—'आप मेरे नगर-द्वार पर सदा रक्षा के लिये उपस्थित रहें और शत्रुओं की जो सेना आवे, उसका संहार करें।' 'तथास्तु' कहकर शङ्कर ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तभी से वे अपने पुत्र तथा पार्षदों के साथ अस्त्र-शस्त्र लिये उसके नगर-द्वार पर सदा विराजमान रहने लगे।

बाणासुर की राजधानी शोणितपुर पहुँचते ही कृष्ण ने देखा कि शङ्कर अपने पुत्रों के साथ युद्ध के लिये तैयार खड़े हैं। इस स्थिति को देखकर श्रीकृष्ण ने अपनी सेना को तो बहुत पीछे ठहरा दिया और स्वयं बलराम तथा प्रद्युम्न के साथ निकट आकर शङ्कर के साथ युद्ध करने लगे। दोनों में घोर युद्ध हुआ । बलराम जी गणेश के साथ और प्रद्युम्न कार्तिकेय के साथ भिड़ गये। गणेश जी ने बलराम के वक्ष:स्थल पर अपने दाँत से प्रहार किया। इस पर बलराम जी ने मूसल उठाकर उनके दाँत पर दे मारा। मूसल की मार पड़ते ही गणेणजी का दाँत टूट गया। फिर तो वे मूशक पर आरूढ होकर युद्ध-भूमि से भाग खड़े हुए । तभी से भग्नदन्त गणेश जी सकल संसार में 'एकदन्त' के नाम से विख्यात हुए । हलधर बलरामजी ने मूसल के अविरल प्रहार से शिवगणों को युद्ध-भूमि से खदेड़ दिया ।

कृष्ण और शङ्कर के युद्ध में ज्वरों का आविर्भाव हुआ। शङ्कर ने तापज्वरका प्रयोग किया तो श्रीकृष्ण ने शीतज्वर से उसका निवारण कर दिया। फिर अपने प्रयोक्ताओं के आदेश से दोनों ज्वर मानव-लोक में चले गये।

इसके बाद दैत्यराज बाणासुर रथ पर आरूढ होकर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने के लिए समराङ्गण में आया। किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से उसकी भुजाएँ काट डाली। अपने भक्त की इस दशा को शङ्कर ने देखा। उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा—'प्रभो, बाणासुर राजा बलि का बेटा है। मैंने इसे अमरत्व का वर दिया है। आप मेरे इस वर की रक्षा करें और बलिपुत्र के सारे अपराधों को क्षमा कर दें।' 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने चक्र को परावर्तित कर लिया और प्राणों के सङ्कट में पड़े हुए बाणासुर को छोड़ दिया। उसे छुड़ा कर वृषभध्वज वृषभ पर आरूढ हो कैलाश चले गये।

प्राण-सङ्कट के निवारण हो जाने पर बाणासुर ने महाबली बलराम और श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। फिर उन दोनों के साथ नगर में प्रवेश कर अनिरुद्ध को बन्धन से विमुक्त कर दिया। तदनन्तर उसने दिव्य वस्त्राभूषणों से पूजा करके कृष्ण-पौत्र अनिरुद्ध को अपनी कन्या ऊषा का दान कर दिया। अनिरुद्ध का सविधि विवाह हो जाने के पश्चात् बाणासुर ने बलराम और श्रीकृष्ण का भी पूजन किया। फिर भगवान् जनार्दन ऊषा और अनिरुद्ध को एक दिव्य रथ पर बैठाकर द्वारका के लिये प्रस्थित हुए। वहाँ अनिरुद्ध ऊषा के साथ नाना प्रकार से विहार कर निरन्तर प्रसन्नता के साथ निवास करने लगे।[१]

विष्णुमहापुराण

श्रीकृष्ण-प्राण-वल्लभा रुक्मिणी के बड़े भाई थे–रुक्मी। एक समय रुक्मी ने अपनी कन्या के स्वयंवर की रचना की। उसमें महावीर प्रद्युम्न ने उस कन्या को और उस कन्या ने प्रद्युम्न जी को ग्रहण किया। उससे प्रद्युम्नजी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम अनिरुद्ध था। युद्ध में अनिरुद्ध को निरुद्ध करना किसी के वश की बात न थी।

श्रीकृष्ण ने उस (अनिरुद्ध) के लिये भी रुक्मी की पौत्री का वरण किया। यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्ण से वैर-भाव रखता था। फिर भी उसने दौहित्र (अनिरुद्ध) को अपनी पौत्री देना स्वीकार कर लिया।[२] इसी विवाह के प्रसङ्ग में भोजकट गये हुए बलरामजी ने द्यूत के विवाद में रुक्मी का वध कर दिया था।[३]

टिप्पणी–अनिरुद्ध की विशेष जानकारी के लिये देखिए इसी पुराण की आगे आने वाली 'उषाकथा'।

१. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, उत्तरार्ध, अध्याय २७६।

२. तस्यापि रुक्मिणः पौत्रीं वरयामास केशवः ।
दौहित्राय ददौ रुक्मी तां स्पर्धन्नपि चक्रिणा ॥ *विष्णुमहापुराण, ५/२८/८*

३. ततो बलः समुत्थाय कोपसंरक्तलोचनः ।
जघानाष्टापदेनैव रुक्मिणं स महाबलः ॥ *वही, ५/२८/२३*

शिवमहापुराण

अनिरुद्ध श्रीकृष्ण के पौत्र और कामावतार प्रद्युम्न के पुत्र थे। उनका सौन्दर्य अनुपम था। उनका शरीर यौवन की प्राभातिक अरुणिमा से मण्डित था। शोणित-पुराधीश्वर दैत्यराज बाण की बेटी ऊषा ने, अपनी योगिनी सखी चित्रलेखा के द्वारा, अपहरण कराकर उन्हें अपने अन्तःपुर में मँगवा लिया था। ऊषा और अनिरुद्ध की जोड़ी बेजोड़ थी। दोनों के शरीर पर सौन्दर्य का वसन्त था। अँगड़ाई लेती हुई तरुणाई दोनों को मदमत्त कर रही थी। अतः एक-दूसरे को प्राप्तकर दोनो धन्य-धन्य थे, निहाल और बेहाल थे। अनिरुद्ध के आजाने से ऊषा का अन्तःपुर काम का अखाड़ा बन गया था। दोनों सुखी थे, प्रसन्न थे।

पता चलने पर बाण ने, भीषण युद्ध के अनन्तर, अनिरुद्ध को नागपाश में बाँधकर कारागार में डाल दिया था। बेचारी ऊषा के दुःख का पारावार न रहा। किन्तु वह कर भी क्या सकती थी ? अनिरुद्ध की प्रार्थना से प्रसन्न महाकाली ने उन्हें बन्धन से मुक्त कर पुनः ऊषा के प्रासाद में पहुँचा दिया था। फिर वहाँ शुरू हुआ दोनों का निरर्गल मदन-महोत्सव।

नारद के द्वारा पता चलने पर श्रीकृष्ण ने विशाल सेना के साथ बाण की राजधानी शोणितपुर पर आक्रमण कर दिया। वहाँ श्रीकृष्ण और शङ्कर का भयानक युद्ध हुआ। भगवान् शङ्कर शोणितपुर के रक्षक थे। किन्तु कृष्ण की प्रार्थना से सन्तुष्ट शङ्कर ने उन्हें बाण के मान-मर्दन का मार्ग बतलाया। श्रीकृष्ण ने बाण की चार भुजाओं को छोड़कर बाकी सारी भुजाएँ काट दी। बाण पराजित हुआ। शङ्कर के आदेश से युद्ध बन्द हुआ। ऊषा अनिरुद्ध का विवाह हुआ और अन्त में शङ्कर को प्रणाम कर, बाण से सत्कृत होकर वर-वधू के साथ श्रीकृष्ण द्वारका लौटे।[१]

श्रीमद्भागवतमहापुराण

प्रद्युम्न काम के अवतार थे। यह कृष्ण-रुक्मिणी की ज्येष्ठ श्रेष्ठ सन्तति थे। प्रद्युम्न के पुत्र थे—अनिरुद्ध। अनिरुद्ध प्रबल योद्धा और अनिन्द्य सुन्दर थे। दैत्यकुलभूषण बाण की बेटी ऊषा ने इनका अपहरण करा लिया था। वह इनके सौन्दर्य माधुर्य पर मुग्ध थी। अनिरुद्ध भी दैत्यराज की बेटी के उभरते यौवन पर न्यौछावर थे, विमोहित थे। ऊषा ने इस यदुवंशी राजकुमार को अपने अन्तःपुर में छिपाकर रक्खा था। किन्तु जब बाण को इस रहस्य-रास का पता चला तो

१. विस्तार के लिये देखिये आगे इसी पुराण का 'ऊषा-चरित'।

उसने अनिरुद्ध को कारागार में निरुद्ध कर दिया।

मुनि नारद के माध्यम से जब इस रहस्य का पता द्वारका में हुआ तो श्रीकृष्ण ने विशाल वाहिनी के साथ बाणासुर की नगरी शोणितपुरी पर आक्रमण कर दिया। भीषण युद्ध में असुरराज बाण की पराजय हुई। अन्त में बाणासुर ने अपनी प्यारी बेटी ऊषा का अनिरुद्ध के साथ विवाह कर दिया। उसने प्रभूत प्रारिबर्ह (दहेज) देकर सादर सस्नेह वर-वधू की विदाई की। लड़ने के लिये आई वाहिनी वरयात्रा बन कर लौटी ।[१]

रुक्मिणी का बड़ा भाई था रुक्मी। उसकी कृष्ण के साथ शत्रुता थी।[२] किन्तु कालान्तर में उसने अनुजा को प्रसन्न रखने के लिये अपनी तनुजा का विवाह भागिनेय (भाञ्जे) प्रद्युम्न से कर दिया। इतना ही नहीं, सम्बन्ध को अति प्रगाढ़ बनाने के लिये रुक्मी ने अपनी पौत्री रोचना का विवाह रुक्मिणी के पौत्र अनिरुद्ध के साथ सम्पन्न कर दिया।[३] इसप्रकार अनिरुद्ध के दो पुराण-प्रसिद्ध विवाह हुए।

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

महाप्रतापी प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के पुत्र थे। उनके पुत्र अनिरुद्ध थे। अनिरुद्ध विधाता के अंश से उत्पन्न हुए थे।[४] उन्होंने एक दिन स्वप्न में विकसित पुष्पों के उद्यान में सुगन्धित कुसुमों की शैय्या पर सोई हुई एक नवतरुणी सुकुमारी रमणी को मधुर-मधुर मुस्कराते हुए देखा। उसके सौन्दर्य पर विमुग्ध हुए अनिरुद्ध ने अपना परिचय देते हुए उससे विवाह का प्रस्ताव रक्खा। उस अनिन्द्य सुन्दरी ने आर्यमर्यादा का पालन करते हुए कहा—'मैं असुरराज बाण की बेटी हूँ। मेरा नाम उषा है। त्रैलोक्य विजेता बाण शङ्कर के किंकर हैं। हमारे यहाँ नारी कभी स्वतंत्र नहीं होती। अतः यदि तुम मुझे पाना चाहते हो तो बाणासुर, शम्भु अथवा सती पार्वती से मेरे लिए प्रार्थना करो।' तरुणी के इतना कहते ही स्वप्न समाप्त हो गया। वह सुन्दरी भी अन्तर्धान हो गई। अनिरुद्ध का अन्तःकरण काम से व्यथित हो उठा। वे व्याकुल रहने लगे। उनकी उद्विग्नता का समाचार देवकी रुक्मिणी आदि माताओं ने श्रीकृष्ण से कहा। सकल-कला-मर्मज्ञ भगवान् ठठाकर हँसने

---

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/२/६२-६३
२. देखिये श्रीमद्भागवतमहापुराण के दशम स्कन्ध उत्तरार्ध में कृष्ण-रुक्मिणी-परिणयप्रसङ्ग।
३. दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः ।
रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ।। *श्रीमद्भागवतमहापुराण,* १०/२/६१/२५
४. यह अंश भागवत आदि अन्य पुराणों में उपलब्ध नहीं होता। वस्तुतः ऊषा-अनिरुद्ध की कथा ही, इस पुराण में अन्य पुराणों की अपेक्षा, विलक्षण रीति से वर्णित है।

लगे और बोले—'देवियों, यह देवी दुर्गा की महिमा है। बाणासुर की बेटी का शीघ्र विवाह करवाने के लिये उन्होंने अनिरुद्ध को स्वप्न में उसे दिखलाया है। अब मैं बाणकन्या ऊषा को स्वप्न में अनिरुद्ध के दर्शन कराता हूँ। तुम लोग अनिरुद्ध के लिये चिन्तित मत होओ।'

इस प्रकार माताओं को आश्वस्त कर श्रीकृष्ण ने स्वप्न में ऊषा को सर्वाङ्गसुन्दर कोटि-कोटि कन्दर्प-दर्पहारी अनिरुद्ध के दर्शन कराये। स्वप्न की समाप्ति पर ऊषा अत्यन्त विह्वल हो उठी। उसकी सखी चित्रलेखा उसे समझाने का प्रयास करने लगी। किन्तु काम का आवेग इतना प्रबल था कि उसके सामने सान्त्वना का बाँध एक क्षण भी न टिक सका। बेटी की दशा देखकर बाण शङ्कर के समक्ष विषाद करते हुए मूर्च्छित हो गये। इस दृश्य को देखकर, शङ्कर, दुर्गा, कार्तिकेय और गणेश हँसने लगे। गणेश ने सारी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा कि स्वप्न में अनिरुद्ध का उषा को देखकर आकृष्ट होना और ऊषा का अनिरुद्ध को देखकर काम-विह्वल होना—यह सब क्रमशः दुर्गा और श्रीकृष्ण का कार्य है। अतः अब योगिनी चित्रलेखा खेल ही खेल में प्रमत्त अनिरुद्ध को लाने के लिये शीघ्र ही द्वारकापुरी के लिये प्रस्थान करे और दोनों का संगम कराये।

भगवान् शङ्कर ने गणेश की बात सुनी एवं उनसे कहा—'बेटा, जिस प्रकार यह शुभ कार्य बाण के श्रवणगोचर न हो, वैसा ही प्रयास तुम्हें करना चाहिये।' शङ्कर के कथन का अभिप्राय यह था कि बाण के जान लेने पर सारा खेल बिगड़ सकता है।

इधर महर्षि दुर्वासा की योग्य शिष्या योगिनी चित्रलेखा द्वारका में पहुँची। वहाँ अनिरुद्ध पर्यङ्कपर शयन कर रहे थे। उसने पर्यङ्कसमेत अनिरुद्ध को उठा लिया और दो घड़ी में ही शोणितपुर पहुँचा दिया।

द्वारका में अनिरुद्ध को न देखकर श्रीकृष्ण के राजप्रासाद में उदासीनता का वातावरण व्याप्त हो गया। तब सर्व-तत्त्ववेत्ता सर्वज्ञ श्री हरि ने सबको शान्त्वना प्रदान कर, सबको आश्वस्त कर विशाल यादव-वाहिनी के साथ शोणितपुर के लिये प्रस्थान किया।

चित्रलेखा अपनी योगसिद्धि के लिये नारी-जगत् में विख्यात थी। वह यादवकुमार सुकुमार अनिरुद्ध को लेकर शोणितपुर पहुँची। उस समय माता का स्मरण करके रोते हुए उस बालक को उसने समझाया, ढाढस दिया। फिर स्नान कराकर उसे पुष्पमाला और चन्दन से विभूषित किया और तब उसे लेकर वह

ऊषा के अन्त:पुर में प्रविष्ट हुई।[१] वहाँ ऊषा का भी माङ्गलिक शृङ्गार किया गया। फिर महेन्द्र नामक शुभ मुहूर्त की बेला में सखियों की गोष्ठी में उन दोनों का वार्तालाप कराया गया। ऊषा का अब सारा कष्ट समाप्त हो चुका था। वह अपने प्रियतम के साथ यथेच्छ विहार करने लगी। तब प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध ने गान्धर्व विवाह की विधि से ऊषा का पाणिग्रहण किया।

ऊषा-अनिरुद्ध का काम-विहार उद्दाम गति से बढ़ता ही रहा। दोनों सुखी थे, धन्य-धन्य थे। बहुत दिनों के व्यतीत हो जाने पर रक्षक द्वारा राजा बाणासुर को इसका पता चला।[२] उसने उस युवक से युद्ध की तैयारी की। शङ्कर-पार्वती आदि बाण को युद्धोद्योग से रोकते रहे। किन्तु वह उनकी बात मानने के लिये तत्पर न था। तब भगवान् शङ्कर ने बाण के समक्ष सम्पूर्ण रहस्य प्रकट कर दिया। उन्होंने कहा—'बाणासुर, अनिरुद्ध त्रिलोकी के अधिपति भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र (पौत्र) हैं। वे अपरिमेय बलशाली हैं। देव-दैत्य सभी अनिरुद्ध की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं हैं । अत: तुम उनसे युद्ध मत करो।' गणेश और स्कन्द ने भी बाण को श्रीकृष्ण की महिमा समझाकर युद्ध न करके अनिरुद्ध के साथ ऊषा का विवाह कर देने के लिये अनुरोध किया । बाण की धर्ममाता कोटरी ने भी उसे युद्धोन्माद से रोकने का प्रयास किया । उसने यह भी प्रेरणा दी कि तुम महान् बलशाली अनिरुद्ध को स्वेच्छानुसार अपनी कन्या दान कर दो।

किन्तु अभिमान की प्रतिमूर्ति बाण ने किसी की बात न मानी। उस समय भक्तवत्सल शङ्कर की आज्ञा से स्कन्द सेनापति होकर उसके साथ चले। शिव और गणेश ने बाण के लिये स्वस्तिवाचन किया। उसी समय एक दूत ने जाकर अनिरुद्ध से सारा समाचार बतला दिया। दूत को पार्वती और बाण की पत्नी ने भेजा था। पार्वती ने अनिरुद्ध को बाण से निर्भय होकर लड़ने की प्रेरणा दी थी।

माँ के आशीर्वाद को प्राप्त कर अनिरुद्ध युद्ध के लिए तैयार हुए। वे ऊषा द्वारा प्रदत्त रथ पर सहर्ष आरूढ हुए। ऊषा ने पार्वती से अनिरुद्ध के कल्याण की कामना की और अभय का वरदान माँगा। ऊषा के महल से बाहर निकल कर अनिरुद्ध ने बाण को देखा। दोनों में पहले उक्ति-प्रतियुक्तियों का आदान-प्रदान हुआ।

इसी समय सकल वीर यदुवंशियों और भीम तथा अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण

---

१. यहाँ अनिरुद्ध को बालक कहना और माता के लिये उनका रोना आदि बातें प्रसङ्ग से सर्वथा विपरीत और अव्यावहारिक हैं। तारुण्य और शैशव दोनों की एक साथ एकत्र सत्ता संभव नहीं है। इसकी अपेक्षा श्रीमद्भागवत की ऊषा-अनिरुद्ध कथा अधिक सुसङ्गत तथा लौकिक एवं व्यावहारिक है।

२. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, अध्याय ११४ ।

शोणितपुर पर चढ़ बैठे। उस समय बहाबली बलराम का हल बाण की नगरी और सेना का भयङ्कर विनाश कर रहा था। शङ्कर और पार्वती ने एक बार पुनः बाण को समझने का प्रयास किया। किन्तु वह युद्ध से विरत होनके लिये तैयार न था। फिर तो शङ्कर भी उसके पक्ष में युद्ध करने के लिये प्रस्थित हुए। इसी बीच सुतललोक से बलि आया। उसने शङ्कर और कृष्ण की प्रार्थना की। भगवान् ने उससे कहा—'वत्स बलि, डरो मत। तुम मेरे द्वारा सुरक्षित सुतल-लोक में जाओ। मेरे वर-प्रसाद से तुम्हारा यह पुत्र भी अजर-अमर होगा । मैं इस मूर्ख अभिमानी के दर्प का ही विनाश करूँगा। इसका वध नहीं करूँगा, क्योंकि मैंने अपने भक्त प्रह्लाद को वर दे रक्खा है कि—'तुम्हारा वंश मेरे द्वारा अवध्य होगा।' भगवान् की कृपाभरी बात को सुनकर बलि निहाल हो गया।

जब बाण किसी की बात नहीं माने तो फिर महाभयङ्कर युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों ओर से ज्वरों की सृष्टि की गई। अन्त में वैष्णव ज्वर प्रबल पड़ा और माहेश्वर ज्वर ने पराजय स्वीकार कर भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की।

अन्त में श्रीकृष्ण ने भयङ्कर सुदर्शन चक्र को चलाकर बाण के सहस्रों हाथों को काट डाला। चेतना-शून्य होकर बाण पृथिवी पर गिर पड़ा। तब जगद्गुरु भगवान् महादेव वहाँ आये और बाण को उठाकर अपने वक्षःस्थल से लगा लिये। फिर वे बाण को लेकर भगवान् श्रीकृष्ण के पास पहुँचे और उसे श्रीकृष्ण के चरणकमलों में समर्पित कर दिया।

भगवान् श्रीकृष्ण ने बाण को अभयदान देते हुए उसके सिर पर अपना कर-कमल फिराकर उसे अंजर-अमर बना दिया। फिर बाण ने दहेज में प्रभूत सम्पत्ति श्रीकृष्ण को समर्पित की और वर-वधू को भी बहुत सा उपहार प्रदान कर विदा किया। कन्या की विदाई की बेला में बाण ढाह मारकर रो पड़ा। अन्त में बाण की अनुमति और शङ्कर की आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण वर-वधू के साथ द्वारका पहुँचे। द्वारका में नव-वधू के आ जाने से मङ्गल-महोत्सव मनाया गया। बहुत से ब्राह्मण भोजन किये और उन्हें प्रभूत सम्पत्ति दान में दी गई।[१]

●

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय ११२-१२०।

ऊषा-कथा

ब्रह्ममहापुराण

एक समय बाणासुर की बेटी ऊषा[१] शङ्कर पार्वती का दर्शन करने गई थी। वहाँ उसने पार्वती को शङ्कर के साथ क्रीडा करती हुई, हास-परिहास करती हुई देखा। उसके भी मन में रमण के साथ रमण करने की लालसा उत्पन्न हुई। जन-जन के मन को जानने वाली पार्वती ने उससे कहा—'ऊषा, सन्तप्त मत होओ। शीघ्र ही तुम भी अपने पति के साथ रमण करोगी।' ऊषा ने माता जी के वचन को सुनकर पूछा—'मातः, मेरा पति कौन होगा? मैं कब उसके साथ हास-विलास करूँगी?' सुकुमारी राजकुमारी की जिज्ञासा को सुनकर पार्वती जी ने कहा—'वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को स्वप्न में जो तुम्हारे साथ हठात् रमण करेगा, वही तुम्हारा पति बनेगा।'[२]

नियत समय आने पर पार्वती की वाणी सत्य सिद्ध हुई। उषा रात्रि में शयन कर रही थी। स्वप्न में किसी व्यक्ति ने उसके साथ रमण किया। जागने पर उस पुरुष को न देखकर उषा विलाप-प्रलाप करने लगी। बाण के महामात्य कुम्भाण्ड की पुत्री चित्रलेखा उसकी सखी थी। उसके बार-बार साग्रह पूछने पर उषा ने सारा रहस्य बतला दिया।

चित्रलेखा योगविद्याविशारद थी। उसने एक वस्त्रखण्ड पर त्रिलोकी के सारे पुरुषों का चित्र बना डाला। उषा ने उसे ध्यान से देखा। अनिरुद्ध के चित्र के दृष्टिगत होते ही उत्सुकतापूर्वक वह बोल उठी—'मेरा प्राणाधार यही है, यही है।' इस पर चित्रलेखा ने उसे आश्वासन दिया और आकाशमार्ग से जा पहुँची द्वारिका।[३]

---

१. बाणपुत्री 'ऊषा' का नाम किसी महापुराण में ह्रस्वादि है तो किसी में दीर्घादि दिया हुआ है। जहाँ जैसा है वैसा ही उल्लेख यहाँ किया गया है। ब्रह्ममहापुराण में दोनों प्रकार से **उल्लेख** मिलता है।

२. वैशाखे शुक्लद्वादश्यां स्वप्ने योऽभिभवं तव।
करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति ॥ *ब्रह्ममहापुराण* १६/१४

३. ....सा योगगामिनी।
ययौ द्वारवतीमूषां **समाश्वास्य** ततः सखीम् ॥ *वही,* १६/२२

इधर बाणासुर शङ्कर की आराधना करता रहा। एक दिन उसने शङ्कर से कहा—'महादेव, बिना युद्ध के मैं अपनी इन सहस्र भुजाओं से खिन्न हो गया हूँ। अब ये मेरे लिये निरर्थक भारस्वरूप बन गई हैं। इनको सफल बनाने वाला संग्राम मुझे कब प्राप्त होगा?' भगवान् शङ्कर ने बाण की यह सगर्व बात सुनी। उन्होंने कहा—'बाण जिस दिन तुम्हारा अपूर्व ध्वज गिर जायेगा, उसी समय तुम भयानक युद्ध का सामना करोगे।' शङ्कर की बात सुनकर बाणासुर अभिमान के साथ राजप्रासाद वापस आया। उसने देखा कि उसके महल का ध्वज गिर गया है। इस पर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई।

इसी समय ऊषा की प्रिय सखी चित्रलेखा अपनी योगविद्या के प्रभाव से अनिरुद्ध को उठा लाई और उन्हें बाण-बेटी के पास पहुँचा दिया। अन्त:पुर के रक्षकों को जब पता चला तो उन लोगों ने इस बात की सूचना राजाधिराज बाण को दी। बाण ने उस व्यक्ति को बाँध लाने के लिए अपनी सेना भेजी। अनिरुद्ध ने लौह के परिघ (व्योड़ा) के प्रहार से सारी सेना को विध्वस्त कर दिया। फिर तो बाण स्वयं उनसे लड़ने के लिये गया। जब सामान्य युद्ध में वह अनिरुद्ध को पराजित न कर सका तो छल-युद्ध में नागपाश से उन्हें आबद्ध कर लिया।[१]

इधर द्वारिका में अनिरुद्ध के न दिखलाई पड़ने पर सभी उनके लिये चिन्तित थे। इसी समय आकर नारद ने बाण की नगरी में उनके बद्ध होने की सूचना दी। इस पर भगवान् श्रीकृष्ण ने बलराम और प्रद्युम्न के साथ बाणासुर की नगरी पर आक्रमण कर दिया।[२] शङ्कर अपने गणों के साथ बाण-पुरी की रक्षा करते थे। अत: सर्वप्रथम उन्हीं लोगों के साथ श्रीकृष्ण का महायुद्ध हुआ। माहेश्वर ज्वर को वैष्णव ज्वर ने परास्त किया। श्रीकृष्ण ने अपने जृम्भणास्त्र से शङ्कर को सम्मोहित कर दिया। वे युद्ध छोड़कर रथ के पीछे जा बैठे। प्रद्युम्न ने कार्तिकेय को पराजित किया। सेनापति के अभाव में प्रमथ-सेना युद्ध-भूमि छोड़कर भाग खड़ी हुई।

शङ्कर-सैन्य को पराजित देखकर बाण स्वयं युद्ध-भूमि में आ डटा। उसने श्रीकृष्ण के साथ अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन किया। श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र को उठाकर बाण का वध करना चाहा तभी दैत्य-विद्या कोटरी नग्न होकर कृष्ण और

---

१. मायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रिचोदितः ।
ततश्च पन्नगास्त्रेण बबन्ध यदुनन्दनम् ।। *ब्रह्ममहापुराण,* ९६/९

२. ब्रह्ममहापुराण के अनुसार श्रीकृष्ण ने बलराम और प्रद्युम्न के साथ बाणासुर की नगरी पर आक्रमण किया था। उनके साथ यादव-सेना की चर्चा यहाँ नहीं की गई है।

बाण के मध्य में आ खड़ी हुई। अत: कृष्ण ने नेत्र बन्द कर चक्र को प्रेरित कर दिया बाण के बाहु-वन को विनष्ट करने के लिये। चक्र बाण के बाहु-चक्र को काट कर कृष्ण के पास लौट आया। अब कृष्ण ने बाण का वध ही कर देने के लिये पुन: सुदर्शन चक्र को उठाया। अन्तर्यामी शङ्कर को यह बात विदित हो गई। अत: वे वेग के साथ कृष्ण के समक्ष आकर खड़े हो गये। उन्होंने कृष्ण की स्तुति करते हुए कहा—'प्रभो, बाण को मैंने अभयदान दिया है। अत: इसके अपराधों को क्षमा कर आप इसका वध न करें। यह मेरी मर्यादा की रक्षा होगी।[१]'

भगवान् शङ्कर के कथन को सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—'देव, आपके वचन का सम्मान करते हुए मैंने अपने चक्र को परावर्तित कर लिया है। बाणासुर जीवित रहे। वस्तुत: आप में और मुझमें कोई भेद ही नहीं है। भेद तो भिन्नदर्शियों की दृष्टि में हैं।' ऐसा कहकर श्रीकृष्ण वहाँ गये जहाँ नागपाश में आबद्ध अनिरुद्ध निरुद्ध थे। उनके वहाँ पहुँचते ही गरुड के श्वासमात्र से सकल नागपाश विनष्ट हो गया। तदनन्तर सपत्नीक अनिरुद्ध को गरुडारूढ करके कृष्ण, बलराम और अनिरुद्ध द्वारकापुरी को लौट आये ।[२]

पद्ममहापुराण

ऊषा महादानी बलि की पौत्री और बाण की बेटी थी। वह सुन्दरी और चित्ताकर्षक थी। यह उसके तारुण्य का सुप्रभात था। एक दिन स्वप्न में उसने एक तरुण के साथ रमण किया। निद्राकी समाप्ति पर वह उसके लिये व्याकुल हो गई। ऊषा की सखी चित्रलेखा योगिनी थी। उसने देवों एवं सुविदित वंश के व्यक्तियों का पटचित्र तैयार किया। ऊषा के यह कहने पर कि इसी व्यक्ति ने स्वप्न में मेरे साथ रमण किया है, चित्रलेखा ने यदुकुमार कृष्णपौत्र अनिरुद्ध का हरण कर उन्हें ऊषा के शयनकक्ष में पहुँचा दिया। बेटी के अन्त:पुर में किसी पुरुष के होने की बात जानकर क्रुद्ध बाणासुर ने उसे नागपाश में आबद्ध कर बन्दी बना दिया।

इस बात का पता चलने पर कृष्ण और बलराम यादवों की विशाल वाहिनी लेकर बाणासुर की नगरी पर आक्रमण कर दिये। वहाँ असुरराज की नगरी के रक्षक शङ्कर, गणेश और कार्तिकेय के साथ क्रमश: कृष्ण, बलराम, एवं प्रद्युम्न का भयावह युद्ध हुआ। शिव-सैन्य को पराजित होते देखकर बाणासुर

---

१. तत्प्रसीदाभयं दत्तं बाणस्यास्य मया प्रभो ।
तत्त्वया नानृतं कार्यं यन्मया व्याहृतं वच: ॥ *ब्रह्ममहापुराण,* ९७/४३

२. ततोऽनिरुद्धमारोप्य सपत्नीकं गरुत्मति ।
आजग्मुर्द्वारकां रामकार्ष्णिदामोदरा: पुरीम् ॥ *वही,* ९७/५०

स्वयं कृष्ण से युद्ध करने के लिये समराङ्गण में आया। कृष्ण ने सुदर्शन चक्र का प्रयोग कर उसकी सारी भुजाओं को काट डाला। केवल दो भुजाएँ ही अवशिष्ट रह गईं।

इसी समय शङ्कर ने आकर बाण के वध से कृष्ण को सविनय रोका। कृष्ण ने शङ्कर की बात मानकर बाण को जीवित छोड़ दिया। बाण कृष्ण और बलराम को प्रणाम कर उन्हें अपने प्रासाद में ले गया। वहाँ उसने विधि-विधान से ऊषा-अनिरुद्ध का विवाह किया। प्रभूत सम्पत्ति उन्हें उपायन में दी और फिर श्रद्धा के साथ उन्हें कृष्ण के साथ विदा कर दिया। वर-वधू को लेकर कृष्ण द्वारका पधारे।[१]

विष्णुमहापुराण

भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्रों में रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न सबसे बड़े थे। प्रद्युम्न के श्रेष्ठ पुत्र थे अनिरुद्ध। योद्धाओं में अनिरुद्ध अतुलित बलशाली थे। इनकी सुन्दरता भी भुवन-विदित थी।

एक बार बाणासुर की पुत्री उषा ने शङ्कर जी के साथ पार्वती को क्रीडा करते देखा। इससे स्वयं भी उसके मन में अपने पति के साथ रमण करने की प्रबल भावना उत्पन्न हुई। उसके हृदय के भाव को जानकर पार्वती जी ने उस सुकुमारी नवयौवना से कहा—'तुम अधिक सन्तप्त मत होओ। यथा समय तुम भी अपने पति के साथ रमण करोगी।'[२] देवी की बात सुनकर ऊषा की जिज्ञासा और लालसा बलवती हो उठी। उसकी मनःस्थिति को जानकर पार्वतीजी ने पुनः कहा—'राजपुत्रि, वैशाख शुक्ला द्वादशी की रात्रि को जो पुरुष स्वप्न में तुझसे हठात् सम्भोग करेगा वही तेरा पति होगा।'[३]

कुछ समय के अनन्तर उसी तिथि को उषा की स्वप्नावस्था में किसी पुरुष ने उसके साथ समागम किया। यह समागम पार्वती के कथन के अनुसार ही हुआ। इससे उषा का भी उस पुरुष में अनुराग हो गया। स्वप्न की स्थिति बहुत देर तक न रही। जागने पर पुरुष को न देखकर उषा विलाप करने लगी।

बाण के महामात्य का नाम था—'कुम्भाण्ड'। कुम्भाण्ड की बेटी थी

---

१. विस्तार के लिये देखिये पीछे इसी पुराण की 'अनिरुद्ध-कथा' और पद्मपुराण के उत्तर-खण्ड का अध्याय-२७६।

२. उषा बाणसुता विप्र पार्वतीं सह शम्भुना।
क्रीडन्तीमुपलक्ष्योच्चैः स्पृहां चक्रे तदाश्रयाम्॥
ततः सकलचित्तज्ञा गौरी तामाह भामिनीम्।
अलमत्यर्थतापेन भर्त्रा त्वमपि रंस्यसे॥ *विष्णुमहापुराण,* ५/३२/११-१२

३. वैशाखशुक्लद्वादश्यां स्वप्ने योऽभिभवं तव।
करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति॥ *वही,* ५/३२/१४

चित्रलेखा। योगविद्या-विशारद चित्रलेखा उषा की प्रिय सखी थी। वह भी उसी के पास में शयन कर रही थी। चित्रलेखा ने किसी-किसी प्रकार, गोपनीय रखने का विश्वास दिलाकर, उससे सारा रहस्य जान लिया। उषा बार-बार उससे पुनः मिला देने का आग्रह कर रही थी।

आश्वासन देती हुई मन्त्रितनया ने राजपुत्री से कहा—'यद्यपि यह कार्य अत्यन्त कठिन है। तथापि मैं तुम्हारा कुछ-न-कुछ उपकार तो करूँगी ही। तुम सात अथवा आठ दिन तक मेरी प्रतीक्षा करना।' ऐसा कहकर वह अपने घर के अन्दर चली गई और उस पुरुष को जानने का उपाय करने लगी।

निर्धारित अवधि के व्यतीत होने के अनन्तर चित्रलेखा अपने घर से बाहर आई। उसने उषा के समक्ष एक पट प्रसारित किया। उस पट पर सकल त्रिलोकी के व्यक्तियों का चित्र अङ्कित था। उषा ने उसे ध्यान से देखना प्रारम्भ किया। जब उसने प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्ध को देखा तो प्रसन्नतावश चिल्ला उठी—'वह यही है, वह यही है।' उसकी बात सुनकर चित्रलेखा ने कहा—'उषा, यह कृष्ण का पौत्र है। इसका नाम अनिरुद्ध है। देवी ने प्रसन्न होकर इसे ही तुम्हारा पति निश्चित किया है। इसकी सुन्दरता जगद्विदित है। यदि तुम्हें यह पति मिल गया तो मानो तुमने सब कुछ प्राप्त कर लिया। किन्तु कृष्ण-चन्द्र के द्वारा सुरक्षित द्वारिकापुरी में पहले प्रवेश करना ही कठिन है। तथापि मैं किसी-न-किसी उपाय से तुम्हारे पति को ले लाऊँगी ही। तुम मेरी प्रतिक्षा करो।'[१] इस प्रकार उषा को आश्वस्त कर चित्रलेखा द्वारका के लिये प्रस्थित हुई।

बाणासुर त्रिनयन शङ्कर का भक्त था। एक दिन उसने भगवान् शङ्कर से कहा—'देव, बिना युद्ध के इन सहस्त्र भुजाओं से मुझे महान् खेद हो रहा है। क्या कभी मेरी इन भुजाओं को सफल बनाने वाला युद्ध होगा ? भला बिना युद्ध के भाररूप इन भुजाओं से मुझे लाभ ही क्या है ?'[२]

बाण की गर्वभरी बात भगवान् शङ्कर ने सुनी। उन्होंने उत्तर में कहा—'बाण, जिस समय तुम्हारी मयूर-चिह्न वाली ध्वजा टूटकर गिर जायेगी, उसी समय तुम्हारे समक्ष महाभयङ्कर युद्ध उपस्थित होगा।'[३] शङ्कर के वचन को बाण

---

१. दुष्प्रवेशा पुरी पूर्वं द्वारका कृष्णपालिता ।
तथापि यत्नाद्भर्तारमानयिष्यामि ते सखि । *विष्णुमहापुराण* ५/३२/२८-२९

२. देव बाहुसहस्त्रेण निर्विण्णोऽस्म्याहवं विना ॥
कच्चिन्ममैषां बाहूनां साफल्यजनको रणः ।
भविष्यति विना युद्धं भाराय मम किं भुजैः ॥ *वही,* ५/३३/१-२

३. मयूरध्वजभङ्गस्ते यदा बाण भविष्यति ।
पिशिताशिजनानन्दं प्राप्स्यसे त्वं तदा रणम् ॥ *विष्णुमहापुराण,* ५/३३/३

ने सुना । वह प्रसन्न हो अपने घर वापस गया। कालान्तर में बाण ने देखा कि उसकी ध्वजा टूट कर गिर गई है। अब उसे निःसीम आनन्द की अनुभूति हुई ।

इसी समय अप्सराश्रेष्ठ चित्रलेखा ने अपने योगबल से अनिरुद्ध को लाकर उषा के प्रासाद में पहुँचा दिया । अब क्या था ? दोनो अनिन्द्य सुन्दर थे, तरुणातितरुण थे। अतः प्रारम्भ हुआ काम का अविराम अभिराम व्यापार। अन्तःपुर के रक्षकों ने जब इस बात को जाना तो उन लोगों ने सम्पूर्ण समाचार असुरराज बाणासुर को बतला दिया ।

इस समाचार को सुनते ही बाण का क्रोपानल भड़क उठा। उसने अपने सैनिकों को आदेश दिया युद्ध कर अनिरुद्ध को बाँध लाने का। किन्तु युद्ध के लिये समागत सैनिकों को वीरवर अनिरुद्ध ने परिघ से पीटकर मार डाला। अपनी सेना की यह दुर्दशा देखकर बाण अनिरुद्ध को मार डालने की इच्छा से रथारूढ हो स्वयं युद्ध करने के लिये उनके पास पहुँचा। अनिरुद्ध की वीरता अद्भुत थी। उन्होंने बाणासुर को संग्राम में पराजित कर दिया। तब वह मन्त्रियों की प्रेरणा से मायापूर्वक युद्ध करने लगा। फलतः उसने यदुनन्दन अनिरुद्ध को नागपाश से बाँध लिया ।[१]

द्वारकापुरी में अनिरुद्ध को न देखकर यादवगण विभिन्न आशङ्काएँ कर रहे थे। इसी समय वहाँ पहुँचकर नारदजी ने उनके बाणासुर द्वारा बाँधे जाने की सूचना दी। उन्होंने योगविद्या में विशारद युवती चित्रलेखा के द्वारा अनिरुद्ध के हरण किये जाने की बात भी बतलाई। तब यादवों को विश्वास हो गया कि उनका अपहरण देवों ने नहीं किया है।

बाण के द्वारा अनिरुद्ध को बाँधे जाने की बात ज्ञातकर श्रीकृष्ण ने बलराम और प्रद्युम्न के साथ यादवों की विशाल वाहिनी लेकर, शोणितपुर पर आक्रमण कर दिया।[२] नगर में प्रवेश करते ही उनका, बाण के नगर की रक्षा में तत्पर भगवान् शङ्कर के पार्षद प्रमथगणों से युद्ध हुआ। उन्हें नष्ट करके श्रीहरि बाणासुर के नगर के निकट पहुँच गये। वहाँ माहेश्वर ज्वर का युद्ध श्रीकृष्ण और वैष्णवज्वर के साथ हुआ। अन्त में माहेश्वर ज्वर पराजित हो गया। ब्रह्मा की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण ने उसे छोड़ दिया, क्षमाकर दिया। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने पञ्चाग्नियों को

---

१. मायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रिचोदितः ।
ततस्तं पन्नगास्त्रेण बबन्ध युदनन्दनम् ॥ *विष्णुमहापुराण,* ५/३३/९

२. ततो गरुडमारुह्य स्मृतमात्रागतं हरिः ।
बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥ *वही,* ५/३३/१२

जीतकर नष्ट कर दिया और फिर जुट गये दानवी सेना के विनाश में। उस समय बाणासुर, भगवान् शङ्कर और स्वामिकार्तिकेयजी श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने लगे।[१]

शोणितपुर के रणाङ्गण में शङ्कर और श्रीकृष्ण का भीषण संग्राम हुआ। अन्त में श्रीकृष्ण ने जृम्भकास्त्र के प्रयोग से शङ्कर को निद्राभिभूत कर दिया। वे बार-बार जमुहाई लेते हुए रथ के पीछे जा बैठे। उनकी यह दशा देखकर प्रमथगण भाग खड़े हुए। प्रद्युम्न के आगे कार्तिकेय भी न ठहर सके।

अन्त में बाणासुर युद्ध करने के लिये आया। उस समय उसका रथ नन्दीश्वर सञ्चालित कर रहे थे। इधर बलराम जी का हल और मुसल शत्रु-सैन्य पर प्रलयङ्कर दृश्य उपस्थित कर रहा था। श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र का प्रयोग कर बाण के भुज-वन को काट डाला। केवल दो भुजाएँ छोड़ दी थी। अब वे बाण का वध करने वाले ही थे कि इसी समय पहुँचकर शङ्कर ने श्रीकृष्ण से बाण को क्षमा कर देने की प्रार्थना की। कृष्ण ने शङ्कर की प्रार्थना स्वीकार कर उसे जीवित छोड़ दिया। उसके बाद वे पहुँचे यदुकुलनन्दन अनिरुद्ध के पास। वहाँ उनके पहुँचते ही अनिरुद्ध के बन्धनरूप समस्त नागगण गरुड के वेग से उत्पन्न हुए वायु के प्रहार से नष्ट हो गये।

तदनन्तर सपत्नीक अनिरुद्ध को गरुड पर आरुढ कर बलराम, प्रद्युम्न और कृष्णचन्द्र द्वारकापुरी में लौट आये।[२]

शिवमहापुराण

दक्ष प्रजापति की त्रयोदश कन्याएँ ऋषि कश्यप से ब्याही गई थीं। इनमें दिति सबसे बड़ी थी। दिति के पुत्र दैत्य कहलाये। दिति के गर्भ से सर्वप्रथम दो महाबली पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ था। हिरण्याक्ष उसका लघु बन्धु था। हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे। प्रह्लाद उनमें सबसे छोटा था। प्रह्लाद का बेटा विरोचन था। यह दानियों में सर्वश्रेष्ठ था। विरोचन का पुत्र था महादानी बलि। बलि ने ही वामन को त्रिलोकी का दान किया था। बाण इसी बलि का औरस बेटा था। यह शिव का अप्रतिम भक्त था। इतनी प्रशस्त थी बाण की वंशपरम्परा। बाण ने त्रिलोकी को जीतकर शोणितपुर में अपनी राजधानी बनायी थी। उसकी सहस्रभुजाएँ थीं। ऊषा इसी बाण की बेटी थी।

ऊषा के सुकुमार शरीर में यौवन का प्रवेश हो चुका था। तारुण्य की

---

१. ततस्समस्तसैन्येन दैतेयानां बलेः सुतः।
यथुधे शङ्करश्चैव कार्तिकेयश्च शौरिणा ॥ *विष्णुमहापुराण*, ५/३३/२१

२. विष्णुमहापुराण में बाणद्वारा कन्यादान और उपहार आदि देने की चर्चा नहीं की गई है।

मादकता उसके अङ्ग-अङ्ग से प्रस्फुटित हो रही थी। यह वासन्ती वैशाख का महीना था। ऊषा ने माधव की पूजा की। अपना माङ्गलिक शृंगार किया और सो गई अपने अन्तःपुर में। मनसिज ने उसके मन में अपना स्थान बनाया। तब उसका मन सन्तप्त हो उठा कामभाव से। उस समय देवी पार्वती की शक्ति से ऊषा को स्वप्न में श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के साथ सङ्गम करने का अवसर प्राप्त हुआ। वह निमग्न हुई रति-रङ्ग में। किन्तु यह सुखद बेला देर तक नहीं रही। स्वप्न भङ्ग हुआ। अनिरुद्ध अदृश्य हो गये। ऊषा उठ बैठी। उस समय उसकी व्याकुलता चरम सीमा का स्पर्श कर रही थी। उसके पार्श्व भाग में ही शयन कर रही थी बाण के महामात्य कुम्भाण्ड की योगिनी बेटी चित्रलेखा। चित्रलेखा ने ऊषा को धैर्य बँधाने का प्रयास किया। किन्तु वह स्वप्न में दृष्ट अपने प्राण-वल्लभ के वियोग में प्राण देने के लिये तत्पर हो गई। ऐसी स्थिति में चित्रलेखा ने बुद्धिकौशल का परिचय देते हुए कहा—'प्रियसखी, जिस सौभाग्यशाली ने तेरे मन को चुराया है, उसे बतलाओ तो सही। वह यदि त्रिलोकी में कहीं भी होगा तो मैं उसे अवश्य लाकर तुम्हारा कष्ट दूर करूँगी, तुम्हारी व्यथा का निवारण करूँगी।'

इस प्रकार ऊषा को आश्वस्त कर चित्रलेखा ने वस्त्र के परदे पर देवों, दानवों, दैत्यों, गन्धर्वों, सिद्धों, नागों और यक्ष आदि के चित्रों को अंकित कर दिया।[१] फिर वह मानवों का चित्र बनाने लगी। उनमें वृष्णिवंशियों का प्रकरण प्रारम्भ होने पर उसने शूर,. वसुदेव, राम, कृष्ण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का चित्र खींचा। अनिरुद्ध के चित्र को देखकर ऊषा लज्जित हो गई और कहा—'रात्रि में मेरे साथ रति-रङ्ग मचाने वाला व्यक्ति यही है।' तदनन्तर ऊषा के अनुरोध करने पर चित्रलेखा ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी को, तृतीय प्रहर की बेला में, द्वारका पहुँची। उस समय अनिरुद्ध पलंग पर बैठे हुए थे। उसने पलंग-सहित अनिरुद्ध को राजभवन से उठाया और शोणितपुर में ऊषा के पास पहुँचा दिया। वह दिव्य योगिनी थी। ऊषा अपने प्रियतम को पाकर प्रसन्न हो उठी। उसका मन-मयूर नाचने लगा। दोनों तरुण थे। दोनों पर कामभाव का शासन था। फिर क्या था, शुरू हुआ रति-क्रीडा का अविराम खेल। ऊषा की देहलता और चेष्टाएँ खिल उठीं। कन्या के अन्तःपुर के रक्षकों ने सुकुमार, सुन्दर, साहसी और वीर एक पुरुष को ऊषा के साथ दुःशीलता का आचरण करते हुए देख भी लिया।[२] रक्षकों ने इस घटना की

१. कदाचित् विश्व का यह सर्वप्रथम चित्रपट था।

२. अन्तःपुरद्वारगतैर्वेत्रजर्जरपाणिभिः । इङ्गितैरनुमानैश्च कन्यादौशील्यमाचरन् ।
स चापि दृष्टस्तैस्तत्र नरो दिव्यवपुर्धरः । तरुणो दर्शनीयस्तु साहसी समरप्रियः ॥
तं दृष्ट्वा सर्वमाचख्युर्बाणाय बलिसूनवे ॥ *शिवमहापुराण,* २/४/५२/५८-६०

सूचना महाराज बाण को दी। बाण सैनिकों के साथ कन्या के अन्तःपुर में पहुँचे। वहाँ उन्होंने चढ़ती हुई तरुणाई के तेज से देदीप्यमान दिव्य शरीरधारी अनिरुद्ध को देखा। उसे महान् आश्चर्य हुआ। उसने सेना को आदेश दिया अनिरुद्ध का वध करने के लिये। किन्तु जब कोई भी उस योद्धा के समक्ष टिक न सका तो स्वयं बाण ने छलपूर्वक नागपाश से उसे बाँध लिया और पिंजरे में बन्दी बना दिया।

बाणासुर अनिरुद्ध को मरवा डालना चाहता था । किन्तु महामात्य कुम्भाण्ड के मना करने पर वह उनके वध से विरत हो गया । कुम्भाण्ड ने अनिरुद्ध को बहुत समझाया कि वह महाराज़ से क्षमा-याचना करलें, अपनी पराजय स्वीकार करलें। किन्तु वीरवर अनिरुद्ध ने इसे क्षात्रधर्म के विपरीत बतलाते हुए रणभूमि में मरण को ही श्रेयस्कर बतलाया।[१] अनिरुद्ध की इस वीरता और निर्भीकता से बाणासुर अति कुपित हो उठा। किन्तु आकाशवाणी के रोकने से उसने अनिरुद्ध के वध की बात त्याग दी।

अनिरुद्ध नागपाश में आबद्ध थे। विषैले सर्प उन्हें डँस रहे थे। अतः त्राण के लिये उन्होंने जगदम्बा दुर्गा का स्मरण-स्तवन किया। उनके ऊपर प्रसन्न हुई कृष्णवर्णा काली वहाँ ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी को महारात्रि की बेला में प्रकट हुई। उन्होंने अपने बलिष्ठ मुष्टिक-प्रहार से नागपाश को विदीर्ण कर बन्धनमुक्त अनिरुद्ध को पुनः ऊषा के अन्तःपुर में पहुँचा दिया। फिर प्रारम्भ हुआ ऊषा-अनिरुद्ध का अनिर्बन्ध रति-रङ्ग।

इधर द्वारका में नारदजी से बाणासुर के द्वारा अनिरुद्ध के नागपाश में बाँधे जाने का समाचार सुनकर विशाल सेना के साथ श्री कृष्ण ने शोणितपुर पर आक्रमण कर दिया। यतः भगवान् शङ्कर सपरिवार शोणितपुर की रक्षा करते थे। अतः वे भी अपने भक्त के पक्ष में सज-धजकर आ डटे। फिर तो श्रीकृष्ण और श्रीशिव का बड़ा भयानक संग्राम हुआ। शङ्कर के आदेश से श्रीकृष्ण ने जृम्भणास्त्र द्वारा उन्हें जृम्भित कर दिया और फिर भीषण युद्ध में, अपने सुदर्शनचक्र द्वारा, चार भुजाओं को छोड़कर, बाण की सारी भुजाएँ काट दी। कृष्ण बाण का सिर काटना ही चाहते थे कि मोहनिद्रा को त्याग कर उठे हुए शिव ने उन्हें ऐसा करने से रोका। शिव की आज्ञा से युद्ध बन्द हुआ। बाण कृष्ण में मित्रता हुई । दैत्यकुलभूषण बाण ने प्रभूत सम्पत्ति प्रदान कर श्रीकृष्ण और वर-वधू को सस्नेह विदा किया।[२]

---

१. क्षत्रियस्य रणे श्रेयो मरणं सम्मुखे सदा ।
न वीरमानिनो भूमौ दीनस्येव कृताञ्जलेः ।। *शि०पु०, रु०सं०, युद्धखण्ड, ५३/३५*

२. शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, अ० ५२-५६

श्रीमद्भागवतमहापुराण

ऊषा असुर बाण की बेटी थी। बाण महादानी बलि का बड़ा बेटा था। बलि ने ही वामन को पृथ्वी दान में दी थी। बाण शङ्कर का महान् भक्त था। उसकी सहस्र भुजाएँ थीं। शङ्कर की कृपा से इन्द्रादि सकल देव उसके किङ्कर थे। बाण के महामात्य का नाम था—'कुम्भाण्ड'। उसकी एक पुत्री थी। उसका नाम था—'चित्रलेखा'। चित्रलेखा योगिनी थी, योगविद्या-विशारद थी। ऊषा और चित्रलेखा सखियाँ थीं।

ऊषा के शरीर पर नव यौवन ने अधिकार जमा रक्खा था। वह अनिन्द्य सुन्दरी थी। एक समय रात्रि की बेला में ऊषा सखियों के साथ शयन कर रही थी। उसने स्वप्न में कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के साथ रमण किया। यद्यपि उसने कभी अनिरुद्ध को देखा-सुना नहीं था। फिर भी स्वप्न ने दोनों का समागम करा दिया।[१] अभी तरुणी ऊषा तृप्त नहीं हुई थी कि स्वप्न में अनिरुद्ध अदृश्य हो गये। वह विकल होकर उठ बैठी। चित्रलेखा ने उसकी विकलता विह्वलता का कारण पूछा। ऊषा ने उसे स्वप्न की सारी अनुभूति यथावत् सुना दी।

चित्रलेखा ने ऊषा को सान्त्वना देते हुए कहा—'सखि, यदि तुम्हारा चित्तचोर त्रिलोकी में कहीं भी होगा, और उसे तुम पहचान सकोगी, तो मैं तुम्हारी विरह-वेदना अवश्य शान्त कर दूँगी। मैं चित्र बनाती हूँ। तुम अपने चित्तचोर प्राणवल्लभ को पहचान कर बतला दो। फिर तो वह चाहे जहाँ भी होगा, मैं उसे तुम्हारे पास लाकर उपस्थित कर दूँगी।[२] ऐसा कहकर चित्रलेखा ने त्रिलोकी के चित्र को ऊषा के सामने उपस्थित कर दिया। उसने चित्र में अपने चित्तचोर अनिरुद्ध को देखा, पहचाना और फिर मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा—'मेरा वह प्राणवल्लभ यही है, यही है।'

चित्रलेखा योगिनी थी। वह जान गई कि यह भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध हैं। अतः वह रात्रि में ही आकाशमार्ग से श्रीकृष्ण के द्वारा सुरक्षित द्वारिका में जा पहुँची। उस समय अनिरुद्ध पर्यङ्कपर शयन कर रहे थे। चित्रलेखा, योगसिद्धि के प्रभाव से, उन्हे उठाकर शोणितपुर ले आई और उसने अपनी सखी ऊषा को उसके प्रियतम का दर्शन करा दिया।[३]

---

१. तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम्।
कन्यालभत कान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेन सा॥ *श्रीमद्भागवत-महापुराण, १०/२/६२/१२*

२. श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/२/६२/१८

३. चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी। ययौ विहायसा राजन् द्वारकां कृष्णपालिताम्।
तत्र सुप्तं पर्यङ्के प्राद्युम्निं योगमास्थिता। गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत्॥
श्रीमद्भागवत-महापुराण, १०/२/६२-६३

ऊषा और अनिरुद्ध दोनों अनुपम सुन्दर थे। एक से बढ़कर एक थे। दोनों ही नवयौवन के जोश से भरे थे। कोई किसी से कम नहीं। वस्तुत: यह जोड़ी **अनुपम थी। वे एक दूसरे को पाक धन्य-धन्य थे। अनिरुद्ध को अपने अन्त:पुर में** देखकर ऊषा के आनन्द-सागर की सीमा न थी। वह अनिरुद्ध के साथ अपने प्रासाद में ही अदम्य विहार में प्रवृत्त हुई। उसका प्रेम शुक्लपक्ष के चन्द्र की भाँति नित्य बढ़ता ही जा रहा था। वह बड़ी तन्मयता और तल्लीनता से अनिरुद्ध की स्वयं सेवा करती और उन्हें नित्य प्रसन्न रखने की सतत सावधान सतर्कता बरतती। ऊषा ने अपने सद्व्यहार से अनिरुद्ध के मन को निरुद्ध कर लिया था, अपने वश में कर लिया था। अनिरुद्धजी उस कन्या के अन्त:पुर में प्रच्छन्न रहकर अपने-आपको भूल गये। उन्हें इस बात का भी पता न चला कि उन्हें वहाँ गये कितने दिन व्यतीत हो गये ।[१]

अनिरुद्ध ने ऊषा का कौमार-हरण किया। रति-रङ्ग-मर्दन ने असुरराजकुमारी के शरीर का रङ्ग ही बदल दिया। ऊषा का शरीर विकसित हुआ, चमकीला बना। उसके सौन्दर्य में चार चाँद लग गये। वह चहकती चिड़ियाँ की तरह फुदकती फिरती थी। इस पर अन्त:पुर रक्षकों को कुछ आशंका हुई। उन लोगों ने इसकी सूचना राजाधिराज बाण को दी। अपने कुछ योद्धाओं के साथ बाण पहुँचे ऊषा के राजभवन में। वहाँ उन्होंने देखा एक श्याम सुन्दर तरुण राजकुमारी के साथ द्यूत खेल रहा है। वहाँ स्वल्प कालिक युद्ध के बाद बाण ने उसे नागपाश में बाँध लिया और कारागार में डाल दिया। इसपर ऊषा विह्वल हो रोने लगी। किन्तु बाण पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

इधर द्वारका में वर्षा के चार मास व्यतीत हो गये। किन्तु अनिरुद्ध का कुछ भी पता न चला। एक दिन नारदजी ने अनिरुद्ध के, शोणितपुर में बाण के कारागार में, बद्ध होने की बात बतलाई। इस सूचना के मिलते ही कृष्ण और बलराम के नेतृत्व में यदुवंशी वीरों ने शोणितपुर पर आक्रमण कर दिया। पूरा नगर चारों ओर से घेर लिया गया। भगवान् शङ्कर अपने परिवार के साथ शोणितपुर की रक्षा करते थे । अत: बाण की तरफ से शङ्कर ने कृष्ण के साथ भयङ्कर संग्राम किया। अन्त में श्रीकृष्ण ने शङ्कर को जृम्भणास्त्र से मोहित कर बाण की नौ सौ छानबे भुजाओं को काट गिराया। केवल चार भुजाएँ ही अवशिष्ट थीं। इसी समय जृम्भणास्त्र के प्रभाव से विमुक्त होकर शङ्कर ने कृष्ण से बाण का वध न करने की अभ्यर्थना की। कृष्ण ने उनकी अभ्यर्थना स्वीकार कर बाण का

---

१. गूढः कन्यापुरे शश्वत् प्रवृद्धस्नेहया तया ।
नाहर्गणान् स बुबुधे ऊषयापहृतेन्द्रियः ॥ *श्रीमद्भागवतमहापुराण,* १०/२/६३/२६

वध नहीं किया। श्रीकृष्ण का कथन था कि मैंने भी प्रह्लाद को वर दिया था कि मैं तुम्हारे वंश में उत्पन्न होने वाले किसी भी दैत्य का वध नहीं करूँगा।[१]

इस प्रकार श्रीकृष्ण से अभय का दान प्राप्त कर बाणासुर ने उनके चरणों पर अपना शिर रखकर प्रणाम किया। फिर वह अनिरुद्धजी को अपनी बेटी ऊषा के साथ सादर रथ पर बैठाकर भगवान् के पास ले आया। इसके अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने महादेवजी की सम्मति से वस्त्रालङ्कार से विभूषित ऊषा और अनिरुद्धजी को आगे करके, द्वारका के लिये प्रस्थान किया। वर-वधू के द्वारका आगमन पर वहाँ बड़ा भारी उत्सव मनाया गया।

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

उषा बलिपुत्र बाणासुर की बेटी थी। उसने स्वप्न में एक सुन्दर श्याम तरुण को अपने साथ रति-केलि करते हुए देखा। यह तरुण और कोई नहीं, यदुकुल-कुमार अनिरुद्ध थे। स्वप्न की समाप्ति पर ऊषा विकल हो गई अपने उस प्राण-वल्लभ के लिये। योगिनी चित्र-लेखा उषा की प्रिय सखी थी। उसने अपनी योग-सिद्धि के सहारे अनिरुद्ध का अपहरण किया और उसे लाकर उपस्थित कर दिया उषा के अन्तःपुर में।

कुछ काल के अन्तराल पर जब बाण को, बेटी के अन्तःपुर में किसी किशोर की उपस्थिति का पता चला तो उसने युद्ध का उद्योग किया। शङ्कर-पार्वती आदि ने उसे ऐसा करने से मना किया। किन्तु महाभिमानी वह किसी की बात सुनता ही न था। बाण के युद्ध-प्रयास को सुनकर, उषा द्वारा प्रदत्त रथपर आरूढ हो, अनिरुद्ध भी संग्राम के लिये सज्ज हो गये।

इसी समय नारद के द्वारा अनिरुद्ध के विषय में, समाचार प्राप्त कर श्रीकृष्ण ने विशाल यादवी सेना के साथ बाण की राजधानी शोणितपुर पर आक्रमण कर दिया। वहाँ बाण और श्रीकृष्ण का रोमहर्षक संग्राम हुआ। संग्राम में श्रीकृष्ण ने बाण की बहुत-सी भुजाएँ काट कर गिरा दी। किन्तु प्रह्लाद को कभी वर देने के कारण उन्होंने उसका वध नहीं किया। अन्त में भगवान् शङ्कर की प्रेरणा से उषा-अनिरुद्ध का माङ्गलिक विवाह हुआ और यदुवंशी वर-वधू के साथ द्वारका आये।[२]

●

---

१. अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ।
प्रह्लादाय वरो दत्तो न मे वध्यो तवान्वयः ।। *श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/२/६३/४७*

२. विस्तृत विवरण के लिये देखिये पीछे 'अनिरुद्ध' का प्रकरण । क्योंकि अनिरुद्ध और ऊषा की कथाएँ एक साथ, मिली हुई है, बटी गई हैं।

कार्तिकेय-कथा

पद्ममहापुराण

देवों की प्रेरणा से अग्नि ने शुक का रूप धारण कर पार्वती के अन्त:पुर में प्रवशे किया। वहाँ उन्होंने शङ्कर-पार्वती की रति-क्रीडा देखी। शङ्कर ने जब शुकरूप अग्नि को देखा तो कुछ कुपित होकर कहा—'सम्प्रति मेरा वीर्य देवी पार्वती में निषिक्त हो रहा था । तुम्हें देखकर, लज्जा के कारण, वह अवरुद्ध हो गया। अत: अब तुम मेरे अवरुद्ध आधे वीर्य को पीओ।' अग्नि ने अञ्जलि द्वारा उस वीर्य का पान किया । अग्नि देवों और ऋषियों का मुख है। अत: देव और ऋषि भी शिव-वीर्य के प्रभाव से प्रभावित हुए। अन्तत: असह्य शिव-वीर्य उन सबके जठर को फाड़कर बाहर निकल आया। वह शङ्कर के आश्रम में तप्त सुवर्ण की तरह आभावाले जल से परिपूर्ण एक विशाल जलाशय के रूप में परिणत हो गया। जिसमें सुवर्ण की प्रभावाले कमल खिले हुए थे।

एक समय सखियों के साथ पार्वती उस सरोवर के तट पर बैठी थीं । पार्वती को उसके निर्मल जल को पीने की इच्छा हुई । उसी समय षट् कृत्तिकायें कमलिनीदल (पुरइन) में सरोवर के जल को लेकर जा रही थीं। पार्वती ने उनसे जल को पीने के लिये माँगा । उत्तर में कृत्तिकाओं ने कहा—'तुम्हें इस शर्त पर जल पीने के लिये दूँगी कि इसके पीने से तुमसे जो बालक उत्पन्न होगा वह हमारा भी बेटा कहलायेगा । वह हमारा रक्षक और वृत्तिदाता भी होगा।' पार्वती ने उनकी शर्त स्वीकार कर ली । फलत: कृत्तिकाओं ने उन्हें जल पिलाया । उसी के परिणामस्वरूप पार्वती से स्कन्द का जन्म हुआ । इन्होंने ही, देवों की प्रार्थना पर, तारकासुर का वध किया है ।[१]

टिप्पणी—कार्तिकेय जन्म की कथा मत्स्यपुराण एवं पद्मपुराण में समान रूप से वर्णित है। इतना ही नहीं समान शब्दों और समान पद्यो में वर्णित है। ठीक यही बात गणेश-जन्म की कथा के विषय में है। दोनों पुराणों के इस अद्भुत साम्य को देखकर आश्चर्य होता है। घटना-क्रम, भाव तथा शब्द के साम्य की इस

१. (क) पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ४६-४७

(ख) ठीक ऐसी ही कथा, मत्स्यपुराण, मोरप्रकाशन, अध्याय १५७ में भी वर्णित है।

विस्मय-कारिणी समानता को देखकर स्वभावत: यह जिज्ञासा जाग्रत होती है कि किस पुराण ने किसकी नकल की है। किन्तु जब हम सूक्ष्म दृष्टि से दोनों पुराणों के स्थलों का परीक्षण करते हैं, जाँच-पड़ताल करते हैं तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पद्मपुराण ने निश्चय ही मत्स्यपुराण का अन्धानुकरण किया है। इसका कारण यह है कि मत्स्यपुराण की कथा की अपेक्षा पद्मपुराण की कथा अधिक साफ-सुथरी तथा सुधरी हुई है। मत्स्यपुराण के प्रसङ्गों को तरास कर पद्मपुराण ने प्रस्तुत किया है।

अत: पद्मपुराण की अपेक्षा मत्स्यपुराण नि:सन्देह प्राचीनतर है, पुराना है।

शिवमहापुराण

भगवान् शङ्कर पार्वती से विवाह कर कैलास पधारे। वहाँ उन्होंने सुदीर्घ काल तक जगदम्बा पार्वती के साथ विहार किया। इसी बीच देवमण्डली ने जाकर उनके द्वार पर तारकासुर के त्रिलोकी-पीडादायक अत्याचार की बात कही। देवों की बात को सुनकर शङ्कर पार्वती के साथ प्रचलित विहार को छोड़कर द्वार पर आये। उनका तेज (वीर्य) स्खलित हो पृथिवी पर गिर पड़ा। देवों की प्रेरणा से कपोत का रूप धारण कर अग्नि ने शिव-वीर्य का भक्षण किया। शिवतेज के असह्य होने पर अग्नि ने उसे प्रयत्नपूर्वक षट् कृत्तिकाओं (अरुन्धती को छोड़कर सप्तर्षि-पत्नियों) में,उनके रोमछिद्रों के द्वारा, प्रविष्ट कर दिया। दाह के असह्य होने पर उस तेज को कृत्तिकाओं ने हिमालय के ऊपर छोड़ दिया। हिमालय ने उस असह्य शिव-तेज को गङ्गा में डाल दिया। गङ्गा ने भी उसे, अपनी तरङ्गों से, शरवण (सरपत के जङ्गल) में फेंक दिया। शरवण में ही शिव-तेज ने बालक का रूप धारण किया। यात्रा के प्रसङ्ग से वहाँ आये हुए विश्वामित्र ने उसका संस्कार किया।

विश्वामित्र के संस्कार करके वहाँ से चले जाने पर पूर्वोक्त षट् कृत्तिकायें वहाँ पधारीं। सुन्दर बालक को देखकर उन छहों कृत्तिकाओं ने उसे अपना दूध पिलाना चाहा। सबका एक साथ सम्मान रखने के लिये उस अद्भुत बालक ने छ: मुख धारण कर एक साथ सबका दूध पान किया। फिर तो वे कृत्तिकायें उस बालक को लेकर अपने स्थान पर चली गईं और वहीं उसका पालन-पोषण प्रारम्भ किया।

शिव-तेज के अग्नि, कृत्तिकाओं, गङ्गा और शरवण के द्वारा धारण करने के कारण यह बालक अग्नि-पुत्र, कार्तिकेय, गाङ्गेय और शरवणजन्मा[१] भी कहा

१. मत्स्यपुराण, अध्याय ५ में कुमार को अग्निपुत्र, शरवणजन्मा और कृत्तिकाओं का अपत्य होने से कार्तिकेय कहा गया है।

जाता है। शिव-पुत्र और पार्वती नन्दन तो यह ठहरा ही। छः मुख धारण करने के कारण इसे षडानन भी कहा जाता है। शिव-तेज के स्कन्दित (स्खलित) होने से इसे स्कन्द भी कहते हैं । इनके अतिरिक्त इसे कुमार, सुब्रह्मण्य, क्रौञ्चाराति, महासेन, गुह, तारकजित्, षाण्मातुर, शक्तिधर तथा देवसेनानी भी कहा गया है।

देवों से कृत्तिकाओं के द्वारा स्कन्द के पाले जाने की बात को सुनकर शङ्कर ने वीरभद्र आदि अपने गणों को भेजकर वहाँ से कार्तिकेय को अपने पास बुला लिया । उन्होंने उस बालक को अपनी गोद में बैठाकर अत्यन्त स्नेह किया। देवों ने उसे नाना प्रकार के पदार्थ, विद्याएँ, शक्ति और अस्त्र-शस्त्रादि प्रदान किया। पार्वती अत्यन्त प्रफुल्ल थीं। उन्होंने उसे परमोत्तम ऐश्वर्य देकर चिरञ्जीवी भी बना दिया ।

इसी अवसर पर देवताओं ने शङ्कर से प्रार्थना की—'प्रभो, यह तारकासुर कुमार के हाथों ही मारा जाने वाला है। इसीलिये यह (पार्वती-परिणय तथा कुमारोत्पत्ति आदि) उत्तम चरित घटित हुआ है। अत: तारकवध के लिये कुमार को आज्ञा दीजिए। हम लोग आज ही अस्त्र-शस्त्र से सुसज्ज होकर तारक का वध करने के लिये रण-यात्रा करेंगे ।

दयार्द्र शङ्कर ने देवों की प्रार्थना स्वीकार करके उसी समय तारक का वध करने के लिये अपने पुत्र कुमार को देवताओं को सौंप दिया । फिर तो शिव की आज्ञा मिल जाने पर ब्रह्मा-विष्णु आदि सभी देव गुह को आगे करके शीघ्र ही वहाँ से युद्ध के लिये चल पड़े। उस समय उनकी युद्ध की कामना बड़ी प्रबल थी। वे सब-के-सब कुमार को अग्रणी बनाकर बड़ी उत्कण्ठा के साथ मही-सागर-सङ्गम पर पहुँचे । उधर बहुसंख्यक असुरों से घिरा हुआ तारकासुर भी विशाल सेना के साथ वहाँ आ धमका, जहाँ वे सभी देवता खड़े थे। फिर क्या था ? देवों और असुरों में भीषण संग्राम छिड़ गया। कुमार और तारक आमने-सामने थे। दोनो ही शक्ति-संग्राम में निपुण थे। अत: अत्यन्त रोषावेश में वे परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। कुछ देर खेलने के बाद कुमार ने तारक के वध की इच्छा से उस पर शक्ति का प्रबल प्रहार किया। उस शक्ति के आघात से तारकासुर के सभी अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये। देखते ही देखते सम्पूर्ण असुरों का अधिपति वह महावीर सहसा धराशायी हो गया। जिसके भय से त्रिलोकी काँपती थी, वह अब धूलि चाट रहा था। तारक के इस संसार से विदा होते ही त्रिलोकी में प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी । तारक का वध करके कुमार शङ्कर के पास पधारे । शङ्कर और

पार्वती ने अपने विजेता पुत्र को छाती से लगा लिया।[१]

कुमार नाम पड़ने का कारण–माता-पिता के द्वारा विवाह के लिये पूरी पृथिवी की परिक्रमा करके आने की शर्त रखने पर स्वामिकार्तिकेय जब पृथिवी की परिक्रमा करके लौटे तब नारदजी ने आकर स्कन्द को गणेशजी के विवाह का वृत्तान्त बतला दिया।[२] उसे सुनकर कुमार के मन में बड़ा क्षोभ हुआ। वे माता-पिता, शिवा-शिव के द्वारा रोके जाने पर भी न रुक कर क्रौञ्च पर्वत पर चले गये। विवाह नहीं किया। उसी दिन से शिवपुत्र स्वामिकार्तिक का कुमारत्व (कुआँरापन) प्रसिद्ध हो गया।[३] कुमार का वाहन मयूर है। इसे गरुड ने उन्हें दिया था। अग्नि ने उन्हें महाशक्ति प्रदान की थी। यह स्कन्द का प्रमुख अस्त्र था।

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

शैलाधिपति हिमालय की प्रिय पत्नी (मेना) ने एक बेटी को जन्म दिया। उसका नाम पार्वती रक्खा गया। पर्वतराज ने पार्वती का विवाह शङ्कर जी के साथ कर दिया। तब महादेवजी उन्हें साथ लेकर निर्जन वन में चले गये। वहाँ सुदीर्घकाल तक पार्वती-शङ्कर का अविरत विहार चलता रहा। इसी समय देवताओं ने आकर विहार से विरत होने के लिये उनसे प्रार्थना की, तब भगवान् शङ्कर विरत हो गये। उस समय महादेव जी का शुक्र भूमि पर गिर पड़ा, जिससे स्कन्द-कार्तिकेय उत्पन्न हुए।[४]

गणपति खण्ड के प्रथम अध्याय में कार्तिकेय-कथा का जो सूत्रपात हुआ था, उसकी पूर्ति इसी खण्ड के परिशेषांश में की गई है।[५] गणपति खण्ड के चतुर्दश अध्याय में गणेश के माङ्गलिक जन्मोत्सव के अवसर पर पार्वती ने विष्णु से यह जिज्ञासा की कि पूर्व रति-भङ्ग के प्रसङ्ग में शङ्कर का स्खलित जो वीर्य भूमि पर गिरा था उसका हरण किस देव ने किया है?[६] क्योंकि शिव का अमोघ वीर्य निष्फल नहीं हो सकता। इस पर विष्णु ने देव-मण्डली से उसके विषय में जिज्ञासा अभिव्यक्त की। देवों ने जो कुछ कहा उसी से कथा क्रमशः आगे बढ़ती हुई समाप्ति की देहली तक पहुँचती है।

---

१. शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, कुमारखण्ड, अ०- ९-१२
२. देखिये इसी ग्रन्थ की 'गणेश-कथा'।
३. शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, कुमारखण्ड, अ०- २०
४. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, गणपतिखण्ड, प्रथम अध्याय में इतनी ही स्वल्प कथा वर्णित है।
५. अध्याय- १४-१७
६. भूमौ निपतितं वीर्यं केन देवेन वै हृतम्॥ *ब्र०वै०, ग०ख० १४/४*

सर्वप्रथम धर्म ने कहा—'प्रभो, प्रकोप के कारण रति से उठते हुए शङ्करजी का वह अमोघ वीर्य भूतल पर गिरा था, यह मुझे ज्ञात है।'

भूमि ने कहा—ब्रह्मन्, उस वीर्य का वहन करना अति कठिन था। अत: मैंने उसे अग्नि में डाल दिया।

अग्नि ने कहा—जगन्नाथ, वह वीर्य मेरे लिए भी असह्य था। अत: मैंने उसे शरवण के वन में प्रक्षिप्त कर दिया।

वायु ने साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए कहा—विष्णो, स्वर्ण-रेखा[१] नदी के तट पर शरवण में गिरा हुआ वह वीर्य सद्य: सुन्दर बालक के रूप में परिणत हो गया।

श्रीसूर्य ने कहा—भगवन्, मैंने वहाँ उस रोते हुए बालक को देखा। किन्तु कालचक्र से प्रेरित हुआ मैं तत्काल अस्ताचल की ओर बढ़ गया।

चन्द्रदेव ने कहा—विष्णो, उसी समय कृत्तिकाओं का समुदाय बदरिकाश्रम से आ रहा था। उन लोगों ने रुदन करते हुए उस बालक को देखा। फिर वे उसे उठाकर अपने भवन को चली गईं।

जल ने कहा—अपने घर ले जाने पर कृत्तिकाओं ने बुभुक्षित उस बालक को अपने स्तनों का दुग्ध-पान कराकर पाला, बढ़ाया।

दोनो सन्ध्याओं ने कहा—भगवन्, सम्प्रति वह शिशु छहों कृत्तिकाओं का पोष्य पुत्र है। उन्होंने स्वयं ही प्रेमपूर्वक उसका 'कार्तिकेय' नाम रक्खा है।

रात्रि ने कहा—कृत्तिकाएँ उस बालक को प्राणों से भी अधिक प्यार करती हैं। वे उसे अपनी दृष्टि से दूर नहीं होने देतीं। वस्तुत: पालन-कर्त्ता का ही बालक पुत्र होता है।

दिन ने कहा—त्रिलोकी की स्वादिष्टतम वस्तुएँ कृतिकाएँ लाकर उस बालक को सस्नेह खिलाती हैं।[२]

कार्तिकेय का सही-सही पता लग जाने पर विष्णु-सहित पार्वती की प्रसन्नता का पारावार न रहा। सबकी प्रेरणा से शङ्कर ने नन्दिकेश्वर के नेतृत्व में गणों की एक विकराल विशाल सेना कार्तिकेय को लाने के लिये प्रेषित की। सेना ने पहुँचकर कृत्तिकाओं के भवन को चतुर्दिक् घेर लिया। कृत्तिकाएँ भयाक्रान्त हो उठीं। उन्होंने कार्तिकेय से अपने भय का कारण कहा। कार्तिकेय ने उन्हें पूर्ण

१. शरेषु पतितं वीर्यं सद्यो बालो बभूव ह।
अतीव सुन्दरो विष्णो स्वर्णरेखानदी तटे ॥ *ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, ग०ख०, १४/३०*

२. शिवमहापुराण में वर्णित कार्तिकेय-कथा अधिक साम्प्रदायिक प्रतीत होती है। उसकी अपेक्षा यह कथा अधिक साफ-सुथरी है।

निश्चिन्त रहने का दृढ़ आश्वासन प्रदान किया। ठीक इसी समय शिव-सेना-पति नन्दिकेश्वर भी वहीं पहुँच गये और कहा—'भगवान् शङ्कर के यहाँ पूरी देव-मण्डली विराजमान है। आप शङ्कर-पार्वती के पुत्र हैं। अत: भगवान् विष्णु की प्रेरणा से शङ्कर ने मुझे आपको लेने के लिये भेजा है। अब आप अपने घर चलें। वहाँ आपको सम्पूर्ण शस्त्रास्त्र की प्राप्ति होगी। देवों के साथ विष्णु देव-सेनापति के रूप में आपका अभिषेक करेंगे। फिर आप तारकासुर का वध करेंगे।'

कार्तिकेय ने नन्दिकेश्वर की बात ध्यान से सुनी और कहा—'भ्रात:, मैं त्रिकालदर्शी हूँ, अत: सारी की सारी घटना मुझे विदित है। प्रत्येक कल्प में सृष्टि के विधान में मैं नित्य होते हुए भी माया से आबद्ध होकर जन्म ग्रहण करता हूँ। उस समय प्रत्येक कल्प में जगज्जननी पार्वती मेरी माता होती हैं।[१] जगत् की सारी स्त्रियाँ प्रकृति से संभूत हैं। उनमें से कुछ प्रकृति की अंशभूता हैं तो कुछ कलात्मिका हैं तथा कतिपय कालांश के अंश से प्रकट हुई हैं।

ज्ञान की महिमा से मण्डित योगिनी ये कृत्तिकाएँ प्रकृति की कलाएँ हैं। इन्होंने निरन्तर अपने स्तनों के दुग्ध तथा उपहार से मेरा पालन-पोषण किया है। अत: मैं इनका पोष्य पुत्र हूँ और पोषण करने के कारण ये मेरी माताएँ हैं। इनके साथ ही मैं उन प्रकृति देवी (पार्वती) का भी पुत्र हूँ, क्योंकि आपके स्वामी शङ्करजी के वीर्य से उत्पन्न हुआ हूँ। नन्दिकेश्वर, मैं गिरिराजनन्दिनी के गर्भ से उत्पन्न नहीं हुआ हूँ। अत: जैसे वे मेरी धर्ममाता हैं, वैसे ही ये कृत्तिकाएँ भी सर्वसम्मति से मेरी धर्ममाताएँ हैं। क्योकि स्तनदात्री षोडश प्रकार की माताओं में प्रथम परिगणनीय हैं।[२] ये कृत्तिकाएँ सम्पूर्ण सिद्धियों की ज्ञात्री, परमैश्वर्य-सम्पन्न और त्रिलोकी में वन्दनीय हैं ।[३]

नन्दिकेश्वर की प्रेरणा से कार्तिकेय कैलास जाने के लिये तत्पर हुए। उन्होंने कृत्तिकाओं को संसार की स्थिति समझाते हुए, संयोग-वियोग को सृष्टि का अपरिहार्य भाव बतलाते हुए उनसे जाने की आज्ञा माँगी और उन्हें बड़ी विनम्रता और कृतज्ञता से प्रणाम कर प्रस्थान किया वहाँ से। किन्तु कृत्तिकाएँ इतना शोकाकुल थीं कि अन्तत: कार्तिकेय ने उन्हें भी अपने साथ रथ पर बैठा लिया। रथ पार्वतीजी ने भेजा था। अत: वह मन के समान वेगशाली था। कुछ क्षणों में

---

१. कल्पे कल्पे जगन्माता माता मे प्रतिजन्मनि ।
यज्जन्ममायया बद्धो नित्य: सृष्टिविधावहम् ॥ *ब्र०वै०, ग०ख०, १५/३४*

२. गणपति खण्ड, १५/३८-४०

३. गणपति खण्ड, १५/४२

वे सभी कैलास पहुँच गये। वहाँ देवों-देवियों के साथ शङ्कर-पार्वती ने उनकी अगवानी की, प्ररस्पर यथायोग्य प्रणाम-आशीर्वाद हुआ। सभी कार्तिकेय को पाकर परम प्रसन्न थे ।

भगवान् विष्णु ने सभी देव-मण्डली को एकत्रित की। शास्त्रीय विधि-विधान से कार्तिकेय का अभिषेक किया गया—उन्हें स्नान कराया गया। सभी ने प्रसन्न मन से कार्तिकेय को अस्त्र-शस्त्र समर्पित कर अलङ्कृत किया।[१] स्वयं प्रजापति ने रत्नाभूषणों से विभूषित देवसेना नामक परम सुन्दरी तरुणी को विवाह की विधि से, वेदमन्त्रों के उच्चारण के साथ, कार्तिकेय को प्रदान किया।[२] इसके बाद सभी अपने-अपने लोक को चले गये ।

पण्डितलोग इसी देवसेना को महाषष्ठी भी कहते हैं। यह शिशुओं का पालन करने वाली कही गई है ।[३]

वाराहमहापुराण

वाराहपुराण में स्कन्द-कथा एक साथ दो धाराओं में प्रवाहित होती है—एक है, आध्यात्मिक-धारा और दूसरी है आधिदैविक-धारा। आध्यात्मिकधारा के अनुसार स्कन्द-कथा इस प्रकार है—

सभी तत्त्वों से ऊपर जो सत्ता है उसे पुरुष कहते हैं। उससे अव्यक्त की उत्पत्ति होती है। उसे तत्त्वों का मूलभूत एवं त्रिगुण कहा गया है। पुरुष एवम् अव्यक्त के संयोग से महत्तत्त्व (बुद्धितत्त्व) का आविर्भाव होता है। उसे अहङ्कार और महान् भी कहते हैं। पुरुष को विष्णु अथवा शिव और अव्यक्त को उमा अथवा श्री भी कहा गया है। उन्हीं के संयोग से अहङ्कार की उत्पत्ति होती है। वही सेनापति गुह है।[४]

आधिदैविक-धारा के अनुसार कथा इस प्रकार है—देव दैत्यों से बार-बार

---

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, गणपति खण्ड, अध्याय- १७

२. प्रजापतिर्देवसेनां रत्नभूषणभूषिताम् ।
सुविनीतां सुशीलाञ्च सुन्दरीं सुमनोहराम् ।
ददौ तस्मै वेदमन्त्रैर्विवाहविधिना स्वयम् । *वही, गणपति खण्ड, १७/१५/१६*

३. शिवमहापुराण में कार्तिकेय को अविवाहित बतलाया गया है। वस्तुत: देवसेना शब्द ऐसे स्थलों में आलङ्कारिकरूप में ही प्रयुक्त हुआ है। अत: इसका अर्थ है-देवताओं की सेना। स्कन्द इसी के पति थे, देव-सेनापति थे।

४. सर्वेषामेव तत्त्वानां य: पर: पुरुष: स्मृत:। तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं तत्त्वादि त्रिविधन्तु तत् ।
पुरुषाव्यक्तयोर्मध्ये महत्तत्त्वं समपद्यत । स चाहङ्कार इत्युक्तो यो महान् समुदाहृत: ।।
पुरुषो विष्णुरित्युक्त: शिवो वा नामत: स्मृत:। अव्यक्तन्तु उमा देवी श्रीर्वा पद्मनिभेक्षणा।।
तत्संयोगादहङ्कार: स च सेनापतिर्गुह: । *वाराहमहापुराण, २५/२-२५*

पराजित हो रहे थे। देवसेना निर्बल और दैत्यसेना प्रबल थी। इस स्थिति को देखकर देवगुरु वृहस्पति चिन्तित हुए। उन्होंने कहा-'अकेले इन्द्र देव-सेना की रक्षा नहीं कर सकते। अतः किसी और सेनापति का अतिशीघ्र अन्वेषण करो।' गुरु की यह बात सुनकर देव-मण्डली ब्रह्माजी के पास पहुँची और उनसे बड़ी व्याकुलता के साथ एक सेना-पति की याचना की। ब्रह्माजी देवों को साथ लेकर कैलास पर्वत पर गये। वहाँ उन लागों ने भावविभोर हो शङ्कर की स्तुति की। शङ्कर प्रसन्न हुए। उन्होंने देवों से कहा-'कहिये, आप का कौन-सा कार्य करूँ?' देवों ने कहा–'देव, दैत्यों के वध के लिये हमें एक सेनापति दीजिये। हम सभी देवों का यह बड़ा भारी हित होगा।'

देवों को आश्वस्त करते हुए शङ्कर ने कहा–'देवों, आपलोग निश्चिन्त हो जाइये। शीघ्र ही मैं आपलोगों को सेनापति प्रदान करूँगा।' ऐसा कहकर शङ्कर ने देवों को विदा कर दिया। इसके बाद पुत्र पैदा करने के लिये उन्होंने अपने अङ्ग में स्थित शक्ति को संक्षुभित किया। शक्ति के संक्षुभित होते ही सूर्य के समान तेजस्वी एक कुमार प्रकट हो गया। वह अपने हाथ में ज्ञानस्वरूपिणी एक शक्ति लिये हुए था। उत्पन्न होते ही उस कुमार ने शङ्कर से कहा—'मुझे एक खिलौना दीजिए।' उसके इस कथन को सुनकर महादेव ने कहा–'तुम्हें साख और विशाख नाम वाले दो सहायकों के साथ एक कुक्कुट क्रीडा करने के लिये प्रदान कर रहा हूँ। कुमार, आप भूतनायक और सेनापति हैं।' ऐसा कहकर शिव ने उस सेनापति को देवताओं के लिये प्रदान कर दिया।'[१]

विशेष–इसी प्रसङ्ग में अध्याय की परिसमाप्ति पर यह भी कहा गया है कि स्कन्द की उत्पत्ति की यह कथा आदि मन्वन्तर से सम्बन्ध रखती है। उनकी उत्पत्ति विभिन्न कल्पों में विभिन्न रूपों से हुआ करती है। कृत्तिका, पावक, गिरिजा आदि उनके द्वितीय जन्म में कारण है।[२] सर्वप्रथम तो शरीरवर्ती अहङ्कार ही प्रयोजनवश सेनापति बना था।[३]

स्कन्दमहापुराण

कार्तिकेय के जन्म की कथा स्कन्दमहापुराण एवं शिवमहापुराण–दोनों में विस्तार के साथ वर्णित है। कुछ स्वल्प बातों को छोड़कर दोनों की कथाओं में

१. वाराहमहापुराण, अध्याय- २५

२. कृत्तिका पावकस्तस्य मातरो गिरिजा तथा ।
द्वितीयजन्मनि गुहस्यैतै उत्पत्तिहेतवः ।। *वाराहमहापुराण,* २५/४७

३. योऽसौ शरीरगो देवः अहङ्कारेति कीर्तितः ।
प्रयोजनवशाद्देवः सैव सेनापतिर्बभौ ।। *वही,* २५/३५

अद्भुत साम्य भी है। स्कन्दमहापुराण में वर्णित स्कन्द की जन्म-कथा का प्रारूप इस प्रकार है—

शङ्कर और पार्वती का परिणय हुआ। दोनो सुदीर्घकालीन विलास-लीला में प्रवृत्त हुए। शङ्कर के दुःसह वीर्य के तेज से त्रिलोकी संत्रस्त होने लगी। यह देखकर ब्रह्मा और विष्णु ने अग्नि देव का स्मरण किया। अग्निदेव उनकी सेवा में बड़ी तत्परता से उपस्थित हुए। फिर उन दोनों की आज्ञा पाकर अग्नि ने केसर के समान कान्तिवाले हंस (संन्यासी) का रूप धारण करके शिवजी के भवन में प्रवेश किया। वहाँ प्राङ्गण में पहुँचकर उन्होंने कहा–'माँ, हाथ ही मेरा पात्र है। इसमें मुझे भिक्षा दो।' तब माता पार्वती ने 'जातवेदा' अग्नि को भिक्षा (के रूप में वीर्य) दे दिया। अग्नि ने हाथ पर भिक्षा लेकर उनके समक्ष ही उसे खा लिया। यह देखकर पार्वतीजी कुपित हो गईं और बोलीं–'अरे ओ भिक्षुक, मेरे शाप से तू शीघ्र ही सर्वभक्षी हो जायेगा तथा शङ्करजी के इस वीर्य से तुझे सब ओर बड़ी भारी पीडा प्राप्त होगी।

अग्निदेव ने शङ्कर की स्तुति की। उनसे कष्ट-निवारण की प्रार्थना की। शङ्कर प्रसन्न हुए और बोले-'अग्ने, तुम अपने शरीर में पड़े हुए मेरे वीर्य को स्त्री के गर्भ में स्थापित कर दो।' इस पर मुनि नारद ने उन्हें सलाह दी–'तुम मेरी बात मानो, माघ मास में प्रातः स्नान करके शीत के कारण जो तुम्हारे समीप अग्नि-सेवन के लिये आवें उनके शरीर में तुम भगवान् शिव का यह तेज स्थापित कर देना। इससे तुम पीडा-विनिवृत्त हो जाओगे।'

नारदजी की यह बात मानकर परम कान्तिमान् एवं महान् प्रभावशाली अग्निदेव ब्राह्म मुहूर्त में बैठकर अपने प्रचण्ड तेज से प्रज्वलित हो उठे। अग्नि को प्रज्वलित देखकर शीत से काँपती हुई कृत्तिकाओं ने अग्नि सेवन की इच्छा से वहाँ बैठने का विचार किया। उस समय महर्षि वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती ने उन्हें अग्नि के पास जाने से रोका भी था। किन्तु उन छः कृत्तिकाओं ने उनकी बात न मानी। वे छहों जाकर अग्नि तापने के लिये उसके पास बैठ गईं । जब वे अग्नि का सेवन कर रही थीं तब शङ्करजी के वीर्य के सभी परमाणु रोमछिद्रों से होकर उनके शरीर में प्रवेश कर गये। अब अग्निदेव कष्ट से मुक्त हो गये। वे कृत्तिकाएँ गर्भवती होकर वहाँ से अपने घर को लौटीं । वहाँ उनके पति महर्षियों ने जब उन्हें शाप दिया तो वे नक्षत्रों के रूप में आकाश में विचरण करने लगीं। उसी समय उन सबने भगवान् शिव के उस वीर्य को हिमालय के शिखर पर छोड़ दिया । छोड़ने पर वह सन्तप्त सुवर्ण की भाँति चमक उठा । फिर वह गङ्गाजी में डाल

दिया गया। गङ्गाजी में बहता हुआ वह तेजोमय वीर्य सरकण्डों के समूह से (शरवण से) घिर गया। वहाँ वह छः मुखोंवाले बालक के रूप में परिणत हो गया।[१]

स्कन्दपुराण के अनुसार कार्तिकेय के जन्म के वृत्तान्त को गर्गाचार्य ने देवताओं से कहा था।[२] यह जानकर देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई। तदनन्तर नारदजी ने आकर शिव और पार्वती से उस बालक के जन्म का समाचार कहा। जानकारी होने पर समस्त देव-मण्डली गङ्गा के तट पर विराजमान उस गङ्गा-पुत्र को देखने के लिये वहाँ गई। पार्वती के साथ शङ्कर भी वृषभ पर आरूढ हो वहाँ गये। शङ्कर-पार्वती ने अपने पुत्र का अभिनन्दन किया। सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर तो शङ्कर की अनुमति से देवों ने कार्तिकेय को अपना सेनापति बनाकर तारक असुर पर चढ़ाई की। उसी समय कुमार कार्तिकेय का वरण करने के लिये मृत्युकन्या 'देवसेना' वहाँ आई। कुमार ने ब्रह्माजी के गहने से उसे अङ्गीकार किया। तबसे शङ्करजी के पुत्र कार्तिकेयजी देवसेना-पति हो गये।[३]

कार्तिकेय को आगे करके सब देवता पृथिवी पर उतरे और गङ्गा-यमुना के बीच अन्तर्वेदी में आकर खड़े हुए। असुर तारक भी अपनी विशाल सेना के साथ वहीं अन्तर्वेदी में आकर डट गया। स्कन्द और तारक का यह युद्ध गङ्गा-यमुना की अन्तर्वेदी में हुआ।[४] वहाँ तारकासुर और कुमार कार्तिकेय में बड़ा विकट, त्रास-दायक और अत्यन्त दुःसह संग्राम हुआ। अन्त में हाथ में शक्ति लेकर स्कन्द ने दैत्यराज तारक पर बड़े वेग से प्रहार किया। शक्ति के लगते ही वह इस संसार से सर्वदा के लिये विदा हो गया। सकल त्रिलोकी आनन्द से भर गई। शङ्कर तथा पार्वती भी बड़ी प्रसन्नता के साथ वहाँ आये और अपने पुत्र को गोद में बिठाकर पूर्ण सन्तोष प्राप्त किये।

स्कन्दस्वामी का कौमारव्रत–तारक का वध कर कार्तिकेय मन्दराचल पर माता-पिता के पास पधारे। शङ्कर-पार्वती ने उनके विवाह का प्रस्ताव रक्खा। किन्तु स्कन्द ने यह कह कर उस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया कि—'मैं संसार-बन्धन से छूटने की इच्छा रखता हूँ। अतः मुझसे इस प्रकार विवाह आदि करने की बात नहीं करनी चाहिये।'

---

१. शिवमहापुराण के अनुसार कृत्तिकाओं के प्रेमवश बालक ने छः मुख धारण किया था। किन्तु यहाँ उसकी चर्चा नहीं है।

२. शिवमहापुराण महर्षि विश्वामित्र के द्वारा गङ्गापुत्र के संस्कार की बात कहता है।

३. यह प्रसङ्ग शिवमहापुराण में नहीं है। देवताओं का सेनापति होने के कारण वहाँ उन्हें 'देवसेनापति' कहा गया है।

४. शिवमहापुराण तारक और कार्तिकेय का युद्ध मही-सागर-सङ्गम (कुमारी अन्तरीप) नें बतलाता है। यह भारत के दक्षिणी-पश्चिमी कोण में है।

जब देवी पार्वती ने विवाह के लिये बार-बार आग्रह किया, तब कार्तिकेय जी माता-पिता को प्रणाम करके क्रौञ्च पर्वत पर चले गये।। वहाँ उन्होंने परम पवित्र आश्रम में बैठकर बड़ी भारी तपस्या प्रारम्भ की ।[१] जीवन भर विवाह न करने के कारण कार्तिकेय कुमार कहे गये। 'देवसेना' के साथ उनके विवाह की बात तो पौराणिक रूपक मात्र है।

शिवमहापुराण के अनुसार कार्तिकेय माता-पिता से इसलिये रुष्ट होकर श्रीशैल पर्वत पर चले गये थे, क्योंकि उन लोगों ने स्कन्द के पूर्व गणेश का विवाह कर दिया था। इस प्रकार दोनों महापुराणों के भावनात्मक पक्षों में महान् अन्तर है। स्कन्दमहापुराण का पक्ष अधिक उज्जवल, तर्कसंगत एवं भव्यतर प्रतीत होता है।

टिप्पणी-(क) पीछे स्कन्दमहापुराण की कथा के अनुसार यह कहा गया है कि—अग्नि ने हंस (संन्यासी) का रूप धारण कर शङ्कर के अन्त:पुर में प्रवेश किया था और शिव के वीर्य का भक्षण किया था। उसका यह कथन शिवमहापुराण की कथा से भिन्न है । किन्तु स्कन्दमहापुराण के ही माहेश्वर खण्ड में यह भी कहा गया है कि-'अग्नि ने कपोत का रूप धारण कर शिव के अन्त:पुर में प्रवेश किया था और वहीं उसने शिव-रेतस् का भक्षण किया था।'[२] अत: सकल देव-मण्डली सगर्भा हो गई थी। शिवमहापुराण की कथा इस अंश से आश्चर्य-जनक सम्बन्ध और साम्य रखती है। दोनों में देवों के सगर्भ होने तथा शिव-रेतस् के वमन का वर्णन है। किन्तु इस साम्य के मूल में साम्प्रदायिक भावना ही कार्य करती प्रतीत होती है।

(ख) स्कन्दमहापुराण कोलकाता (कलकत्ता) के मोर-प्रकाशन से भी प्रकाशित हुआ है। उसके माहेश्वर खण्ड में कार्तिकेय के जन्म आदि की कथा वर्णित है। यहाँ की कथा परिमार्जित की गई-सी प्रतीत होती है। उसके अनुसार स्कन्द-जन्म की कथा का सार इस प्रकार है—

भगवान् शङ्कर पार्वती के साथ रतिरङ्ग में निमग्न थे। इसी समय देवों की प्रेरणा से अग्नि ने कपोत का रूप धारण कर शङ्कर के अन्त:पुर में प्रवेश किया। पार्वती सङ्कुचित हो गईं। शङ्कर ने कहा—'पावक, यहाँ प्रवेश कर तुमने अनुचित किया । अब तुम स्खलित मेरे वीर्य को धारण करो। अन्यथा तुम्हें भस्म कर दूँगा।' अग्नि ने भयवश वैसा ही किया। अग्नि देवमुख है। फलत: अग्नि के

---

१. स्कन्दमहापुराण, ब्राह्मखण्ड, चातुर्मास्य-माहात्म्य।

२. मोर-प्रकाशन का स्कन्दमहापुराण, माहेश्वर-खण्ड, अध्याय २९

सहित सभी देव सगर्भ हो गये। बाद में अग्नि को छोड़कर सभी देवों के जठर को फाड़कर शिव-वीर्य बाहर निकल आया और पारद की विशाल झील के रूप में परिणत हो गया। अग्नि ने शिववीर्य को गङ्गा में डाल दिया। गङ्गा ने उसे शरवण से घिरे हुए श्वेतपर्वत पर एक कुण्ड में डाल दिया । वहीं कुमार का जन्म हुआ। विश्वामित्र ने आकर कुमार का संस्कार किया। अग्नि ने शक्ति नामक अस्त्र प्रदान किया। स्कन्द ने उसी शक्ति से श्वेतपर्वत के शिखरों को काट कर गिरा दिया। इससे भयभीत देव-मण्डली स्कन्द के शरण में आती है। शङ्कर और पार्वती भी उसी समय अपने पुत्र स्कन्द से मिलने आते हैं । देवों की प्रार्थना से स्कन्द ने तारकासुर का वध किया है। कलकत्ता के इस संस्करण की कथा में कृत्तिओं के साथ स्कन्द के सम्बन्ध को जोड़ने और अग्नि को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। इससे कथा में कुछ अस्पष्टता और अतार्किकता भी आ गई है। अन्यत्र की अपेक्षा इस संस्करण में कार्तिकेय की कथा अत्यन्त विस्तार से वर्णित की गई है।[१]

(ग) उक्त संस्करण के ही वैष्णव खण्ड में भी स्कन्द-जन्म की कथा वर्णित है। उसमें स्कन्द के षण्मुख (छः मुख) होने का कारण कुछ दूसरा ही दिया गया है। कथा का संक्षेप इस प्रकार है—देवों की प्रेरणा से अग्नि ने पार्वती के अन्तःपुर में प्रवेश किया। उस समय शङ्कर-पार्वती का रति-प्रसङ्ग प्रचलित था। अग्नि को देखकर देवी सङ्कुचित हो अलग खड़ी हो गईं। कुपित शङ्कर ने वीर्य का उत्सर्ग अग्नि के मुख में किया। अग्नि सगर्भ हो सन्तप्त हो उठे। बाद में देवों की सहायता से उन्होंने शिव-रेतस् को गङ्गाजी में छोड़ दिया। इस समय तक गर्भ के दस मास व्यतीत हो चुके थे। अतः वह पूर्ण था। उस गर्भरूप बालक को गङ्गा भी धारण न कर सकीं । फलतः उन्होंने उसे सरपत के वन (शरवण) में डाल दिया। सरपत के तीखे पत्तों से कोमल शिशु का शरीर छः टुकड़ों में कटकर विभक्त हो गया। सौभाग्य से उसी समय छः कृत्तिकाएँ वहा आईं। उन लोगों ने बालक के छहों टुकड़ों को जोड़कर एक शरीर बना दिया। किन्तु मुख छः ही रक्खा। अतः बालक षण्मुख हो गया। बालक वहीं शरवण में काफी समय तक रहा। एक समय शङ्कर और पार्वती श्रीशैल पर्वत पर जाते हुए वहाँ पहुँचे। उन लोगोंने उस बालक को उठा लिया। शङ्कर ने सारी कथा को कहते हुए पार्वती को बतलाया कि यह तुम्हारा ही पुत्र है। वे उसे कैलास पर्वत पर लाये।[२]

१. कलकत्ता संस्करण, मोर प्रकाशन, माहेश्वर खण्ड, अध्याय-२९-३४

२. (क) स्कन्दपुराण, मोर प्रकाशन, वैष्णवखण्ड, वैशाखमाहात्म्य, अध्या- ९

(ख) स्कन्द-जन्म की संक्षिप्त कथा, इसी पुराण के, इसी खण्ड के चातुर्मास्य माहात्म्य के २९वें अध्याय में भी वर्णित है।

वामनमहापुराण

गौरी के साथ रमण करते हुए शङ्कर महामोह की अवस्था में विराजमान थे। देवगण मन्दर के शृङ्ग पर गये जहाँ शङ्कर-पार्वती अनङ्ग-क्रीडा में निरत थे। शङ्कर के द्वार पर नन्दी विराजमान थे। अत: शङ्कर के भवन में प्रवेश असम्भव था। ऐसी स्थिति में देवों ने अग्नि को अन्दर जाने के लिये विसर्जित किया। अग्नि ने हंस का रूप धारण कर शङ्कर के अन्त:पुर में प्रवेश किया।[१] भीतर जाकर अग्नि ने सूक्ष्म रूप धारणकर हसकर शङ्कर से कहा–'द्वार पर देवगण खड़े हैं।' यह सुनकर शङ्कर पार्वती को छोड़कर अग्नि के साथ बाहर आये। देवों ने श्रद्धा के साथ शङ्कर को प्रणाम किया। शङ्कर ने वर माँगने को कहा। देवो ने विनती की—'यदि आप वर देना ही चाहते हैं तो इस महामैथुन का परित्याग कीजिए।' शङ्कर ने देवों की प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा—'ठीक है। ऐसा ही होगा। किन्तु मेरा वीर्य उद्रिक्त हो चुका है। इसे कोई धारण करे।' शङ्कर की बात सुनकर अग्नि ने कहा—'प्रभो, आप अपने तेज (वीर्य) को गिराइये। मैं उसे धारण करूँगा।'[२] अग्नि की बात सुनकर शङ्कर ने अपने तेज को भूतल पर गिरा दिया। अग्नि ने उसका पान कर लिया। देवगण प्रसन्न हो अपने-अपने लोक के लिये प्रस्थित हुए।

देवों के चले जाने पर शङ्कर अन्त:पुर में पार्वती के पास पधारे। बाहर घटी सारी घटना शङ्कर ने पार्वती को बतला दी। इसपर पार्वती ने क्रुद्ध हो देवों को शाप दे दिय—'यत: देवों ने मेरे गर्भ से पुत्रोत्पत्ति में बाधा डाली है। अत: आज से उनकी स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हो सकेंगी।'[३]

अग्नि ने शङ्कर के तेज (वीर्य) को पाँच सहस्र वर्ष तक धारण किया। इससे उनका तेज मन्द हो गया। इस पर देवों के भेजने से वे ब्रह्मलोक को जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने (नदी की अधिष्ठात्री) देवी कुटिला को देखा। अग्नि ने उससे कहा—'कुटिले, शङ्कर के जिस तेज को मैंने धारण कर रक्खा है, वह भुवनों को भस्म कर सकने की शक्ति रखता है। अत: तुम इसको धारण कर लो। इससे पैदा होने वाला तुम्हारा पुत्र कहा जायेगा।' अग्नि के वचन को अभिमत मान कर कुटिला ने कहा—'ठीक है, शङ्कर के इस तेज को आप मेरे जल में

---

१. असावुपाय इत्युक्त्वा हंसरूपी हुताशन: ।
वञ्चयित्वा प्रतीहारं प्रविवेश हराजिरम् ।। *वामनमहापुराण* ५४/४१

२. प्रोवाच मुञ्च तेजस्त्वं प्रतीच्छाम्येव शङ्कर ।
ततो मुमोच भगवांस्तद्रेत: स्कन्नमेव तु ।। *वामनमहापुराण* ५४/४९-५०

३. यस्मान्नेच्छन्ति ते दुष्टा मम पुत्रं ममौरसम् ।
तस्मात्ते न जनिष्यन्ति स्वासु योषित्सु पुत्रकान् ।। *वही,* ५४/५५

डाल दीजिये।' कुटिला ने भी पाँच सहस्र वर्ष तक उस तेज को अपने जल में धारण किया। वह भी उस तेज से सन्तप्त हो उठी। फिर ब्रह्मा के निर्देश के अनुसार उसने भी उस तेज को उदयाचल के शृंग पर सौ योजन विस्तीर्ण शरवण (सरपत के वन) में छोड़ दिया। शङ्कर का वह तेज दस सहस्र वर्ष तक वहाँ पड़ा रहा।[१] फिर उसने एक अति सुन्दर शिशु का रूप धारण कर लिया।

शरवण में उत्पन्न हुआ बालक रुदन कर रहा था। विधिवशात् इसी समय छः कृत्तिकाएँ (अरुन्धती को छोड़कर छः सप्तर्षियों की पत्नियाँ) उधर से जा रही थीं। उनकी दृष्टि उस सुन्दर बालक पर पड़ी। 'मैं पहले, मैं पहले इस बालक को दूध पिलाऊँगी'—ऐसा विवाद करती हुई वे उस बालक की ओर दौड़ीं। बालक ने माताओं के इस विवाद को सुना। अतः सबका सम्मान रखने के लिये वह षण्मुख (छः मुखवाला) हो गया। सभी कृत्तिकाओं ने उसे सस्नेह दूध पिलाया और उसका भरण-पोषण किया। कृत्तिकाओं के द्वारा भरण-पोषण किये जाने के कारण ही उस बालक की प्रसिद्धि 'कार्तिकेय' इस नाम से हुई।[२]

एक बार ब्रह्मा की प्रेरणा से अग्निदेव अपने पुत्र कार्तिकेय को देखने के लिये शरवण की ओर जा रहे थे। मार्ग में कुटिला से उनकी भेंट हो गई। कुटिला ने अग्नि से कहा वह आपका पुत्र नहीं मेरा है। दोनों में विवाद होने लगा। उसी समय भगवान् विष्णु वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने तथ्य को ज्ञात करने के लिये अग्नि और कुटिला को शङ्कर के पास प्रेषित किया। दोनों ने शङ्कर से पूछा गुह किसका पुत्र है ? गुह के जन्म की बात ज्ञात कर शङ्कर की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्होंने यह बात गिरिजा को बतलाई। गिरिजा ने कहा—'हम लोग उस शिशु के पास ही चलें। वह जिसका आश्रयण लेगा, उसीका पुत्र होगा।'[३] उमा की बात स्वीकर कर वे चारों शरवण में पहुँचे। वहाँ उन लोगों ने कृत्तिकाओं की गोद में बालक को देखा। उन चारों को देखते ही बालक ने उनके अभिप्राय को जान लिया। सबका मान रखने के लिये षण्मुख वह बालक योग के द्वारा चार मूर्तिवाला हो गया। उनमें प्रथम 'कुमार' शङ्कर के पास गया। द्वितीय 'विशाख'

---

१. इसी स्थल पर ४ श्लोक के बाद कहा गया है कि एक सहस्र वर्ष के बाद शरवण से बालक का जन्म हुआ।

२. भ्रियमाणः स ताभिस्तु बालो वृद्धिमगान्मुने ।
कार्तिकेय इति ख्यातो जातः स बलिनां वरः ।। *वामनमहापुराण* ५७/२५

३. ततोऽम्बिका प्राह हरं देव गच्छाव तं शिशुम् ।
प्रष्टुं समाश्रयेद्यं स तस्य पुत्रो भविष्यति ।। *वही,* ५७/३६

गिरिजा का आश्रय लिया। तृतीय 'शाख' कुटिला के समीप पहुँचा और चतुर्थ 'नैगमेय' अग्नि के अङ्क में आरूढ हुआ। बालक की इस दूर दृष्टि को देखकर वे चारो प्रसन्न हो गये।

इस स्थिति को देखकर कृत्तिकाओं ने पूछा—'क्या षण्मुख शङ्कर का पुत्र है?' इस पर शङ्कर ने कहा—'कार्तिकेय इस नाम से तो यह आप लोगों का पुत्र होगा। कुमार इस नाम से कुटिला का, स्कन्द नाम से गौरी का, गुह नाम से मेरा, महासेन नाम से अग्नि का और सारस्वत नाम से शरवण का पुत्र प्रसिद्ध होगा। इस प्रकार षट् अंश धारण करने के कारण यह बालक 'षण्मुख' कहा जायेगा।'[१]

उस समय शङ्कर ने ब्रह्मा का स्मरण किया। स्मरण करते ही देवों के साथ ब्रह्मा वहाँ आ पहुँचे । बालक को देखकर सबको निःसीम प्रसन्नता हुई। देवों ने कहा—'महादेव, दिव्य अग्नि के द्वारा आपने देवों का यह महान् कार्य किया है। तो अब चलिये। हम लोग कुरुक्षेत्र चलें। वहाँ सरस्वती के जल से सेनापति के पद पर इस कुमार का अभिषेक किया जायेगा। आगे चलकर यह महिषासुर तथा तारक का वध-कर्ता होगा ।[२] शङ्कर ने इस वचन का समर्थन किया । फिर सभी कुमार को लेकर महाफलदायक कुरुक्षेत्र में गये। वहाँ हरि-हरादि देवों ने सरस्वती के सलिल से कुमार का सुर-सेनापति के पद पर अभिषेक किया । सबने अपने कुछ गणों को कुमार की सेवा में नियुक्त कर दिया। अरुण ने अपने ताम्रचूड नामक मयूर-पुत्र को स्कन्द की सवारी के लिये समपिर्त किया। अग्नि ने उन्हें शक्तिसंज्ञक आयुध प्रदान किया।

पूर्ण सुसज्ज हो जाने पर कुमार ने सबको सादर प्रणाम किया। तारक और महिष के विनाश के लिये उन्होंने सबकी अनुज्ञा ली। फिर गणों के साथ वहाँ से प्रस्थान किया समराङ्गण के लिये। देवों के गर्जन को सुनकर महाबली महिष और तारक आदि असुर अपने-अपने गणों के साथ युद्ध की लालसा से युद्ध-भूमि में आ डटे। घोर युद्ध में कुमार ने शक्ति के प्रहार से तारक की जीवन-लीला समाप्त कर दी। अपने भाई तारक के मारे जाने पर भयभीत महिषासुर वहाँ से भागकर हिमालय शैल पर चला गया। कुमार ने वहाँ भी उसका पीछा किया। अन्त में महिषासुर क्रौञ्च पर्वत की गह्वर गुहा में जा छिपा। कुमार क्रौञ्च का विदारण नहीं करना चाहते थे। क्योंकि क्रौञ्च उनके नाना हिमालय का पौत्र होने के नाते उनका

१. वामनमहापुराण, ५७/४३-४६

२. सेनायाः पतिरस्त्वेष देवगन्धर्वकिन्नराः ।
महिषं घातयत्वेष तारकं च सुदारुणम् ॥ *वामनमहापुराण* ५७/५२

भाई लगता है। किन्तु त्रिदेवों की प्रेरणा से और अन्य कुछ कारणों से कार्तिकेय ने शक्ति के प्रहार से क्रौञ्च पर्वत को विदीर्ण कर महिषासुर की जीवन-लीला समाप्त कर दी।[१] तदनन्तर भ्राता की हत्या से लगे पाप के मार्जन के लिये कुरुक्षेत्र के पृथूदक में स्नान कर कुमार शङ्कर के शैल पर चले गये।'

मत्स्यमहापुराण

एक बार शङ्कर ने पार्वती को काली कह दिया ।[२] इससे वे अपमानित हो उठीं। उन्होंने गौरवर्ण प्राप्त करने का महान् सङ्कल्प मन में लिया।[३] घर और शङ्कर को छोड़कर वे हिमालय पर ही पुनः दु:सह तप में निमग्न हो गईं । ब्रह्मा उनके अकल्पनीय तप से सुप्रसन्न हो उन्हें गौरी, सुवर्णगौरी, तथा शिवदेहार्ध-धारिणी होने का वर दिये। फिर वे सद्यः नील त्वक् (नीले चमड़े) को त्याग कर सुवर्ण-वर्ण की बन गईं। नील त्वक् ने कौशिकी देवी का रूप धारण कर लिया। उनके हाथ में घण्टा विराजमान था। पार्वती के क्रोध से उद्भूत सिंह ही उनका वाहन बना। फिर देवकार्य की सिद्धि के लिये वे जाकर विन्ध्य पर्वत पर विन्ध्याचल देवी के रूप में निवास करने लगीं।

मनोमोहक रूप धारण कर पार्वती शङ्कर के पास वापस आईं। चिरोत्कण्ठित शङ्कर ने प्रियतमा को अतृप्त नयनों से निहारा। फिर क्या था ? उमा-महेश्वर की प्रवृत्त हुई दुरत्यय रति-क्रीडा जो कभी समाप्त होने का नाम ही नहीं लेती थी । सहस्र वर्ष बीत गये। देवमन आकुल हो उठा। उन्हें प्रतीक्षा थी शङ्कर के पुत्र की जो तारकहन्ता बने। किन्तु शङ्कर का रति-रहस्य समाप्त लेने का नाम ही नहीं ले रहा था। अतः उन्होंने शङ्कर की चेष्टाओं को जानने के लिये अग्नि को भेजा। वहाँ जाकर उन्होंने शुक का रूप धारण किया और गवाक्ष-मार्ग से भीतर प्रवेश करके देखा कि शङ्करजी गिरिजा के साथ शय्या पर विराजमान हैं। उसी समय शङ्कर की

---

१. एवं ब्रुवन्तं क्रौञ्चं स क्रोधात् प्रस्फुरिताधरः ।
विभेद शक्त्या कौटिल्यान्महिषेण समं तदा ॥ *वामनमहापुराण, ५८/११०*

२. शरीरे मम तन्वङ्गि सिते भास्यसितद्युतिः ।
भुजङ्गीवासिता शुद्धा संश्लिष्टा चन्दने तरौ ।
चन्द्रातपेन सम्पृक्ता रुचिराम्बरया तथा ।
रजनीवासिते पक्षे दृष्टिदोषं ददासि मे ॥ *मत्स्यमहापुराण २/१५५/१-२*
मूर्ध्नि शूलं जनयसि स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन् ।
यस्त्वं मामाह कृष्णेति महाकालेति विश्रुतः ॥ *वही, २/१५५/८*

३. कृष्णेत्युक्त्वा हरेणाहं निन्दिता चाप्यनिन्दिता ।
साऽहं तपः करिष्यामि येन गौरीत्वमाप्नुयाम् ॥ *मत्स्यमहापुराण २/१५५/३०*

दृष्टि शुकरूपी अग्नि पर पड़ी। फिर वे क्रुद्ध होकर अग्नि से बोले-'तुमने रतिभङ्ग की है। अत: इसका फल भी तुम्हें भोगना पड़ेगा।' अग्निदेव शंकर के आशय को समझ गये। उन्होंने हाथ जोड़कर स्खलित शिव-वीर्य का पान किया। अग्नि के द्वारा पिया गया शिवतेज समस्त देवों के शरीर में व्याप्त हो गया। किन्तु असह्य तेज देवों के शरीर में अवरुद्ध न रह सका। वह उनका उदर फाड़कर बाहर निकल आया और शङ्करजी के उस सुविशाल आश्रम में अनेक योजनों में विस्तृत एवं निर्मल जल से पूर्ण महान् सरोवर के रूप में परिणत हो गया। उसमें सुवर्ण-सी कान्तिवाले कमल विकसित थे।

एक समय की बात है। पार्वती उस सरोवर में जल-क्रीडा के अनन्तर तट पर बैठकर विमुग्ध भाव से उसके सौन्दर्य को निहार रही थीं । इसी समय उनकी दृष्टि उन कृत्तिकाओं पर पड़ी जो कमल-पत्रों में जल लिये जलाशय से निकल कर घर जा रही थीं। पिपासित पार्वती ने उनसे कहा—'मैं कमल के पत्र में रखे हुए जल को देख रही हूँ।' देवी के इस वचन को सुनकर कृत्तिकाओं ने उनसे समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने यह भी कहा-'शुभानने, यह जल हम लोग आप को दे देंगी, किन्तु यदि आप यह प्रतिज्ञा करें कि इस जल के पान करने से जो गर्भ स्थित होगा, उससे उत्पन्न बालक हम लोगों का भी पुत्र कहलायेगा और हमलोगों के नाम पर उसका नामकरण किया जायेगा।'[१] इसपर पार्वती ने उत्तर दिया—'भला जो मेरे समान सभी अङ्गों से युक्त होकर मेरे शरीर से उत्पन्न होगा, वह आप लोगों का पुत्र कैसे हो सकेगा?' इसपर कृत्तिकाओं ने कहा—'यदि हमलोग इस बालक के उत्तम मस्तकों की रचना करेंगी तो यह वैसा हो सकता है।'[२] उनके ऐसा कहने पर पार्वती ने कहा—'अनिन्द्य सुन्दरियों, ठीक है। ऐसा ही हो।' देवी की स्वीकृति को सुनकर कृत्तिकायें परम प्रसन्न हुईं । उन लोगों ने लिया हुआ सारा जल पार्वती को समर्पित कर दिया। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से सकल जल पी लिया। जल के पान कर लेने पर उसी सरोवर के तट पर पार्वती देवी की दक्षिण कुक्षि (कोख) को फाड़कर एक अद्भुत बालक निकल पड़ा, जो समस्त लोकों को उद्भासित कर रहा था । उसके हाथ में भीषण शक्ति और त्रिशूल विराजमान थे। उसके छ: मुख थे। वह मायाचारी दैत्यों को मारने के लिए उद्यत-

१. दास्यामो यदि ते गर्भ: सम्भूतो यो भविष्यति ।
सोऽस्माकमपि पुत्र: स्यादस्मन्नाम्ना च वर्तताम् ।। *मत्स्यमहापुराण, २/१५८/३५*

२. ततस्तां कृत्तिका ऊचुर्विधास्यामोऽस्य वै वयम् ।
उत्तमान्युत्तमाङ्गानि यद्येवं तु भविष्यति ।। *वही, २/१५८/३७*

सा दीख रहा था। इसी कारण उसकी प्रसिद्धि 'कुमार' नाम से भी हुई।[१]

प्रथम पुत्र के उत्पन्न होने के अनन्तर पार्वती की वाम कुक्षि को फाड़कर एक दूसरा बालक उत्पन्न हुआ। यत: शिव-वीर्य का क्षरण सर्वप्रथम अग्नि के मुख में हुआ था। अत: बालक का मुखमण्डल प्रभा-आभा से उद्दीप्त था। उसके छ: मुख थे। वह शत्रुओं का विनाशक था।[२] चैत्रमास के कृष्णपक्ष की पन्द्रहवी तिथि (अमावस्या) को विशाल शरवण (सरपत के वन) में ये दोनों शिशु उत्पन्न हुए थे। पुन: चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि को पाकशासन इन्द्र ने देवों के लिये कल्याणकारी मानकर दोनों बालकों को सम्मिलित करके एकीभूत कर दिया। उसी मास की षष्ठी तिथि को उनका देवसेनापति के पदपर अभिषेक किया गया।[३] इन्द्र ने 'देवसेना' नाम से विख्यात कन्या को उन्हें पत्नी के रूप में प्रदान किया। त्वष्टा ने उन्हें स्वेच्छानुसार रूप धारण करने वाला एक कुक्कुट (मुर्गा) समर्पित किया।[४]

देवों ने स्कन्द को अभिषिक्त कर उनकी दिव्य स्तुति की। स्कन्द सन्तुष्ट हो उठे उनकी स्तुति से। देवताओं ने विनती की कि प्रभो, तारकासुर से हम सब पीडित हैं। वह आपके हाथों मरेगा। अत: आप उसका संहार करें। कार्तिकेय ने

---

१. तस्यै ददुस्तया चापि तत्पीतं क्रमशो जलम् ।
पीते तु सलिले तस्मिंस्ततस्तस्मिन् सरोवरे ।
विपाट्य देव्याश्च ततो दक्षिणां कुंक्षिमुद्गत: ।
निश्चक्रामाद्भुतो बाल: सर्वलोकविभासक: ॥
प्रभाकरप्रभाकार: प्रकाशकनप्रभ: ।
गृहीतनिर्मलोदग्रशक्तिशूल: षडानन: ॥
दीप्तो मारयितुं दैत्यान् कुत्सितान् कनकच्छवि: ।
एतस्मात् कारणाद् देव: कुमारश्चापि सोऽभवत् ॥ *मत्स्यमहापुराण,* २/१५८/३९-४२

२. वामं विदार्य निष्क्रान्त: सुतो देव्या: पुन: शिशु: ।
स्कन्दाच्च वदने वह्ने: शुकात् सुवदनोऽरिहा ॥ *मत्स्यमहापुराण* २/१५९/१

३. चैत्रस्यैव सिते पक्षे पञ्चम्यां पाकशासन: ।
बालकाभ्यां चकारैकं मत्वा चामरभूतये ॥
तस्यामेव तत: षष्ठ्यामभिषिक्तो गुह: प्रभु: ।
सर्वैरमरसंघातैर्ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रभास्करै: ॥ *मत्स्यमहापुराण,* २/१५९/५-६

४. **टिप्पणी**-मत्स्यपुराण की कार्तिकेय-कथा अनेक विसङ्गतियों से भरी हुई है। वैज्ञानिकता का तो स्पर्श भी इसमें नहीं प्रतीत होता है। इससे इस पुराण एवं कथा की अति प्राचीनता तथा मूलरूपता भी सिद्ध होती है। यह मैने इङ्गितमात्र कर दिया है। विवेचक आलोचक स्वविवेक से इसपर विचार करें तो अच्छा होगा ।

एक विशाल सेना लेकर असुरराज पर आक्रमण किया। उस समय उनकी अवस्था (वय) सात दिन की थी । कुमार और तारक का हृदयविदारक महान् संग्राम हुआ। अन्त में शक्ति-शिशु कुमार ने शक्ति के प्रहार से उस तारकासुर को इस संसार से सर्वदा के लिये विदा कर दिया जिससे त्रिलोकी कांपती रहती थी।

ब्रह्माण्डमहापुराण

मेना-हिमालय ने अपनी सर्वश्रेष्ठ पुत्री उमा का विवाह शङ्कर से कर दिया। शङ्कर-पार्वती चिरकाल तक अविरत रति में प्रवृत्त थे। इन्द्र सशङ्कित हो उठे। उन्होंने रति-भङ्ग के लिये पार्वती के अन्त:पुर में अग्नि को प्रेषित किया। अग्नि को अन्त:पुर में उपस्थित देखकर शङ्कर रति से विरत हो गये। उनका शुक्र **पृथिवी** पर स्खलित हो गया। यह देखकर पार्वती कुपित हो उठीं। उन्होंने शाप-प्रदान करते हुए अग्नि को दण्डित किया—'तुम इस शिव-शुक्र को गर्भ में धारण करो।' पार्वती के शाप से अग्नि सगर्भ हो गये । असह्य शिव-शुक्र को उन्होंने बहुत वर्षों तक गर्भ में धारण किया। जब इसे धारण करना उनके सामर्थ्य के बाहर हो गया तो उन्होंने इसे गङ्गा में विसर्जित कर दिया। शिव-शुक्र गङ्गा के लिये भी असह्य हो उठा। उन्होंने उसे अपने तटपर विसर्जित कर दिया। फलत: वहाँ एक अति तेजस्वी बालक ने जन्म ग्रहण किया। वह एक साथ शिव-सुत, अग्नि-पुत्र और गङ्गा-तनय तीनों था। पक्षियों ने घेर कर उसकी रक्षा की। गङ्गा-स्नान के लिये जाती हुई कृत्तिकाओं की दृष्टि उस शिशु पर पड़ी। अरुन्धती को छोड़कर छ: कृत्तिकाएँ उस बालक को लेने के लिये एक साथ दौड़ पड़ीं । सबने स्नेहार्द्र हो उसे दूध पिलाना चाहा। उन छहों माताओं का समान सम्मान रखने के लिये उस बालक ने छ: मुख धारण कर लिया। अत: उसे षडानन कहा जाता है। दानवों का स्कन्दन करने के कारण वह स्कन्द है। यत: कृत्तिकाओं ने उस बालक का पालन-पोषण किया था, अत: उसे कार्तिकेय भी कहते हैं।[१]

कार्तिकेय की ज्वालामाला से संवलित शक्ति उनके मुख से ही प्रादुर्भूत हुई थी। गरुड ने उन्हें अपने दो पुत्रों—मयूर और कुक्कुट (मुर्गा) को प्रदान किया था। इसी प्रकार अन्य देवों ने भी उन्हें विविध वस्तुएँ प्रदान की थीं ।

●

१. ब्रह्माण्डमहापुराण, ३/१०/२५-५३

कालभैरव-कथा

शिवमहापुराण

एक बार 'मैं बड़ा हूँ', 'मैं बड़ा हूँ'—यह विवाद करते हुए ब्रह्मा और विष्णु में युद्ध प्रारम्भ हो गया। त्राण के लिये देवों ने शङ्कर की शरण ली। शङ्कर युद्धरत उन दोनों देवों के मध्य में आदि-अन्त-विहीन लिङ्ग के रूप में आविर्भूत हो गये। उस अनन्त लिङ्ग को देखकर आश्चर्यचकित ब्रह्मा और विष्णु में एक समझौता हुआ—जो इसके आदि अथवा अन्त का पता लगाकर पहले आयेगा वह बड़ा माना जायेगा। बाद में आने वाला उसे प्रणाम करेगा। हंसवाहन ब्रह्मा ऊपर की ओर, अन्तिम छोर का और विष्णु उसके मूल का पता लगाने के लिये नीचे की ओर प्रस्थान किये। बहुत काल के व्यतीत हो जाने पर भी मूल का पता न लगा सकने पर विष्णु वापस अपने स्थान पर आकर खड़े हो गये।

ब्रह्माजी लिंग के ऊपरी छोर तक नहीं पहुँच सके। किन्तु उन्हें ऊपर से गिरता हुआ केतकी का एक पुष्प दिखलाई पड़ा। ब्रह्मा ने उससे कहा कि तुम विष्णु के समक्ष चलकर यह साक्ष्य दे दो कि ब्रह्मा, मेरे सामने ही लिङ्ग के ऊर्ध्व भाग (ऊपरी हिंस्सा) तक पहुँच गये थे। पुष्प ने सृष्टिकर्ता की बात स्वींकार कर ली। फिर क्या था, ब्रह्मा बड़ी उतावली में विष्णु के समक्ष पहुँचे। उन्होंने विष्णु से पूछा—'आप लिङ्ग के मूल-भाग का पता लगा लाये ?' विष्णु ने बेझिझक स्पष्ट उत्तर दिया—'प्रयास करने पर भी मैं मूल का पता न लगा सका। अत: वापस आ गया।' ब्रह्मा ने बनावटी गर्व में फूलकर कहा—'मैं तो लिंग के ऊर्ध्व-भाग (ऊपरी हिस्सा) तक पहुँच गया था। यह केतकी का पुष्प इस विषय में प्रमाण है।' केतकी पुष्प ने भी स्वीकृति में हामी भर दी। फिर तो विष्णु ने, अपने वचन के अनुसार, बड़ा मानकर ब्रह्मा को प्रणाम कर उनकी पूजा की।

विधाता की इस शठता को देखकर, उन्हें दण्ड देने के लिये, ज्वालामालावलीढ उस अनन्त लिङ्ग से साक्षात् शङ्कर आविर्भूत हो गये। हरि ने हर को सादर प्रणाम किया। हरि पर प्रसन्न होकर हर ने उन्हें आशीष प्रदान किया—'वत्स, तुम्हारी सत्यप्रियता से, सत्याचरण से, मैं तुम्हारे ऊपर अतिशय प्रसन्न हूँ। संसार में मेरे ही समान तुम्हारी प्रतिष्ठा और पूजा होगी।' इसके बाद शङ्कर की दृष्टि ब्रह्मा के ऊपर पड़ी। ब्रह्मा के दर्प का दलन करने के लिये महादेव ने, क्रोधवश, अपनी

भ्रुकुटियों के मध्यभाग से कालभैरव को उत्पन्न किया। शङ्कर की आज्ञा पाकर कालभैरव ने खड्ग से ब्रह्मा के उस पञ्चम शिर को काट डाला जिसने असत्य भाषण किया था।[१] ब्रह्मा का गर्व जाता रहा। वे शङ्कर के शरणागत हुए।

शङ्कर ने भैरव को आदेश दिया—'नीललोहित, आप विधाता के इस कपाल को धारण कीजिये। संसार को शिक्षा देने के लिये, ब्रह्महत्या के दोष को दूर करने के लिये, कपालव्रत का आश्रयण कर सतत भिक्षाटन कीजिये।' ऐसा कहकर उन्होंने ब्रह्महत्या को पैदा कर भैरव के पीछे लगा दिया। कालभैरव त्रिलोकी में सर्वत्र भ्रमण करते रहे। ब्रह्महत्या उनका पीछा करती रही। किन्तु जैसे ही उन्होंने काशी में प्रवेश किया हाहाकार करती हुई ब्रह्महत्या पाताल में प्रवेश कर गई। भैरव के हाथ में सटा हुआ विधाता का कपाल भी सद्यः नीचे गिर गया। वह स्थान तीर्थ बन गया । उसे कपालमोचन तीर्थ कहते हैं। कालभैरव भी वहीं काशी में स्थित हो गये। कालभैरव का आविर्भाव मार्गशीर्ष कृष्ण-पक्ष की अष्टमी को हुआ था । उस दिन भौमवार था। अतः मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी को भैरव का दर्शन करने से महान् पुण्य का लाभ होता है। यदि यह अष्टमी मङ्गल को पड़ जाय तो उसका माहात्म्य अनन्त हो जाता है ।[२]

कूर्ममहापुराण

घटना अति प्राचीनकाल की है। एक बार मेरु के शृंग पर पितामह ब्रह्मा, ऋषियों आदि के मध्य, अपनी सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन कर रहे थे। उस समय नारायण के श्रीविग्रह से समुद्भूत त्रिलोचन महेश्वर ने उन्हें रोका और अपनी सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन किया।[३] इस प्रकार दोनों में अपनी-अपनी श्रेष्ठता को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया। चारों वेदों ने महेश्वर की श्रेष्ठता एवं महत्ता का प्रतिपादन किया। प्रणव ने भी वेदों की बात का समर्थन किया। वेदों के सिद्धान्त-प्रतिपादक वचनों को सुनकर भी ब्रह्मा का मोह व्यपगत नहीं हुआ। उसी समय तेजःपुञ्ज से परिवेष्टित एक ज्योति उन दोनों के मध्य में प्रकट हो गई। आदि-अन्तविहीन वह ज्योति सकल त्रिलोकी को व्याप्त करके स्थित थी।[४]

१. यह प्रसङ्ग शिवमहापुराण की विद्येश्वर संहिता के अष्टम अध्याय और शतरुद्रसंहिता के अष्टम-नवम अध्याय में वर्णित है। किन्तु शतरुद्रसंहिता में कहा गया है कि भैरव ने अपनी वाम अङ्गुलि के नख के अग्रभाग से ब्रह्मा के पञ्चम शिर को काटा था।

२. शिवमहापुराण, विद्येश्वरसंहिता, अष्टम अध्याय तथा शतरुद्रसंहिता, अष्टम-नवम अध्याय।

३. तस्यैवं मन्यमानस्य जज्ञे नारायणांशजः ।
प्रोवाच प्रहसन् वाक्यं रोषितोऽयं त्रिलोचनः ॥ *कूर्ममहापुराण २/३१/७*

४. तन्मध्यसंस्थितं ज्योतिर्मण्डलं तेजसोज्ज्वलम् ।
व्योममध्यगतं दिव्यं प्रादुरासीद् द्विजोत्तमाः ॥ *कूर्ममहापुराण, २/३१/२४*

ब्रह्मा ने दृष्टि उठाकर दिव्य तेज को देखा। क्रोध से उनका पञ्चम शिर जल उठा।[१] फिर उन्होंने नीललोहित शङ्कर से कहा—'कभी आप मेरे ललाट से उत्पन्न हुए थे। अत: मेरी शरण में आइये।' शङ्कर ने ब्रह्मा के साहङ्कार वचन को सुना। उन्होंने संसार को क्षण भर में भस्म कर देने की क्षमता वाले कालभैरव को प्रेरित किया ब्रह्मा को समुचित दण्ड देने के लिये। ब्रह्मा और कालभैरव में भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। अन्त में कालभैरव ने ब्रह्मा के उस पञ्चम शिर को काट डाला जो पहले कोप से प्रज्वलित हो उठा था।[२] शिर के कटते ही ब्रह्मा मर गये। किन्तु शम्भु ने योग से उन्हें जीवित कर दिया। चेतना के आते ही सृष्टिकर्ता की आँख खुली। उन्होंने देखा उमा के सहित शङ्कर प्रभा-मण्डल में विराजमान हैं। फिर तो उन्होंने उनकी दिव्य स्तुति की। उनके सामने दण्ड की भाँति भूतल पर गिर पड़े। प्रसन्न शङ्कर ने उन्हें अपने दोनों हाथों से उठाया और उनकी पूज्यता श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया।

ब्रह्मा को अनुगृहीत करके शङ्कर ने कालभैरव से कहा—'लोक-मर्यादा के प्रदर्शनार्थ आप पाप-विनाश के लिये व्रत का आचरण कीजिए।' ऐसा कहकर उन्होंने भैरव के पीछे स्त्रीरूप धारिणी ब्रह्महत्या को लगा दिया। कालभैरव के हाथ में ब्रह्मा का कटा हुआ शिर सटा था। उन्होंने विचित्र वेष को धारण कर कपाल-भिक्षा की चर्या का आचरण करते हुए समूची त्रिलोकी में भ्रमण किया। किन्तु कहीं भी उनके हाथ में सटा न तो ब्रह्मा का शिर गिरा और न ब्रह्महत्या ने ही उनका पीछा छोड़ा। त्रिलोकी के परिभ्रमण के क्रम से कालभैरव महादेव की नगरी वाराणसी पुरी में पहुँचे । उनके वहाँ पहुँचते ही ब्रह्महत्या हा-हा करती हुई पाताललोक में चली गई। उनके हाथ से सटा ब्रह्मा का शिर भी वहीं गिर पड़ा। जहाँ वह शिर गिरा, वह स्थान कपालमोचन तीर्थ कहा जाता है। वहाँ सरोवर में स्नान करके पितरों का तर्पण करने से व्यक्ति ब्रह्महत्या जैसे महान् पातक से विमुक्त हो जाता है। इस प्रकार तीर्थ की महिमा का कीर्तन कर भगवान् भैरव अन्तर्हित हो गये ।[३]

●

---

१. प्रजज्ज्वालातिकोपेन ब्रह्मण: पञ्चमं शिर: ।। *कूर्ममहापुराण, २/३१/२६*

२. स कृत्वा सुमहद्युद्धं ब्रह्मणा कालभैरव: ।
प्रचकर्त्तास्य वदनं विरिञ्चस्याथ पञ्चमम् ।। *वही, २/३१/३०*

३. प्रविष्टमात्रे विश्वेशे ब्रह्महत्या कपर्दिनि ।
हाहेत्युक्त्वा सनादं वै पातालं प्राप दु:खिता ।।
प्रविश्य परमं स्थानं कपालं ब्रह्मणो हर: ।।
गणानामग्रतो देव: स्थापयामास शङ्कर: ।।
सहैव प्रमथेशानै: क्षणादन्तरधीयत ।। *कूर्ममहापुराण २/३१/९९, १०५*

कूर्मावतार-कथा

पद्ममहापुराण

अत्रि-पुत्र महर्षि दुर्वासा बड़े ही तेजस्वी थे। एक बार उन्होंने देवराज इन्द्र को परिजात-पुष्पों की माला भेंट की। इन्द्र ने उसे ऐरावत के मस्तक पर डाल दिया। हाथी ने उसे जमीन पर फेंक कर पैरों से रौंद दिया। इस दृश्य को देखकर महर्षि क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने शाप दे दिया—'इन्द्र, तुम त्रिलोकी की राजलक्ष्मी से सम्पन्न हो। अत: मेरा अपमान कर रहे हो। जाओ, तीनों लोकों की लक्ष्मी नष्ट हो जायेगी।'

महर्षि के शाप देते ही जगन्माता लक्ष्मी अन्तर्धान हो गईं। त्रिलोकी दरिद्रता के कारण दु:ख के सागर में निमग्न हो उठी। बुभुक्षा और पिपासा से पीडित लोगों ने ब्रह्मा की शरण ग्रहण की। ब्रह्मा देवों और महर्षियों के साथ क्षीरसागर के तट पर गये। वहाँ उन्होंने पुरुषसूक्त का पाठ करते हुए जगन्नाथ की स्तुति की। वे प्रसन्न होकर प्रकट हुए। देवों से कहा वर माँगो। भगवान् की वाणी सुनकर ब्रह्मा आदि समग्र देव-मण्डली ने हाथ जोड़कर कहा—'देवदेव, दुर्वासा के शाप से त्रिलोकी सम्पत्ति-विहीन हो गई है। अत: हम आप की शरण में आये हैं।'

देवों की विषादभरी वाणी सुनकर श्री विष्णु ने कहा—'अत्रि-कुमार दुर्वासा मुनि के शाप से लक्ष्मी अन्तर्धान हो गई हैं। अत: तुम लोग मन्दराचल की मथानी और नागराज वासुकि की डोर बनाकर सागर का मन्थन करो। उससे लक्ष्मी प्रकट होंगी। उनकी कृपा-दृष्टि की वृष्टि होते ही तुम लोग सौभाग्य-सम्पत्ति से भर जाओगे। मन्थन की बेला में मैं ही मन्दर को अपनी पीठ पर धारण करूँगा।'

भगवान् की आज्ञा मिलते ही देवों और दानवों ने मन्दराचल को उखाड़ कर सागर में डाला। वासुकि की डोर बनाई और फिर मन्थन प्रारम्भ कर दिया सागर का। शुद्ध एकादशी तिथि को समुद्र का मन्थन प्रारम्भ हुआ था। उस समय सम्पूर्ण महर्षि उपवास कर के श्रीसूक्त और विष्णुसहस्र नाम का पाठ कर रहे थे। निराधार मन्दर अन्दर की ओर धँसा जा रहा था। अत: नारायण ने कूर्म का अवतार धारण कर उसे अपनी पीठ पर उठा लिया। उन अविनाशी प्रभु ने अपने एक हाथ से मन्दर के शिखर को भी पकड़ रक्खा था। मन्थन की क्रिया के अनवतर होने से सर्वप्रथम कालकूट नामक महाभयङ्कर विष प्रकट हुआ। कृपाकर

शङ्कर ने इसका पान किया। फिर रक्तवस्त्र धारिणी, लक्ष्मी की बड़ी बहन, दरिद्रा का आविर्भाव हुआ, जिसे पापियों और कलह करने वालों को दिया गया। इसी प्रकार अनेकानेक दुलर्भ वस्तुएँ सागर के गर्भ से प्रकट हुईं। इसके बाद द्वादशी के प्रात:काल की पावन बेला आई। सूर्योदय हुआ। उसी समय सम्पूर्ण लोकों की अधीश्वरी कल्याणमयी भगवती महालक्ष्मी प्रकट हुईं । उनके दर्शन से ही सभी प्रसन्न हो उठे । जगत् की समग्र प्रकृति रमणीय हो उठी । उसके बाद सागर से चन्द्र का आविर्भाव होता है। लक्ष्मी के अनुज होने के नाते वे जगत् के मामा हैं। चन्द्र के अवतरण के अनन्तर कोमल कान्त पत्रावलीवाली तुलसी प्रकट हुई। इसका प्रादुर्भाव श्रीहरि की पूजा के लिये हुआ है।

देवों और महर्षियों ने लक्ष्मी का श्रीहरि से विवाह करवा दिया । इससे प्रसन्न होकर लक्ष्मी-नारायण ने दवों को मनोऽभिलषित वर प्रदान किया।

तदनन्तर सब देवता कच्छपरूपधारी सनातन भगवान् का पूजन कर उनसे वरदान माँगते हुए विनती किये—'महाबली देवेश्वर, आप शेषनाग और दिग्गजों की सहायता के लिये सप्तद्वीपा वसुमती को अपनी पीठ पर धारण करने की कृपा करें।' देवों की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए विश्वभावन भगवान् ने बड़ी प्रसन्नता से 'एवमस्तु' कह कर उन्हें आनन्द में निमग्न कर दिया ।[१]

विष्णुमहापुराण

भगवान् विष्णु की प्रेरणा से देवों एवं दैत्यों ने सम्मिलित रूप से सागर का मन्थन प्रारम्भ किया। उस मन्थन-क्रिया में उन लोगों ने मन्दराचल को मथानी (मन्थन-दण्ड) बना रक्खा था। किन्तु अत्यन्त गुरु होने के कारण वह सागर के जल में नीचे की ओर धँसा जा रहा था। देव-दानव घबड़ाये। भगवान् ने इस स्थिति को देखा। झट-पट कूर्म का रूप धारण किया और जाकर बैठ गये मन्दराचल के नीचे। उन्होंने उस पर्वत को अपनी पीठ पर धारण कर लिया। अब पर्वत का नीचे की ओर धँसना बन्द हो गया। भगवान् कूर्म ने उसे ऊपर की ओर उठाये रक्खा। पर्वत उनकी पीठ पर घूम रहा था।[२]

श्रीमद्भागवतमहापुराण

अमृत की प्राप्ति के लिये देव एवं दैत्य सागर का मन्थन कर रहे थे। दैत्यों और दानवों को असुर भी कहा गया है। उन लोगों ने मन्थन के लिये मन्दराचल

---

१. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, अ० २६० ।

२. क्षीरोदमध्ये भगवान् कूर्मरूपी स्वयं हरिः ।
मन्थनाद्रेरधिष्ठानं भ्रमतोऽभून्महामुने ।। *विष्णुमहापुराण, १/९/८८*

को मथानी बनाया था। मन्दराचल के नीचे कोई आधार नहीं था। अतः बलपूर्वक धारण करने पर भी, निराधार पर्वत नीचे की ओर धँसा जा रहा था। इस विघ्न को देखकर देव और असुर सभी निराशा के सागर में डूबने लगे। अपने पुरुषार्थ को नष्ट होता देखकर उनके मुख की कान्ति मलिन हो गई। भगवान् विष्णु ने इस दृश्य को देखा। वे झट-पट कच्छप के विशाल रूप को धारण कर सागर के जल में प्रविष्ट हो गये। वहाँ उन्होंने, लक्षयोजन विस्तार वाले द्वीप की भाँति, अपनी विशाल पीठ पर मन्दर को उठाकर धारण कर लिया। पर्वत का नीचे धँसना बन्द हो गया। फिर तो देवों एवं दानवों के द्वारा मन्थन-क्रिया प्रारम्भ हुई। कच्छपावतार धारण करने वाले भगवान् का सामर्थ्य इतना प्रबल था कि वे अपनी पीठ पर मन्दर के परिवर्तन को, उसकी रगड़ को, खुजली से अधिक नहीं समझते थे। भगवत्कृता से सागर का मन्थन सफल रहा। अनेक रत्नों के साथ अमृत की भी प्राप्ति हुई।

यही आदि कच्छप थे। यही भगवान् श्री विष्णु का कच्छपावतार था। इस अवतार की गणना श्रीभगवान् के दश अवतारों में की जाती है।[१]

अग्निमहापुराण

बात प्राचीनकाल की है। सुर असुरों से पराजित हो चुके थे। महर्षि दुर्वासा के शाप से देव श्रीविहीन हो गये थे। वे लोग क्षीरसागरशायी नारायण की शरण में गये। ब्रह्माजी उनके आगे-आगे थे।

नारायण ने दानवों के साथ सन्धि करके क्षीरसागर के मन्थन की सलाह दी और कहा—'सागर-मन्थन से अमृत निकलेगा। उसका पान आप लोगों को करवाऊँगा, दानवों को नहीं।' भगवान् की सलाह स्वीकार कर देवों ने दानवों के साथ सन्धि कर सागर का मन्थन प्रारम्भ किया। मन्थन की प्रक्रिया में मन्दराचल को मथानी और वासुकिनाग को मथानी की रस्सी बनाया गया था। मन्थन प्रारम्भ होने पर निराधार मन्दराचल जल में नीचे की ओर धँसने लगा। इस स्थिति को देखकर नारायण ने कूर्म का रूप धारण कर पर्वत को अपनी पीठ पर धारण कर लिया। इससे उसका नीचे धँसना रुक गया। फिर तो मन्थन की प्रक्रिया पूरी हुई और देवों को अपने उद्देश्य में सफलता मिली।[२]

---

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण, अष्टम स्कन्ध, अध्याय-७

२. **टिप्पणी**-अग्निमहापुराण की यह कथा श्रीमद्भागवत के अष्टम, अध्याय ६-१० का संक्षिप्त रूप प्रतीत होती है। कहीं-कहीं पूरा श्लोक अथवा श्लोकार्ध भी पूर्ण साम्य रखता है। इसे तुलना करके देखा जा सकता है।

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

भगवान् शङ्कर ने पारिजात के पुष्पों से कृष्ण की पूजा की। उनमें से एक पुष्प कृष्ण ने, प्रसाद के रूप में, मुनिवर दुर्वासा को दिया। दुर्वासा वैकुण्ठ से कैलास के शिखर पर जा रहे थे। मार्ग में इन्द्र ने उन्हें प्रणाम किया। मुनि ने प्रसन्न हो वह पुष्प इन्द्र को दे दिया। इन्द्र ने उसे ऐरावत के मस्तक पर रख दिया। यह देखकर मुनिवर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने शाप दिया—'इन्द्र, तुमने जो अभिमान में आकर भगवान् के प्रसादरूप परिजात के पुष्प को हाथी के मस्तक पर रख दिया, इस अपराध के फलस्वरूप लक्ष्मी तुम्हें छोड़कर भगवान् श्रीहरि के पास चली जाये।'

मुनिवर दुर्वासा के शाप देते ही स्वर्ग की लक्ष्मी चली गई। देवमण्डली नि:श्रीक हो गई। ब्रह्मा को साथ ले सभी देवों ने वैकुण्ठ में श्रीहरि की स्तुति की। श्रीहरि प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'देवों, मेरी आज्ञा से लक्ष्मी क्षीरसागर के यहाँ जाकर जन्म धारण करेगी। तुम लोग सागर का मन्थन करो। उससे लक्ष्मी प्रकट होगी। फिर ब्रह्माजी उसे देवताओं को सौंप देंगे। इससे त्रिलोकी का कल्याण हो जायेगा।'

भगवान् श्रीहरि की आज्ञा मिलते ही सभी—देवता और दानव एकत्रित हुए। मन्दराचल को मथानी (मन्थनकाष्ठ), कच्छप को पात्र[१] तथा शेषनाग को रस्सी बनाकर वे क्षीरसागर को मथने लगे। फलस्वरूप धन्वन्तरि वैद्य, अमृत, उच्चै:श्रवा अश्व, विविध रत्न, ऐरावत, लक्ष्मी, सुदर्शन चक्र तथा वनमाला—ये अमूल्य पदार्थ उन्हें प्राप्त हुए। श्रीलक्ष्मी ने अपार श्रद्धा के साथ श्रीहरि के गले में वनमाला पहना दी। उन्होंने देवों पर अपनी कृपा-दृष्टि फैला दी। फलत: देवों ने दैत्यों के हाथ में गये हुए अपने राज्य को प्राप्त कर लिया।[२]

स्कन्दमहापुराण

इन्द्र अपनी सुधर्मा सभा में बैठे गीत का आनन्द ले रहे थे। उसी समय गुरु वृहस्पति वहाँ पहुँचे। इन्द्र ने उनका अभिनन्दन नहीं किया। वे उन्मत्त की भाँति सिंहासन पर नि:स्पन्द बैठे ही रहे। फलत: अपमानित होकर गुरु वृहस्पति वहाँ से अन्तर्धान हो गये। नारद के उद्बोधन से बाद में इन्द्र ने गुरु का अन्वेषण किया। किन्तु वे कहीं न मिले। स्वर्ग नि:श्रीक बन गया। इस तथ्य को जब पातालनिवासी बलि ने सुना तो वे दैत्यों की विशाल सेना लेकर अमरावती पर चढ़ आये। देव

---

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, प्रकृति खण्ड, अ०-३९ में क्षीरसागर के मन्थन के अवसर पर कच्छपावतार की इतनी ही स्वल्प कथा अङ्कित है। यहाँ पात्र का अर्थ है—जो वस्तु को नीचे धँसने से रोके।

२. ब्र०वै० महापुराण, प्रकृतिखण्ड, अ०-३९

पराजित हुए। इन्द्र की राज्य-लक्ष्मी विनष्ट हो चुकी थी। अत: देवों ने भी उनका साथ नहीं दिया। श्रीविहीन इन्द्र स्वर्गलोग से अन्यत्र चले गये। ऐरावत नामक महान् गजराज तथा उच्चै:श्रवा अश्व आदि जो बहुत से रत्न थे, उन्हें दुष्ट दैत्यों ने लोभवश स्वर्गलोक से पाताल में पहुँचा दिया। किन्तु वे रत्न पुण्यात्मा पुरुषों के ही उपभोग की वस्तु थे। अत: दैत्यों के अधिकार में न रहकर समुद्र में कूद पड़े। उस समय बलि के इसका कारण पूछने पर आचार्य शुक्र ने कहा था—'जो दीक्षा लेकर सविधि सौ अश्वमेझ यज्ञ का अनुष्ठान पूर्ण करता है, वही देव-राज्य पर अधिकार का अधिकारी बनता है। वही वहाँ की वस्तुओं का उपभोग कर सकता है।'

दुःखी देव ब्रह्मा को लेकर विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने कहा—'इन्द्र, तुम मेरी बात सुनो। इस समय अपने कार्य की सिद्धि के लिये दैत्यों के साथ मेल-जोल कर लेना चाहिये।'

इन्द्र ने भगवान् के आदेश को शिरोधार्य किया। वे देवमण्डली के साथ सुतल लोक में बलि के शरणागत हुए। बलि ने उन्हें आश्रय दिया। इन्द्र ने बलि से विनम्र होकर कहा—'भैया, भाग्यवश आपने मेरा सम्पूर्ण राज्य एक क्षण में ही ले लिया। वहाँ के बहुत से रत्न भी यहाँ उठा लाये। किन्तु वे सभी रत्न तत्काल ही जहाँ के थे, वहीं चले गये। अत: विद्वान् पुरुष को एक-दूसरे से मिलकर कर्त्तव्य के विषय में विचार करना चाहिए।'

एक दिन इन्द्र बलि की सभा में विराजमान थे। उस समय उन्होंने हँसते हुए बलि से कहा—'वीरवर, हमारे हाथी-घोड़े आदि रत्न, जो तुम्हें प्राप्त करने के योग्य हैं, वे सभी समुद्र में कूद गये हैं। अत: हम लोगों को उनकी पुन: प्राप्ति के लिये अतिशीघ्र प्रयास करना चाहिये। इस कार्य के लिये समुद्र का मन्थन करना समीचीन होगा।' इन्द्र की सलाह से सहमति व्यक्त करते हुए बलि ने पूछा—'समुद्र का मन्थन कैसे सम्भव होगा?' इसी समय आकाशवाणी हुई—'देवों और दैत्यों, तुम लोग क्षीर-सागर का मन्थन करो। इस कार्य में तुम्हारे बल की वृद्धि होगी। मन्दर पर्वत को मथानी और वासुकि नाग को रस्सी बनाओ। फिर देव-दैत्य सभी मिलकर मन्थन करो।' आकाशवाणी को सुनकर देव-दैत्य सभी मन्दर को लाने का प्रयास करने लगे। किन्तु अति गुरुतर पर्वत मार्ग में ही गिर पड़ा। अन्तत: उसे भगवान् विष्णु ने गरुड पर रखकर क्षीर-सागर के तट पर लाकर रख दिया । फिर गरुड वहाँ से चले गये ।

देवताओं और दैत्यों ने क्षीर-समुद्र का मन्थन प्रारम्भ किया। किन्तु गुरुतर

वह पर्वत समुद्र में डूबकर रसातल को जा पहुँचा। निराधार पर्वत सागर में रुकता ही न था। तब लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु ने कच्छप का रूप धारण करके तत्काल ही मन्दराचल को ऊपर उठा दिया। उस समय यह एक अद्भुत घटना घटित हुई। फिर देवों एवं दैत्यों ने मन्दर को घुमाना प्रारम्भ किया, तब वह इधर-उधर डगमगाने लगा। फिर तो भगवान् विष्णु ने चतुर्भुज रूप धारण कर उसका सीधा निर्धारण किया। तदनन्तर मंथन की प्रक्रिया आगे बढ़ी। कच्छप रूपधारी भगवान् की पीठ जन्म से ही कठोर थी और उस पर घूमने वाला पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल भी वज्रसार की भाँति दृढ़ था। उन दोनों की रगड़ से समुद्र में बडवानल प्रकट हो गया।

बडवानल की उत्पत्ति के साथ ही सागर से हलाहल विष उत्पन्न हुआ। उसे सर्वप्रथम नारद जी ने देखा। उनकी प्रेरणा से सभी शङ्कर की शरण में गये। करुणा के सागर शङ्कर ने विष का पान कर देवो-दानवों को निःशङ्क बन दिया। पुनः मन्थन की प्रक्रिया द्विगुणित उत्साह से आगे बढ़ी। फिर चन्द्रमा, सुरभि (कामधेनु), कल्पवृक्ष, पारिजात, चूत और सन्तान—ये चार दिव्य वृक्ष, कौस्तुभ, उच्चैःश्रवा नामक अश्व, ऐरावत हाथी, मदिरा, भाँग, काकड़ासिंगीं, लहसुन, गाजर, धतूर तथा पुष्कर आदि बहुत सी वस्तुएँ समुद्र से प्रकट हुईं। देवता-दानव मन्थन करते जा रहे थे। उनका उत्साह बढ़ा हुआ था। इस बार सागर से महालक्ष्मी का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने भगवान् विष्णु की ग्रीवा में जयमाल पहनाकर उनका वरण किया। त्रिलोकी आनन्द में निमग्न हो गई।

अन्त में अमृत का कलश लिये हुए धन्वन्तरि प्रकट हुए। दैत्य वृषपर्वा ने उस कलश को छीन लिया। अमृतकलश लेकर दैत्य पाताल लोक चले गये। देवताओं का मनोरथ भङ्ग हो गया। वे निराशा के सागर में निमग्न होकर अशरण-शरण भगवान् विष्णु की शरण में गये। भगवान् ने मोहिनी का रूप धारण कर दैत्यों को मोहित किया और देवों को अमृत का भरपूर पान कराया।[1]

•

१. स्कन्दमहापुराण, माहेश्वर खण्ड, अध्याय- ७-१६

कृष्ण-कथा

ब्रह्ममहापुराण

मही असुर-राजाओं के भार से पीडित थी। भार के असह्य हो जाने पर वह ब्रह्मा की शरण में गई।[१] शङ्कर तथा देवताओं के साथ पृथिवी को लेकर ब्रह्मा नारायण के पास क्षीर-सागर के तट पर गये। वहाँ उनकी दिव्य-स्तुति से प्रसन्न हुए नारायण ने अपने श्वेत एवं कृष्ण केशों को उखाड़ कर कहा—'देवों, हमारे ये दोनों केश वसुधातल पर अवतार लेकर पृथिवी के दुःख को दूर करेंगे।'[२] देवता भी अंशावतार लेकर असुरों से युद्ध करें। इस प्रकार सारे दैत्य विनष्ट हो जायेंगे। मेरा यह केश वसुदेव की देवीसदृश पत्नी देवकी की कुक्षि से अष्टम गर्भ के रूप में अवतार लेकर कंस का वध करेगा।' ऐसा कहकर नारायण अन्तर्हित हो गये।

एक समय नारद कंस के पास पहुँचे। उन्होंने कहा—'कंस, देवकी का अष्टम गर्भ तुम्हारा वध करेगा।' यह सुनकर कंस कुपित हो उठा। उसने वसुदेव और देवकी को उनके घर में ही बन्दी बनाकर रख दिया। जैसा कि वसुदेव ने कंस से वादा किया था, उत्पन्न होते ही वे अपने पुत्रों को उसे समर्पित कर देते थे।[३] कंस उनका वध कर देता था।

इस प्रकार कंस ने देवकी के छः पुत्रों को मार डाला। ये पुत्र अपने पूर्व जन्म में हिरण्यकशिपु के पुत्र थे। इन्हें षड्गर्भ कहा जाता था। ये पातालतल में रहते थे। विष्णु की प्रेरणा से योगनिद्रा क्रमशः एक-एक षड्गर्भ को लाकर देवकी के गर्भ में स्थापित कर देती थी। शेषावतार बलराम को भी योगनिद्रा ने देवकी के गर्भ से खींचकर रोहिणी के गर्भ में प्रवेश करा दिया था। रोहिणी वसुदेव की पत्नी थीं और कंस के भय से गोकुल में नन्द के यहाँ निवास करती थीं।

---

१. श्रीमद्भागवत में भूमि गाय का रूप धारण कर रोती हुई ब्रह्मा की शरण में गई है। किन्तु यहाँ पृथिवी अपने ही रूप में ब्रह्मा के पास गई है।। ७२/५-६

२. एवं संस्तूयमानस्तु भगवान् परमेश्वरः ।
उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ द्विजोत्तमाः ।।
उवाच स सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले ।
अवतीर्य भुवो भारक्लेशहानिं करिष्यतः ।। *ब्रह्ममहापुराण* ७२/२६-२७

३. जातं जातं च कंसाय तेनैवोक्तं यथा पुरा ।
तथैव वसुदेवोऽपि पुत्रमर्पितवान् द्विजाः ।। *वही,* ७२/३५

ब्रह्ममहापुराण की शेष कृष्ण-कथा श्रीमद्भागवत और विष्णुमहापुराण की कथा से प्राय: मिलती-जुलती है। कथा-क्रम में कुछ विपर्यास अवश्य है। किन्तु इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। अत: यहाँ अति संक्षेप में कृष्ण-कथाका उपस्थापन किया जा रहा है। यत्र-तत्र प्राप्त अन्तर प्रदर्शित करना ही इस उपस्थापन का प्रमुख लक्ष्य है।

वसुदेव के घर में ही कृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ था। कंस के रक्षक उसकी पहरेदारी करते थे। कृष्ण के आदेश से जिस समय वसुदेव अपने बालक को गोकुल पहुँचाने जाने लगे उ़स समय योग-निद्रा के प्रभाव से मथुरा सहित सारा गोकुल शयन कर रहा था। शेषनाग वसुदेव के पीछे फण फैलाये चह रहे थे। यमुना उमड़-घुमड़ कर बढ़ रही थीं। किन्तु कृष्ण-वाहक वसुदेव के पैर रखते ही वे घटकर घुटने भर आ गईं । यमुना पार कर वसुदेव ने देखा कि कंस को कर देने के लिये आये हुए नन्द आदि गोप वहाँ तटपर शयन कर रहे हैं।[१]

वसुदेव नन्द के घर पहुँचे। यशोदा के पार्श्वभाग में बालक को शयन करा दिया और वहाँ से बालिका लेकर वापस मथुरा आ गये। उसे देवकी की शय्या पर रख दिया और स्वयं पूर्व की स्थिति में आ गये। बालरुदन को सुनकर कंस को सूचना मिली देवकी के बालक उत्पन्न होने की। कंस ने बालिका को शिला पर पटक कर मारना चाहा। किन्तु वह योगमाया कंस के हाथ से छूटकर आकाश में जा विराजमान हुई। उसने कंस को सूचना दी उसके शत्रु के उत्पन्न होने की।[२]

योगमाया की बात सुनकर कंस की उद्विग्नता बढ़ गई। उसने अपने प्रमुख सहायकों, प्रलम्ब, केशी, धेनुक, पूतना एवम् अरिष्ट आदि, को एकत्रित कर रात्रि की घटना का विवरण प्रस्तुत किया और उन्हें आदेश दिया—'जो बालक उत्पन्न हो रहे हो, जो उत्पन्न हो चुके हैं और जो उत्पन्न होंगे उन्हें मार डालो। उनमें से जो विशेष बलसम्पन्न प्रतीत हों उन्हें तो प्रयत्नपूर्वक मारो।'[३]

अनुयायियों को उक्त आदेश देकर कंस वसुदेव और देवकी के पास पहुँचा। उन्हें बन्धन से मुक्त किया और वेदान्त की सरणि से ढेर सारा उपदेश दिया, सान्त्वना दी। फिर वह अपने प्रासाद में प्रविष्ट हो गया।

---

१. कंसस्य करमादाय तत्रैवाभ्यागतांस्तटे ।
नन्दादीन् गोपवृद्धांश्च यमुनायां ददर्श स: ॥ *ब्रह्ममहापुराण ७३/२३*

२. किं मयाऽऽक्षिप्तया कंस जातो यस्त्वां हनिष्यति ।
सर्वस्वभूतो देवानामासीन्मृत्यु: पुरा स ते ॥ *वही, ७३/३१*

३. उत्पन्नश्चापि मृत्युर्मे भूतभव्यभवत्प्रभु: ।
यत्रोद्रिक्तं बलं बालं स हन्तव्य: प्रयत्नत: ॥ *ब्रह्ममहापुराण ७४/६-७*

बन्धन से विमुक्त हो जाने पर वसुदेव नन्द के शकट पर गये, वासस्थान पर गये। वहाँ उन्होंने नन्द को प्रेरणा दी अपने घर जाने की। इधर कंस-प्रेषित पूतना रात्रि की बेला में नन्द के गोकुल पहुँची। उसने सोये हुए कृष्ण को गोद में लेकर अपना स्तन उनके मुख में डाल दिया। रात्रि की बेला में पूतना जिस-जिस बालक के मुख में अपना स्तन डालती थी उसके शरीर के अवयव क्षण भर में निश्चेष्ट हो जाते थे।[१] कृष्ण ने अपने हाथों से कसकर पूतना के स्तन को दबाकर पिया। इससे घोर शब्द करती हुई वह निश्चेष्ट होकर भूतल पर गिर कर मर गई। नन्द आदि गोप सन्त्रस्त होकर शय्या से उठे। उन्होंने देखा कि निश्चेष्ट पूतना की छाती पर शिशु कृष्ण विराजमान हैं। भयभीत यशोदा ने बालक को वहाँ से उठाया। गाय की पूँछ उसके चतुर्दिक् घुमाई। नन्द ने उसके मस्तक पर गाय का गोबर लगाया और भगवान् के नामों से बालक की रक्षा की।

एक समय कृष्ण शकट के नीचे पर्यङ्किका (छोटी पलंग) पर शयन कर रहे थे। उनके चरण के प्रहार से शकट उलट गया। कृष्ण बाल-बाल बच गये। आश्चर्यचकित यशोदा ने दधि फूल-फल और अक्षत से शकट की पूजा की।[२]

कुछ काल के अनन्तर वसुदेव की प्रेरणा से गर्गाचार्य ने नन्द के गोकुल में जाकर प्रच्छन्नरूप से दोनों बालकों का नामकरण संस्कार किया। बड़े का नाम राम रक्खा और छोटे का कृष्ण। दोनों बालक अति चञ्चल थे। यशोदा और रोहिणी उन्हें रोक न पाती थीं । एक दिन क्रुद्ध यशोदा ने अत्यन्त उत्पाती कृष्ण की कटि में रस्सी बाँधकर उसे अलूखल में बाँध दिया और कहा—'चञ्चलशिरोमणे, अब तेरे में शक्ति हो तो जाओ।' ऐसा कहकर वह अपने गृह-कार्य में व्यस्त हो गईं । कृष्ण उलूखल को खींचते हुए पास में ही स्थित दो यमलार्जुन वृक्षों के मध्य से बाहर निकल गये। तिरछे उलूखल के धक्के से धराशायी हो गये वे दोनों वृक्ष। वृक्षों के गिरने की तीव्र ध्वनि को सुनकर भयकातर व्रज-जन दौड़ते हुए आये। उन्होंने पतित वृक्षों के मध्य में छोटी-छोटी दँतुलियों वाले मुस्कराते हुए कन्हैया को देखा। उसी समय से कृष्ण का नाम दामोदर पड़ गया।

नन्द आदि गोप-वृद्धों ने जब इस प्रकार उत्पातों की शृंखला देखी तो वे सबके सब जाकर वृन्दावन में बस गये। व्रज-स्थान, जन-शून्य हो गया। वहाँ

16311

१. यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना संप्रयच्छति ।
तस्य तस्य क्षणेनाङ्गं बालकस्योपहन्यते ।। *ब्रह्ममहापुराण,* ७५/८

२. यशोदा विस्मयारूढा भग्नभाण्डकपालकम् ।
शकटं चार्चयामास दधिपुष्पफलाक्षतैः ।। *वही,* ७५/२९

पहुँच कर राम और दामोदर वत्सपाल बन गये। उन लोगों ने बछड़ों को चराना प्रारम्भ किया। शनैः शनैः वे सात वर्ष के हो गये। एक दिन बलराम के बिना ही कृष्ण बछड़ों को चराने गये। उन्होंने कलियनाग के विष से दूषित यमुना को देखा। मन-ही-मन अकल्प संकल्प लिया कालिय के दमन का। फिर वे कसकर कमर को बाँधे और चढ़ गये बगल में ही स्थित कदम्ब के वृक्ष पर। वहाँ से कूदे और जा पहुँचे कलिय के ह्रद में। नागराज का बलपूर्वक दमन कर उसका वहाँ से निर्वासन किया। इस प्रकार यमुना निर्विष बन गई।

इसके बाद तालवन के अधिपति धेनुकासुर और गोपवेषधारी प्रलम्बासुर का वध बलराम ने किया। गोवर्धन-धारण की कथा श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण जैसी ही ब्रह्मपुराण में भी वर्णित है।[१] रासक्रीडा भी उन्हीं पुराणों से प्रायः साम्य रखती है। एक दिन प्रदोष की बेला थी। कृष्ण ने अभी रासका आरम्भ किया ही था कि गोष्ठ में उत्पात मचाता हुआ वृषरूपधारी अरिष्टासुर आ पहुँचा । कृष्ण ने उसे भी मार डाला।

पूतना के वध से प्रारम्भ कर अरिष्टासुर के विनाश तक की बहुत-सी अद्भुत घटनाओं के घटित हो जाने के अनन्तर एक दिन नारद जी कंस के पास पहुँचे। कंस ने नारद का सम्मान किया। नारद जी ने आज़ कंस के समक्ष सारे रहस्यों का उद्घाटन कर दिया। उन्होंने यशोदा और देवकी की सन्तति-परिवर्तन की बात भी बतला दी।[२] इस रहस्य को ज्ञात कर कंस कुपित हो उठा। उसने कृष्ण, बलराम, वसुदेव, नन्द और अपने पिता उग्रसेन के वध की योजना बना डाली।

उसने यदुवंशी अक्रूर को सप्रेम अपने पास बुलाकर कहा—'दानपति अक्रूरजी, आप मेरे रथ पर आरूढ होकर नन्द के गोकुल में जाइये। धनुर्याग देखने के व्याज से नन्द के पुत्रों कृष्ण और बलराम को मथुरा बुला लाइये। नन्द आदि गोप भी दूध, दही और मक्खन लेकर आवें। यहाँ कुवलयापीड हाथी, चाणूर और मुष्टिक आदि मल्लों से उन दोनों का वध करवा दूँगा। फिर तो दुर्मति वसुदेव, नन्द और पिता उग्रसेन का भी मैं स्वयं वध कर दूँगा।' अक्रूर जी कंस की बात स्वीकार कर रथ पर बैठकर हर्षोत्फुल्ल हो मथुरा से वृन्दावन के लिये प्रस्थित हुए ।

इसी अन्तराल में कंस-प्रेषित केशी वृन्दावन पहुँचा। उससे सन्त्रस्त हो

---

१. ब्रह्ममहापुराण, अ०- ८०।

२. कंसाय नारदः प्राह यथावृत्तमनुक्रमात् ।
यशोदादेवकीगर्भपरिवर्ताद्यशेषतः ॥ ब्रह्ममहापुराण, ८२-३

व्रजवासी कृष्ण की शरण में गये। कृष्ण ने उसका वध कर दिया। यह कथा श्रीमद्भागवत और ब्रह्मपुराण में एक जैसी वर्णित है।[१] केशी के वध करने के ही कारण कृष्ण लोक में केशव नाम से विख्यात हुए।[२] मार्ग में नाना मनोरथों को करते हुए अक्रूर सूर्यास्त की बेला में वृन्दावन पहुँचे। उस समय बलराम और कृष्ण अपने खरिक (गोष्ठ) में विराजमान थे। कृष्ण ने अक्रूर को कसकर छाती से लगा लिया। अक्रूर का जीवन सफल हो उठा। बलराम जी ने भी कृष्ण का अनुवर्तन किया। फिर दोनों बन्धु अक्रूर को लेकर अपने घर आये। वहाँ उन लोगों ने अक्रूर का सविधि सत्कार किया। भोजन आदि की क्रिया सम्पन्न हो जाने के बाद अक्रूरजी ने मथुरा का सारा समाचार कृष्ण को कह सुनाया। कृष्ण ने कहा—'दानपते, आप चिन्ता न करें। कल आप के साथ मथुरा चलूँगा। परसो पापी कंस, अपने भाई के साथ, मेरे हाथों मारा जायेगा।'

दूसरे दिन प्रातःकाल की बेला उपस्थित हुई। राम-कृष्ण रथ पर आरूढ हो मथुरा के लिये प्रस्थान किये। अक्रूर रथ का सञ्चालन कर रहे थे। दीर्घ विरह की संभावना से व्याकुल गोपियाँ विवश हो अश्रुपूरित नेत्रों से इस दृश्य को निर्निमेष नयनों से तब तक निहारती रहीं तब तक कि कृष्ण का रथ ओझल नहीं हो गया।

रथ चलता रहा। वृन्दावन की सीमा को पार कर कृष्ण, बलराम और अक्रूर मध्याह्न की बेला में यमुना के तट पर पहुँचे। अक्रूर ने कृष्ण से कहा—'आप दोनों बन्धु रथ पर ही आरूढ रहें। मैं यमुना के जल में आह्निक कृत्य सम्पन्न कर शीघ्र आ रहा हूँ।' कृष्ण ने अक्रूर को आह्निक कृत्य सम्पन्न करने का आदेश दे दिया।

अक्रूरजी ने कालिन्दी के पावन जल में स्नान और आचमन करके परब्रह्म का ध्यान करना प्रारम्भ किया। वे उस समय यमुना के ही जल में खड़े थे। वहाँ उन्होंने एक बड़े ही अद्भुत दृश्य का अवलोकन किया—जल के तल में सहस्त्र फण-मण्डल से अलङ्कृत नीलवसनधारी बलराम के उत्सङ्ग में चतुर्भुज, पीताम्बर, शंख, गदा, पद्म, चक्रधारी कृष्ण सोये हुए हैं।[३] उन्होंने जल से निकलकर रथपर

---

१. देखिये-ब्रह्ममहापुराण, अध्याय-८२

२. यस्मात्त्वयैष दुष्टात्मा हतः केशी जनार्दन ।
तस्मात्केशवनाम्ना त्वं लोके गेयो भविष्यसि ॥ *ब्रह्ममहा० ८२/४४*

३. फणासहस्त्रमालाढ्यं बलभद्रं ददर्श सः। दधानमसिते वस्त्रे चारुरूपावतंसकम् ।
तस्योत्सङ्गे घनश्याममाताम्रायतलोचनम् । ददर्श कृष्णमक्लिष्टं पुण्डरीकावतंसकम् ॥
ब्रह्ममहापुराण, ८४/३६-४१

देखा। बलराम-कृष्ण पूर्व की भाँति वहाँ विराजमान थे। फिर जल में देखा वही पहले जैसा दृश्य। अब आश्चर्य से चकित अक्रूर कृष्ण की स्तुति करने लगे।

स्नान-ध्यान से निवृत्त हो अक्रूर ने रथ प्रेरित किया मथुरापुरी के लिये। रथ पुरी की परिधि में पहुँचा। उस समय सायंकाल की बेला सन्निकट थी। अक्रूर ने दोनों बन्धुओं को वहीं रथ से उतार दिया और उन्हें यह निर्देश भी दिया कि आप लोग वसुदेव के घर नहीं जायेंगे। क्योंकि आप लोगों के लिये कंस उन्हें प्रताडित करता रहता है।[१]

कृष्ण-बलराम मथुरा के राजमार्ग पर पैदल ही घूमने निकले। नर-नारी उन दोनों के सौन्दर्य माधुर्य पर विमुग्ध हो निर्निमेष नयनों से निहार रहे थे। इतने में मिला कंस का धोबी। कृष्ण ने उसके दुर्वचनों से कुपित हो गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। रजक का शिर उसके कन्धे से गिर कर भूमि पर लुढ़कने लगा। फिर वे दोनों बन्धु एक माली के घर पहुँचे। यह माली भी कंस का ही था। किन्तु राम-कृष्ण को देखते ही उसका अन्तःकरण भक्ति-भाव से भर उठा। उसने अपनी माल्य-संपत्ति से दोनों यदुकुमारों की खूब पूजा की, भरपूर सम्मान किया। सुप्रसन्न कृष्ण ने उस पर वरदानों की वर्षा की। पुनः वे आगे बढ़े। वहाँ कंस के लिये अनुलेपन को लेकर जाती हुई कुब्जा से उनकी भेंट हो गई। उसने दोनों भाईयों को अनुलेपन दिया। कृष्ण ने उसकी शरीर-रेखा को सीधी तन्वङ्गी बना दिया। कुब्जा पर अनुग्रह की वृष्टि कर दोनों यदुकुमार धनुषशाला में प्रविष्ट हुए। कृष्ण ने धनुष उठाकर दो टूक कर दिया । धनुष-भंग होने की ध्वनि ने मथुरा को कम्पित कर दिया। कंस व्याकुल हो उठा। उसने अपने मल्ल चाणूर और मुष्टिक को महान् प्रलोभन देकर न्याय और अन्याय से कृष्ण और बलराम को मार डालने का **आदेश** दिया। उसने कुवलयापीड हस्ती के सञ्चालक को भी आदेश दिया कि जब नन्द के दोनों कुमार समिति के द्वार पर पहुँचे उस समय उनके ऊपर हाथी चढ़ा कर उन्हें मार डालना ।

प्रातःकाल सूर्योदय हुआ। रङ्गभूमि चतुर्दिक् यथोचित लोगों से भर गई। एक तरफ गोपों के साथ नन्द विराजमान थे तो दूसरी ओर मञ्च के कोने में वसुदेव और अक्रूर बैठे हुए थे। नगर की स्त्रियों के मध्य बैठी हुई निरीह देवकी ललकभरी दृष्टि से अपने लाल कृष्ण को निहारने की लालसा से अधीर बैठी थी। इसी समय कुवलयापीड को मारकर कृष्ण और बलराम रङ्गमञ्च में प्रवेश करते

१. गन्तव्यं वसुदेवस्य नो भवद्भ्यां तथा गृहे ।
युवयोर्हि कृते वृद्धः कंसेन स निरस्यते ॥ *ब्रह्ममहापुराण, ८४/६८*

है। 'यही हैं कृष्ण, यही हैं बलराम'—यह लोगों के मुख से अनायास कलरव होने लगा। सभी साश्चर्य नयनों से दोनों कुमारों को देख रहे थे। इसी समय चाणूर और मुष्टिक कृष्ण तथा बलराम को ललकारते हैं मल्लयुद्ध के लिये। अन्त में दोनों प्रधान मल्लों के कृष्ण और बलराम के द्वारा रङ्गभूमि में मारकर गिरा दिये जाने पर कंस निरास हो गया। तीसरे नम्बर के मल्ल तोसल की जीवन-लीला एक ही वाम-मुष्टि के प्रहार से कृष्ण ने समाप्त कर दी। क्रुद्ध कंस ने युद्ध-वाद्य बन्द करवा दिया। बाकी बच्चे मल्ल-वीर भाग कर अपनी-अपनी जान बचाये। उस सयम कंस की आँखें कोप से रक्त हो उठी थीं। उसने अपने लोगों को आदेश दिया—'इन दोनों ग्वालों को इस समाज से बलपूर्वक बाहर निकालो। पापी नन्द को निगड से बाँध लो। वसुदेव को निर्दयता पूर्वक मार डालो। जो गोप कृष्ण के साथ मचल रहे हैं, इनके गोधन और अन्य धन का हरण कर लो ।' कंस अभी अपनी बात कह ही रहा था कि हँसते हुए कृष्ण उछलकर कंस के उत्तुङ्ग मञ्च पर पहुँच गये। उन्होंने केश पकड़कर कंस को भूतल पर गिरा दिया और स्वयं उसके ऊपर कूद पड़े।[१] कंस विदा हुआ इस संसार से जो कभी उसके हुंकार से काँपता था। भाई की यह दशा देखकर कंस का क्रुद्ध लघु बन्धु लड़ने के लिये आया, जिसे खेल-ही-खेल में बलराम ने मार डाला। चारों ओर हा-हा-कार मच गया। कंस के सन्त्रास से सन्त्रस्त जनों को निःसीम प्रसन्नता की अनुभूति हुई।

कंस का वध करके कृष्ण और बलराम वसुदेव और देवकी के पास पहुँचे। उनके चरणों पर अपना मस्तक रखकर प्रणाम किया। वसुदेव ने परमात्मबुद्धि से उनकी स्तुति की। कृष्ण ने अपनी वैष्णवी माया का विस्तार करते हुए वसुदेव और देवकी से क्षमा-याचना की और माता-पिता की सेवा से विहीन अब तक के अपने जीवन को अधन्यमाना, निरर्थक बतलाया।

कंस का परिवार शोकाकुल था। कृष्ण ने उसे भी आश्वासन दिया। फिर मुड़े मातामह उग्रसेन की ओर । उन्हें बन्धन से विमुक्त कर राजगद्दी पर पुनः प्रतिष्ठापित कर दिया और स्वयं बन गये उनके आज्ञाकारी भृत्य ।

एक दिन अक्रूर के समक्ष ही कृष्ण ने वायुदेव से कहा—'वायुदेव, आप मेरी ओर से इन्द्र से जाकर कह दें कि वह अपनी 'सुधर्मा' सभा उग्रसेन को प्रदान कर दें ।'[२] वायु द्वारा कृष्ण के सन्देश को सुनकर इन्द्र ने सद्यः सुधर्मा सभा वायु

---

१. एवमाज्ञापयन्तं तं प्रहस्य मधुसूदनः । उत्पत्यारुह्य तन्मञ्चं कंसं जग्राह वेगितः ।
केशोष्वाकृष्य विगलत्किरीटमवनीतले । स कंसं पातयामास तस्योपरि पपात च ॥
ब्रह्ममहापुराण ८६/७२-७४

२. गच्छेन्द्रं ब्रूहि वायो त्वमलं गर्वेण वासव । दीयतामुग्रसेनाय सुधर्मा भवता सभा ।
कृष्णो ब्रवीति राजार्हमेतद्रत्नमनुत्तमम् । सुधर्माख्या सभा युक्तमस्यां यदुभिरासितम् ॥
ब्रह्ममहापुराण ८६/१४-१५

को दे दी। उन्होंने लाकर उसे यदुओं की राजधानी में प्रतिष्ठित कर दिया। सभी कृष्णानुयायी सुधर्मा सभा का सुख भोगने लगे।

इसके बाद बलराम और कृष्ण काशी के मूलनिवासी अवन्तिपुरवासी गुरु सांदीपनि के आश्रम में धनुर्वेद का अध्ययन करने गये। चौंसठ दिनों में ही सरहस्य धनुर्वेद उन्हें अधिगत हो गया। फिर गुरु दक्षिणा में पञ्चजन दैत्य को मारकर, प्रभास में डूबे हुए गुरुपुत्र को लाकर प्रदान कर दिया। पञ्चजन की अस्थिरूप शङ्ख को स्वयं श्रीकृष्ण ने धारण कर लिया।

विद्याध्ययन करके अभी बन्धुद्वय लौटे ही थे कि कंस के श्वसुर मगधाधिप जरासन्ध ने तेईस अक्षौहिणी की विशाल वाहिनी लेकर 'मथुरा' को जा घेरा। कृष्ण और बलराम सेना को समाप्त कर जरासन्ध को छोड़ देते थे । इस प्रकार अट्ठारह बार जरासंध ने मथुरा पर आक्रमण किया। प्रत्येक बार वह पराजित एवं विफलमनोरथ होकर वापस मगध लौट जाता था ।

एक बार की घटना है । गर्ग के गोत्र में उत्पन्न एक आचार्य थे गार्ग्य। गोकुल में यादवों के समक्ष उनके साले ने उन्हें नपुंसक कह दिया। यादव-जन इस पर खूब हँसे। आचार्य को अपना अपमान प्रतीत हुआ। वे क्रुद्ध होकर दक्षिणापथ में चले गये। वहाँ उन्होंने शङ्कर को सन्तुष्ट करने के लिये तप प्रारम्भ किया। उनकी इच्छा थी यादवों को भयप्रदायक पुत्र प्राप्त करना। बारह वर्ष पर्यन्त, लौहचूर्ण खाकर, उन्होंने अपनी तपस्या से शङ्कर को प्रसन्न कर लिया। शङ्कर ने उन्हें उनके मनोरथ को पूर्ण करने वाला वर प्रदान किया। तपस्या के काल में एक यवनेश ने उनकी देखभाल की थी। वह नि:सन्तान था। गार्ग्य के शरीर-संयोग से यवनेश की पत्नी ने एक पुत्ररत्न का प्रसव किया। वह महान् तेजस्वी था।[१] उसका नाम रक्खा गया—कालयवन। संभवत: नामकरण में उसके वर्ण का कृष्णत्व कारण था। राज्यसिंहासन पर बैठते ही वह युद्ध के लिये बलशाली राजाओं का अन्वेषण करने लगा। पूछने पर नारद ने उसे मथुरावासी यादवों का, विशेषकर कृष्ण का, नाम बतला दिया। म्लेच्छों की एक कोटि विशाल वाहिनी लेकर कालयवन ने मथुरा की ओर प्रस्थान किया।

---

१. गार्ग्यं गोष्ठे द्विजं श्याल: षण्ढ इत्युक्तवान् द्विजा:। यदूनां सन्निधौ सर्वे जहसुर्यादवास्तदा।
ततः कोपसमाविष्टो दक्षिणापथमेत्य स: । सुतमिच्छंस्तपस्तेपे यदुचक्रभयावहम् ।
आराधयन् महादेवं सोऽयश्चूर्णमभक्षयत् । ददौ वरं च तुष्टोऽसौ वर्षे द्वादशके हर: ॥
संभावयामास स तं यवनेशो ह्यनात्मजः । तद्योषित्सङ्गमाच्चास्य पुत्रोऽभूदनलप्रभ: ॥
ब्रह्ममहापुराण, ८८/१-४

कृष्ण ने मथुरा के आसन्न संकट को लक्ष्य में रखते हुए पश्चिम महोदधि से द्वादश योजन भूमि मांगकर उस पर अप्रधृष्य द्वारकापुरी का निर्माण कराके मथुरावासियों को वहाँ पहुँचा दिया, बसा दिया और स्वंय लौट आये मथुरा। उसी समय कालयवन ने मथुरा को चारों दिशाओं से घेर लिया। कृष्ण ने इस स्थिति को देखा। वह उनको पकड़ने के लिये आगे बढ़ा। कृष्ण भागकर पर्वत की एक विशाल गुफा में प्रविष्ट हो गये। उनका अनुसरण करता हुआ कालयवन भी उस गुफा में घुस गया। वहाँ नरेश मुचुकुन्द प्रगाढ निद्रा में शयनरत थे। कालयवन ने सोचा कृष्ण ही भागकर यहाँ सो गये हैं। अत: उसने उन पर पादप्रहार किया। मुचुकुन्द ने आँख खोली। क्रोधभरी दृष्टि से उसे देखा। वह तत्क्षण ही जलकर राख हो गया। कृष्ण ने मुचुकुन्द को दर्शन दिया। मुचुकुन्द ने भगवान् की स्तुति की और तपस्या करने के लिये गन्धमादनपर्वत पर नरनारायण के आश्रम में चले गये।

कृष्ण पर्वत की गुफा से निकल कर मथुरा आये । उन्होंने कालयवन की समग्र सैन्य-सामग्री को लेजाकर द्वारका में उग्रसेन को समर्पित कर दिया ।

इसके बाद बलरामजी जाकर दो मास वृन्दावन में रहे। वहाँ से द्वारका आने पर उनका विवाह राजा रैवत की बेटी रेवती के साथ हुआ। उससे उन्हें दो पुत्र हुए-'निशठ और उल्मुक'। विदर्भदेश में कुण्डिनपुर के राजा थे—भीष्मक। भीष्मक का बेटा था—रुक्मी और उनकी एक बेटी थी—रुक्मिणी। रुक्मी ने अपनी बहन का विवाह चेदिदेश के राजा शिशुपाल के साथ करने का निश्चय कर लिया था। किन्तु बलराम आदि के साथ शिशुपाल के विवाह को देखने के लिये कुण्डिनपुर गये हुए कृष्ण ने रुक्मिणी का हरण करके राक्षस-विधि से उनके साथ विवाह कर लिया। वस्तुत: ये दोनों एक-दूसरे को पहले से ही जानते और चाहते थे ।[१]

रुक्मिणी के पुत्र थे प्रद्युम्न। इन्हें काम का अवतार कहा गया है। षष्ठी के दिन ही असुर कालशम्बर ने इनका हरण कर समुद्र में फेंक दिया था। वहाँ इन्हें एक विशाल मत्स्य ने निगल लिया। मल्लाहों ने उस मछली को जाल में फँसा कर पकड़ लिया और उसे शम्बरासुर को समर्पित कर दिया। कालशम्बर की पत्नी

---

१. रुक्मिणीं चकमे कृष्ण: सा च तं चारुहासिनी ।
न ददौ याचते चैनां रुक्मी द्वेषेण चक्रिणे ॥
निर्जित्य रुक्मिणं सम्यगुपयेमे स रुक्मिणीम् ।
राक्षसेन विधानेन संप्राप्तो मधुसूदन: ॥ *ब्रह्ममहापुराण, १२/२, ११*

थी मायावती। उसे गृहेश्वरी होने का सौभाग्य सुलभ था। मत्स्य के काटे जाने पर उसके उदर में मायावती ने एक अतिसुन्दर बालक को देखा। इससे उसकी मति आश्चर्य के सागर में चक्कर काट रही थी। वह कुछ समझ नहीं पा रही थी । इसी समय नारद ने आकर उससे सारी घटना का वर्णन करके कहा—'सुन्दरि, इस नररत्न का पूर्ण विश्वास के साथ पालन करो।' बालक के सौन्दर्य पर विमुग्ध मायावती ने प्रयत्नपूर्वक उसे पाल-पोस कर तरुण बनाया। एक बार उसके विलक्षण हाव-भाव को देखकर प्रद्युम्न ने कहा—'देवि, मातृभाव का परित्याग कर इस प्रकार विपरीत भाव का प्रदर्शन क्यों कर रही हो?' इस पर मायावती ने नारद के द्वारा वर्णित सारे रहस्य का उद्धाटन करते हुए बतलाया कि न तो आप मेरे पुत्र हैं और न मैं आप की जननी। आपके जननी जनक हैं—रुक्मिणी और कृष्ण।

प्रद्युम्न के यौवन और सौन्दर्य पर विमुग्ध मायावती ने शम्बर की सारी माया का रहस्य प्रद्युम्न को बतला दिया। फिर क्या था, उन्होंने शम्बर को युद्ध के लिए ललकारा और सेनासहित उसका वध कर दिया । शम्बर के मारे जाने पर मायावती के साथ प्रद्युम्न कृष्ण के अन्त:पुर में पहुँचे । उन्हें देखकर रुक्मिणी आदि स्त्रियाँ आश्चर्यचकित थीं। वे किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पा रही थीं। उसी समय नारद के साथ श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे। उन्होंने अपनी प्रियपत्नी से कहा—'रुक्मिणी, यह तुम्हारा ही बेटा है। युद्ध में शम्बर को मारकर यह यहाँ आया है। यह काम का अवतार है। मायावती इसी की पत्नी रति है। माया का रूप धारण कर यह शम्बर की पत्नी रही। विवाह आदि उपभोगों में मायामयरूप का उपयोग अप्रशस्त नहीं माना जाता। अत: यह तुम्हारी वधू ही है।' कृष्ण के कथन को सुनकर समस्त अन्त:पुरी और द्वारिकापुरी प्रसन्नता से पूर्ण हो उठी ।[१] रुक्मिणी के दश पुत्र और चारुमती एक कन्या थी।

कृष्ण की आठ पटरानियाँ और सोलह सहस्र रानियाँ थीं। प्रद्युम्न और उनके पुत्र अनिरुद्ध आदि का विवाह और बलरामद्वारा रुक्मी का, द्यूतप्रसङ्ग से, वध श्रीमद्भागवत की भाँति यहाँ भी वर्णित है ।[२]

एक समय ऐरावत हाथी पर आरूढ होकर देवराज इन्द्र द्वारका में श्रीकृष्ण के पास आये। उन्होंने प्राग्ज्योतिषपुराधीश्वर भौमासुर के अत्याचार की कहानी

१. ततो हर्षसमाविष्टौ रुक्मिणीकेशवौ तदा ।
नगरी च समस्ता सा साधु साध्वित्यभाषत ।। *ब्रह्ममहापुराण, ९१/४१*

२. तुलना कीजिये-श्रीमद्भागवत १०/२/६१ तथा ब्रह्ममहापुराण अध्याय-९२

कृष्ण से कहो। भौमासुर को नरकासुर भी कहा जाता था। इसने देवों और मानवों की बहुत सी कन्याओं का हठात् हरण कर उन्हें कारागार में वन्दिनी बनाकर रक्खा था। भौमासुर ने वरुण के सलिलस्रावी छत्र तथा अदिति के अमृतस्रावी कुण्डलों को भी बलपूर्वक छीन लिया था।

इन्द्र ने अपना कष्ट कह कर स्वर्ग की राह ली। कृष्ण भी सत्यभामा के साथ गरुड पर आरूढ होकर प्राग्ज्योतिषपुर के लिये प्रस्थान किये। वहाँ उन्होंने सेनापति मुर और मुर के सात पुत्रों का वध करने के अनन्तर भीषण संग्राम में नरकासुर का वध कर दिया। पुत्र के मारे जाने पर अदिति के कुण्डलों को लिये हुई भूमि कृष्ण के समक्ष सविनय उपस्थित हुई। उसने कहा—'प्रभो, जब आप सूकर का रूप धारण कर मेरा उद्धार कर रहे थे, उस समय आपके संस्पर्श को प्राप्त कर मैं गर्भिणी हो गई थी। उसी का परिणाम यह पुत्र था। आपने ही मुझे पुत्र दिया था और आपने ही ले लिया। यह सब आपकी कृपा का ही फल है।[१]' ऐसा कहकर उसने अदिति के कुण्डलों को कृष्ण के हाथों पर रख दिया। कृष्ण ने वरुण के छत्र और मणिपर्वत के शिखर को भी ले लिया। पुनः उन्होंने नरकासुर के द्वारा वन्दिनी बनाई गई सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं का उद्धार किया ।[२] उन्हें नरक के किंकरों के द्वारा ही द्वारका भेज दिया, जहाँ पर कि बाद में उनके साथ विवाह किया। अदिति के कुण्डलों को देने के लिये सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण इन्द्र की अमरावती में पधारे। देव-मण्डली के साथ इन्द्र ने उनका महान् स्वागत किया। वहाँ से प्रस्थान करने के पूर्व कृष्ण ने सत्यभामा को नन्दन वन की शोभा दिखलाई। उस उद्यान का प्राण था पारिजात। सत्यभामा विमुग्ध हो उठीं उसकी सुगन्धि-सौन्दर्य-सम्पत्ति पर । उन्होंने कृष्ण से उसे अपने उपवन की शोभा बढ़ाने हेतु ले चलने के लिये कहा । प्रियतमा का मान-सम्मान रखने के लिये कृष्ण ने पारिजात को उखाड़ कर गरुड पर रख लिया। सत्यभामा ने शची को सन्देश कहलवाया–'यदि तुम अपने प्रिय की प्रियतमा हो तो परिजात ले जाने से अपने पति के द्वारा मेरे पति को निवारित करा दो।' शची ने इन्द्र को उकसाया। इन्द्र ने देवों की विशाल वाहिनी के साथ कृष्ण पर आक्रमण कर पारिजात छीनने

---

१. यदाऽहमुद्धृता नाथ त्वया सूकरमूर्तिना ।
त्वत्संस्पर्शभवः पुत्रस्तदाऽयं मय्यजायत ॥
सोऽयं त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातितः ॥ *ब्रह्ममहापुराण ९२/२३-२४*

२. कन्यापुरे स कन्यानां षोडशातुलविक्रमः ।
शताधिकानि ददृशे सहस्राणि द्विजोत्तमाः ॥ *वही, ९३-३१*

का असफल प्रयास किया। कृष्ण के विपुल विक्रम के समक्ष सारी देव-मण्डली वामन बन गई। इन्द्र पराजित होकर लज्जित हो गये। उस समय सत्यभामा ने देवराज से कहा—'इन्द्र, आप का सायास प्रयास व्यर्थ है। आप अपना पारिजात ले जाइये। देवताजन सुखी बनें। मैं आपके यहाँ आई थी। किन्तु आपकी महारानी शची ने महान् अभिमान के वशीभूत हो मेरा मान-सम्मान नहीं किया। उन्होंने ठीक से व्यवहार का उपचार भी नहीं निभाया। यही कारण है कि मैंने अपने पतिदेव के द्वारा परिजात का हरण करवाया है।[१] विग्रह की रूपरेखा तैयार करवाई है।

सत्यभामा के वचन को सुनकर इन्द्र ने कृष्ण की प्रशंसा की, स्तुति की और कहा—'कृष्ण पारिजात को आप द्वारकापुरी ले जाइये। आपके भूमण्डल का परित्याग कर देने पर यह पृथिवी पर नहीं रहेगा। पुनः वापस होकर स्वर्ग चला आयेगा।'[२] कृष्ण ने कहा—'ठीक है, ऐसा ही होगा।' फिर पारिजात को लेकर कृष्ण द्वारका आये। उसे सत्यभामा के उपवन में आरोपित कर दिया। द्वारकावासी उसे देखकर आश्चर्यचकित और आनन्दित थे।

तदनन्तर कृष्ण ने नरकासुर के यहाँ से लाई गई सोलह सहस्र एक सौ सुन्दरियों से, उतने ही रूप धारण कर एक साथ, एक ही समय में, विवाह किया। उन सब राजकुमारियों को यही प्रतीति होती थी कि कृष्ण ने केवल मेरे ही साथ विवाह किया है।

कृष्ण के पुत्र थे प्रद्युम्न। प्रद्युम्न के बेटे थे अनिरुद्ध, अनिरुद्ध ऊषा का विवाह और उस विवाह के प्रसङ्ग से कृष्ण और बाण का युद्ध, जैसा श्रीमद्भागवत में वर्णित है, प्रायः वैसा ही ब्रह्ममहापुराण में भी उपनिबद्ध है। दोनों पुराणों की कथाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है।[३]

१. अलं शक्र प्रयासेन न व्रीडां यातुमर्हसि।
नीयतां पारिजातोऽयं देवाः सन्तु गतव्यथाः॥
अतिगर्वावलेपेन बहुमानपुरःसरम्।
न ददर्श गृहायातामुपचारेण मां शची॥
स्त्रीत्वादगुरुचित्ताऽहं स्वभर्तुः श्लाघनापरा।
ततः कृतवती शक्र भवता सह विग्रहम्॥
तदलं पारिजातेन परस्वेन हृतेन वा।
रूपेण यशसा चैव भवेत् स्त्री का न गर्विता॥ *ब्रह्ममहापुराण ९४/६६-६९*

२. नीयतां पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवतीं पुरीम्।
मर्त्यलोके त्वया मुक्ते नायं संस्थास्यते भुवि॥ *ब्रह्मपुराण ९५/७*

३. देखिये-श्रीमद्भागवत, १०/२/६२-६३ तथा ब्रह्ममहापुराण, अध्याय-९६-९७

बाण-विजय के बाद श्रीकृष्ण ने कृत्रिम वासुदेव प्रौंड्रक का, उसके मित्र काशिराज के साथ, युद्ध में वध कर दिया। बाद में काशिराज के पुत्र (सुदक्षिण) की कृत्या को भस्म कर चक्र द्वारा काशी को जलाने की घटना भी इस पुराण में श्रीमद्भागवत जैसी ही वर्णित है ।[१]

जाम्बवती के पुत्र साम्ब द्वारा दुर्योधन की पुत्री (लक्ष्मणा) का हरण, बलराम द्वारा हस्तिनापुर का कर्षण और पुन: कौरवों का बलराम की शरण में जाकर वधूसहित साम्ब को सादर समर्पित करने की कथा भी प्राय: श्रीमद्भागवत के समान ही ब्रह्ममहापुराण में भी है ।[२]

यदुवंश को मुनियों का शाप, यदुवंशियों का प्रभास-गमन, उद्धव की बदरीवनयात्रा, मदिरा से उन्मत्त यादवों का परस्पर कलह और विनाश, बलराम का निर्याण तथा कृष्ण का कलेवर-त्याग आदि कथाएँ भी इस महापुराण में श्रीमद्भागवत की तरह ही वर्णित हैं । यहाँ श्रीमद्भागवत की भाँति उद्धव-गीता का विशाल कलेवर उपलब्ध नहीं होता। वस्तुत: उद्धवगीता नाम की कोई वस्तु यहाँ है ही नहीं। इस पुराण में कतिपय शब्दों से ही भगवान् ने उद्धव की विदाई कर दी है।[३]

कृष्ण के सारथी दारुक ने भगवान् कृष्ण का सन्देश अर्जुन आदि को दिया। अर्जुन प्रभास पधारे। उन्होंने राम, कृष्ण तथा अन्य लोगों के केलवर का अन्वेषण कर उनका संस्कार किया। कृष्ण की आठ पटरानियाँ कृष्ण के कलेवर को पकड़कर अग्नि में प्रवेश कर गईं ।[४] रेवती बलराम के शरीर का आलिङ्गन करके चिताग्नि में भस्म हुई। उग्रसेन, वसुदेव, देवकी और रोहिणी आदि सभी अग्नि में अपने-अपने प्राणों की आहुति दे डाले।[५]

---

१. देखिये-श्रीमद्भागवत, १०/२/६६ तथा ब्रह्ममहापुराण, अध्याय-९८

२. देखिये-श्रीमद्भागवत, १०/२/६८ तथा ब्रह्ममहापुराण, अध्याय-९९

३. तुलना कीजिये-श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध और ब्रह्ममहापुराण अध्याय-१०१-१०२
टिप्पणी-ब्रह्ममहापुराण में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ से सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन नहीं किया गया है। इसमें जरासन्ध के वध की बात तो निर्दिष्ट है, किन्तु शिशुपाल-दन्तवक्त्र की कथा की चर्चा नहीं की गई है।

४. अर्जुनोऽपि तदान्विष्य कृष्णरामकलेवरे ।
संस्कारं लम्भयामास तथाऽन्येषामनुक्रमात् ।
अष्टौ महिष्य: कथिता रुक्मिणीप्रमुखास्तु या: ।
उपगृह्य हरेर्देहं विविशुस्ता हुताशनम् ॥ *ब्रह्ममहापुराण, अ० १०३-१, २*

५. उग्रसनस्तु तच्छ्रुत्वा तथैवानकदुन्दुभि: ।
देवकी रोहिणी चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥ *वही, १०३/४*

अर्जुन यथाविधि अग्निकार्य सम्पादित करके सहस्रों कृष्ण-पत्नियों और वज्र को साथ ले द्वारका से इन्द्रप्रस्थ के लिये प्रस्थान किये। वज्र अनिरुद्ध के पुत्र थे। सागर ने समूची सूनी द्वारका को जल में आप्लावित कर दिया। एकमात्र कृष्ण का गृह ही अवशिष्ट रह गया था। सागर आज भी उसका अतिक्रमण नहीं करता। इसका कारण यह है कि भगवान् श्रीहरि वहाँ नित्य सन्निहित रहते हैं।[१]

जब पंजाब में अर्जुन कृष्ण के परिग्रह को लेकर पहुँचे तो वहाँ ग्रामीणों, आभीरों ने लाठी और लोष्ठ से अर्जुन को जीतकर धन और स्त्रियाँ छीन लीं। कृष्ण की कुछ स्त्रियाँ तो अपनी इच्छा से आभीरों के साथ चली गईं।[२] आज अर्जुन को बोध हुआ कि महाभारत की विजय कृष्ण की कृपा का फल था। इन्द्रप्रस्थ पहुँचकर अर्जुन ने वहाँ वज्र का राजा के रूप में अभिषेक कर दिया।

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में द्वारिका से लौटने के बाद जो संवाद युधिष्ठिर और अर्जुन के बीच हुआ था वह यहाँ वन में विराजमान व्यास और अर्जुन के मध्य हुआ है। वहीं पर व्यास ने कृष्ण-स्त्रियों को अष्टावक्र मुनि के द्वारा शाप देने की बात बतलाई है। उस शाप के प्रभाव से ही आभीरों ने उनका हरण किया था।

स्यमन्तकमणि की कथा, जाम्बवती और सत्यभामा का कृष्ण के साथ विवाह आदि प्रसङ्ग ब्रह्ममहापुराण १४-१५ दो अध्यायों में अलग से वर्णित है।

पद्ममहापुराण

पद्ममहापुराण में कई प्रसङ्गों के अवसर पर कृष्ण-कथा का वर्णन किया गया है। सृष्टि खण्ड के एक अध्याय में ही संक्षिप्त रूप से सारी कृष्ण-कथा का वर्णन है। इसमें एक अपूर्व तथ्यका उपस्थापन किया गया है, जो अन्यत्र नहीं मिलता, वह इस प्रकार है—

कृष्ण-जन्म के अनन्तर उनकी आज्ञा लेकर वसुदेव जी उन्हें नन्द के घर ले गये और नन्दगोप को देकर बोले—'आप इस बालक की रक्षा करें। यह समस्त यादवों का कल्याणकर्ता होगा। देवकी का यह बालक जब तक कंस का वध नहीं करेगा, तब तक पृथिवी के भारभूत अमङ्गलमय उपद्रव होते रहेंगे। यह बालक भूतल के समग्र दुष्ट राजाओं का संहार करेगा। यह साक्षात् भगवान् है।

---

१. नातिक्रामति भो विप्रास्तदद्यापि महोदधिः।
नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान् केशवो यतः॥ *ब्रह्ममहापुराण, १०३/१०*

२. मिषतः पाण्डुपुत्रस्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः।
अपाकृष्यन्त चाऽऽभीरैः कामाच्चान्याः प्रवव्रजुः॥ *वही, १०३/२६*

यह भगवान् महाभारत के महान् युद्ध में अर्जुन के सारथि का काम करेंगे, और पृथिवी को क्षत्रिय-विहीन करके उसका उपभोग और पालन करेंगे तथा अन्त में समस्त यदुवंश को देवलोक में पहुँचायेंगे।'[१]

पद्ममहापुराण में एक और नवीन तथ्य को प्रस्तुत किया गया है। वह यह कि—गोवर्धन पर्वत को श्रीकृष्ण तथा बलराम दोनों ने, इन्द्र का घमण्ड चूर्ण करने के लिये, अपने हाथों पर उठाया था। वह पर्वत गौओं और गोपों को बहुत सुख देने वाला है ।[२]

पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में श्रीकृष्ण की आद्यन्त कथा वर्णित है। यह कथा श्रीमद्भागवत की सर्वजन-विदित कथा से बहुलांश में साम्य रखती है। कहीं-कहीं कुछ भिन्नताएँ भी हैं । इन्हीं का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है ।

श्रीमहादेवजी पार्वती को कृष्ण-कथा-रस का पान कराते हुए कहते हैं कि—'यदुवंश में वसुदेव नामक श्रेष्ठ पुरुष उत्पन्न हुए। यह 'देवमीढ' के पुत्र थे। इन्होंने मथुरा में उग्रसेन की पुत्री देवसुन्दरी देवकी से विधिपूर्वक विवाह किया था। कंस देवकी का सगा भाई था ।[३]

आकाशवाणी के द्वारा देवकी के अष्टम बालक से अपने वध की बात सुनकर कंस ने वसुदेव और देवकी को अपने सुन्दर भवन में ही रोक लिया और उनके लिये सब प्रकार के सुखोपभोग की व्यवस्था कर दी थी।[४]

जिस समय कंस देवकी की गोद से छीनकर कन्या को शिलापृष्ठ पर पटकने का प्रयास कर रहा था, उस समय आकाश में जाकर उसने कहा—'ओ मूर्ख, मुझे पत्थर पर पटकने से क्या हुआ ? जो तुम्हारा वध करने वाले हैं, उनका जन्म तो हो गया। वे ही तुम्हारे प्राणों का हरण करेंगे।'

कन्या के इस वचन को सुनकर कंस ने प्रलम्ब आदि दानववीरों को

---

१. यह प्रसङ्ग भीष्म और पुलस्त्यजी के संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ यह ध्यान रखना है कि भीष्मजी भगवान् श्रीकृष्ण से अवस्था में बहुत बड़े थे। ऐसी दशा में जिस समय उनके साथ पुलस्त्यजी का संवाद हो रहा था, उस समय संभवतः कृष्ण का जन्म नहीं हुआ था। अतः इसे प्रक्षेप मानें अथवा पुलस्त्यजी को त्रिकालदर्शी बतलाकर समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करें ।

२. पद्ममहापुराण, पातालखण्ड ।

३. श्रीमद्भागवत महापुराण तथा अन्य पुराणों में वसुदेव को शूरसेन का पुत्र और देवकी को उग्रसेन के भाई देवक की पुत्री बतलाया गया है। इस विसङ्गति का एकमात्र समाधान कल्पभेद की कथा कहकर किया जाता है। जो सनातन होते हुए भी तर्कसङ्गत नहीं प्रतीत होता हैं ।

४. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड।

बुलाकर कहा—'इच्छानुसार रूप धारण करने वाले तुम सभी राक्षस चतुर्दिक् जाओ और जिन बालकों में कुछ बल का आधिक्य ज्ञात हो, उन्हें नि:सन्देह मार डालो।' ऐसी आज्ञा देकर कंस ने वसुदेव और देवकी को आश्वासन देकर उन्हें बन्धन से विमुक्त कर दिया। तदनन्तर वसुदेव जी नन्द के व्रज में गये। नन्दजी ने उनका भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। वहाँ अपने पुत्र को देखकर वसुदेव की प्रसन्नता का पारावार न रहा। उन्होंने नन्दरानी यशोदाजी से कहा—'देवि रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए मेरे इस पुत्र (बलराम) को भी तुम अपना ही पुत्र मानकर इसकी रक्षा करना। यह कंस के भय से यहाँ लाया गया है।' नन्दरानी ने 'बहुत अच्छा' कहकर वसुदेव के आदेश को शिरोधार्य किया। दोनों पुत्रों को पाकर यशोदा अतिशय प्रसन्न थीं। दोनों पुत्रों का लालन-पालन वे बड़ी प्रसन्नता और तन्मयता से करती थीं। इस प्रकार नन्दगोप के घर अपने दोनों पुत्रों को रखकर वसुदेवजी निश्चिन्त हो गये। उन्होंने शीघ्र ही वहाँ से मथुरा के लिये प्रस्थान किया।

कुछ दिन बीतने पर वसुदेव जी की प्रेरणा से किसी शुभ दिन को गर्गजी नन्दगोप के व्रज में गये। वहाँ के निवासियों ने उनका बड़ा सम्मान किया, बड़ी सेवा की। फिर उन्होंने गोकुल में वसुदेवजी के दोनो पुत्रों के सविधि जातकर्म और नामकरण संस्कार करवाये। तदनन्तर ग्वालों से सत्कृत हो वे मथुरा में लौट गये।[1]

पद्मपुराण की पूतना-कथा प्राय: श्रीमद्भागवत की कथा जैसी ही है। अन्तर इतना ही है कि पद्मपुराण का कथन है कि बालकों की हत्या करने वाली पूतना कंस के भेजने से रात्रि में नन्द के घर गई थी।[2] किन्तु श्रीमद्भागवत में पूतना दिन के पूर्ण प्रकाश में नन्द के घर गई थी। उस समय श्रीकृष्ण गोकुल की गोपियों से घिरे हुए थे।[3]

पद्मपुराण में एक और कथा है, जिसकी चर्चा भागवत आदि अन्य पुराणों में नहीं मिलती। बलराम और श्रीकृष्ण जिस समय घुटनों तथा हाथों के बल से व्रज में विचरण करते थे, उन्हीं दिनों एक मायावी राक्षस मुर्गे का रूप धारण कर पृथिवी पर विचरण करता था। वह सर्वदा श्रीकृष्ण के वध की चिन्ता में तल्लीन रहता था। श्रीकृष्ण भगवान् ठहरे। उन्होंने उसे पहचान लिया और एक ही थप्पड़ से उसे इस संसार से सर्वदा के लिये विदा कर दिया। मार पड़ने पर वह पृथिवी पर गिर पड़ा और मरते समय अपने राक्षस स्वरूप को ही धारण कर लिया।[4]

१. श्रीमद्भागवत में नामकरण-संस्कार अतिगोपनीय ढङ्ग से सम्पन्न किया गया है।१०/८/११
२. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, २४५/७२
३. श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/६/६
४. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, २४५/८५-८७

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण कुछ बड़े हुए तब वे समूचे व्रज में विचरने लगे। वे गोपियों के यहाँ से नवनीत (माखन) चुरा लिया करते थे। इससे यशोदा को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने श्रीकृष्ण की कटि में रज्जु लपेट कर उन्हें ऊखल में बाँध दिया और स्वयं गोरस बेचने चली गईं ।[१] इसकी शेष आगे की कथा श्रीमद्भागवत से पूर्ण साम्य रखने वाली है।

गोकुल के उत्पात से सन्त्रस्त होकर भयभीत नन्द आदि गोपों ने गोकुल का परित्याग कर वृन्दावन में डेरा डाला। वहाँ पहुँचकर ग्वालबालों के साथ श्रीकृष्ण वत्सपाल बनें । श्रीकृष्ण वृन्दावन में बछड़ों के बीच विराजमान हैं यह देखकर बक नामक महान् असुर वहाँ आया। आकर उसने विशाल बक के रूप को धारण किया और श्रीकृष्ण को मारने का उद्योग करने लगा। उसे देखकर भगवान् वासुदेव ने भी खिलवाड़ में ही एक ढेला उठा लिया और उसके पंखों पर दे मारा। ढेला लगते ही वह महान् असुर प्राणविहीन होकर भूतल पर गिर पड़ा।[२]

एक समय की घटना है। एक दिन बछड़े चराने वाले राम और कृष्ण वन में किसी यज्ञवृक्ष की छाया में पल्लव बिछाकर सो गये। इसी बीच ब्रह्माजी देवों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिये आये। किन्तु उन्हें शयन करते देख बछड़ों और ग्वालबालों को चुराकर स्वर्गलोक में चले गये। जागने पर जब उन्होंने बछड़ों और ग्वाल-बालों को नहीं देखा तो 'वे कहाँ चले गये?' ऐसा विचार आते ही उन्हें विदित हो गया कि यह सब कृत्य ब्रह्माजी का है। फिर तो क्या था? उन प्रभु ने वैसे बालक और बछड़े बना लिये जैसे पहले वाले थे। वहीं रङ्ग और वही रूप। कुछ भी अन्तर नहीं था ।[३] आगे का प्रसङ्ग श्रीमद्भागवत से मिलता-जुलता है।

वत्सपाल रहते ही भगवान् श्रीकृष्ण ने यमुनाजी के कुण्ड में कालिय का दमन किया था । कालिय के सहस्र फण थे। श्रीकृष्ण ने अपने एक ही पैर से उसको सहस्र-फण-मण्डली को कुचल डाला था। प्राण-संकट की बेला में वह नागराज श्रीकृष्ण के शरणागत हुआ । भगवान् ने शरणागत कालिय की रक्षा की। उसे अभयदान दिया। वह पक्षिराज गरुड के भय से यमुना-कुण्ड में निवास करता

---

१. श्रीमद्भागवत में इसकी अपेक्षा यशोदा के अनुकूल अधिक प्रतिष्ठित प्रसङ्ग है। १०/९

२. श्रीमद्भागवत में बकासुर ने श्रीकृष्ण को मुख में निगल लिया था। किन्तु अग्नि-सदृश कृष्ण के तेज से जब उसका तालु जलने लगा तो उसने उन्हें उगल दिया। फिर तो कृष्ण ने उसकी चोंच को ही पकड़ कर उसे चीर कर मार डाला था। १०/११/४८/५१

३. श्रीमद्भागवत में यह प्रसङ्ग इससे कुछ भिन्न और परं तात्त्विक रूप से वर्णित है। १०/१२-१४

था। अतः श्रीकृष्ण ने उसके मस्तक पर अपने चरण-चिह्न स्थापित करके उसे कालिन्दी के कुण्ड से निर्वासित कर दिया। भगवान् को प्रणाम करके वह वहाँ से अन्यत्र चला गया। इस प्रकार यमुना जी निर्विष बनीं। यमुना के तटवर्ती जो वृक्ष कालिय के विष से दग्ध हो गये थे, वे श्रीकृष्ण की कृपा-दृष्टि पड़ते ही फूलने-फलने लगे।

यह घटना ही श्रीकृष्ण के वत्सपाल और गोपाल बनने की विभाजक रेखा है। इसके बाद भगवान् ने कुमारावस्था में पादार्पण किया। अब वे वत्सपाल की पदवी का परित्याग कर गोपाल बने । ग्वालबालों के साथ गायों की मण्डली के पीछे वृन्दावन में विचरण करना उनका दैनन्दिन कृत्य था। गोचारण के काल में ही श्रीकृष्ण ने विशालकाय अजगररूपधारी असुर, धेनुकासुर, प्रलम्ब, अरिष्ट और केशी का वध किया था ।

कंस ने कृष्ण को धनुष-यज्ञ का मेला देखने के व्याज से, अक्रूर को प्रेषित कर, मथुरा आमन्त्रित किया। श्रीकृष्ण भैया बलराम और नन्द आदि गोपों के साथ मथुरा पहुँचे। मथुरा के प्रवेश-द्वार पर कृष्ण-बलराम को छोड़कर अक्रूर, कंस को कृष्णागमन की सूचना देकर अपने घर चले गये।

दिवस का अवसान समीप था। गगन कुछ लोहित हो चला था। कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा भूतल से उठकर तरु-शिखाओं पर आरूढ हो चुकी थी। उसी मधुर सान्ध्य बेला में महाबली बलराम और श्रीकृष्ण एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए मथुरा के भीतर प्रवेश किये। उनके साथ ग्वाल-बाल-मण्डली भी थी। वे राजमार्ग से आगे बढ़ रहे थे। इतने में ही उनके समक्ष कंस का रजक (कपड़ा रंगने वाला रँगरेज) आ गया । कृष्ण ने उससे उन वस्त्रों को अपने लिये माँगा। रजक ने बड़ी बेरुखाई के साथ अस्वीकार कर उन्हें, जन-संमर्द में ही, बहुत-से दुर्वचन कहा। कृष्ण को क्रोध आया । उन्होंने उसके मुँह पर एक तमाचा जड़ दिया। फिर तो वह मुँह से रक्त वमन करता हुआ मार्ग में ही मर गया। बलराम और श्रीकृष्ण ने अपने बन्धु-बान्धव ग्वाल-बाल-मण्डली के साथ उन सुन्दर वस्त्रों को धारण किया। फिर वे माली के घर गये । माली ने उनका भरपूर स्वागत-सम्मान किया। प्रसन्न हुए श्रीकृष्ण ने उसे मनोवाञ्छित वरदान दिया । तदनन्तर चन्दन का अङ्गराग लिये कुब्जा कृष्ण के समक्ष पहुँचती है। कृष्ण और बलराम ने उससे अङ्गराग माँगा। कुब्जा ने मधुर मुस्कान बिखेरते हुए उन्हें सुगन्धित चन्दन-अङ्गराग प्रदान किया। दोनों बन्धुओं ने अङ्गराग का समुचित सम्मान किया और कुब्जा को परममनोहर रूप प्रदान कर वे आगे मार्ग पर बढ़ गये। आगे बढ़ते

हुए श्रीकृष्ण अपने अनुयायियों के साथ उस यज्ञशाला में पहुँचे जहाँ विशाल धनुष रक्खा था। भगवान् मधुसूदन ने देखते ही उस धनुष को उठा लिया और खेल-खेल में ही उसे तोड़ डाला। धुनर्भङ्ग की ध्वनि श्रवण कर कंस की उद्विग्नता आकाश का चुम्बन करने लगी। उसने अपने व्यक्तियों को, दूसरे दिन, जिस-किसी प्रकार कृष्ण और बलराम के वध का आदेश दिया और भाईयों तथा मन्त्रियों के साथ शीघ्र ही अपनी सुरक्षा की सुदृढ व्यवस्था की। वह सुन्दर राजभवन की छत पर आरूढ हो गया। नीचे रहने में उसे भय लग रहा था । सम्पूर्ण प्रवेश द्वारों और मार्गों पर उसने मदोन्मत्त हाथियों की नियुक्ति कर दी। सब ओर बड़े-बड़े मल्ल बिठा दिये गये।

कंस के सारे कृत्य कृष्ण को ज्ञात थे, सारी योजनाएँ विदित थीं । फिर भी भगवान् श्रीकृष्ण, परम बुद्धिमान् बलराम जी अपने अनुयायी ग्वाल-बालों के साथ रात्रि भर उस यज्ञशाला में ही ठरे रहे।[१] रात बीती। निर्मल प्रभात आया। बलराम और श्रीकृष्ण दोनों ही वीर-शय्या का परित्याग कर स्नान आदि नित्य-कृत्य से निवृत्त हुए। भोजन किया और वस्त्राभूषणों से अपने आप को अलङ्कृत करके, युद्धार्थ समुत्सुक होकर वे उस यज्ञ-शाला से चले। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों दो सिंह किसी बड़ी गुफा से बाहर निकले हों। राजभवन के प्रधान द्वार पर मदोन्मत्त हाथी कुवलयापीड का श्रीकृष्ण ने वध किया।

यह हाथी श्रीकृष्ण और बलराम का वध करने के लिये कंस के द्वारा, मुख्य द्वार पर नियुक्त था। हाथी को मारकर बलराम और श्रीकृष्ण ने उसके दोनों दाँत उखाड़ लिये। फिर मल्लों से युद्ध करने के लिये वे रङ्ग-भूमि में पहुँचे। वहाँ वे युद्धोन्माद से हाथी के दाँत घुमाने लगे। उन्होंने वहाँ पहले से ही उपस्थित कंस के दो मल्ल चाणूर और मुष्टिक को उपस्थित देखा। वीर युगल-बन्धुओं को देखकर भयाक्रान्त कंस ने अपने प्रधानतम मल्ल चाणूर से कहा—'वीर, इस समय तुम इन ग्वाल-बालों को अवश्य मार डालो। मैं तुम्हें अपना आधा राज्य बाँट कर दे दूँगा।[२]'

फिर क्या था ? कृष्ण और चाणूर तथा बलराम एवं मुष्टिक का मल्लयुद्ध प्रारम्भ हुआ। वसुदेव, अक्रूर और परम बुद्धिमान् नन्द दूसरे कोठे पर चढ़कर वहाँ

---

१. श्रीमद्भागवत के कथानक में धनुष तोड़कर श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई गोप-बालों के साथ वहाँ वापस चले आये जहाँ कि नगर के बाहर नन्द आदि गोप डेरा डाले बैठे थे।। १०/४२/२३

२. श्रीमद्भागवत में कंस का ऐसा कथन नहीं है ।। १०/४३

का महान् युद्ध देख रहे थे। देवकी अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ बैठकर अपेन बेटे का मुँह निहार रही थीं। उस समय उसके नेत्र अश्रुपूरित हो उठे थे। स्त्रियों ने देवकी को बहुत समझाया और आश्वासन दिया। तब वे किसी दूसरे भवन में चली गईं।

इधर मल्ल-युद्ध की कला में निष्णात कृष्ण और बलराम ने अपने प्रतिद्वन्द्वियों, क्रमशः चाणूर और मुष्टिक, को मुट्ठियों से मार-मार कर शिथिल कर दिया और अन्त में पृथिवी पर पटक कर उनके प्राणों को ले लिया।

उन दोनों बन्धुओं के इस अलौकिक पराक्रम को देखकर अवशिष्ट सारे मल्ल मल्ल-भूमि से भाग खड़े हुए। यह देखकर कंस भयाकुल हो उठा। उसकी वेदना का पारावार न रहा। इसी बीच दुर्धर्ष वीर बलराम और श्रीकृष्ण कंस के ऊँचे महल पर चढ़ गये। वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने कंस के मस्तक में थप्पड़ मारकर उसे छत से **नीचे** गिरा दिया। पृथ्वी पर गिरते ही उसका सारा अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गया और वह प्राणों से हाथ धो बैठा। श्रीकृष्ण के द्वारा कंस के मारे जाने पर महाबली बलरामजी ने भी कंस के छोटे भाई सुनामा को मुष्टि-प्रहार से ही मार डाला और उसे उठाकर धरती पर फेंक दिया।

इसके आगे की मथुरा से सम्बन्ध रखने वाली कृष्ण-कथा श्रीमद्भागवत से प्रायः पूर्ण साम्य रखती है। रुक्मिणी-हरण की कथा भागवत आदि अन्य पुराणों की ही भाँति पद्मपुराण में भी वर्णित है । यदि कहीं अन्तर है तो वह अति स्वल्प है। इस पुराण के अनुसार भीष्मककुमारी का जब शिशुपाल के साथ विवाह की तैयारी चल रही थी तब रुक्मिणी ने भगवान् श्रीकृष्ण को पति बनाने के उद्देश्य से अपने पुरोहित के पुत्र को तुरन्त ही द्वारकापुरी भेजा। ब्राह्मण देवता द्वारका में पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम से मिले।[१] उन दोनों ने उनका विधिपूर्वक स्वागत-सत्कार किया। ब्राह्मण ने एकान्त में बैठकर उन दोनों भाईयों से रुक्मिणी का सारा सन्देश कह सुनाया। उसे सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों से परिपूर्ण आकाशगामी रथ पर ब्राह्मण के साथ बैठे। तीव्रगाभी रथ से वे दोनों बन्धु शीघ्र ही विदर्भ नगर में जा पहुँचे।[२] सम्पूर्ण शत्रु-शैन्य का उन्मन्थन कर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण किया। जरासन्ध आदि शत्रुओं की सेना ने कृष्ण का पीछा किया। बलराम जी ने अपने मुसल के प्रहार से सारी-शत्रुसेना को मारकर भगा दिया।

---

१. श्रीमद्भागवत में ब्राह्मण केवल कृष्ण से मिलता है और उन्हें रुक्मिणी का गोपनीय सन्देश देता है। १०/५२-५३

२. श्रीमद्भागवत के अनुसार अकेले श्रीकृष्ण कुण्डिनपुर गये हैं। १०/५३

रुक्मिणी को लेकर श्रीकृष्ण द्वारका पहुँचे। वहाँ उन्होंने शुभ दिन और शुभ लग्न में वेदोक्त विधि से राजकुमारी रुक्मिणी का पाणिग्रहण किया। बड़े उत्साह के साथ श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का विवाहोत्सव मनाया गया। उस विवाह में ग्वालों और ग्वालबालों के साथ नन्दगोप भी पधारे थे। वस्त्राभूषणों से विभूषित बहुत-सी गोपाङ्गनाओं के साथ स्वयं यशोदाजी भी आई थीं। वसुदेव, देवकी, रेवती, रोहिणी देवी तथा अन्यान्य नगर-युवतियों ने मिलकर बड़े हर्ष के साथ विवाह के समग्र कृत्य का सम्पादन किया। विवाह में सम्मिलित हुए राजा, नन्द आदि गोप तथा यशोदा आदि स्त्रियों का भी स्वर्ण-रत्न आदि के बहुत से आभूषणों एवं रत्नों द्वारा यथावत् सत्कार किया गया ।[१]

भगवान् श्रीकृष्ण की द्वितीय पत्नी का नाम था सत्यभामा (सत्या)। यह भूदेवी के अंश से उत्पन्न हुई थीं।[२] तृतीय पत्नी का नाम था—कालिन्दी । कालिन्दी सूर्यकन्या थीं । तदनन्तर अन्य पटरानियों के विवाह की कथाएँ वर्णित हैं । श्रीकृष्ण के रुक्मिणी, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, जाम्बवती, नाग्निजिती, सुलक्ष्मणा और सुशीला–ये आठ पटरानियाँ थीं। पद्मपुराण मित्रविन्दा के विवाह का प्रसङ्ग इस प्रकार वर्णित करता है—'विन्दानुविन्द की पुत्री मित्रविन्दा को स्वयंवर से लाकर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके साथ विवाह किया था। वहाँ सात महाबली बैलों को, जो दुर्दमनीय थे, भगवान् ने एक ही रस्सी से नाथ दिया और इस प्रकार पराक्रमरूपी शुल्क देकर उसका पाणिग्रहण किया ।'[३]

आगे की कृष्ण-कथाएँ श्रीमद्भागवत की कथाओं से समानता रखती हुई वर्णित की गई है।[४]

विष्णुमहापुराण

विष्णुपुराण के पूरे पञ्चम अंश में कृष्ण की प्रायः वह सारी कथाएँ वर्णित हैं, जिनका वर्णन श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में विस्तार के साथ कलात्मक रूप से किया गया है। हाँ, यह अवश्य है कि दोनों वैष्णव पुराणों के कथा-

---

१. श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के विवाह में, श्रीमद्भागवत के अनुसार नन्द-यशोदा तथा गोप-गोपी नहीं सम्मिलित हुए थे। १०/५४

२. पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, २४९/१ किन्तु श्रीमद्भागवत में ऐसा संकेत नहीं है। देखिये १०/५५-५६ अ०।

३. श्रीमद्भागवत के अनुसार मित्रविन्दा विन्दानुविन्द की भगिनी और श्रीकृष्ण की बुआ राजाधिदेवी की बेटी थी । सात बैलों की कथा कोसलाधिपति नग्नजित् की बेटी नाग्निजिती के विवाह से सम्बद्ध है । १०/५८

४. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, अ० २४८ और इसके आगे।

विन्यास में यत्र-तत्र अन्त है। विष्णुपुराण में जहाँ-तहाँ कृष्ण-लीला की वे कथाएँ अनुपलब्ध हैं, जिन्हें श्रीमद्भागवत में वर्णित किया गया है। उदाहरणार्थ तृणावर्त की कथा और मृद्भक्षण-लीला की चर्चा विष्णुपुराण में नहीं है। इसी प्रकार विष्णुपुराण के अन्त में कृष्ण की कुछ ऐसी लीलाओं का वर्णन किया गया है, जिनका दर्शन श्रीमद्भागवत में नहीं होता। यहाँ विष्णुपुराण के उन अंशों का वर्णन किया जा रहा है, जो श्रीमद्भागवत में नहीं हैं।

दुराचाररत दुराचारियों के भार से पीडित वसुधा ब्रह्मा के शरण में गई। उन्होंने देवों के साथ नारायण की दिव्य स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् नारायण ने अपने श्याम और श्वेत–दो केश उखाड़े। केशों को उखाड़ कर उन्होंने देवों से कहा—'मेरे ये दोनों केश पृथिवी पर अवतार लेकर पृथिवी के भाररूप कष्ट को दूर करेंगे। सारी देवमण्डली अपने अंश से भूतल पर अवतार लेकर अपने से पहले उत्पन्न उन्मत्त दैत्यों के साथ युद्ध करे। वसुदेवजी की जो देवी के सदृश देवकी नाम की भार्या है, उसके अष्टम गर्भ से मेरा यह (श्याम) केश अवतार लेगा। यह अवतार ही कालनेमि के अवतार कंस का वध करेगा[१] —

एवं संस्तूयमानस्तु भगवान् परमेश्वरः।
उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने ॥ ५/१/६० ॥
उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले।
अवतीर्य भुवो भारक्लेशहानिं करिष्यतः ॥ ५/१/६१॥
वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा।
तत्रायमष्टमो गर्भो मत्केशो भविता सुराः ॥ ५/१/६४ ॥
अवतीर्य च तत्रायं कसं घातयिता भुवि।
कालनेमिं समुद्भूतमित्युक्त्वान्तर्दधे हरिः ॥ ५/१/६५ ॥

विष्णुपुराण में आकाशवाणी के अतिरिक्त महर्षि नारद ने भी कंस से कहा था कि—'देवकी के आठवें गर्भ में भगवान् धरणीधर जन्म लेंगे।' नारद जी के द्वारा यह समाचार पाकर कंस ने कुपित होकर वसुदेव और देवकी को कारागार में बन्द कर दिया था।[२]

श्रीमद्भागवत में देवों के द्वारा देवकी के गर्भ में विराजमान श्रीमान् भगवान् की स्तुति 'गर्भ-स्तुति' के नाम से पौराणिक वाङ्मय में सुविदित है। उसकी

१. भगवान् के श्वेत-कृष्ण केश के अवतार लेने का संकेत श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय के श्लोक छब्बीस में किया गया है। किन्तु यह संकेतमात्र है।
२. विष्णुमहापुराण, ५/१/६७-६८

भावगम्भीरता, अर्थ की गूढता एवं साहित्यिक महत्ता वैदुष्य का निकष है। किन्तु विष्णुपुराण में गर्भस्थ नारायण की स्तुति न कर देवों के द्वारा देवकी की विस्तृत स्तुति की गई है।[१]

विष्णुपुराण के अनुसार जब वसुदेव कृष्ण को लेकर नन्द के गोकुल, अर्धरात्रि की बेला में, पहुँचाने जा रहे थे तब उन्होंने वहाँ यमुनाजी के दूसरे तट पर ही कंस को कर देने के लिये आये हुए नन्द आदि वृद्ध गोपों को भी देखा।[२] इस प्रकार की अप्रासंगिक असम्बद्ध चर्चा श्रीमद्भागवत में नहीं है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत का सुविदित नन्दमहोत्सव भी विष्णुपुराण में अनुपलब्ध है।

कृष्ण-कथा में पूतना का प्रसङ्ग महत्त्वपूर्ण है। विष्णुपुराण का कथन है कि 'पूतना ने रात्रि के समय सोये हुए कृष्ण को गोद में लेकर उनके मुख में अपना स्तन दे दिया। रात्रि के समय पूतना जिस-जिस बालक के मुख में अपना स्तन दे देती थी उस का शरीर तत्काल नष्ट हो जाता था।'[३] किन्तु श्रीमद्भागवत के अध्ययन से यह निश्चित होता है कि पूतना दिन की बेल में कृष्ण के पास गई थी।[४]'

विष्णुपुराण तृणावर्त की कथा का उपन्यास नहीं करता। इसमें शकट-परिवर्तन की कथा अवश्य है, किन्तु इसमें शकटासुर (असुर) की चर्चा नहीं है।[५] श्रीमद्भागवत में भी असुर की चर्चा स्पष्टरूप से नहीं आई है।[६]

दामोदर-लीला कृष्ण-कथा का एक अविस्मरणीय प्रसङ्ग है। श्रीमद्भागवत में यह अतिललित रूप में वर्णित है। किन्तु विष्णुपुराण में यह कथा अति सामान्यरूप से उपन्यस्त हुई है। उसके अनुसार कथा का मूल इस प्रकार है–कृष्ण और बलराम अति चञ्चल थे। वे सर्वदा एक साथ खेला करते थे। प्रयास करने पर भी यशोदा उन दोनों बालकों को न रोक पाती थी। एक दिन जब वह दोनों बालकों को न रोक सकी तो अति सुचञ्चल कृष्ण को रस्सी से कटिभाग में कस कर ऊखल में बाँध दिया। फिर कुपित होकर इस प्रकार बोली–'अरे चञ्चल, अब तुममें सामर्थ्य हो तो चला जा।' ऐसा कहकर यशोदा गृह-कार्य में व्यस्त हो गई।[७] कृष्ण ऊखल को खींचते हुए यमलार्जुन वृक्षों के मध्य से निकलते हैं। तभी ऊखल तिरछा हो जाता है। फलत: कट-कट शब्द करते हुए वे दोनों वृक्ष धराशायी हो जाते हैं । यह दृश्य देखकर नन्दादि गोपों के आश्चर्य का ठिकाना

१. विष्णुमहापुराण, ५/२
२. वही, ५/३/१९
३. विष्णुमहापुराण ५/५/७-८
४. देखिये-श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय षष्ठ।
५. विष्णुमहापुराण, ५/६
६. श्रीमद्भागवत, १०/७
७. विष्णुमहापुराण, ५/६/१३-२०

नहीं रहता। दोनों पुराणों में इस घटना के बाद ही गोकुल छोड़कर वृन्दावन जाने की कथा समान रूप से वर्णित है।

श्रीमद्भागवत की भाँति विष्णुपुराण में भी भगवान् श्रीकृष्ण गोप बालकों के साथ वन में क्रीडा करते हैं। किन्तु दोनों के प्रकार और उद्देश्य में अन्तर है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की भक्तवत्सलता प्रदर्शित की गई है। क्रीडा में वे हारते हैं। फलतः शर्त के अनुसार घोड़ा बनकर श्रीदामा गोप-बालक को वे अपनी पीठ पर चढ़ाकर ढोते हैं—

'उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः'। भाग०-१०/१८/२४। किन्तु विष्णुपुराण की कथा में कहा गया है कि-'अन्त में, श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रीदामा को, बलरामजी ने प्रलम्ब को तथा अन्याय कृष्णपक्षीय गोपों ने अपने प्रतिपक्षियों को हराया।'[१]

कंस के आमन्त्रण पर अक्रूर के साथ कृष्ण और बलराम मथुरा पहुँचे। वहाँ वे दोनों बन्धु पैदल ही मथुरा में प्रवेश करते हैं। उनके साथ वहाँ और कोई नहीं है।[२] किन्तु श्रीमद्भागवत में कृष्ण-राम के साथ गोपबालक भी हैं ऐसा प्रतीत होता है।[३]

रुक्मिणी-हरण कृष्ण-कथा का एक अविभाज्य अंग है। विष्णु एवं श्रीमद्भागवत-दोनों पुराणों में यह कथा प्रमुखता के साथ वर्णित है।[४] विष्णुपुराण की कथा से ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी की याचना की थी, जिसे भीष्मक के ज्येष्ठ पुत्र ने अस्वीकृत कर दिया था। रुक्मिणी-हरण के उद्देश्य से श्रीकृष्ण, बलराम के साथ, यादवों की विशाल सेना लेकर कुण्डिनपुर गये थे। किन्तु श्रीमद्भागवत में यह प्रसङ्ग मार्मिकता के साथ वर्णित है। रुक्मिणी के प्रार्थना भरे सन्देश को प्राप्त कर श्रीकृष्ण अकेले ही भीष्मक की नगरी में गये थे। बाद में श्रीकृष्ण को एकाकी गया हुआ ज्ञात कर बलराम ने यादवों की विशाल सेना के साथ उनका अनुगमन किया था।

प्रद्युम्न-हरण एवं शम्बरासुर के वध के प्रसङ्ग में मायावती (पूर्वजन्म में कामपत्नी रति) की कथा आती है। विष्णुपुराण में मायावती को शम्बर की पत्नी बतलाया गया है।[५] किन्तु श्रीमद्भागवत में उसे शम्बर के रसोई-गृह की अध्यक्षा निरूपित किया गया है।[६]

---

१. श्रीदामानं ततः कृष्णः प्रलम्बं रोहिणीसुतः।
जितवान् कृष्णपक्षीयैर्गोपैरन्यैः पराजिताः ॥ वि०पु० ५/९/१४

२. विष्णुपुराण, ५/१९/१०-१४

३. शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥ १०/४१/३९

४. विष्णुमहापुराण, ५/२६ तथा श्रीमद्भागवत १०/५२-५४

५. विष्णुमहापुराण, २/२७/७

६. श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/५५/८

त्रिलोकी भौमासुर के अत्याचार से पीडित थी। भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाधीश के रूप में विराजमान थे। एक दिन स्वर्गाधिपति इन्द्र ऐरावत हाथी पर आरूढ होकर कृष्ण की सभा में उपस्थित हुए और उनसे नरकासुर के असह्य अत्याचारों का वर्णन कर उसके वध की प्रार्थना की।[१]

श्रीमद्भागवत के अनुसार इन्द्र द्वारका में स्वयं न आकर दूत भेजे थे और नरकासुर के वध की प्रार्थना की थी।[२]

विष्णुपुराण के अनुसार भौमासुर ने सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं को अपने कारागार में वन्दिनी बनाकर रक्खा था। भगवान् श्रीकृष्ण ने इनका उद्धार कर इनके साथ द्वारका में विवाह किया।[३] किन्तु श्रीमद्भागवत में कन्याओं की संख्या षोडश सहस्रमात्र बतलाई गई है ।[४]

यादव–सैन्य–संहार की कथा तथा कृष्ण और राम के निर्याण का प्रसंग दोनों महापुराणों में साम्य के साथ-साथ कुछ वैषम्य भी रखता है। यह वैषम्य का प्रसङ्ग विष्णुपुराण में ही अधिक है। अत: उसी के इस कथांश को यहाँ प्रदर्शित किया जा रहा है—

यादवों के पारस्परिक इस महासमर में बलराम, श्रीकृष्ण और दारुक को छोड़कर कोई यदुवंशी अवशिष्ट नहीं था। विष्णुपुराण में राम-निर्याण की कथा, श्रीमद्भागवत की अपेक्षा कुछ विलक्षण ढंग से वर्णित है। अवशिष्ट कृष्ण-कथा इस पुराण में भी प्राय: उसी प्रकार से वर्णित है जैसे श्रीमद्भागवत में है।

राम-कृष्ण के स्वधाम-गमन के अनन्तर जब अर्जुन कृष्ण के अवशिष्ट परिजनों को लेकर द्वारका से लौट रहे थे, तब मार्ग में दस्युओं ने उन्हें लूट लिया था, कृष्ण की स्त्रियों का अपहरण कर लिया था। यह प्रसङ्ग विष्णुपुराण के पञ्चम अंश के अवशिष्टांश में विस्तार के साथ वर्णित है। वहीं यह भी कहा गय है कि अष्टावक्र मुनि के शाप के कारण कृष्ण की स्त्रियों का दस्युओं के द्वारा अपहरण किया गया था। श्रीमद्भागवत इस प्रसंग में मौन है। दस्युओं के द्वारा अर्जुन के पराभव का संकेत श्रीद्भागवत के एकादश स्कन्ध में न होकर प्रथम स्कन्ध के पञ्चदश अध्याय में वर्णित है।

---

१. विष्णुपुराण, ५/२९

२. इन्द्रेण हृतच्छत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना ।
हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ॥ १०/५९/२

३. विष्णुपुराण, ५/२९/३१

४. श्रीमद्भागवत, १०/५९/३३

श्रीमद्भागवतमहापुराण

श्रीमद्भागवत की रचना कृष्ण कथा के लिये ही हुई है। कृष्ण की जैसी साङ्गोपाङ्ग कथा श्रीमद्भागवत में मिलती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। कृष्ण से सम्बन्ध रखने वाली कदाचित् ऐसी कोई ही कथा होगी जिसका वर्णन अथवा निर्देश श्रीमद्भागवत में न किया गया हो। श्रीमद्भागवत का विशाल दशम स्कन्ध एवम् एकादश स्कन्ध कृष्ण की मार्मिक कथाओं से भरा पड़ा है। श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण की सारी कथाएँ सर्वजन विदित हैं। अत: उनका यहाँ निर्देशमात्र किया जा रहा है—

देवकी और वसुदेव के विवाह के अनन्तर कंस रथ से उन्हें उनके घर पहुँचाने जा रहा था। मार्ग में आकाशवाणी हुई—'अरे मूर्ख कंस, जिस देवकी को तू रथ से पहुँचाने जा रहा है, उसका आठवाँ गर्भ (बेटा) तेरा वध करने वाला होगा।' आकाशवाणी को सुनकर कंस रथ से कूद पड़ा। उसने एक हाथ से देवकी के केशों को कस कर पकड़ा और दूसरे हाथ से, देवकी का शिर काट डालने के लिये, तलवार निकाल ली। इस विषम स्थिति को देखकर सत्यवादी वसुदेव ने कहा—'भैया कंस, आकाशवाणी के अनुसार इस देवकी से आपको कोई भय नहीं है। भय है इसके पुत्रों से। तो मैं उत्पन्न होते ही उन्हें आप को समर्पित कर दूँगा । अत: इस समय इसे छोड़ दीजिए।' कंस वसुदेव की सत्यनिष्ठा से परिचित था। इसलिये उस समय उसने देवकी को छोड़ दिया। वसुदेव देवकी को लेकर प्रसन्नतापूर्वक अपने घर गये ।

देवकी ने प्रतिवर्ष एक पुत्र और अन्त में एक कन्या को जन्म दिया। कंस ने देवकी के छः पुत्रों का वध कर दिया। उसके गर्भस्थ सप्तभ पुत्र को योगमाया ने नन्द के यहाँ वर्तमान रोहिणी के गर्भ में पहुँचा दिया। वहीं बलराम पैदा हुए। आठवीं बार जब देवकी गर्भवती हुई तो कंसने वसुदेव और देवकी को कारागार में डाल दिया। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रादुर्भाव की पावन बेला उपस्थित हुई। देवों ने गर्भस्थ भगवान् की अद्भुत स्तुति की। यह भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी थी। अर्धरात्रि की बेला में कंस के कारागार में भगवान् कृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ। प्रादुर्भाव चतुर्भुज रूप में हुआ था। किन्तु देवकी की प्रार्थना से भगवान् प्राकृत शिशु के रूप में परिणत हो गये। योगमाया की कृपा से वसुदेव के समस्त बन्धन खुल गये। अत: वे शिशु श्रीकृष्ण को लेकर चुपके से नन्द के गोकुल पहुँचे। उसी समय नन्दरानी यशोदा ने एक कन्या को जन्म दिया था। वहाँ भी योगमाया के प्रभाव से सभी सो रहे थे। वसुदेव ने कृष्ण को यशोदा के पर्यङ्क पर लेटा दिया

और कन्या को लेकर वापस कंस के कारागार में चले आये। कन्या के शिशुरुदन को सुनकर सभी सावधान हो गये। कंस दौड़ा-दौड़ा देवकी के पास पहुँचा। उसने कन्या को रोती-गिड़गिड़ाती देवकी से छीन लिया। उसे उसने, अन्य बच्चों की भाँति, पत्थर पर पटकर मार डालना चाहा। किन्तु वह कन्या कंस के हाथ से छूटकर आकाश में सिंहवाहिनी अष्टभुजा दुर्गा के रूप में दिखलाई पड़ी । उसने कंस से कहा—'अरे अभागे कंस, मुझे मारने से तेरा क्या लाभ होगा? तुम्हें मारने वाला कहीं पैदा हो चुका है। इन दु:खी वसुदेव और देवकी की व्यर्थ में हिंसा मत करो।' देवी के वचनों को सुनकर कंस ने वसुदेव और देवकी को कारागार से मुक्त कर दिया। व्रज में दस दिन के आस-पास के जन्मे जितने बालक थे कंस ने उन सबको मरवा डालने का प्रयास किया। इसी क्रम में उसने बालघातिनी पूतना को नन्द के गोकुल में भेजा। वह कृष्ण के छठी के दिन नन्दभवन में पहुँची थी। उसने अपने स्तनों में भयङ्कर विष पोत रक्खा था। कृष्ण को गोद में लेते ही उसने अपना स्तन उनके मुख में डाल दिया। कृष्ण दूध के साथ उसके प्राणों को भी पी गये। विदा हुई वह पूतना इस संसार से जिसने अगणित निरपराध अबोध शिशुओं की हत्या की थी ।

पूतना के मारी जाने पर कंस नन्द के छोरों-बलराम और कृष्ण को मारने के लिये एक न एक राक्षसों को भेजा करता था। उधर कृष्ण उन सबको मारकर स्वधाम की राह पर विदा कर देते थे। इसी क्रम में उन्होंने शकटासुर, तृणावर्त का वध और यमलार्जुन का उद्धार भी किया। कृष्ण के ऊपर बार-बार आते हुए संकट को देखकर सभी संगठित गोपों ने गोकुल को छोड़कर वृन्दावन में जाकर अपना निवास-स्थान बनाया। वृन्दावन में पहुँचकर कृष्ण के आनन्द की सीमा न रही। वहाँ वह पहले वत्सपाल (बछड़ा चराने वाले) और फिर गोपाल (गाय चराने वाले) बने। वत्सपाल रहते हुए ही कृष्ण ने वत्सासुर, बकासुर और अघासुर आदि दैत्यों का विनाश किया था। ये सभी असुर कंस के द्वारा कृष्ण एवं बलराम का वध करने के लिये भेजे गये थे। अघासुर के वध के अनन्तर कृष्ण ने ब्रह्मा के मोह को भी भङ्ग किया। गोचारण प्रारम्भ करने के प्रथम ही दिन बलराम ने ताल-वन के स्वामी धेनुकासुर का वध किया। कालीय नाग यमुना-जल को विष से प्रदूषित कर रहा था। अत: कृष्ण ने उसका वहाँ से निर्वासन कर दिया। चीरहरण, गोवर्धन-धारण, रासलीला आदि लीलाएँ वृन्दावन के भक्तों के मन को आकृष्ट करने के लिये की गई हैं।

कृष्ण की लीलाओं में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। अरिष्टासुर, केशी और

व्योमासुर का वध करके कृष्ण, कंस के आह्वान पर, बलराम तथा नन्द आदि गोपों और ग्वालबालों के साथ मथुरा गये। कंस ने धनुर्याग देखने के व्याज से कृष्ण और बलराम को बुलाकर उनके वध की योजना बनाई थी। मथुरा पहुँचने पर कृष्ण ने नगर देखने-दिखाने के व्याज से पुरी में प्रवेश किया। प्रवेश करते ही उन्हें कंस का रजक (धोबी) मिला। उसकी अकड़ युक्त बातें सुनकर कृष्ण ने उसका वध कर दिया। तदनन्तर उन्होंने वायक, मालाकार और कुब्जा पर अनुग्रह प्रदर्शित कर सायंकाल की बेला में कंस के द्वारा स्थापित धनुष को तोड़कर रक्षकों की अच्छी पिटाई कर दी।

दूसरे दिन नियत समय पर बलराम के साथ कृष्ण कंस के सभागार पहुँचे। वहाँ द्वार पर मदमत्त गजराज कुवलयापीड का वध कर दोनों बन्धु सभा-भवन में प्रवेश किये। प्रवेश करते ही कंस के प्रबल मल्ल चाणूर और मुष्टिक ने मल्ल युद्ध के लिये दोनों भाईयों को ललकारा। कृष्ण और बलराम ने उनके आह्वान को स्वीकार कर न केवल उन्हें पराजित किया बल्कि इस संसार से ही सर्वदा के लिये विदा कर दिया। अन्त में कृष्ण ने अत्याचारी कंस का वध करके कारागार में निरुद्ध अपने माता-पिता देवकी और वसुदेव को विमुक्त किया। कृष्ण ने कंस को मारकर उसके पिता उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठा दिया। फिर उपनयन संस्कार के बाद कृष्ण औरं बलराम विद्याध्ययन के लिये, सान्दीपनि के पास अवन्ती (उज्जयिनी) नगरी में गये। सान्दीपनि काशी के पण्डित थे और अब उन्होंने अवन्ती को अपना वास-स्थान बना लिया था। उन लोगों ने गुरु के आश्रम में रहकर शीघ्र ही सारी विद्याओं का अध्ययन पूरा कर लिया। वहाँ से प्रस्थान करते समय कृष्ण और बलराम ने गुरु को गुरु-दक्षिणा के रूप में उनके मृत पुत्र को लाकर दिया। प्रसन्न होकर गुरु ने उनकी विद्या को अयातयाम होने का आशीष प्रदान किया। मथुरा आ जाने के अनन्तर कृष्ण ने माता-पिता नन्द-यशोदा और गोपियों को आश्वासन देने के लिये उद्धव को वृन्दावन भेजा। उद्धव की यात्रा की परिणति विश्व-विश्रुत भ्रमरगीत के रूप में हुई है।

मगध देश का अधिपति जरासन्ध कंस का श्वसुर था। कंस के वध के समाचार को सुनकर वह क्रुद्ध हो उठा। फलत: उसने मथुरा पर आक्रमण कर दिया । कृष्ण और बलराम ने उसकी विशाल सेना का वध कर उसे वापस जाने दिया । इस प्रकार जरासन्ध ने सत्रह बार आक्रमण किया और पराजित होकर वापस जाता रहा। अट्ठारहवीं बार जरासन्ध का आक्रमण आसन्न था कि उसी समय म्लेच्छाधिपति कालयवन ने अपनी विशाल सेना के साथ मथुरा पर आक्रमण

कर दिया। कालयवन के आक्रमण को देखकर कृष्ण ने समुद्र के मध्य में द्वारका नगरी का निर्माण करवा कर योगमाया के प्रभाव से मथुरावासियों को वहाँ भेज दिया। कालयवन को किसी यदुवंशी के हाथ न मरने का वरदान था। अतः कृष्ण ने महाराज मुचुकुन्द के क्रुद्ध नेत्रों की अग्नि से उसे भस्मसात् करवा दिया । उसी समय जरासन्ध ने अट्ठारहवीं बार मथुरा पर आक्रमण किया। कृष्ण और बलराम भागकर द्वारका चले आये। जरासन्ध भी विशाल सैन्यबल के साथ वापस मगध देश को चला गया।

द्वारकापुरी में आने के अनन्तर कृष्ण विदर्भाधिपति कुण्डिनपुर-नरेश भीष्मक की बेटी रुक्मिणी को हर कर लाये और उसके साथ विवाह किया। उसके बाद कृष्ण ने जाम्बवती, सत्यभामा कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा के साथ विवाह किया। ये ही कृष्ण की आठ पट्टमहिषियाँ थीं।

प्राग्ज्योतिषपुर का राजा भौमासुर महान् अत्याचारी था। श्रीकृष्ण ने उसे संग्राम में माकर उसके द्वारा वन्दिनी बनाई गई सोलह सहस्र राजकुमारियों को द्वारका लाकर उनके साथ विवाह किया। स्वर्ग से पारिजात का हरण तथा युद्ध में बलिपुत्र बाणासुर को जीत कर उसकी पुत्री ऊषा के साथ अपने पौत्र अनिरुद्ध का विवाह करवाना भी कृष्ण की कथाओं में उल्लेखनीय है।

एक समय श्रीकृष्ण अपनी सुधर्मा सभा में विराजमान थे। उसी समय एक अपरिचित व्यक्ति ने उनकी सभा में प्रवेश किया। पूछने पर उसने बतलाया— 'महाराज, मैं जरासन्ध के द्वारा जीतकर बन्दी बनाये गये राजाओं का सन्देश लेकर आपके पास आया हूँ। उन राजाओं का कष्ट अवर्णनीय है। कृपाकर आप उन्हें जरासन्ध के कारागार से मुक्त कीजिये।' दूत के निवेदन करके चले जाने पर नारदमुनि युधिष्ठिर का आमन्त्रण लेकर आये और कहा—'महाराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ के द्वारा आपकी आराधना करना चाहते हैं। अतः आप इन्द्रप्रस्थ पधारें।' नारद के निमन्त्रण देकर निकल जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण रानियों के साथ युधिष्ठिर की राजधानी इन्द्रप्रस्थ में पधारे। राजसूय यज्ञ के प्रसङ्ग में पाण्डवों के द्वारा दिग्विजय का महान् कार्य प्रारम्भ हुआ। उसी क्रम में भगवान् श्रीकृष्ण भीम और अर्जुन को साथ लेकर जरासन्ध की राजधानी में पहुँचे। वहाँ उन्होंने भीम के द्वारा द्वन्द्व-युद्ध में जरासन्ध का वध करवा दिया। राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा को लेकर एक विवाद खड़ा हो गया। सभी श्रीकृष्ण की पूजा प्रथम करना चाहते थे। किन्तु शिशुपाल इसे सहन न कर सका। उसने कृष्ण को शताधिक अपशब्द कहे। सीमा पार कर जाने के बाद कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से उसके

शीश को शरीर से पृथक् कर दिया। इसी यज्ञ के अवसर पर मय दानव के द्वारा निर्मित तिलस्मी भवन में द्रौपदी आदि ने दुर्योधन का अपमान कर दिया। जिसकी परिणति महाभारत युद्ध के रूप में हुई। शाल्व, दन्तवक्त्र एवं विदूरथ का वध भी श्रीकृष्ण के हाथों हुआ। सुदामा पर अनुग्रह कर कृष्ण ने अपनी भक्तवत्सलता भी प्रदर्शित की। वृन्दावन से जाने के बाद कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के अवसर पर कृष्ण का गोप एवं गोपियों से, नन्द और यशोदा आदि से मिलना भी कृष्ण-कथा का मार्मिक पक्ष है।

इतिहास के महाभयानक महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण ने पाण्डवों का पक्ष लिया। अर्जुन का रथ हाँका और युधिष्ठिर को विजयी बनाकर राज्यसिंहासनासीन किया। कौरवों का समूलोन्मूलन करा देने के अनन्तर कृष्ण ने भूतल के भारभूत यादवों के विनाश का मन बनाया। यदुकुमारों ने ऋषियों का उपहास किया। उन लोगों ने प्रतिकार स्वरूप यदुकुल के संहार का शाप भी दे डाला। फलतः मदिरापान कर उन्मत्त हुए यदुवंशी आपस में ही लड़कर विनाश को प्राप्त हुए। यदुकुल के संहार के बाद बलराम के भी निर्याण (स्वधामगमन) को देखकर भगवान् कृष्ण ने भी परमधाम प्रयाण किया।[१]

यहाँ यह स्मरणीय है कि यदुकुल-संहार एवं स्वलोक-गमन के पूर्व श्रीकृष्ण ने उद्धव को जो ज्ञान का, परम तत्त्व का, उपदेश दिया उसे विद्वन्मण्डली उद्धव-गीता के नाम से जानती है।[२]

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

आचार्य गर्ग ने देवक की बेटी देवकी का विवाह वसुदेव के साथ सविधि करवाया था। देवकी को रथ पर बैठाकर वसुदेव जब प्रस्थान करने लगे, तब बहन के विवाह में हर्ष से भरा हुआ कंस भी उसके साथ चला। वह तत्काल देवकी के रथ के समीप आ गया। इसी समय कंस को सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई—'राजेन्द्र, क्यों हर्ष से फूल उठे हो? यह सत्य बात सुनो। देवकी का आठवाँ गर्भ तुम्हारी मृत्यु का कारण होगा।' यह सुनकर कंस ने अपनी तलवार निकाल ली और देवकी का वध करने के लिये उद्यत हो गया।

देवकी के वध के लिये कंस को उद्यत देखकर उसे समझाते हुए वसुदेव ने कहा—'भाई, इसके आठवें गर्भ से जो सन्तान होगी, उसे मैं तुम्हारे हाथ में दे दूँगा। अथवा इससे जितनी भी सन्ताने होंगी, उन सबको मैं तुम्हारे हवाले कर

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण, विशेषरूप से दशम एवं एकादश स्कन्ध।
२. श्रीमद्भागवतमहापुराण, एकादशस्कन्ध, अध्याय- ६-२९

दूँगा, क्योंकि उनमें से एक भी मुझे तुमसे अधिक प्रिय नहीं है। अत: राजेन्द्र, बहिन को जीवित छोड़ दो।' इस बात को सुनकर कंस ने देवकी को छोड़ दिया। वसुदेव जी अपनी प्रिय पत्नी को साथ लेकर घर गये। देवकी के गर्भ से क्रमश: जो छ: सन्ताने हुईं, वसुदेवजी ने उन्हें कंस को दे दिया। कंस ने क्रमश: उन सबका वध कर डाला। देवकी के सातवें गर्भ को योगमाया ने खींचकर रोहिणी के पेट में रख दिया। उसी गर्भ से भगवान् अनन्त प्रकट हुए। इन्हें 'संकर्षण' नाम से जाना जाता है। आठवीं बार देवकी के गर्भवती होने पर कंस ने सात द्वारवाले भवन में उन दोनों को रख छोड़ा। दसवें मास के पूर्ण होने पर मनस्वी वसुदेव ने देवकी पर दृष्टिपात करके समझ लिया कि प्रसवकाल सन्निकट आ गया है। अत: उन्होंने तलवार, लोहा, जल और अग्नि को लाकर रक्खा। मन्त्रज्ञ मनुष्य तथा भाई-बन्धुओं की स्त्रियों को भी बुला लिया। भयभीत वसुदेव ने विद्वान् ब्राह्मण तथा बन्धुओं को भी सादर आमन्त्रित कर लिया। इसी समय रात्रि के दो प्रहर व्यतीत हो जाने पर, अर्धरात्रि की बेला में चन्द्रमा के उदित होते ही देवकी के हृदय-कमल-कोश से भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनकी दो भुजाएँ थी। हाथ में मुरली शोभा पा रही थी। उनकी अवस्था किशोर थी। उन्हें देखकर वसुदेवजी ने अपनी पत्नी देवकी के साथ उनकी स्तुति की।

स्तुति को सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—'तात, अब तुम मुझे लेकर शीघ्र ही व्रज में चलो और यशोदा के घर में रखकर वहाँ उत्पन्न हुई माया को ले आओ तथा यहाँ उसे अपने पास रख लो।' ऐसा कहकर श्रीहरि शीघ्र ही शिशुरूप में परिणत हो गये। उस समय भगवान् की माया से कंस के रक्षकों सहित सारी मथुरा नगरी घोर निद्रा में निमग्न थी। भगवान् के वचन को सुनकर वसुदेव ने पत्नी के साथ कुछ विचार किया और फिर बालक को गोद में लेकर वे नन्द के गोकुल में जा पहुँचे। वहाँ नन्द गाँव में यशोदा प्रगाढ निद्रा के वशीभूत हो शयन कर रही थी। नन्द आदि भी निद्रा से बेसुध हो रहे थे। यशोदा के पार्श्वभाग में सुवर्णवर्णाभा एक सद्योजात नग्न कन्यका विराजमान थी। वसुदेव ने तुरन्त ही पुत्र को वहाँ सुला कर कन्या को गोद में ले मथुरा के लिये प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बालिका को देवकी के बगल में सुला दिया। वह जोर-जोर से रुदन करने लगी। उसके रुदन की ध्वनि ने रक्षकों को जगा दिया। वे उठे। झपट कर देवकी के पास पहुँचे। उससे कन्या को छीनकर कंस को समर्पित कर दिया। देवकी और वसुदेव भी शोकाकुल हो रक्षकों के पीछे-पीछे गये। बालिका को देखकर कंस को अधिक प्रसन्नता नहीं हुई। किन्तु रुदन करती हुई उस अबोध को देखकर उसे दया

भी नहीं आई। वह कठोर क्रूरकर्मा असुर उस बालिका को लेकर प्रस्तर-शिला पर पटककर मारने के लिये आगे बढ़ा।

कंस की इस निष्ठुरता को देखकर वसुदेव और देवकी रोते हुए कन्या का वध न करने के लिये प्रार्थना करने लगे। किन्तु कंस ने उनकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। फिर पुन: जब वसुदेव ने उससे बालिका का वध न कर उसकी याचना की तब विचार-निपुण कंस ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और बालिका को उन्हें समर्पित कर दिया। इसी समय उसे बोध कराती हुई आकाशवाणी हुई-'अरे मूढ कंस! तू विधाता की गति को न जानकर किसे मारने जा रहा है? तेरा वधकर्ता बालक कहीं उत्पन्न हो चुका है। समय आने पर वह प्रकट होगा।'

वसुदेव और देवकी कन्या को पाकर परम प्रसन्न हुए। वे उस बालिका को छाती से लगाये घर को लौट आये। फिर तो वसुदेव ने कन्या की प्राप्ति के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को बहुत-सा धन दान में प्रदान किया। वह कन्या परमात्मा श्रीकृष्ण की बड़ी बहन हुई। पार्वती के अंश से उसका प्रादुर्भाव हुआ था। संसार में वह 'एकानंशा' नाम से प्रसिद्ध हुई। द्वारका में रुक्मिणी-विवाह के अवसर पर वसुदेवजी ने उस कन्या को भगवान् शंकर के अंशावतार महर्षि दुर्वासा के हाथ में सादर समर्पित कर दिया था।[१]

इधर वसुदेव के चले जाने पर नन्द और यशोदा ने मेघश्याम सुन्दर सलोने बालक को देख कर उसके जन्म के अवसर पर महान् उत्सव का आयोजन किया। ब्राह्मणियाँ, ब्राह्मण, गोप, और गोपियाँ सभी सत्कृत किये गये। इस महान् उत्सव में बलराम की माता रोहिणी ने भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा बटाया। पूर्ण व्रजमण्डल आनन्द-निमग्न था।

एक दिन राजसभा में स्वर्ण-सिंहासन पर कंस प्रसन्नतापूर्वक विराजमान था। उसी समय कंस ने बड़ी मधुर आकाशवाणी सुनी-'अरे महामूढ नरेश! क्या कर रहा है? अपने कल्याण का उपाय सोच। तेरा काल धरातल पर अवतीर्ण हो चुका है। वसुदेव ने माया से तेरे शत्रुभूत बालक को नन्द के हाथ में दे दिया और उनकी कन्या लाकर तुम्हें समर्पित कर दी। यह कन्या माया का अंश है और वसुदेव के पुत्र के रूप में साक्षात् श्रीहरि अवतीर्ण हुए हैं। वे ही तेरा वध करने वाले हैं। सम्प्रति गोकुल के नन्द-मन्दिर में उनका पालन-पोषण हो रहा है।

---

१. कृष्ण-जन्म के अवसर पर कई बातें, कन्यका के आने और मारी न जाने का तथ्य तथा दुर्वासा के साथ उसके विवाह का प्रसङ्ग—ये सब श्रीमद्भागवत की जगद्विदित कृष्ण-कथा से सर्वथा भिन्न हैं। ये ब्रह्मवैवर्त की अपनी निजी बाते हैं।

देवकी का सप्तम गर्भ भी स्खलित अथवा मृत नहीं हुआ है। योगमाया ने उस गर्भ को रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया था। उस गर्भ से शेष के अंशभूत महाबली बलदेवजी प्रकट हुए हैं। श्रीकृष्ण और बलभद्र—दोनों तेरे काल हैं। इस समय वे गोकुल के नन्दभवन में पल रहे हैं।'[१]

आकाशवाणी को सुनकर कंस का मन शोकाकुल हो उठा। उसने अपनी प्रिय बहन पूतना को बुलाकर कहा—'मेरी प्यारी बहन पूतना, तुम मेरे कार्य की सिद्धि के लिये गोकुल के नन्दमन्दिर में जाओ। वहाँ अपने एक स्तन को विष से ओत-प्रोत करके शीघ्र ही नन्द के नवजात शिशु के मुख में दे दो। वत्से, तुम मन के समान वेग से चलने वाली, मायाशास्त्र में प्रवीण तथा योगिनी हो। अतः माया से मानवी का रूप धारण करके तुम वहाँ जाओ। सुप्रतिष्ठे, तुम दुर्वासा से महामन्त्र की दीक्षा लेकर सर्वत्र गमन करने और सब प्रकार का रूप धारण करने में समर्थ हो।'

कंस के कथन को सुनकर पूतना वहाँ से प्रस्थान की। उसने परम सुन्दरी नारी का रूप धारण कर रक्खा था। विविध आभूषण उसके अङ्गों की कान्ति बढ़ा रहे थे। उसका केशपाश मालती की माला से अलंकृत था। वह मन्द-मन्द स्मित की छटा बिखेरती हुई नन्द के मन्दिर में प्रविष्ट हुई। उसके रूप-वैभव को देखकर गोपियाँ सोचने लगीं-'यह कमलालया लक्ष्मी अथवा साक्षात् दुर्गा ही तो नहीं हैं, जो श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिये यहाँ पधारी हैं।' ऐसा सोचकर गोपियों और गोपों ने उसे प्रणाम किया। बैठने के लिये सिंहासन दिया। पैर धोने के लिये जल अर्पित किया। पूतना ने भी गोप-बालकों का कुशल-मङ्गल पूछा। वह सुन्दरी वहाँ मुस्कराती हुई सिंहासन पर विराजमान हो गई। उसने बड़े आदर के साथ गोपियों के द्वारा प्रदत्त जल एवं आसन ग्रहण किया। तदनन्तर गोपियों ने सादर उसका परिचय पूछा। पूतना ने कहा—'मैं मथुरा-निवासिनी गोपी हूँ। इस समय एक ब्राह्मण की भार्या हूँ। मैंने सुना है कि 'वृद्धावस्था में नन्दराय जी के यहाँ महान् पुत्र का जन्म हुआ है।' यह सुनकर मैं उस पुत्र को देखने और उसे आशीष देने के लिये आई हूँ। अब तुम लोग नन्दनन्दन को यहाँ ले आओ। मैं उसे देखूँगी और आशीर्वाद देकर चली जाऊँगी।'

ब्राह्मणी का यह वचन सुनकर यशोदा का हृदय हर्ष से विकसित हो उठा। उन्होंने बेटे से प्रणाम करवा कर उसे उस ब्राह्मणभार्या की गोद में दे दिया। बालक को गोद में लेकर उस सती साध्वी पुण्यवती पूतना ने बारम्बार प्यार से उसका

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय-९

मुख-चुम्बन किया। फिर सुखपूर्वक बैठकर श्रीहरि के मुख में उसने अपना स्तन दे दिया और कहा—'गोपसुन्दरि, तुम्हारा यह सुन्दर बालक अत्यन्त अद्भुत है। यह गुणों में साक्षात् भगवान् नारायण के समान है।' श्रीकृष्ण ने पूतना के विष-विमिश्रित दूध को सुधा के सदृश स्वीकार कर उसके प्राणों के साथ ही पी लिया। साध्वी पूतना ने अपने प्राणों के साथ ही बालक को त्याग दिया। फिर क्या था? अपने पूर्व पुण्य के प्रताप से पूतना गोलोकधाम पहुँच गई। इस दृश्य को देखकर गोप और गोपिकाएँ आश्चर्य से चकित हो गईं। कंस भी वह सारा समाचार सुनकर बड़ा विस्मित हुआ। यशोदा ने ब्राह्मणों से मङ्गल-पाठ करवाया। नन्दराय ने आनन्द के साथ पूतना के देह का दाह-संस्कार किया। उस समय उसकी चिता से बड़ी ही सुन्दर सुगन्ध निकली।

पूतना के पूर्वजन्म के वृत्तान्त की सूचना देते हुए ब्रह्मवैवर्त का कथन है कि—'बलि के यज्ञ में वामन का मनोहर रूप देखकर बलि की बेटी रत्नमाला ने उनके प्रति पुत्र-स्नेह प्रकट किया था। उस समय उसने मन-ही-मन सङ्कल्प किया था कि यदि इस पुत्र के समान मेरे पुत्र होता ते मैं उसके मुख में अपना स्तन देकर उसे वक्षःस्थल पर बिठाती। भगवान् से उसका यह मनोरथ छिपा न रहा। फलतः उन्होंने इस प्रकार जन्मान्तर में उसका स्तन पान किया।

तृणावर्त की कथा जैसी श्रीमद्भागवत में वर्णित है वैसी ही ब्रह्मवैवर्त में भी है। दोनों में अन्तर नगण्य है। ब्रह्मवैवर्त में तृणावर्त के पूर्वजन्म की कथा इस प्रकार वर्णित है—'पाण्ड्यदेश का राजा था 'सहस्राक्ष'। वह बड़ा प्रतापी था। उसके विलास की भी सीमा न थी। एक बार वह अपनी एक सहस्र पत्नियों के साथ जल-विहार कर रहा था। विलास की तन्मयता से उस समय उन लोगों को अपने वस्त्रों का भी ध्यान न था। उसी समय सहस्र-शिष्य-मण्डली से परिवेष्टित महर्षि दुर्वासा उधर से निकले। उन्हे देखकर भी मतवाला सहस्राक्ष न तो विलास से विरत हुआ और न शिष्टाचार आदि का पालन ही किया। फलतः महर्षि क्रुद्ध हो उठे। उन्होनें शाप दिया—'तुम योगभ्रष्ट होकर भारतवर्ष में लाख वर्षों तक असुर योनि में निवास करो। इस अवधि में कभी श्रीहरि के चरणकमल का स्पर्श प्राप्त होने पर तुम्हारा असुर योनि से उद्धार होगा। फिर तो तुम गो-लोक धाम पधारोगे।' उनकी पत्नियों से कहा—'तुम लोग भारत में जाकर विभिन्न स्थानों में राज-कन्या बनोगी।'[१]

१. संभवतः भौमासुर ने इन्हीं कन्याओं का हरण कर बन्दी गृह में रक्खा था, जिनका उद्धार उसे मारकर, श्रीकृष्ण ने किया था और उनके साथ विवाह भी किया था।

मुनिवर के शाप को सुनकर सब लोग हाहाकार कर उठे। राजा की पत्नियाँ करुण-क्रन्दन करने लगीं। अन्ततः राजा सहस्राक्ष ने एक विशाल अग्नि-कुण्ड का निर्माण करवाया। फिर वे श्रीहरि के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए पत्नियों के साथ उसमें प्रविष्ट हो गये।

इस प्रकार वे राजा सहस्राक्ष तृणावर्त नामक असुर बने। कालान्तर में श्रीहरि का स्पर्श पाकर उनके परमधाम में चले गये। उनकी रानियों ने भारतवर्ष में मनोवाञ्छित जन्म ग्रहण किया।

यहाँ शकटासुर की कथा श्रीमद्भागवत की कथा जैसी ही है। दोनों में अन्तर अत्यन्त क्षीण है। ब्रह्मवैवर्त में बालक श्रीकृष्ण को शकट की टूटी लकड़ियों के मध्य दबा बतलाया गया है। लकड़ियों को दूर फेंक कर भयभीत हुई यशोदा ने बालक को गोद में उठा लिया। योगमाया की कृपा से उसके सारे अंग सुरक्षित थे।[१]

नामकरण एवं अन्नप्रासन—श्रीमद्भागवत में गर्गाचार्य के द्वारा श्रीकृष्ण के अन्नप्राशन की चर्चा नहीं की गई है। हाँ, उनके द्वारा नामकरण-संस्कार अवश्य किया गया है। इस प्रसङ्ग में श्रीमद्भागवत की कथा अधिक व्यावहारिक और सुसङ्गत है। वहाँ गोपनीयता का पूर्ण ध्यान रक्खा गया हैं। किन्तु ब्रह्मवैवर्त की यह कथा गम्भीरंता से रहित और व्यावहारिकता से विचलित-सी है। कथा इस प्रकार है—

एक बार गर्गाचार्यजी अपनी शिष्य-मण्डली के साथ नन्द के भवन में पधारे।[२] नन्द-यशोदा ने उनका सम्मान किया। इसके बाद गर्गजी आसन से उठे और नन्द-यशोदा को साथ ले सुरम्य अन्तःपुर में गये। उस निर्जन स्थान में गर्ग, नन्द और पुत्र-सहित यशोदा इतने ही लोग रह गये थे। उस समय गर्ग ने यह रहस्य भरी बात कही—'नन्दजी, वसुदेवजी ने एक विशेष प्रयोजन से मुझे यहाँ भेजा है। वे सूतिकागृह में आकर अपना पुत्र तुम्हारे यहाँ रखकर तुम्हारी कन्या मथुरा ले गये थे।[३] ऐसा उन्होंने कंस के भय से किया था। यह पुत्र वसुदेव का है। इससे ज्येष्ठ पुत्र भी उन्हीं का है। इस बालक का नामकरण-संस्कार करने के लिये वसुदेव ने गुप्तरूप से मुझे यहाँ भेजा है। अतः तुम व्रज में इन बालकों के संस्कार की तैयारी करो। तुम्हारा यह शिशु पूर्ण ब्रह्मस्वरूप है और माया से इस

---

१. यह अंश श्रीमद्भागवत में नही है।

२. श्रीमद्भागवत में गर्गाचार्य एकाकी ही नन्द के यहाँ पधारे हैं।

३. यह रहस्योद्घाटन भागवत में बहुत आगे चलकर नारदजी ने किया है।

भूतल पर अवतीर्ण हो पृथ्वी का भार उतारने के लिये उद्यमशील है। इस शिशु के रूप में साक्षात् राधिका-वल्लभ गोलोकनाथ भगवान् श्रीकृष्ण पधारे हैं। ये विष्णु नारायण आदि के तेजों की राशि हैं। वह तेजोराशि ही मूर्तिमान् होकर उनकें यहाँ अवतीर्ण हुई है। भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेव को अपना रूप दिखलाकर शिशुरूप हो गये और सूतिकागार से सम्प्रति आप के घर में आ गये हैं। यह किसी योनि से प्रकट नहीं हुए हैं, अयोनिजरूप से भूतल पर प्रकट हुए हैं। इन श्रीहरि ने माया से अपनी माता के गर्भ को वायु से पूर्ण कर रक्खा था। फिर स्वयं प्रकट हो अपने उस दिव्यरूप का वसुदेवजी को दर्शन कराया और पुनः शिशुरूप हो वे यहाँ आ गये। गोपराज, प्रत्येक युग में इनका भिन्न-भिन्न वर्ण और नाम है। यह पहले श्वेत, रक्त और पीत वर्ण के थे। इस समय कृष्ण वर्ण के होकर प्रकट हुए हैं।'

आगे राधा के रहस्य को प्रकट करते हुए गर्ग ने नन्द को बतलाया—'किसी समय गोलोक में श्रीदामा का राधा के साथ लीलाप्रेरित कलह हो गया। उस कलह के कारण श्रीदामा के शाप से लीलावश गोपी राधा को गोकुल में आना पड़ा है। इस समय वे वृषभानु गोप की बेटी हैं और कलावती उनकी जननी हैं। राधा श्रीकृष्ण के अर्धाङ्ग से प्रकट हुइ हैं और वे अपने स्वामी के अनुरूप ही परमसुन्दरी सती हैं। यह राधा गोलोकवासिनी हैं। सम्प्रति यह श्रीकृष्ण की आज्ञा से यहाँ अयोनिसम्भवा होकर प्रकट हुई हैं। इन्हौंने माया से माता के गर्भ को वायुपूर्ण करके वायु के निकलने के समय स्वयं-शिशु-विग्रह धारण कर लिया। यह साक्षात् कृष्ण-माया हैं और श्रीकृष्ण के आदेश से पृथ्वी पर प्रकट हुई हैं। गो-लोक में वे सर्वदा निवास करती हैं। वहाँ से वे यहाँ भूतल पर पहले आई हैं। अतः अवस्था में श्रीकृष्ण से कुछ अधिक हैं।[१] इसके बाद आचार्य गर्ग ने श्रीकृष्ण की सारी भावी लीलाओं का निर्देश किया है।

नाम-करण-संस्कार के अवसर पर सम्पन्न हुए महोत्सव के मध्य साक्षात् कुबेर ने श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये वहाँ तीन मुहूर्त तक सुवर्ण की वर्षा करके गोकुल को सुवर्ण से भर दिया। नन्द की यह सम्पत्ति देखकर उनके सभी बन्धु-बान्धव लज्जा से नतमस्तक हो गये। इसके बाद नन्दजी ने गर्गाचार्य की आज्ञा लेकर बालक श्रीकृष्ण को भोजन कराया।

समय बीतता गया। अब बालक श्रीहरि दो-एक पग चलने में समर्थ हो गये। घर और आँगन में वे घुटनों के बल चलने-फिरने लगे। संकर्षण की अवस्था

---

१. यहाँ यह ध्यान रखना है कि श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का नामकरण संस्कार अत्यन्त गोपनीयरूप से हुआ है और यहाँ अत्यन्त उत्सव के साथ इसे सम्पन्न किया गया है।

बालक श्रीकृष्ण से एक वर्ष अधिक थी। वे दोनों भाई माता-पिता का आनन्दवर्धन करते हुए दिनानुदिन बड़े होने लगे।

गर्गाचार्य नन्द के यहाँ से सादर विदा होकर मथुरा में वसुदेव जी के घर गये। वहाँ उन्होंने वसुदेवजी को नन्द के यहाँ का सारा वृत्तान्त बतला दिया।[१]

दामोदरलीला[२]—एक दिन नन्दरानी यशोदा स्नान करने के लिये यमुनातट पर गईं। इधर मधुसूदन श्रीकृष्ण नवनीत और दधि आदि गोरस से भरे-पूरे घर को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। घर में जो दधि, दुग्ध, घृत और मनोहर नवनीत रक्खा हुआ था, वह सब आप भोग लगा गये। सब कुछ खा-पी लेने के अनन्तर जब आप वस्त्र से मुख पोंछने की तैयारी कर रहे थे उसी समय नन्दरानी यशोदा स्नान करके यमुनातट से लौट आईं। उन्होंने बालकृष्ण को देखा। घर के सारे मटके दूध-दही से रिक्त और फूटे हुए दिखलाई दिये। मधु आदि के जो बर्तन थे, वे भी एकदम खाली हो गये थे। यशोदाके पूछने पर बालकों ने बतलाया कि—'मैया, हम सत्य कहते हैं, तुम्हारा लाला ही सब खा गया, हम लोगों को स्वल्प भी नहीं प्रदान किया।' बालकों की बात सुनकर नन्दरानी क्रुद्ध हो उठीं। उन्होंने बेंत उठाया और लाला की ओर दौड़ीं। लाला भाग निकले। पीछा करते-करते यशोदा थक गईं। थक कर खड़ी हो गईं। उनका शरीर श्रान्त एवं पसीने से लथपथ था। जननी को श्रान्त एवं शिथिल जानकर कृपालु श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए यशोदा के सामने खड़े हो गये। नन्दरानी उनका हाथ पकड़कर अपने घर ले आईं। उन्होंने मधुसूदन को वस्त्र से वृक्ष में बाँध दिया, उसके बाद वे घर में चली गईं और श्रीकृष्ण वृक्ष के पास खड़े रहे। श्रीकृष्ण के स्पर्शमात्र से वह पर्वताकार वृक्ष सहसा भयानक शब्द करते हुए गिर पड़ा। उस वृक्ष से सुन्दर वेषधारी एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। वह सुन्दर, अलङ्कृत एवं किशोरवय का था। उसने श्रीकृष्णको प्रणाम किया और रथारूढ होकर अपने घर चला गया।[३]

राधा-कृष्ण का मिलन और उनका विवाह[४]—एक दिन नन्दजी श्रीकृष्ण को गोद में लेकर गायों को चराने के लिये वृन्दावन के भाण्डीर उपवन में गये। श्रीकृष्ण की माया से इसी समय झंझावात के साथ भयङ्कर वर्षा प्रारम्भ

---

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय-१३
२. श्रीमद्भागवत एवं ब्रह्मवैवर्तमहापुराण की कथा में साम्य और वैषम्य दोनों ही परिलक्षित होता है।
३. श्रीमद्भागवत में एक नहीं, दो वृक्षों की चर्चा है और उनसे दो पुरुष प्रकट होने की बात कही गई है। १०/१/९-१०
४. श्रीमद्भागवत में इस कथा की चर्चा भी नहीं है।

हुई। नन्द कि चिन्ता बढ़ी। वे बालक को घर पहुँचाना चाहते थे। किन्तु ऐसी विषम परिस्थिति में गायों-बछड़ों को छोड़ना भी अति कठिन था। बालक ने नाटक किया। वह नन्द का कण्ठ पकड़कर भयवश रुदन करने लगा। इसी समय राधा श्रीकृष्ण के समीप पधारीं । उनका सौन्दर्य त्रिलोकी का सारभूत था। वे विधाता की अद्भुत सृष्टि प्रतीत होती थीं । सृष्टि का कौन ऐसा प्रणी है जो उनके सौन्दर्य पर मन्त्रमुग्ध न हो जाय। उस निर्जन वन में एकाकिनी श्रीराधाजी को देखकर नन्द का मन विस्मय से भर गया। उन्होंने राधारानी को प्रणाम किया और कहा— 'देवि, आचार्य गर्ग की कृपा से मैं तुम्हारे और कृष्ण के सम्बन्ध एवं रहस्य को भली-भाँति जानता हूँ। भद्रे, अपने इस प्राणनाथ को ग्रहण करो और जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, लेकर चली जाओ। अपना मनोरथ पूर्ण कर लेने के पश्चात् मेरा यह पुत्र मुझे लौटा देना।'[१] ऐसा कहकर नन्द ने भयवश रोते हुए बालक को राधा के हाथ में समर्पित कर दिया। बालक को लेकर राधा वहाँ से दूर चली गईं। एकान्त में पहुँचने पर कृष्ण ने किशोरवय धारण कर लिया। इसी बीच जगत्स्रष्टा ब्रह्मा वहाँ पधारे। उन्होनें सविधि राधा-कृष्ण का विवाह करवाया। जैसे पिता अपनी पुत्री का दान करता है, उसी प्रकार राधिका को कृष्ण के हाथ में ब्रह्मा ने सौंप दिया। ब्रह्मा के वहाँ से अपने लोक चले जाने पर श्रीकृष्ण और राधा ने विविधविध विलास किया। पुनः श्रीकृष्ण के शिशुरूप धारण कर लेने पर राधा कृष्ण को लेकर यशोदा के घर पहुँचीं और कहा—'मैया, ब्रज में आपके स्वामी ने मुझें यह बालक घर पहुँचाने के लिये दिया था।'-ऐसा कहकर राधा ने बालक यशोदा की गोद में रख दिया और अपने घर चली गईं ।[२]

श्रीकृष्ण कुछ बड़े हुए। उन्होंने गोपबालकों के साथ गायों को चराने का कार्य प्रारम्भ किया। एक बार वे गायों को चराते हुए श्रीवन से मधुवन में गये। वहाँ उन्होंने बकासुर, वृषरूपधारी प्रलम्बासुर तथा अश्वरूपधारी बलवान् केशी का वध किया। यहाँ इन असुरों के पूर्व जन्म का वृत्तान्त भी वर्णित किया गया है।[३]

पूर्वोक्त दानवों का वध करके श्रीकृष्ण ग्वालबालों के साथ गोकुल में अपने घर गये। वहाँ बालकों ने प्रसन्नतापूर्वक सब लोगों से वन में घटित घटनाओं की

---

१. ब्रह्मवैवर्त का यही प्रकरण महाकवि जयदेव के विश्व-विश्रुत गीति-काव्य 'गीतगोविन्द' का प्राणाधार है। उसका प्रथम श्लोक इस प्रकरण के आरम्भ पर पूणतः निर्भर है। जयदेव ने भाव यहीं से लिये हैं। ब्र०वै०,कृष्ण-जन्मखण्ड, अध्याय-१५

२. भागवत में इस कथा की स्वल्प भी चर्चा नहीं की गई है।

३. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय-१५-१६

बातें बतलाईं । यह सुनकर सबलोग चकित रह गये। इन बातों से नन्द भयभीत हो उठे। उन्होंने वृद्ध गोपों तथा श्रेष्ठ गोपियों को अपने घर पर बुलाया। उन सबके साथ समयोचित विचारविमर्श किया। संकट से बचने के लिये उन लोगों ने गोकुल छोड़कर वृन्दावन में बसने का निर्णय किया। फलत: नन्द ने उसी क्षण सबको वृन्दावन में चलने की आज्ञा दी। सभी ने उनकी आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य की। सब लोग एक साथ प्रस्थान कर वृन्दावन पहुँचे ।[१] वृन्दावन में पहुँचकर सबने उसे गृहशून्य देखा। अत: सभी वृक्षों के नीचे यथास्थान ठहर गये। उन्हें आश्वस्त करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—'आज इसी प्रकार ठहरो। कल सब व्यवस्था बन जायेगी।' कृष्ण की बात मानकर सभी गोप रात्रि में भोजनकर शयन किये। इधर कृष्ण की आज्ञा से देवशिल्पी विश्वकर्मा ने खेल-खेल में ही पाँच योजन विस्तृत नगर की रचना कर डाली। प्रात:काल उठने पर गोपों ने अपने को यथा-योग्य दिव्य भवनों में पाया। यह देखकर उनके आश्चर्य और प्रसन्नता का पारावार न था। आबालवृद्ध सभी गोप-गोपियाँ परम प्रसन्न थे ।[२]

कथा-क्रम में आगे श्रीवन के समीप यज्ञ-रत ब्राह्मणों की पत्नियों के द्वारा गोपबालकों के साथ श्रीकृष्ण को भोजन देना तथा उनकी कृपा से गोलोकधाम में जाना, कालियनाग का उद्धार तथ दावानल से व्रजवासियों की रक्षा का वर्णन है। ब्रह्मवैवर्त ब्रह्माजी के द्वारा गायों, बछड़ों और गोपबालकों के अपहरण की बात प्राय: उसी रूप में उपस्थित करता है जिस रूप में यह श्रीमद्भागवत में वर्णित है। किन्तु इस पुराण में ब्रह्मा के मोह का मूल कारण अघासुर का वर्णन नहीं किया गया है। गोवर्धनोद्धारलीला यत्किञ्चित् परिवर्तन के साथ इस पुराण में श्रीमद्भागवत जैसी ही है। तालवन के धेनुकासुर का वध भगवान् श्रीकृष्ण ने करके उसे अति दुर्लभ मोक्ष प्रदान किया ।[३] मोक्ष भी ऐसा-वैसा नहीं, सायुज्य मोक्ष जो अति दुर्लभ है।

चीरहरण-लीला श्रीकृष्ण-लीला का एक अतिगहन अभिन्न अङ्ग है। इसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है—मार्गशीर्ष का महीना था। श्रीकृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करने के लिये गोप-बालायें अतिप्रात: यमुना में स्नान कर नित्य कात्यायनी का अर्चन किया करती थीं। मास के पूर्ण हो जाने की तिथि थी।

---

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण तथा श्रीमद्भागवत की कथाओं के क्रम-विन्यास में अन्तर है। भागवत के कथा-क्रम में स्वच्छता एवं सज्जता सुन्दर है।

२. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय-१६-१७

३. श्रीमद्भागवत में धेनुकासुर का वध बलराम ने किया है, श्रीकृष्ण ने नहीं, क्योंकि श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा ही थी कि-'बलि के वंशज का मेरे हाथों से कभी वध न होगा।'

कन्याएँ तट पर पूजन-सामग्री एवं वस्त्र रखकर, निर्वस्त्र हो, यमुना-जल में विहार कर रही थीं । उसी समय सखाओं के साथ श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे। वे पूजन की खाद्य-सामग्री को खाने लगे। फिर वस्त्रों को लेकर कदम्ब की ऊँची डाल पर चढ़ गये और गोपियों से कहा—'तुम लोगोंने जल में नग्न-स्नान करके महान् अनुचित कर्म किया है।' गोपियों ने वस्त्र प्रत्यर्पित करने के लिये प्रार्थना की। राधा ने जल के भीतर ही कृष्ण का चिन्तन करते हुए महान् ध्यान लगाया और दिव्य कृष्ण-स्तुति की। फलतः भगवान् सारी वस्तुओं को यमुना तट पर यथा-स्थान रखकर चले गये ।[१] कुमारियों ने प्रतिदिन की भाँति गौरी-पूजन किया। जगदम्बा प्रसन्न हुईं । अभीप्सित वरदान दिया और अन्तर्हित हो गईं । गोपकुमारियों के साथ श्रीराधा भी घर जाने के लिये उद्यत हुईं । ठीक उसी समय श्रीकृष्ण राधा के समक्ष प्रकट हुए। गोपियों के भक्ति-भाव से प्रसन्न हुए श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—व्रजदेवियों, तीन मास के व्यतीत होने पर वृन्दावन के सुरम्य रासमण्डल में तुम सब मेरे साथ क्रीडा करोगी। फिर तो प्रसन्न हुई गोपियाँ अपने-अपने घर गईं। श्रीकृष्ण भी सखाओं के साथ अपने घर को लौटे ।[२]

रासक्रीडा—चीरहरण के तीन मास व्यतीत हो जाने पर चैत्रमास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी तिथि को चन्द्रोदय होने पर श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में पहुँचकर वंशी बजाई ।[३] उस वंशीरव को सुनकर राधा, उनकी तैंतीस सखियाँ और लाखों गोपियाँ वृन्दावन के रासमण्डल में पहुँचीं । गोपियों की संख्या नौ लाख थी। श्रीकृष्ण ने उतने ही रूप धारण किये। उन्होंने गोपियों के साथ रास-क्रीडा, महारास-क्रीडा प्रारम्भ की। रास-लीला यमुनाजी में और वृन्दावन के विभिन्न स्थलों में सम्पन्न हुई थी । यह रास-क्रीडा तीस दिन-रात तक अनवरत चलती रही। एक दिन श्रीकृष्ण राधा को साथ लेकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये। उन्होंने व्रजेश्वरी राधा के साथ अनन्त रास-केलियाँ सम्पन्न कीं। फिर तो राधा का भी दर्पदलन करने के लिये श्रीकृष्ण वहाँ से भी अदृश्य हो गये। इसके बाद रोती हुई राधिका कृष्ण का अन्वेषण करती हुई गोपियों से मिलीं। सब कृष्ण-विरह में कातर होकर विलाप करने लगीं। यह दृश्य देखकर कृष्ण वहीं प्रकट हो गये। उन्हें सान्त्वना देकर उनके साथ पुनः पुनः रास-क्रीड़ाएँ कीं। एक मास के पूर्ण हो जाने पर फिर सभी अपने-अपने घर वापस आये ।[४]

१. श्रीमद्भागवत में राधा का उल्लेख नहीं है। और यहाँ के कथांश से भी स्वल्प अन्तर है।
२. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय-२७
३. श्रीमद्भागवत में चीरहरण-लीला के पश्चात् १० मास व्यतीत हो जाने पर शरद् पूर्णिमा को रास-क्रीडा की गई थी । देखिये-१०/१/२९, श्लोक-१
४. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अ०- ५१-५२

कंस ने धनुष-यज्ञ का आयोजन किया। उसने देश के सारे राजाओं को उसमें आमन्त्रित किया था। कंस ने कृष्ण को बुलाने के लिये भगवद्भक्त अक्रूर को भेजा। वे कृष्ण को, उनके साथियों के साथ, लेकर मथुरा लौट गये। मथुरा पहुँचकर श्रीकृष्ण ने त्रिवक्रा कुब्जा पर कृपा की और कंस का वध कर डाला। एक धोबी को, चाणूर और मुष्टिक नामक मल्ल को तथा कुवलयापीड नामक हाथी को वे पहले ही काल के गाल में भेज चुके थे। कंस-वध के अनन्तर कृष्ण ने माता-पिता तथा बन्धु-बान्धवों का उद्धार किया। श्रीहरि ने कृपापूर्वक एक माली को भी मोक्ष प्रदान किया। उद्धव को व्रज़ भेजकर विरहिणी गोपियों को समझाया-बुझाया और धीरज बँधया। उपनयन संस्कार के अनन्तर उज्जयिनी निवासी गुरु सांदीपनि से विद्याएँ ग्रहण कीं। उसके बाद जरासंध को जीतकर यवनराज का वध किया और पुनः उग्रसेन को विधिपूर्वक राजा के पद पर आसीन कराया। फिर द्वारकापुरी का निर्माण कराकर राजाओं के समूह को जीतकर देवी रुक्मिणी का हरण कर विवाह किया। तदनन्तर कालिन्दी, लक्ष्मणा, शैव्या, सत्या, जाम्बवती, मित्रविन्दा तथा नाग्निजिती के साथ विवाह किया। तत्पश्चात् भयानक संग्राम में प्राग्ज्योतिषपुर के नरेश नरक का वध करके उन्होंने सोलह सहस्र राजकुमारियों का उद्धार कर उनके साथ विवाह किया। इन्द्रदेव को लीलापूर्वक परास्त करके पारिजात का हरण किया और भगवान् शङ्कर को जीतकर बांणासुर के हाथ काट दिये तथा उसके कारागार से अपने पौत्र अनिरुद्ध को छुड़ाया।

वसुदेवजी के यज्ञ में, तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से आई हुई, अपने प्राणों की अधिष्ठात्री देवी श्रीराधा से श्रीकृष्ण की भेंट हुई। फिर वे उनके साथ पुण्यमय वृन्दावन में गये। भारत के उस पुण्य क्षेत्र में उन जगदीश्वर ने श्रीराधा के साथ पुनः चतुर्दश वर्षों तक रासमण्डल में रास किया।[१] उन्होंने नन्दभवन में पूरे एकादस वर्ष की वयतक निवास किया था। फिर मथुरा और द्वारका में उनके पूरे सौ वर्ष व्यतीत हुए। उन दिनों वहाँ रहकर श्रीष्ण ने भूतल का भार उतारा था। इस प्रकर वे एक सौ पच्चीस वर्षों तक भूतल पर रहकर गोलोक में गये। वहाँ उन्होंने मैया यशोदा और नन्द बाबा को तथा बुद्धिमान् वृषभानु एवं राधा-माता कलावती को सामीप्य मुक्ति प्रदान की।[२]

कूर्ममहापुराण

शूरसेन के पुत्र वसुदेव थे। वसुदेव की धार्मिकता जगद्विदित थी। देवों की

१. श्रीमद्भागवत में यह प्रसङ्ग नहीं है।
२. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण. श्रीकृष्णजन्मखण्ड अ०-५२-५४

प्रार्थना पर जगद्गुरु नारायण ने वसुदेव की पत्नी देवकी के गर्भ से जन्म लिया। वसुदेव का पुत्र होने के कारण उन्हें वासुदेव कहा जाता था। वसुदेव की एक दूसरी भी पत्नी थीं। उनका नाम था—रोहिणी। उनके ज्येष्ठ पुत्र थे हलायुध, बलराम। देवकी के गर्भ से खींचकर इन्हें रोहिणी के गर्भ में पहुँचाया गया था। अतः इन्हें सङ्कर्षण भी कहते हैं। यह साक्षात् शेष के अवतार थे। शेष भृगु के शाप को शिरोधार्य कर मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण किये थे।[१] वसुदेव के कई पुत्रों का कंस ने वध कर दिया था। इन पुत्रों के क्रमशः नाम थे—सुषेण, दायी, मद्रसेन, वज्रदम्भ, भद्रसेन और कीर्तिमान्। इनके वध कर दिये जाने पर रोहिणी ने बलभद्र को जन्म दिया था। तदनन्तर देवकी की कुक्षि से श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ।

बलराम की भार्या का नाम था—रेवती। रेवती से बलराम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे—निशित और उल्मुक। कृष्ण की सोलह सहस्र पत्नियाँ थीं। इनके बहुत से पुत्र थे।[२] रुक्मिणी ने, कृष्ण से, जिन पुत्रों को जन्म दिया था उनके नाम इस प्रकार हैं—चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेष, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयश और प्रद्युम्न। जाम्बवती ने एक पुत्र उत्पन्न किया था। उसका नाम था—साम्ब। कृष्ण ने शङ्कर की तपस्या और आराधना करके वरदानस्वरूप साम्ब को प्राप्त किया था।[३] कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और उनके पुत्र अनिरुद्ध—ये दोनों महान् गुणों से सम्पन्न थे। ये सब प्रकार से कृष्ण के ही दूसरे शरीर प्रतीत होते थे।[४]

कृष्ण ने कंस, नरकासुर और अनेक असुरों को मारकर लीलापूर्वक इन्द्र और बाणासुर को जीत लिया था। सर्वत्र सनातन धर्म की स्थापना कर लेने पर उन्होंने अपने धाम गमन करने का निश्चय किया। फिर कृष्ण ने अपने समस्त कुल का संहार कराकर अपने परं पद के लिये प्रस्थान किया। परं धाम गमन की बात उन्होंने अपने दर्शन के लिये आये हुए मुनियों से पहले ही बतला दी थी।[५]

मत्स्यमहापुराण

वसुदेव की पत्नी देवकी की कुक्षि से चतुर्बाहु, दिव्यरूपधारी कृष्ण का प्राकट्य हुआ। उस अलौकिक रूप को देखकर वसुदेव ने कृष्ण से कहा—'प्रभो

---

१. भृगुशापच्छलेनैव मानयन् मानुषीं तनुम्।
बभूव तस्यां देवक्यां रोहिण्यामपि माधवः॥ *कूर्ममहापुराण, १/२४/७३*

२. षोडशस्त्रीसहस्राणि कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः।
बभूवुश्चात्मजास्तासु शतशोऽथ सहस्रशः॥ *कूर्ममहापुराण* १/२४/८०

३. देखिये-कूर्ममहापुराण, १/२४ अध्याय।

४. प्रद्युम्नस्य ह्यभूत्पुत्रो ह्यनिरुद्धो महाबलः।
तावुभौ गुणसम्पन्नौ कृष्णस्यैवापरे तनू॥ *वही, १/२७/२*

५. गमिष्यामि परं स्थानं स्वकीयं विष्णुसंज्ञितम्।
कृतानि सर्वकार्याणि प्रसीदध्वं मुनीश्वराः॥ *कूर्ममहापुराण १/२७/७*

आप इस रूप को समेट लीजिये। देव, मैं कंस से भयभीत हूँ। उसने मेरे छः पुत्रों का वध कर दिया है।' वासुदेव जी के वचन को सुनकर भगवान् अच्युत ने कहा—'आप मुझे नन्द के घर पहुँचा दीजिये।' ऐसा कह कर उन्होंने अपने उस रूप का संवरण कर लिया। कृष्ण के आदेश से वसुदेव ने उन्हें नन्द के हाथों में समर्पित कर कहा—'मित्र, इस बालक की रक्षा कीजिये। इससे यदुवंशियों का सर्वविध कल्याण होगा। देवकी के गर्भ से उत्पन्न यह बालक कंस का वध करेगा।'[१]

आगे चलकर वृष्णिकुलोत्पन्न श्रीकृष्ण की रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्निजित् की कन्या सत्या, सुभामा, शैव्या, गान्धारराजकुमारी लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, देवी कालिन्दी, जाम्बवती, सुशीला मद्रराजकुमारी कौसल्या तथा विरजा आदि षोडश सहस्र देवियाँ पत्नियाँ थीं। इनके बहुत से पुत्र थे। रुक्मिणी की एक कन्या भी थी—चारुमती।

देवासुर संग्राम में जो महाबली असुर मारे गये थे, वे ही भूतल पर मानव-योनि में उत्पन्न होकर मानवों को कष्ट दे रहे थे । उन्हीं का संहार करने के लिये कृष्ण ने यदुकुल में जन्म लिया था। यादवों के एक सौ एक कुल थे। ये सभी वृष्णि-वंश के अन्तर्गत ही थे। सबके स्वामी श्रीकृष्ण थे और सभी इनकी आज्ञा का पालन करते थे ।

कृष्ण की उपर्युक्त कथा के पूर्व वृष्णि-वंश के वर्णन के प्रसङ्ग में स्यमन्तक मणि की कथा आई है। इसका स्वरूप इस प्रकार है—

वृष्णिवंशीय अनमित्र के पुत्र निघ्न थे। निघ्न के महान् पराक्रमी प्रसेन और शक्तिसेन दो बेटे थे। प्रसेन के पास स्यमन्तक नाम का मणि-रत्न था। यह मणि अद्वितीय थी। इसे पाने की इच्छा श्रीकृष्ण के मन में भी थी। उन्होंने प्रसेन से इसे कई बार माँगा भी था। किन्तु प्रसेन ने उन्हें दिया नहीं।

एक बार उस मणि को धारणकर प्रसेन जंगल में आखेट के लिये गया। वहाँ उसने एक गुफा में कोलाहल सुना। उत्कण्ठावश प्रसेन ने उसमें प्रवेश किया। वहाँ उसने एक ऋक्ष (रीछ) को देखा। देखते ही दोनों में भीषण युद्ध प्रारम्भ हो

---

१. भीतोऽहं देव कंसस्य ततस्त्वेतद् ब्रवीमि ते ।
मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्ते भीमविक्रमाः ॥
वसुदेवस्य वचः श्रुत्वा रूपं संहरतेऽच्युतः ।
अनुज्ञाप्य ततः शौरिं नन्दगोपगृहेऽनयत् ॥
दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष्यतामिति चाब्रवीत् ।
अतस्तु सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति ।
अयं तु गर्भो देवक्यां जातः कंसं हनिष्यति ॥ *मत्स्यमहापुराण* ४७/४-६

गया। अन्ततः ऋक्ष ने प्रसेन का वध कर वह मणि ग्रहण कर ली ।[१] गुफा के भीतर प्रविष्ट प्रसेन ऋक्ष के द्वारा मार डाला गया। इस तथ्य को कोई न जान सका।[२] इधर प्रसेन को मारा जानकर भगवान् श्रीकृष्ण को आशङ्का हो गई कि लोग स्पष्टरूप से कहते होंगे कि मणि लेने के लिये श्रीकृष्ण ने ही प्रसेन का वध किया है। ऐसी किंवदन्ती फैलने पर भगवान् गोविन्द ने उत्तर दिया कि 'उस मणि को धारण कर प्रसेन वन में गया था। संभवतः मणि लेने के लिये किसी ने उसकी हत्या कर दी होगी। अतः वधकर्ता उस दुराचारी का मैं वध करूँगा।'

एक समय आखेट के लिये निकले हुए श्रीकृष्ण भ्रमण करते हुए उसी गुफा के सन्निकट जा पहुँचे। उन्हें देखकर बलशाली ऋक्ष ने प्रबल गर्जन किया। उसे सुनकर गोविन्द हाथ में तलवार लिये हुए उस गुफा में प्रविष्ट हो गये। दोनों में भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। अन्ततः श्रीकृष्ण ने शीघ्र ही ऋक्षराज जाम्बवान् को बलपूर्वक अपने वश में कर लिया। फिर तो जाम्बवान् ने अपने स्तोत्रों से भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्न किया। कृष्ण ने भी प्रसन्न होकर उन्हें वरप्रदान द्वारा हर्षित कर दिया ।

प्रभु को प्रसन्न ज्ञात कर जाम्बवान् ने कहा—'प्रभो, मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं आपके चक्र-प्रहार से मृत्यु को प्राप्त होऊँ। यह मेरी सौन्दर्यशालिनी कन्या आपको पति के रूप में प्राप्त करे। प्रभो, यह मणि जिसे मैंने प्रसेन को मार कर प्राप्त किया है, आपके ही पास रहे। जाम्बवान् की प्रार्थना को सुनकर श्रीकृष्ण ने अपने चक्र से उसका वध करके कृतकृत्य हो कन्या-सहित मणि को ग्रहण किया।[३]

मणि और कन्या-मणि को लेकर भगवान् जनार्दन घर लौटे तब उन्होंने

---

१. अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि तु तौ सुतौ । प्रसेनश्च महावीर्यः शक्तिसेनश्च तावुभौ ।
स्यमन्तकः प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम् । पृथिव्यां सर्वरत्नानां राजा वै सोऽभवन्मणिः ।
हृदि कृत्वा तु बहुशो मणिं तमभियाचितः। गोविन्दोऽपि न तं लेभे शक्तोऽपि न जहार सः।
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः । यथा शब्दं स शुश्राव बिले सत्त्वेन पूरिते ।
हत्वा ऋक्षः प्रसेनं तु ततस्तं मणिमाददात् ॥ *—मत्स्यमहापुराण, ४५/३-८*

२. भागवतादि अन्य पुराणों के अनुसार सिंह ने प्रसेन को और जाम्बवान् ने सिंह को मारा है। परिष्कार की दृष्टि से मत्स्यमहापुराण की कथा भागवतादि से प्राचीन प्रतीत होती है।

३. इच्छे चक्रप्रहारेण त्वत्तोऽहं मरणं प्रभो । कन्या चेयं मम शुभा भर्तारं त्वामवाप्नुयात्।
योऽयं मणिः प्रसेनं तु हत्वा प्राप्तो मया प्रभो। ततः स जाम्बवन्तं तं हत्वा चक्रेण वै प्रभुः।
कृतकर्मा महाबाहुः सकन्यं मणिमाहरत् । *—मत्स्यमहापुराण, ४५/१५-१६*

टिप्पणी-यह कथा प्रायः कल्कि पुराण से साम्य रखती है। शेष अन्य भागवत, विष्णु आदि पुराणो में जाम्बवान् कन्या-दान करने के बाद भी जीवित ही रहते हैं। कल्किपुराण के अन्त में जाम्बवान् तथा शशबिन्दु की ऐसी स्थिति हुई है।

समस्त सात्वतों की भरी सभा में वह मणि सत्राजित् को समर्पित कर दी, क्योंकि वे उस मिथ्यापवाद से दु:खी थे। उस समय यदुवंशियों ने श्रीकृष्ण से कहा—'श्रीकृष्ण, हम लोगों का तो यह दृढ निश्चय था कि प्रसेन आपके ही हाथों द्वारा मारा गया है।'

केकयराज की दस सुन्दरी कन्याएँ सत्राजित् की पत्नियाँ थीं। उनके गर्भ से सत्राजित् के एक सौ श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें भंगकार ज्येष्ठ था, सबसे बड़ा था। उसकी पत्नी का नाम था—व्रतवर्ती। उससे भंगकर की तीन कन्याएँ थीं—स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ सत्यभामा, दृढव्रतपरायणा व्रतिनी तथा पद्मावती। भंगकार ने इन तीनों का विवाह श्रीकृष्ण से किया था।[१]

टिप्पणी—भागवत और विष्णुपुराण आदि में यह कथा प्रभूत भिन्नता के साथ वर्णित है। वहाँ सत्यभामा सत्राजित् की बेटी बतलाई गई हैं। किन्तु यहाँ सत्यभामा को सत्राजित् की पौत्री के रूप में लिखा गया है। भागवत में प्रसेन सत्राजित् का लघु बन्धु बतलाया गया है। किन्तु यहाँ की कथा स्पष्टता के साथ इस तथ्य का प्रतिपादन नहीं करती।

ब्रह्माण्डमहापुराण

ब्रह्माण्डमहापुराण के अनुसार वसुदेव की कुल त्रयोदश सुन्दर पत्नियाँ थीं। इनमें पुरुवंश की कन्या रोहिणी सबसे बड़ी और देवकी सबसे छोटी थी। देवकी की छ: बड़ी बहनें भी वसुदेव से ही ब्याही गई थीं।[२]

विवाह के अनन्तर देवकी की विदाई का अवसर था। युवराज कंस वसुदेव और देवकी को रथ पर बैठाकर स्वयं रथ की बागडोर पकड़कर उन्हें उनके घर पहुँचाने चला। मार्ग के मध्य में उसने आकाशवाणी सुनी। वह कह रही थी—

---

१. अथ व्रतवती तस्माद् भङ्गकारात् तु पूर्वजात्।
सुषुवे सुकुमारीस्तु तिस्रः कमललोचनाः॥
सत्यभामा वरा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता।
तथा पद्मावती चैव ताश्च कृष्णाय सोऽददात्॥ *मत्स्यमहापुराण ४५/२०-२१*

२. पत्न्यस्तु वसुदेवस्य त्रयोदश वराङ्गनाः।
पौरवी रोहिणी चैव मदिरा चापरा तथा।
तथैव भद्रवैशाखी सुनाम्नी पञ्चमी तथा।
सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवा देवरक्षिता।
धृतदेवोपदेवा च देवकी सप्तमी तथा॥ *ब्रह्माण्डमहापुराण ३/७१/१६०-१६२*
ज्येष्ठा पत्नी महाभाग दयिताऽऽनकदुन्दुभेः।
ज्येष्ठं लेभे सुतं रामं सारणं हि शठं तथा॥ *वही, ३/७१/१६४*

'कंस, प्रसन्नता से तुम जिस देवकी को रथ पर बैठा कर पहुँचाने जा रहे हो, उसकी आठवीं सन्तति तेरी मृत्यु का कारण बनेगी।' आकाशभाषित को सुनकर कंस व्यथित हो उठा। उसने म्यान से तलवार निकाल ली और देवकी की ग्रीवा काटने के लिये तत्पर हो गया। वसुदेव ने बड़ी शान्ति और प्रेम से समझाना प्रारम्भ किया—'आप क्षत्रिय हो। क्षत्रिय के लिये स्त्री की हत्या उचित नहीं है। इस विषय में मैंने एक उपाय सोच लिया है। इसके अष्टम गर्भ से जो सन्तति समुत्पन्न होगी उसे मैं आपको समर्पित कर दूँगा। फिर जो उचित प्रतीत होगा वह करना। अथवा इसकी सभी सन्तानों को लेकर आपके समक्ष रख दूँगा। नरश्रेष्ठ, मेरी यह वाणी मिथ्या नहीं होगी।' ऐसा कहकर वसुदेव ने कंस से बहुत अनुनय-विनय की। अन्ततः कंस वसुदेव से सहमत हो गया। वसुदेव उस समय अपनी नवविवाहिता पत्नी को सकुशल प्राप्त कर प्रसन्न हो अपने घर गये।

कंस पापी था। वृथामति था। अतः उसने देवकी के कई पुत्रों का वध कर डाला। कश्यप और अदिति ही वसुदेव देवकी के रूप में जन्म धारण किये थे। कश्यप ब्रह्म के अंश थे और अदिति पृथिवी की कला थी। द्रोण नन्द एवं उनकी पत्नी धरा ही यशोदा के रूप में जन्मे थे ।

धर्म के नष्ट होने पर उसकी व्यवस्था के लिये और असुरों के विनाश के लिये स्वयं विष्णु वृष्णि-कुल में जन्म धारण किये थे ।[१] विदर्भदेश की राजकुमारी रुक्मिणी, नग्नजित् की कन्या सत्या, सत्राजित् की बेटी सत्यभामा, जाम्बवती, रोहिणी और शैव्या के अतिरिक्त षोडश सहस्र सुन्दरी पत्नियाँ श्रीकृष्ण की थीं। कृष्ण की षोडश सहस्र पत्नियाँ स्वर्ग की अप्सराएँ थीं, जो इन्द्र की प्रेरणा से श्रीकृष्ण की पत्नी बनने के लिये ही भूतल पर राजकुमारियों के रूप में अवतरित हुई थीं।[२] कृष्ण की प्रधान पट्टमहिषी रुक्मिणी के प्रद्युम्न आदि आठ पुत्र तथा चारुमती नामक एक कन्या थी। अन्य पत्नियों की भी बहुत ही सन्ततियाँ थीं, जिनसे वंश का विपुल विस्तार हुआ था।

कृष्ण की बृहत्कथा का संक्षिप्त साररूप से उपस्थापन ब्रह्माण्डमहापुराण के तृतीय उपोद्धात पाद के श्लोक ९६ से १०३ तक भी किया गया है।

---

१. नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले स्वयम् ।
कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥ *ब्रह्माण्डमहापुराण ३/७१/२४१*

२. विचार्य देवैः शक्रेण विशिष्टास्त्विह प्रेषिताः ।
पत्न्यर्थं वासुदेवस्य उत्पन्ना राजवेश्मसु ॥ *३/७१/२४४*
एता पत्न्यो महाभागा विष्वक्सेनस्य विश्रुताः ॥ *३/७१/२४५*

देवीभागवत

पृथिवी दुष्ट राजाओं के भार से आक्रान्त थी। महान् पापी जरासन्ध मगध में और शिशुपाल चेदि देश में राजा बना बैठा थ। प्रतापी काशिराज, शक्तिशाली रुक्मी, कंस, महाबली नरकासुर, सौभपति शाल्व, दुरात्मा केशी, धेनुकासुर एवं बकासुर—ये सभी शुभ-कर्मों से विमुख थे। इनमें परस्पर स्पर्धा की भावना काम कर रही थी। ये सभी महान् दुराचारी थे। पृथिवी इनके भार से दबी जा रही थी। जब व्यथा असह्य हो गई तो वह गाय का रूप धारण कर इन्द्र की शरण में गई। इन्द्र ने उसे ब्रह्माजी के पास भेजा। देंवों के साथ ब्रह्मा जी उसे लेकर विष्णु के समीप गये। वहाँ उन्होंने विष्णु की दिव्य स्तुति की। विष्णु प्रकट हुए। उन्होंने योगमाया को कार्य-साधिका बतलाया। पुन: सभी देवों ने योगमाया की स्तुति की। योगमाया प्रकट हुई। उसने सबको आश्वासन देते हुए कहा—'मुझे सब कुछ विदित है। सभी मूर्ख नरेश विनाश को प्राप्त करेंगे। आप सभी, अपने-अपने अंशों से, शक्ति-सहित धरातल पर पधारें। मेरे अवतार लेने से पूर्व स्वर्ग के व्यवस्थापक कश्यप जी अपनी पत्नी के साथ यदुकुल में वसुदेव के रूप में जन्म ग्रहण करें। इसी प्रकार भगवान् विष्णु भी भृगुमुनि के शाप के अनुसार अपने अंश से वसुदेव के घर पुत्र बनकर पधारने की कृपा करेंगे। मैं उसी गोकुल में यशोदा के उदर से प्रकट होऊँगी। मैं ही महाभाग शेष को देवकी के गर्भ से खींचकर रोहिणी के उदर में स्थापित करूँगी। अत: अब आप सभी देवता भगवान् विष्णु के सहायक बनकर अपनी पत्नियों के साथ मथुरा एवं गोकुल में जन्म धारण करें ।'

काल-क्रम से सूर्यवंशियों का आधिपत्य समाप्त हो जाने पर यदुवंशियों का मथुरा पर अधिकार स्थापित हो गया। उसी वंश में शूरसेन का जन्म हुआ था। यहाँ यह ध्यान रखना है कि यह शूरसेन द्वितीय थे। वरुण के शापानुसार कश्यपजी इन्हीं के पुत्र बनकर मथुरा में पधारे थे। वसुदेव के नाम से उनकी प्रसिद्धि थी। पिता का स्वर्गवास हो जाने पर वसेुदवजी वैश्वृत्ति से जीवन व्यतीत करने लगे। उन्हीं के घर भगवान् विष्णु पुत्र बनकर पधारे थे। वरुण ने कश्यप के साथ अदिति को भी शाप दिया था। अत: वह कश्यपजी की अनुगामिनी बनकर जगत् में पधारीं। उनका नाम था देवकी। देवक उनके पिता थे। देवक ने अपनी बेटी देवकी का विवाह वसुदेव के साथ कर दिया। विवाह के अनन्तर विदाई की बेला में आकाशवाणी हुई—'महाभाग कंस, इस देवकी का अष्टम पुत्र महान् शक्तिशाली पुरुष होगा। उसके हाथों तुम काल के कलेवा बन जाओगे।' आकाशवाणी

को सुनकर कंस ने तलवार निकाल ली और बहन देवकी का केश पकड़ लिया। वह उस नवविवाहिता देवकी को अपनी ओर खींचकर मार डालना चाहता था। उस समय वसुदेव के पक्षधर बहुत से वीर कंस से युद्ध करने के लिये उद्यत हो गये। उन्होंने कंस से कहा—'इसे छोड़ दो-छोड़ दो।' कंस को विवश होकर उसे छोड़ देना पड़ा। फिर तो कंस और वसुदेव के पक्षधरों में भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस स्थिति में यदुकुल के प्रसिद्ध वृद्धों ने विविध भाँति से कंस को समझाया। किन्तु कंस पापकर्म से विरत नहीं हो रहा था। यह देखकर बुद्धिमान् वसुदेव ने उस दुष्ट से कहा—'कंस, उत्पन्न होते ही देवकी के पुत्रों को मैं लाकर तुम्हें समर्पित कर दूँगा। यदि ऐसा न करूँ तो मेरे पूर्वज कुम्भीपाक नरक के भागी बनें।' वसुदेव अपनी सत्यवादिता के लिये विदित थे। अत: वहाँ एकत्रित सभी लोगों ने कहा—'कंस, वसुदेव बड़े महात्मा पुरुष हैं। ये कभी मित्या भाषण नहीं करते। अत: अब तुम देवकी का केश छोड़ दो। ऐसा करने से तुम्हें स्त्री-हत्या का पाप भी नहीं लगेगा।'

कंस ने यदु-वृद्धों की बात मान ली। उसे विश्वास था कि वसुदेव कभी भी मिथ्या भाषण नहीं करते। अत: उसने देवकी को छोड़ दिया। वसुदेव प्रसन्न हो अपनी नवोढा पत्नी के साथ घर पधारे।

यथा समय देवकी को प्रथम पुत्र की प्राप्ति हुई। वसुदेव ने उसे ले जाकर कंस को समर्पित कर दिया। वसुदेव की सत्यनिष्ठा पर स्वयं कंस को भी महान् आश्चर्य हुआ। बच्चे को, यह कहते हुए उसने वसुदेव को वापस कर दिया कि—'इससे नहीं। देवकी के अष्टम पुत्र से मेरी मृत्यु का विधान आकाशवाणी ने किया है। अत: इसे सकुशल वापस ले जाओ।' मन्त्रियों ने भी कंस की बात का समर्थन किया। सबके अपने-अपने घर चले जाने पर मुनिवर नारदजी कंस के पास पधारे। कंस ने उनका यथोचित सत्कार किया। आगमन का कारण पूछने पर नारद ने कंस से कहा—'कंस, मैं सुमेरु पर्वत पर गया था। वहाँ देव-सभा में वार्ता चल रही थी कि वसुदेव की धर्मपत्नी देवकी के गर्भ से भगवान् विष्णु तुम्हें मारने के लिये जन्म धारण करेंगे।' अत: नीतिज्ञ होते हुए भी तुम देवकी के पुत्र को मारने से क्यों चूक गये ?'

नारदजी की बात सुनकर कंस ने कहा—'मैं देवकी के आठवें पुत्र को मारूँगा। आकाशवाणी ने उसे ही मेरा काल बतलाया। है।' इस पर नारदजी ने उसे इस प्रकार कुछ समझाया कि उसने देवकी के पुत्र को घर से पुन: मँगवा लिया

और उसे पत्थर पर पटक कर मार डाला तथा स्वयं सुख का अनुभव करने लगा।[१]

नारदजी के आदेश का अनुसरण करते हुए कंस ने देवकी के छः बच्चों को मार डाला। सातवाँ गर्भ गिर गया। फिर उचित समय आने पर श्रीहरि वसुदेवजी के अन्दर प्रविष्ट होकर, लीला से ही, देवकी के अष्टम गर्भ के रूप में विराजमान हो गये। उसी समय भगवती योगमाया ने यशोदा के गर्भ में प्रवेश किया। देवकी को गर्भवती ज्ञात कर कंस ने वसुदेव और देवकी को कारागार में बन्द कर दिया। कारागार की रक्षा में बहुत से सेवक नियुक्त कर दिये गये। देवताओं ने समय पूर्ण होने पर गर्भस्थ भगवान् की स्तुति की। दसवाँ महीना शुभ श्रावण पड़ा था ।[२] उसके कृष्ण पक्ष में अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र का प्रवेश हो गया था। उस समय रात्रि के बारह बजे थे। उसी समय देवकी ने वसुदेव से कहा—'महाराज मेरा प्रसव-काल आ गया। अब मुझे क्या करना चाहिये? यहाँ बहुत से भयङ्कर राक्षस हैं। कभी पहले नन्दरानी ने मुझसे कहा था—'मानिनि, तुम अपने पुत्र को मेरे घर भेज देना। तुम निश्चिंत रहो। मैं भली-भाँति उसका पालन-पोषण कर दूँगी। कंस के मन में विश्वास हो जाय कि यह तुम्हारा पुत्र नहीं है। अत: यह प्रयत्न करना है। फिर तुम्हें पुत्र वापस कर दूँगी।' किन्तु आज की इस विषम परिस्थिति में आप सन्तान को परिवर्तित करने में कैसे समर्थ होंगे ? पतिदेव, आप दूसरी ओर मुख मोड़कर बैठिये, समय पूर्ण हो चुका है।'

वसुदेवजी से इस प्रकार कहने के बाद ठीक आधी रात की बेला में देवकी से एक परम अद्भुत बालक प्रकट हुआ। आश्चर्यचकित देवकी ने बालक वसुदेव के हाथों पर रख दिया। वे पुत्र के अनुपम मुख को देखकर चिन्ता के अगाध सागर में डूब गये। उसी समय आकाशवाणी हुई—'वसुदेव, तुम इस बालक को लेकर अभी गोकुल पहुँचा आओ। सम्पूर्ण रक्षकों को निद्रा से अचेत कर दिया गया है। आठों द्वारों के फाटक खुल गये हैं। किसी में अर्गला (साँकल) नहीं है। तुम इस बालक को तुरन्त नन्द के भवन में छोड़कर वहाँ से योगमाया को उठा ले आओ।'

इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर वसुदेव जी बाहर की ओर गये। उन्होंने देखा, सभी फाटक खुले पड़े हैं। तब वे अतिशीघ्र बालक को लेकर चल पड़े।

---

१. गतेऽथ नारदे कंसः समाहूयाथ बालकम् ।
पाषाणे पोथयामास सुखं प्राप च मन्दधीः ॥ *देवीभागवत ४/२१/५४*

२. श्रावण शुक्ल प्रतिपदा से भाद्रपद अमावास्या तक श्रावण मानने वालों के सिद्धान्त से यह कथन है। गुजरात में ऐसा ही माना जाता है।

द्वारपाल उन्हें देख न सके। तट पर वसुदेव के पहुँचने पर अगाध यमुना जी ऐसी हो गईं कि कहीं भी कटि से ऊपर पानी नहीं रहा। यह सब योगमाया का प्रभाव था।[१] सरलता से यमुना को पारकर वसुदेव नन्द के द्वारपर पहुँचे। उसी समय वहाँ यशोदा के गर्भ से योगमाया अवतीर्ण हुई थीं । वह लघु कन्या के रूप में विराज रही थीं । इस अवसर पर सर्वेश्वरी भगवती ने स्वयं दासी का वेश बना लिया। अपने सुकोमल हाथ पर उस दिव्य कन्या को लेकर वह बाहर आईं और उसे वसुदेव जी को दे दिया। वसुदेव जी ने भी दासी-वेष धारण करके पधारने वाली उस सर्वेश्वरी के करकमल पर अपने पुत्र को रख दिया और कन्या को लेकर प्रसन्न हो वे वहाँ से चल दिये। कारागार में पहुँच कर वसुदेव ने कन्या को देवकी के पार्श्वभाग में लेटा दिया और वहीं बगल में चिन्तातुर हो बैठ गये। इसी समय कन्या ने रुदन प्रकट किया। इसे कृष्ण की अनुजा कहा गया है ।[२]

कन्या के रुदन को सुनकर रक्षक जग गये। उन्होंने कंस को इसकी सूचना दी। आतुर कंस कारागार के द्वार पर पहुँचा। फाटक बन्द थे। यह देखकर उसने वसुदेव को पुकारा—'वसुदेव, देवकी के बालक को मेरे समक्ष उपस्थित करो। यह मेरा काल है। अतः मैं इसे अभी मार डालूँगा।' कंस की बात सुनकर वसुदेव भय से काँप उठे। उनकी आँखे अश्रुपूरित हो उठीं। उन्होंने उस कन्या को कंस के हाथों पर रख दिया। उस कन्या को देखकर राजा कंस आश्चर्य में पड़ गया। उसने सोचा, 'आकाश से देववाणी हुई थी और नारदमुनि ने भी कहा था, पर सबके सब मिथ्या सिद्ध हुए। यह बेचारे वसुदेव कष्ट में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अतः यह झूठ कैसे बना सकते हैं। रक्षक भी सावधान हैं। हो-न-हो, यहाँ जन्म लेने वाला बालक कहीं अन्यत्र जन्म पा गया और कहीं अन्यत्र उत्पन्न होने वाली कन्या यहाँ पैदा हो गई। काल की गति बड़ी विषम है।'

ऐसा सोचकर कंस ने मार डालने की इच्छा से कन्या को हठात् छीन लिया। उसने उसके पैर पकड़े और उसे प्रस्तर पर दे मारना चाहा। इसी समय वह कन्या उसके हाथ से छूटकर आकाश में चली गई। वहाँ जाकर उसने दिव्य रूप धारण कर लिया और मधुर स्वर में कंस से कहा—'अरे पापी, मुझे मारने से तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा। तेरा प्रबल शत्रु उत्पन्न हो चुका है। किसी प्रकार भी उसका दमन नहीं किया जा सकता। तुझ नराधम को वह अवश्य मार डालेगा।' ऐसा कहकर वह देवी आकाश में विराजमान हो गई। चिन्तित और आश्चर्यचकित

---

१. तदैव कटिदघ्नी सा बभूवाशु सरिद्वरा ।
योगमायाप्रभावेण ततारानकदुन्दुभिः ॥ *देवीभागवत ४/२३/३०-३१*

२. सा विन्ध्यवासिनी विष्णोरनुजा वरदेश्वरी । *वही, १०/२/६*

कंस अपने प्रासाद में चला गया। उसके मन में भय के कारण घबराहट उत्पन्न हो गई थी। बकासुर, धेनुकासुर और वत्सासुर प्रभृति दानवों को बुलाकर उसने सद्यः उत्पन्न बालकों का वध करने की आज्ञा दी। उसने ऐसी ही आज्ञा देकर पूतना को नन्द के गोककुल में भेजा। उसने यह भी कहा कि—'धेनुकासुर, वत्सासुर, केशी, प्रलम्ब और बक ये समस्त दानव मेरा कार्य सिद्ध करने के विचार से गोकुल में ही डटे रहें।'[१] इस प्रकार की आज्ञा देकर कंस अपने भवन में चला गया। उसकी व्याकुलता और शत्रुरूप श्रीहरि की स्मृति समय के साथ बढ़ती जा रही थी।

प्रातःकाल नन्द के महल में पुत्रोत्सव का माहौल था। सभी परमानन्द-निमग्न थे । यह समाचार चतुर्दिक् प्रसरित हो गया। दूतों ने कंस को इसकी सूचना दी। वसुदेव की स्त्रियाँ आदि सभी नन्द के गोकुल में ठहरे हुए हैं—'यह बात कंस से अविदित न थी । यही कारण था कि नारदजी ने भी उससे कहा था—'गोकुल में जो नन्द प्रभृति तथा उनकी स्त्रियाँ हैं, वे सभी देवता हैं। देवकी और वसुदेव आदि भी देवता ही हैं। निश्चित ही वे तुम्हारे शत्रु हैं।' महर्षि का यह कथन भी कंस के सन्देह का प्राण था।

समय की गति अति प्रबल है। समयानुसार पूतना, बकासुर, वत्सासुर, महाबली धेनुकासुर और प्रलम्ब—ये सभी अमित तेजस्वी असुर श्रीकृष्ण के हाथों मृत्यु के कराल मुख के ग्रास बन गये। श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को हाथ पर उठा लिया—इस अद्भुत कर्म को सुनकर कंस के मन में विश्वास हो गया कि इन्हीं के द्वारा मेरा मरण निश्चित है। फिर केशी के निधन का समाचार मिलने पर उसका मन अत्यन्त उदास हो उठा।

इसके बाद कंस धनुष-यज्ञ के व्याज से श्रीकृष्ण और बलराम को बुलाने के यत्न में प्रयत्नशील हो गया। उसने उन दोनों बन्धुओं का वध करने के विचार से उन्हें ले आने के लिये अक्रूर जी को नन्द के गोकुल में भेजा। अक्रूर जी कंस का अनुशासन मानकर गोकुल गये और कृष्ण तथा बलराम को रथ पर बैठाकर मथुरा वापस लौट आये। यहाँ आकर दोनों भाइयों ने धनुष तोड़ दिया। रजक, कुवलयापीड हाथी, चाणूर और मुष्टिक के प्राण हर लिये। भगवान् कृष्ण ने शल और तोशल को भी मृत्यु के मुख में भेज दिया। उन्होंने लीलापूर्वक कंस का केश पकड़ लिया और उसे सदा के लिये भूतल पर सुला दिया। इसके अनन्तर कृष्णने माता-पिता को बन्धन से विमुक्त कर उनके अगाध दुःख को समाप्त किया।

---

१. यहाँ यह निर्देश नहीं किया गया है कि कंस ने अपने असुरों को नन्द के गोकुल में ही डटे रहने की आज्ञा क्यों दी।

कंस के वध के अनन्तर कृष्ण ने उग्रसेन को मथुरा के राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया। इसके बाद महामना वसुदेव जी ने अपने दोनों पुत्रों का सविधि यज्ञोपवीत संस्कार किया। संस्कार हो जाने पर वे दोनों बन्धु गुरु सांदीपनि जी के आश्रम पर विद्याध्ययन कर पुनः मथुरा वापस लौट आये। बारह वर्ष की वय में ही उन दोनो का विद्याध्ययन पूर्णता को प्राप्त हो चुका था.।

कृष्ण और बलराम मथुरा में विराजमान थे। उसी समय कंस के श्वसुर मगधाधिपति जरासन्ध ने उस नगरी पर आक्रमण किया। कृष्ण और बलराम ने उसे पराजित कर उसकी सारी सेना का विनाशकर डाला। जरासन्ध ने सत्रह बार मथुरापुरी पर आक्रमण किया। प्रत्येकबार मथुरावासी बुद्धिमान् श्रीकृष्ण युद्धभूमि में पधार कर उसके सैन्य-बल को पराजित करते रहे। जरासन्ध जब अपने उद्देश्य में सफल न हो सका तब उसने सम्पूर्ण म्लेच्छों के अधिपति कालयवन नामक योद्धा को भगवान् श्रीकृष्ण का सामना करने के लिये प्रेरणा दी। कालयवन ने मथुरा के लिये प्रस्थान किया। श्रीकृष्ण को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने प्रबुद्ध यादवों से सलाह कर सारे मथुरावासियों को द्वारका पहुँचा दिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रेष्ठ शिल्पियों के द्वारा उस पुरी के भवनों को ठीक करा दिया ।[१] अपने नगर के निवासियों को वहाँ स्थापित कर श्रीकृष्ण और बलराम मथुरा लौट आये। उस समय वह पुरी सुनसान पड़ी थी। उसी समय कालयवन ने मथुरा पर आक्रमण किया। भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा से बाहर निकले और लीलापूर्वक कालयवन के सामने से हो कर पैदल ही भाग चले। कालयवन दुर्वचन बोलता हुआ उनके पीछे दौड़ा। दौड़ते हुए वे दोनों वहाँ पहुँचे जहाँ महान् प्रतापी राजर्षि मुचुकुन्द शयन कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। मुचुकुन्द को देखकर कालयवन ने सोचा यह श्रीकृष्ण ही हैं। अतः उसने उनपर चरणों से प्रहार प्रारम्भ किया। मुचुकुन्द की निद्रा भग्न हो गई। उन्होंने क्रोधभरी दृष्टि से कालयवन को निहारा । उनकी दृष्टि पड़ते ही वह यवन जलकर भस्म हो गया। फिर उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त हुआ। वे भगवान् के चरणों में मस्तक झुका कर वन की ओर चल पड़े। श्रीकृष्ण भी बलराम को साथ लेकर द्वारका चले आये। वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण ने महाराज उग्रसेन को वहाँ का राजा बनाया और स्वयं इच्छानुसार विचरने लगे।

रुक्मिणी के विवाह का स्वयंवर सजा था। शिशुपाल से विवाह की बात सुनिश्चित हो चुकी थी। किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें हर ले आये। फिर उन्होंने

---

१. इस कथन से यह प्रतीत होता है कि द्वारका पहले से ही बसी हुई थी। श्रीकृष्ण ने उसका जीर्णोद्धार मात्र करवाया था।

रुक्मिणी के साथ विवाह कर लिया। तत्पश्चात् वे जाम्बवती, सत्यभामा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, भद्रा और नाग्निजिती प्रभृति दिव्य देवियों को बारी-बारी से ले आये और उन सबके साथ पाणिग्रहण-संस्कार किया। रुक्मिणी के गर्भ से सर्वप्रथम प्रद्युम्न का जन्म हुआ। उन्हें प्रसव-गृह से ही शम्बरासुर हर ले गया। उसने उन्हें मायावती के पास रहने की व्यवस्था बना दी ।[१] शोकसन्तप्त श्रीकृष्ण ने जगदम्बा की स्तुति की। प्रकट होकर जगज्जननी ने श्रीकृष्ण से कहा—'पूर्व शाप के कारण आपके पुत्र का हरण शम्बरासुर ने किया है। अत: आप चिन्ता न करें। षोडश वर्ष का हो जाने पर वह, आपका पुत्र, शम्बरासुर को बलपूर्वक मारकर स्वयं ही घर आ जायेगा।'

श्रीकृष्ण की पत्नियों में सत्यभामा का प्रतिष्ठित स्थान था। उन्होंने स्वर्ग से कल्पवृक्ष ले आने की बात अपने प्राणप्रिय श्रीकृष्ण से कही। उनकी आज्ञा मानकर भगवान् श्रीकृष्ण स्वर्ग पधारे। वे वहाँ से कल्पवृक्ष लाना चाहते थे। रोके जाने पर इन्द्र से युद्ध किया। इन्द्र पराजित हो गये। कल्पवृक्ष लाकर श्रीकृष्ण ने सत्यभामा के उद्यान में आरोपित कर दिया। सत्यभामा बड़ी आदरणीया थीं। उनकी प्रतिष्ठा की प्रतिष्ठापना के लिये भगवान् वृक्ष में बँध गये।[२] उन अपने प्राणनाथ को सत्यभामा ने दान कर दिया। दाता थीं सत्यभामा। आदाता थे मुनिवर नारद। दान की वस्तु थे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण। कैसा अद्भुत पावन संयोग था। तत्पश्चात् कृष्ण के बराबर सुवर्ण देकर सत्यभामा ने उन्हें मुक्त कर लिया। अथवा यह भी कह सकते हैं कि—सत्यभामा ने नारद को कनक का कृष्ण प्रदान कर उन्हें मुक्त कर लिया। जाम्बवती की प्रार्थना से श्रीकृष्ण ने शङ्कर की आराधना कर साम्ब जैसे पुत्र को प्राप्त किया था। उसी समय भगवान् शङ्कर ने श्रीकृष्ण से कहा था—'श्रीकृष्ण, तुम्हें बहुत से पुत्र होंगे। षोडश सहस्त्र पचास तुम्हारी स्त्रियाँ होंगी। प्रत्येक पत्नी के दस-दस पुत्र होंगे।' भगवान् शङ्कर के मौन हो जाने के बाद पार्वती ने कहा—'महाबाहो श्रीकृष्ण, सौ वर्षों तक सुखमय जीवन व्यतीत कर ब्राह्मण एवं गान्धारी के शाप से तुम्हारे कुल का संहार हो जायेगा। शाप के प्रभाव से सारे यदुवंशी परस्पर लड़कर मृत्यु के ग्रास बन जायेंगे। इसके बाद तुम भी अपने बन्धु बलराम के साथ अपने धाम में पधारोगे ।[३]

●

१. श्रीमद्भागवत में प्रद्युम्न को समुद्र में फेंकने की बात कही गई है।
२. बद्ध्वा वृक्षे हरिं सत्या नारदाय ददौ पतिम् । दत्त्वाऽथ कानकं कृष्णं मोचयामास भामिनी।। ४/२५/२७-२८
३. कृष्ण-कथा के लिये देखिये- *देवीभागवत,* ४/१८-२५

गङ्गा-कथा

पद्ममहापुराण

सृष्टि के प्रारम्भ में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के निवेदन से मूर्तिमती प्रकृति सात स्वरूपों में विभक्त हो गई—गायत्री, वाग्देवी, लक्ष्मी, उमादेवी, शक्तिबीजा, तपस्विनी और धर्मद्रवा। सातवीं प्रकृति धर्मद्रवा सभी धर्मों में प्रतिष्ठित रहने वाली है। उसे सभी प्रकृतियों में श्रेष्ठ जानकर ब्रह्माजी ने अपने कमण्डलु में धारण कर लिया। फिर परम प्रभावशाली भगवान् श्रीविष्णु ने बलि के यज्ञ के समय इसे प्रकट किया था। जिस समय वामन महाराज बलि से सङ्कल्प कराकर तीन पग पृथिवी नाप रहे थे उस समय उनके दोनों चरणों से सम्पूर्ण महीतल व्याप्त हो गया था। उनमें से एक चरण आकाश एवं ब्रह्माण्ड को भेद कर ब्रह्मा के सामने उपस्थित हुआ। उस समय ब्रह्मा ने कमण्डलु के जल से उस चरण का पूजन किया। भगवान् के चरण को धोकर जब वे पूजन कर रहे थे, तब उसका धोवन हेमकूट पर्वत पर गिरा। वहाँ से भगवान् शङ्कर के पास पहुँच कर वह जल गङ्गा के रूप में, उनकी जटा में स्थित हुआ। गङ्गा बहुत दिनों तक उनकी जटा में ही भ्रमण करती रहीं। तदनन्तर महाराज भगीरथ ने भगवान् शङ्कर की आराधना करके गङ्गा को पृथिवी पर उतारा। वे तीन धाराओं में प्रकट होकर तीनों लोकों में गईं । अत: संसार उन्हें त्रिस्रोता के नाम से भी जानता है। भगीरथ गङ्गाजी को लेकर वहाँ पहुँचे जहाँ उनके पितरों की शुष्क अस्थियाँ पड़ी थीं। अस्थियों में गङ्गाजल का स्पर्श होने से राजा सगर के पुत्र, अपने पितरों तथा वंशजों के साथ, स्वर्गलोक में पहुँच गये।[१]

उक्त कथा से कुछ भिन्नता रखती हुई गङ्गा की दो कथाएँ पद्मपुराण के ही उत्तरखण्ड में भी मिलती हैं। जिनका प्रारूप इस प्रकार है—

(क)

चक्रवर्ती नरेश सगर की दो रानियाँ थीं। महर्षि और्व के वरदान से एक को साठ सहस्र पुत्र हुए और दूसरी रानी के गर्भ से पञ्चजन नामक एक पुत्र हुआ जो राजा बना। पञ्चजन के अंशुमान्, अंशुमान् के दिलीप और दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए। महाराज भगीरथ कपिल मुनि के क्रोधानल में दग्ध अपने पूर्वजों का हित करने के लिये हिमालय पर्वत पर गये। वहाँ उन्होंने दस सहस्रवर्षों तक घोर तप किया। उनके तप से भगवान् विष्णु प्रसन्न हुए। उन्हीं के आदेश से गङ्गाजी

---

१. पद्महापुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय–६०

आकाश से चलीं और जहाँ विश्वेश्वर श्रीशिव नित्य विराजमान रहते हैं, वहाँ कैलास पर्वत पर उपस्थित हुईं। गङ्गा जी को आई हुई देखकर भगवान् शङ्कर ने उन्हें अपने जटाजूट में धारण कर लिया। दस सहस्र वर्षों तक गङ्गा शंकर के जटा-कलाप में दिग्भ्रान्त रहीं। उन्हें वहां से निकलने का मार्ग ही नहीं मिल रहा था। पुन: भगीरथ ने दस सहस्र वर्षों तक तपस्या कर शङ्कर को प्रसन्न किया। प्रसन्न हुए शङ्कर ने अपने मस्तक से एक बाल उखाड़ा और उसी के साथ त्रिपथगा गङ्गाजी को उन्हें अर्पण कर दिया। गङ्गा को लेकर भगीरथ पाताल में जहाँ उनके पूर्वज भस्म हुए थे, गये।[१]

(ख)

भगवान् वामन ने बलि से तीन पग पृथ्वी दान में प्राप्त की। नापने के समय उन्होंने विराट् रूप धारण किया। एक पग से सकल भूमण्डल को नाप लेने के अनन्तर सर्वेश्वर विष्णु ने अपने द्वितीय पग को ऊपर की ओर फैलाया। वह नक्षत्र, ग्रह और देवलोक को लाँघता हुआ ब्रह्मलोक के अन्त तक पहुँच गया। किन्तु फिर भी पूरा न पड़ा। उस समय ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु के जल से भगवान् के चरण को भक्तिपूर्वक धोया। श्रीविष्णु के प्रभाव से वह चरणोदक अक्षय हो गया। वह तीर्थभूत निर्मल जल मेरु पर्वत के शिखर पर गिरा और जगत् को पवित्र बनाने के लिये चारों दिशाओं में बह चला। वे चारों धाराएँ क्रमश: सीता; अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा के नाम से प्रसिद्ध हुईं। मेरु के दक्षिण ओर जो धारा प्रवाहित हुई, उसका नाम अलकनन्दा हुआ। वह तीन धाराओं में विभक्त होने के कारण त्रिपथगा और त्रिस्रोता कहलाई। वह लोकपावनी गङ्गा तीन नामों से प्रसिद्ध हुई। ऊपर स्वर्गलोक में मन्दाकिनी, नीचे पाताल लोक में भोगवती तथा मध्य अर्थात् मर्त्यलोक में वेगवती गङ्गा कहलाने लगी। गङ्गा मानवों को तारने के लिये प्रकट हुई हैं। जब गङ्गा मेरु पर्वत से नीचे गिर रही थीं, उस समय शङ्कर नें अपने आप को पवित्र करने के लिये उन्हें मस्तक पर धारण कर लिया था।

तदनन्तर राजा भगीरथ और महातपस्वी गौतम ने तपस्या के द्वारा शङ्कर को सन्तुष्ट कर उनसे गङ्गाजी की याचना की। प्रसन्न भगवान् शङ्कर ने जगत् के कल्याण के लिये उन दोनों महानुभावों को गङ्गा का जल दान कर दिया। महर्षि गौतम जिस गङ्गा को ले गये, वे गौतमी (गोदावरी) कही कई हैं[२] और राजा भगीरथ ने जिनको भूमि पर उतारा, वे भागीरथी गङ्गा के नाम से प्रसिद्ध हुईं।[३]

---

१. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय- २१-२२

२. गोदावरी की उत्पत्ति की यह कथा अन्य पुराणों से सर्वथा भिन्न है। इसमें गोदावरी को गङ्गा के समकक्ष महिमा-मण्डित किया गया है।

३. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड,

विष्णुमहापुराण

सूर्यवंशी सम्राट् महाराज सगर की दो पत्नियाँ थीं—काश्यपसुता 'सुमति' और विदर्भराजकुमारी 'केशिनी'। दोनों रानियों ने सन्तान की कामना से महर्षि और्व की उपासना की। प्रसन्न हुए महर्षि ने कहा—'एक से वंश की वृद्धि करने वाला एक पुत्र तथा दूसरी से आठ सहस्र पुत्र पैदा होंगे। इनमें से जिसको जो अभीष्ट हो वह इच्छापूर्वक उसी को ग्रहण कर सकती है।' महर्षि के उक्त कथन को सुनकर केशिनी ने एक तथा सुमति ने साठ सहस्र पुत्रों का वर माँगा। महर्षि ने तथास्तु कहा। समय आने पर केशिनी ने वंश की वृद्धि करने वाले 'असमञ्जस' नामक एक पुत्र को और काश्यपकुमारी सुमति ने साठ सहस्र पुत्रों को पैदा किया। असमञ्जस को एक ही पुत्र था—अंशुमान् । असमञ्जस बाल्यकाल से ही दुराचारी था। फलतः पिता ने उसका परित्याग कर दिया। सुमति के साठ सहस्र पुत्र भी असमञ्जस के ही अनुयायी थे। उनका चरित्र भी असमञ्जस के चरित्र जैसा ही था। इन लोगों के द्वारा संसार में यज्ञादि सन्मार्ग का उच्छेद हो जाने के कारण देवमण्डली दुःखी थी। अतः उसने पुरुषोत्तम के अंशभूत महर्षि कपिल से प्रार्थना की—'भगवन्, राजा सगर के ये सभी पुत्र असमञ्जस के चरित्र का ही अनुसरण कर रहे हैं। इन सबके असन्मार्ग में प्रवृत्त रहने से संसार की क्या दशा होगी? प्रभो, आप का अवतार दीनजनों की रक्षा के लिये हुआ है। अतः इस घोर विपत्ति से संसार की रक्षा कीजिये। देवों की इस दीन दशा को देखकर द्रवित हुए महर्षि ने कहा—'ये सब स्वल्पदिनों में ही विनष्ट हो जायेंगे।'

इसी समय महाराज सगर ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। अश्वमेधीय अश्व छोड़ा गया। उनके साठ सहस्र पुत्र अश्व की रक्षा में नियुक्त थे। उस सुरक्षित अश्व को कोई व्यक्ति चुराकर पृथिवी में घुस गया। तब उस अश्व के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए उनके पुत्रों में से प्रत्येक ने एक-एक योजन भूमि खोद डाली। पाताल में पहुँचकर उन राजकुमारों ने अपने अश्व को इधर-उधर चलते-फिरते देखा। उन लोगों ने अश्व के समीप ही अत्यन्त तेजस्वी महर्षि कपिल को सिर झुकाये बैठे देखा।

इस दृश्य को देखकर वे राजकुमार अपने अस्त्र-शस्त्रों को उठाकर 'यही हमारा अपकारी और यज्ञ में विघ्न डालने वाला है, अश्व के इस चुनाने वाले को मारो, मारो'—ऐसा चिल्लाते हुए उनकी ओर दौड़े। तदनन्तर मुनि ने वक्र नेत्र से उनकी ओर देखा। फलतः वे सभी साठ सहस्र राजकुमार अपने ही शरीर से उत्पन्न हुई अग्नि में जलकर भस्म हो गये। इस घटना का पता लगने पर महाराज

सगर ने असमञ्जस के पुत्र अंशुमान् को अश्वमेधीय अश्व लाने के लिये नियुक्त किया। अंशुमान् ने मुनि कपिल के पास पहुँच कर उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति की। प्रसन्न हुए मुनि ने कहा—'बेटा, जा, इस घोड़े को ले जाकर अपने दादा को दे और तेरी जो इच्छा हो वही वर माँग ले। तेरा पौत्र गङ्गाजी को स्वर्ग से भूतल पर लायेगा। भस्म हुए तुम्हारे पितरों के भस्म से गङ्गाजल के स्पर्शमात्र से वे तर कर स्वर्ग के भागी बनेंगे।' भगवान् कपिल के आदेश से अंशुमान् अश्व लेकर पितामह की यज्ञशाला में वापस आये। राजा सगर ने अश्व के उपलब्ध हो जाने पर अपना अश्वमेध यज्ञ पूरा किया। उन्होंने अपने पुत्रों के द्वारा खोदे हुए सागर को ही अपने अपत्य-स्नेह से अपना पुत्र माना। अंशुमान् के पुत्र थे दिलीप और दिलीप के पुत्र थे भगीरथ। भगीरथ ही गङ्गाजी को स्वर्ग से भूतल पर लाये। अत: गङ्गाजी को भागीरथी इस नाम से भी जाना जाता है।[१]

जाह्नवी नाम पड़ने का कारण—भगीरथ के द्वारा भूतल पर लाई गई गङ्गा कपिल मुनि के आश्रम की ओर बढ़ रही थीं। मार्ग में उन्होंने महर्षि जह्नु की यज्ञशाला को जल से आप्लावित कर दिया। फलत: क्रुद्ध हुए जह्नु ने सम्पूर्ण गङ्गा जी को ही पी लिया। फिर तो देवर्षियों ने महर्षि जह्नु को प्रसन्न किया और गङ्गाजी को इनकी पुत्री रूप से पाकर ले गये। अत: गङ्गाजी को जाह्नवी भी कहा जाता है।[२]

श्रीमद्भागवतमहापुराण

चक्रवर्ती सम्राट् सगर की दो पत्नियाँ थीं—सुमति और केशिनी। सुमति के साठ सहस्र पुत्र थे। केशिनी के एक ही पुत्र 'असमञ्जस' था। असमञ्जस के पुत्र का नाम था—अंशुमान् । सगर ने और्व ऋषि के आदेश से अश्वमेध-यज्ञ का आयोजन किया। उनके यज्ञ में जो घोड़ा छोड़ा गया था, उसे इन्द्र ने चुरा कर कपिल मुनि के आश्रम के पास ले जाकर बाँध दिया। सगर के साठ सहस्र पुत्र अश्व का अन्वेषण कर रहे थे। उन्होंने कपिल मुनि के आश्रम के समीप अश्व को देखकर उन्हें चोर-चोर कहना प्रारम्भ किया। मुनि ने आँखें खोलीं । फलस्वरूप साठ सहस्र राजकुमार जलकर भस्म हो गये। इसके बाद सम्राट् सगर की आज्ञा से अंशुमान् अश्व का अन्वेषण करने निकले। उसी क्रम में उन्होंने राजकुमारों के शरीर के भस्म के पास ही अश्व को देखा। वहीं भगवान् के अवतार कपिल मुनि बैठे हुए थे। उन्हें देखकर उदारहृदय अंशुमान् ने उनके चरणों में प्रणाम किया और हाथ जोड़कर एकाग्र मन से स्तुति की।

---

१. विष्णुमहापुराण, चतुर्थ अंश, अध्याय-४

२. विष्णुमहापुराण, चतुर्थ अंश, अध्याय-७

अंशुमान् की स्तुति से प्रसन्न होकर कपिल मुनि ने कहा—'पुत्र, यह अश्व तुम्हारे पितामह का यज्ञ-पशु है। इसे तुम ले जाओ। तुम्हारे भस्म हुए पितृव्य-जनों का उद्धार एकमात्र गङ्गाजल से ही होगा। इसके अतिरिक्त उनके उद्धार का अन्य उपाय नहीं है।' मुनि की बात सुनकर अंशुमान् की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। बड़ी ही विनम्रता से उन्होंने कपिल जी की परिक्रमा की और अश्व को अध्वमेध-यज्ञस्थल पर लाये। महाराज सगर ने उस यज्ञ-पशु के द्वारा यज्ञ की अवशिष्ट क्रियाएँ समाप्त कीं । फिर वे राजगद्दी पर अंशुमान् का अभिषेक कर जंगल के लिये प्रस्थान किये।

कपिल मुनि के आदेश का अनुवर्तन करत्ते हुए अंशुमान् ने गङ्गाजी को लाने की कामना से दीर्घकाल तक घोर तप किया। किन्तु सफलता ने उनका वरण नहीं किया। वे गङ्गा को भूतल पर लाने में समर्थ न हुए। अंशुमान् के पुत्र दिलीप ने भी गङ्गाको भूतल पर लाने के लिये घोर तप किया। किन्तु, पिता की भाँति, वे भी असफल ही रहे। समय पर मृत्यु ने उनका भी वरण कर लिया। दिलीप के पुत्र थे भगीरथ। उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर, भूतल पर चलने के भगीरथ के प्रस्ताव को गङ्गाजी ने स्वीकार कर लिया। फिर भगीरथ ने तप कर भगवान् शङ्कर को प्रसन्न किया। शङ्कर ने स्वर्ग से उतरती हुई गङ्गा के वेग को अपनी जटाओं में धारण कर लिया। इसके बाद राजर्षि भगीरथ त्रिभुवनपावनी गङ्गाजी को वहाँ ले गये, जहाँ उनके पितरों के शरीर राख के ढेर बने पड़े थे। वे वायु के समान वेगशाली रथ पर आरूढ होकर आगे-आगे चल रहे थे और उनके पीछे-पीछे गङ्गा जी दौड़ रही थीं। इस प्रकार गङ्गा-सागर-सङ्गम पर पहुँच कर उन्होंने सगर के भस्म हुए पुत्रों को जल में डुबो दिया, स्वर्ग में पहुँचा दिया।[१]

टिप्पणी—१. श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अध्याय इक्कीस से यह सूचित होता है कि भगीरथ जिस गङ्गाजी को भूतल पर लाये वह ब्रह्माजी के कमण्डलु में जलरूप से विराजमान थीं। जिस समय वामन त्रिलोकी को नाप रहे थे उस समय ब्रह्मा ने अपने लोक में पहुँचे हुए उनके चरण को धोकर कमण्डलु में रख लिया था। यही है त्रिलोकपावनी गङ्गा।[२]

२. नारदपुराण में वर्णित गङ्गा-कथा वामन -कथा के अभिन्न अंग के रूप में उपलब्ध होती है। अत: उसे नारदपुराण के वामन-कथा के साथ ही लिखना समीचीन समझा गया है। इसलिये गङ्गा-कथा को वहीं देखना चाहिये।

---

१. श्रीमद्भागवत, नवमस्कन्ध, अध्याय- ८-९

२. श्रीमद्भागवत, अष्टमस्कन्ध, अध्याय- २१

मार्कण्डेयमहापुराण

जगत् के कारण नारायण का लोक सकल भू-मण्डल का आधार है। त्रिपथगामिनी गङ्गा की प्रवृत्ति वहीं से हुई है। विष्णुलोक से चली हुई गङ्गा मेरुपवर्त के शृङ्ग पर गिरी। वहाँ वह चार भागों में विभक्त होकर चारों दिशाओं में प्रवाहित हुई। पूर्व दिशा में महानदी का जो प्रवाह प्रवाहित हुआ उसे 'सीता' कहते हैं। दक्षिण की दिशा में उस पवित्र नदी की जो धारा बही उसे 'अलकनन्दा' कहा जाता है। पश्चिम दिशा की धारा 'सुचक्षु' तथा उत्तर दिशा की धारा 'भद्रा' कही जाती है। चारों दिशाओं की ये धाराएँ विभिन्न दिशा के सागरों में गिरती हैं।

अलकनन्दा मेरु के उत्तुंग शृंग से शैलराज हिमालय के ऊपर आई। वहाँ उसे शङ्कर ने अपनी जटाओं में धारण कर लिया। वे गङ्गा को छोड़ते ही न थे। भगीरथ ने उपवास और स्तुतियों से शङ्कर को सन्तुष्ट किया। प्रसन्न हुए शम्भु ने गङ्गा को अपनी जटाओं से मुक्त कर दिया। फिर तो भगीरथ गङ्गा को लेकर उस ओर बढ़े जहाँ उनके पूर्वज कपिल मुनि की क्रोधाग्नि में भस्म हो गये थे। आगे-आगे भगीरथ का रथ चलता था और उसके पीछे-पीछे गङ्गा का प्रवाह प्रवहमान होता था।[१]

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

अत्यन्त प्रतापी सम्राट् महाराज सगर का जन्म सूर्य-वंश में हुआ था। उनकी अनिंद्यसुन्दरी दो रानियाँ थीं—वैदर्भी और शैब्या। शैब्यां को एक ही पुत्र था। उसका नाम था—असमञ्जस। वैदर्भी ने शिव की आराधना की। फलतः वह साठ सहस्र पुत्रों की जननी बनी। उनमें कलेश्वर सर्वाधिक तेजस्वी था। वैदर्भी के सारे पुत्र कपिल मुनि के शाप से जल कर भस्म हो गये। इस दुःख से आक्रान्त होकर सगर ने राज्य का परित्याग कर जङ्गल का आश्रयण लिया। भाइयों को तारने की बुद्धि से सगर के पुत्र असमञ्जस ने गङ्गा को भूतल पर लाने के लिये घोर तपस्या की। किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। काल ने उन्हें अपना ग्रास बना लिया। असमञ्जस के पुत्र का नाम था—अंशुमान् । गङ्गा को ले आने के लिये दीर्घ काल तक तपस्या करने के पश्चात् वे भी कराल काल के गाल में चले गये।

अंशुमान् के पुत्र भगीरथ थे। भगीरथ श्रीकृष्ण के अनन्य सेवक भक्त थे। उन्होंने गङ्गा को ले आने का निश्चय करके बहुत समय तक कठोर तप किया। उनके तप से श्रीहरि (श्रीकृष्ण) प्रसन्न हुए। उन्होंने गङ्गाजी को भगीरथ के साथ भूतल पर जाने का आदेश दिया। गङ्गा ने श्रीहरि के आदेश को शिरोधार्य किया।

---

१. मार्कण्डेयमहापुराण, अध्याय- ५६

फलतः गङ्गा ने भगीरथ का अनुगमन किया। वे उन्हें लेकर वहाँ पहुँचे, जहाँ सगर के साठ हजार पुत्र जलकर भस्म हो गये थे। गङ्गा का स्पर्श करके बहने वाले वायु का स्पर्श होते ही वे राजकुमार सद्यः वैकुण्ठ में चले गये। भगीरथ के सत्प्रयास से गङ्गा का आगमन हुआ है। अतः गङ्गा को "भागीरथी" भी कहते हैं।

गङ्गा का प्राकट्य–एक समय की बात है-कार्तिक की पूर्णिमा थी। गोलोक धाम में राधा-महोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जा रहा था। राधा की भली-भाँति उपासना कर भगवान् श्रीकृष्ण रासमण्डल में विराजमान थे। भगवती सरस्वती के अनन्तर ब्रह्मा की प्रेरणा से भगवान् शङ्कर ने वहाँ अपनी गान-कला का प्रदर्शन किया। उनकी गान-कला के प्रभाव से सकल रास-मण्डली मूर्च्छित-सी हो गई। राधा के सहित श्रीकृष्ण इतने उल्लसित हुए कि वे गलकर जलमय हो गये। राधा-कृष्ण के अदृश्य हो जाने पर विरहव्याकुल देव-ऋषि मण्डली ने आर्तभाव से श्रीकृष्ण की स्तुति की। तदनन्तर आकाशवाणी ने देवों को आश्वस्त करते हुए कहा—'मैं सर्वात्मा श्रीकृष्ण और मेरी स्वरूपभूता शक्ति श्रीराधा—हम दोनों ने ही भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये यह जलमय विग्रह धारण कर लिया है।' फिर आगे अकस्मात् परब्रह्म परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण भगवती श्रीराधा के साथ वहाँ प्रकट हो गये। वहीं आगे गङ्गा के विष्णुपत्नी होने का रोचक प्रसङ्ग भी वर्णित है।[१]

टिप्पणी–पीछे मार्कण्डेयमहापुराण के अनुसार गङ्गा-कथा का उल्लेख किया जा चुका है। उसी प्रकार की गङ्गा कथा का वर्णन लिङ्गमहापुराण, पूर्वभाग, अध्याय ५२ में भी उपलब्ध होता है। अतः उसका अलग से उल्लेख नहीं किया गया है।

स्कन्दमहापुराण

स्कन्दमहापुराण में गङ्गा की महिमा विशालरूप से गाई गई है।[२] वहाँ के वर्णन से यह सूचित किया गया है कि—सूर्यवंश के महातेजस्वी राजा थे भगीरथ। उनके पितामह ब्राह्मण की शापाग्नि में दग्ध होकर बड़ी दुर्गति में पड़े हुए थे। उनके उद्धार के लिये महाराज भगीरथ ने हिमालय में जाकर अति घोर तपस्या की। उनकी तपस्या से सन्तुष्ट हो गङ्गाजी ने भूतल पर आना स्वीकार किया। किन्तु समस्या यह थी कि उनके वायु-तुल्य वेग को कौन धारण करेगा। इसके लिये भगीरथ ने आशुतोष भगवान् शिव की आराधना की। शङ्करजी तैयार हो गये गङ्गा के वेग को रोकने के लिये। गङ्गाजी का स्वर्ग से अवतरण हुआ। शङ्करजी

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, प्रकृतिखण्ड, अध्याय-१० और उसके आगे भी।

२. स्कन्दमहापुराण, काशीखण्ड, पूर्वार्द्ध, अ०- २७-२९

ने उन्हें अपनी जटाओं के जञ्जाल में धारण कर लिया। फिर तो भूतल पर गङ्गा का प्रवाह आरम्भ हुआ। उनके जल के स्पर्श से भगीरथ के पूर्वज तर कर स्वर्ग सिधारे।

पाप के विनाश में जो शक्ति गङ्गा में समाहित है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। वह सब दोषों को जलाने वाली तथा सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली है। जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत शतशः खण्डित होकर बिखर जाता है, उसी प्रकार पापराशि भी गङ्गाजी के स्मरण मात्र से विनष्ट हो जाती है। जो व्यक्ति सोते-जागते, खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, जप-ध्यान करते गङ्गाजी का स्मरण करता है, वह संसार-बंधन से मुक्त हो जाता है।

कूर्ममहापुराण

जिस समय बलि से तीन पग पृथिवी का दान लेकर वामन अवामन हो त्रिलोकी को नाप रहे थे, उस समय उनका पैर प्रजापति-लोक से ब्रह्मलोक की ओर बढ़ा। उसके आघात से ब्रह्माण्ड का ऊपरी भाग भिन्न हो गया, सछिद्र बन गया। जिससे अत्यन्त सुशीतल, पुण्य शालियों के द्वारा सुसेवित महाजल नीचे की ओर गिरा। यही जल सरिद्वरा गङ्गा के नाम से जाना गया। पहले इसकी स्थिति आकाश में ही थी।[१]

मत्स्यमहापुराण

कैलास की उत्तर दिशा में हिरण्यशृङ्ग नामक मनोहर पर्वत है। इसके पादप्रान्त में बिन्दुसर नामक रमणीय दिव्य सरोवर है। यहीं पर राजर्षि भगीरथ ने, 'मेरे पूर्वज गङ्गा-जल से हड्डियों के अभिषिक्त हो जाने पर स्वर्ग चले जाँय' इस भावना से भावित होकर गङ्गा को भूतल पर लाने के लिये बहुत वर्षों तक (तप करते हुए) निवास किया था। इसलिय त्रिपथगा गङ्गा देवी सर्वप्रथम यहीं प्रतिष्ठित हुई थीं। वे सोमपर्वत के पाद से निकल कर सात भागों में विभक्त हो गईं।[२]

गङ्गादेवी स्वर्गलोक और अन्तरिक्ष को पवित्र कर भूतल पर आईं। शिवजी के शिर पर गिरीं। शिव ने अपनी योगमाया के प्रभाव से उन्हें वहीं रोक दिया। गङ्गाजी इस पर क्रुद्ध हो उठीं। उन्होंने सोचा-'मैं अपनी धारा से शङ्कर को बहाती हुई, पृथिवी को फोड़कर पाताल में प्रवेश कर जाउँगी।' जब शङ्कर को गङ्गा का यह साभिमान अभिप्राय विदित हुआ तो वे क्रुद्ध होकर गङ्गा को अपने अङ्गों में

---

१. भित्वा तदण्डस्य कपालमूर्ध्वं जगाम दिव्याभरणोऽथ भूयः।
अथाण्डभेदान्निपपात शीतलं महाजलं पुण्यकृद्भिश्च जुष्टम्॥
प्रवर्तिता चापि सरिद्वरा सा गङ्गेत्युक्त्वा ब्रह्मणा व्योमसंस्था। *कूर्ममहापुराण, १/१७/५५५६*

२. रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः। गङ्गार्थे स तु राजर्षिरुवास बहुलाः समाः।
दिवं यास्यन्तु मे पूर्वे गङ्गातोयाप्लुतास्थिकाः। तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता॥
मत्स्यमहापुराण, १२१/२६-२७

ही विलीन कर लेने का विचार करने लगे। किन्तु इसी समय सम्मुख आये हुए भगीरथ पर शिव की दृष्टि पड़ी। भगीरथ भूख से व्याकुल थे। उनकी इन्द्रियाँ विकल हो गई थीं। उन्हें देखकर शङ्कर ने सोचा-'यह नरेश तो पहले ही इस नदी को भूतल पर लाने के लिये तप द्वारा मुझे सन्तुष्ट कर चुका है।' फिर अपने द्वारा राजा को दिये गये वरदान का स्मरण कर उन्होंने अपने क्रोध को रोक लिया। तत्पश्चात् गङ्गा नदी को धारण करते समय ब्रह्मा द्वारा कहे गये वचनों को सुनकर तथा भगीरथ की उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर ने अपने तेज से रोकी गई गङ्गा नदी को छोड़ दिया । इसके बाद गङ्गा सात धाराओं में विभक्त होकर प्रवाहित हुईं ।

गङ्गा की तीन धाराएँ पूर्वाभिमुखी तथा तीन पश्चिमाभिमुखी प्रवाहित हुईं। सप्तम धारा स्वयं भागीरथी गङ्गा थी। पूर्व दिशा में प्रवाहित धाराओं का नाम नलिनी, ह्लादिनी और पावनी है तथा पिश्चम दिशा में प्रवाहित होने वाली तीनों धाराएँ सीता, चक्षु और सिन्धु नाम से जानी जाती है। सप्तम धारा भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे दक्षिण दिशा में प्रवाहित होती हुई जाकर दक्षिण सागर में विलीन हो गई। यही कारण है कि उसे भागीरथी गङ्गा के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार ये सात नदियाँ बिन्दुसर से निकली हुई हैं।[१]

ब्रह्माण्डमहापुराण

ब्रह्माण्डमहापुराण में गङ्गा की कथा दो भागों में उपलब्ध होती है। दोनों भाग मिलकर एक पूर्ण कथा का रूप देते हैं। उनमें पूर्ण साम्य है। फिर भी सुगमता के लिये यहाँ दोनों भागों का उल्लेख किया जा रहा है।

(क)

हिमालय की उत्तुंग हिमशृंखलाओं के मध्य कैलास नामक पर्वत है। वह भगवान् शङ्कर का निवास-स्थान है। उसी के समीप बिन्दु सरोवर है। राजा भगीरथ ने, गङ्गा को लाने के लिये, वहीं तपस्या की थी। उनकी इच्छा थी कि हमारे पूर्वज गङ्गा के जल के स्पर्श से स्वर्गगामी बनें। उनकी तपस्या के प्रभाव से गङ्गा ब्रह्मलोक से चली। उनका मानस अभिमान से भरा हुआ था। वे सोचती थीं भूतल का भेदन कर अपनी लहरियों से शङ्कर को भी बहाती हुई पाताल लोक को चली जाऊँगी ।[२] वे क्रोध से भरी हुई थीं। उनके अभिमान को जानकर शङ्कर क्रुद्ध हो उठे। वेग से नीचे गिरती हुई गङ्गा को उन्होंने योगमाया के प्रभाव से अपनी जटाओं में निरुद्ध कर लिया।

---

१. सप्तमी त्वानुगा तासां दक्षिणेन भगीरथम् ।
तस्मात् भागीरथी सा वै प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ।। *मत्स्यमहापुराण, १२१/४१*

२. भित्त्वा विशामि पातालं स्रोतसा गृह्य शङ्करम् ।। *२/१८/३३*

इसी समय शङ्कर की दृष्टि अपने समक्ष खड़े हुए भगीरथ पर पड़ी। वे अत्यन्त क्षीण हो गये थे। धमनियाँ ही पूरे शरीर में दृग्गोचर होती थीं। उनकी इन्द्रियाँ भूख से व्याकुल थीं। शङ्कर ने सोचा इन्होंने गङ्गा को रोकने के लिये पहले ही मेरी आराधना की थी। मैंने भी इनको वरदान दिया था कि मैं गङ्गा को अवरुद्ध कर लूँगा। फिर तो भगीरथ की उग्र तपस्या से सन्तुष्ट शङ्कर ने गङ्गा को अपनी जटाओं की माला से विसर्जित कर दिया। शङ्कर के द्वारा विसर्जित गङ्गा-प्रवाह सात रूपों में विभक्त हो गया। इनमें से नलिनी, ह्लादिनी और पावनी ये तीन धाराएँ पूरब की ओर प्रवाहित हुईं तथा सीता चक्षु एवं सिन्धु पश्चिम की ओर बहीं। सातवीं दक्षिण की ओर भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे चली। इसीलिये यह भागीरथी कही जाती है। यह जाकर पूरब में खारे सागर के आलिङ्गन में आबद्ध हो जाती है।[१]

(ख)

चक्रवर्ती नरेश सगर का बेटा था—अंशुमान् ! । अंशुमान् के पुत्र थे-दिलीप। दिलीप के सुत हुए-भगीरथ। दिलीप ने तरुण भगीरथ के कन्धे पर राज्य का भार रखकर तपस्यार्थ वन-गमन किया। भगीरथ सुख से पृथिवी का पालन कर रहे थे। सारा राज्य सुख-समृद्धि से भरा था। किन्तु एक चिन्ता राजा को व्यग्र बनाये हुए थी। उन्होंने सुन रक्खा था कि उनके साठ सहस्र पूर्वज कपिल के कोपानल में दग्ध हो चुके हैं। उन्हें यह भी ज्ञात था कि ब्रह्मदण्डदग्ध प्राणियों को सद्गति सुलभ नहीं होती। अत: अपने पूर्वजों को स्वर्ग पहुँचाने की कामना से भगीरथ राज्य का भार योग्य मन्त्री को समर्पित कर तपस्या करने वन चले गये।

सर्वप्रथम भगीरथ ने आयु की अभिवृद्धि के लिये कमलोद्भव ब्रह्मा की समाराधना कर अपना अभीप्सित पूरा किया। फिर उन्होंने तपस्या कर स्वर्ग से भूतल पर लाने के लिये गङ्गा को तैयार किया। गङ्गा के द्वारा भूतल पर आने की स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर महाराज भगीरथ ने तपस्या करके शङ्कर को अपने सिर पर गङ्गा को धारण करने के लिये प्रसन्न किया, क्योंकि शङ्कर के अतिरिक्त कोई अन्य गङ्गा के वेग को रोकने में समर्थ नहीं था। भगवान् शङ्कर सन्नद्ध हो मेरु पर्वत के मस्तक पर खड़े हुए। महावेग से साभिमान हरहराती आती गङ्गा को हरने अपने शिर पर धारण कर लिया। वे उनके जटिल जटा-मण्डल में इस प्रकार विलीन हो गईं मानों चुल्लू भर जल हो। गङ्गा का सारा अभिमान समाप्त हो गया। भगीरथ ने फिर तपस्या द्वारा शङ्कर को, गङ्गा को भूतल पर छोड़ने के लिये,

१. ब्रह्माण्डमहापुराण, २/१८/४२

प्रसन्न किया। शिव ने अपने जटा-मण्डल को निचोड़ा। गङ्गा भूतल पर गिरीं। उन्हें लेकर भगीरथ वहाँ के लिये चले जहाँ कपिल के आश्रम में उनके पूर्वज दग्ध हुए थे। आगे-आगे भगीरथ का रथ चल रहा था और पीछे-पीछे सुरसरिता उनका अनुसरण कर रही थी। मार्ग में महाराज जह्नु यजन कर रहे थे। उनका सारा यज्ञस्थल जल से आप्लावित हो उठा। वे क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने समग्र गङ्गा-जल को चुल्लू में उठाकर पी लिया। भगीरथ के समक्ष एक बार पुनः विकट समस्या आकर खड़ी हो गई। उन्होंने सौ वर्ष तक जह्नु मुनि की सुश्रूषा की। मुनि प्रसन्न हुए और फिर उन्होंने गङ्गा को अपने शरीर से निकाल दियाा। यतः गङ्गा जह्नु के जठर से निकली थीं। अतः संसार में वे जाह्नवी के नाम से विख्यात हुईं।[१]

जह्नु के जठर से निकाल कर भगीरथ गङ्गा को वहाँ ले गये जहाँ उनके पितर कपिल के कोपानल में दग्ध हुए थे। दग्ध सगर-पुत्रों के अस्थि-भस्म के गङ्गा-जल के स्पर्शमात्र से उनका निरय से उद्धार हो गया। वे सभी-के-सभी स्वर्ग चले गये।[२] राज-पुत्रों का उद्धार कर गङ्गा उसी मार्ग से प्रवाहित होती हुई पूर्वसागर में जाकर विलीन हो गईं ।

मेरु के शिखर पर शिव ने जब गङ्गा जी को छोड़ा तो उनके चार प्रवाह चतुर्दिक् प्रवाहित हुए। अतः गङ्गा के चार नाम हो गये—सीता, अलकनन्दा, सुचक्षु और भद्रवती ।

देवीभागवत

सगर सूर्यवंशी सम्राट् थे। उनकी दो रानियाँ थीं—वैदर्भी और शैव्या। शैव्या के एक ही पुत्र थे। उनका नाम था—'असमञ्जस'। वैदर्भी के साठ सहस्त्र पुत्र थे। वे सभी तेजस्वी कुमार कपिल मुनि के शाप से जलकर भस्म हो गये। उन्हें तारने के लिये गङ्गा को भू-तल पर लाने हेतु असमञ्जस ने बहुत दिनों तक तपस्या की। अन्त में काल ने उन्हें अपना ग्रास बना लिया। असमञ्जस के पुत्र का नाम अंशुमान् था। गङ्गा को लाने के लिये उन्होंने भी चिरकाल तक तपस्या की थी। किन्तु उन्हें भी सफलता न मिली। काल ने उन्हें भी अपना कलेवा बना दिया।

अंशुमान् के पुत्र भगीरथ थे। गङ्गा को लाने का दृढ़ संकल्प करके उन्होंने चिरकाल तक घोर तपस्या की। अन्त में सफलता देवी ने उनका वरण किया। श्रीकृष्ण भगवान् का उन्हें साक्षात् दर्शन हुआ। भगीरथ चाहते थे कि उनके पूर्वज

१. अतन्द्रितो वर्षशतं शुश्रूषित्वा स तं पुनः ।
तस्मात्प्रसन्नान्नृपतिर्लेभे गङ्गां महात्मनः ॥
उषित्वा सुचिरं तस्य निःसृता जठराद्यतः ।
प्रथितं जाह्नवीत्यस्यास्ततो नामाभवद्भुवि ॥ *ब्रह्माण्ड पु० ३/५६/४६-४८*

२. निरयात् सागराः सर्वे नष्टपापा दिवं ययुः ॥ *ब्रह्माण्ड पु० ३/५६/५०*

तर जाँय। इसका वरदान भी उन्हें भगवान् से मिल गया। भगवान् ने गङ्गा को आदेश दिया—'सुरेश्वरि, तुम सरस्वती के शाप से अभी भारतवर्ष में जाओ।[१] मेरी आज्ञा के अनुसार सगर के सभी पुत्रों को पवित्र करो। तुमसे स्पृष्ट वायु का संयोग प्राप्त कर ही वे सभी राजकुमार मेरे धाम में चले जायेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण के आदेश को प्राप्त कर गङ्गा भूतल पर पधारीं। गोलोकधाम में शङ्कर के संगीत से राधा-कृष्ण का श्रीविग्रह ही विगलित होकर जलमय बन गया था। वही गङ्गाजल है।

बलि को बाँधने के लिये विष्णु ने वामन का रूप धारण किया था। जब वे त्रिलोकी को नाप रहे थे, उस समय उनके बायें पैर के अंगुष्ठ से ब्रह्माण्ड के ऊर्ध्व भाग में छिद्र हो गया था। उसके मध्य भाग से गङ्गा प्रकट हुईं।[२] वह स्वर्ग के शिखर पर आकर रुक गईं । गङ्गा में अखिल जगत् के कल्मष को धोने की पूर्ण क्षमता है। इसे भगवत्पदी भी कहते हैं। सहस्र युग व्यतीत होने पर यह वहाँ से चल कर स्वर्ग के उस शिखर पर पधारीं जिसे 'विष्णुपदी' भी कहते हैं। यह वही स्थान हैं जहाँ उत्तानपादकुमार ध्रुव निवास करते हैं। वहीं सप्तर्षियों का भी वास है। ये गङ्गा की प्रदक्षिणा किया करते हैं। तदनन्तर वैकुण्ठ से चलकर गङ्गा ब्रह्मलोक में आ गईं । ब्रह्मलोक में आने पर गङ्गा के चार भाग बन गये और चार नामों से प्रसिद्ध होकर वह चार दिशाओं में प्रवाहित हो चलीं। अन्त में वे गङ्गा सागर की गोद में जाकर सिमट जाती हैं। गङ्गा के चारों प्रवाहों के नाम इस प्रकार है-सीता, अलकनन्दा, चक्षुष् और भद्रा। सीता जाकर क्षीरसागर में समाहित होती है। चक्षुष् नाम से प्रसिद्ध गङ्गा माल्यवान् पर्वत से निकल कर केतुमालवर्ष में प्रवाहित होती हुई पश्चिम सागर में जा मिली। अलकनन्दा ब्रह्माण्ड के दक्षिण से होती हुई हेमकूट पर्वत के शिखर पर जा पहुँची। फिर भारतवर्ष में प्रवाहित होती हुई वह दक्षिण सागर में जाकर मिल जाती है। गङ्गा की चतुर्थ धारा भद्रा शृङ्गवान् पर्वत से निकली। त्रिलोकी को पवित्र करने वाली यह गङ्गा वहाँ से प्रवहमान होती हुई समुद्र में पहुँचती है। इसके प्रवाह से मध्य के उत्तर कुरु प्रदेश परमतृप्त हुए हैं।

अखिल भू-मण्डल के-नौ वर्षों में भारत वर्ष 'कर्मक्षेत्र' कहा जाता है। अन्य आठ वर्ष भोग-भूमियाँ हैं । •

---

१. गङ्गा और सरस्वती के परस्पर शाप की पूरी कथा-श्रीराधाजी का गङ्गा पर रोष, श्रीकृष्ण को राधा का उपालम्भ, श्रीराधा के भय से गङ्गा का श्रीकृष्ण के चरणों में छिप जाना, फिर गङ्गा का प्रकट होना तथा गङ्गा के विष्णु-पत्नी होने का प्रसङ्ग देवी भागवत के नवम स्कन्ध, एकादश अध्याय से चतुर्दश अध्याय तक सविधि वर्णित है।

२. वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नस्य च नारद ।
अण्डोर्ध्वभागरन्ध्रस्य मध्यात् संविशति दिवः ॥८/७/१७

गणेश-कथा

पद्ममहापुराण

पार्वती से विवाह करने के अनन्तर भगवान् शङ्कर उनके साथ एकान्त वनों में विहार करने लगे। देवी के प्रति उनके हृदय में अगाध अनुराग था। एक समय की बात है—गिरिजा ने सुगन्धित तेल और चूर्ण से अपने शरीर में उबटन लगवाया। उबटन से जो मैल गिरा उसे हाथ में उठाकर उन्होंने एक पुरुष की आकृति बना डाली। इसका मुख हाथी के समान था। फिर खेल करते हुए भगवती शिवा ने उसे गङ्गाजी के जल में डाल दिया। गङ्गाजी पार्वती को अपनी सखी मानती थीं। उनके जल में पड़ते ही वह पुरुषाकृति विशालकाय हो गई। पार्वती देवी ने उसे 'पुत्र' कहकर पुकारा। फिर गङ्गाजी ने भी पुत्र कहकर सम्बोधित किया। देवों ने उन्हें गाङ्गेय कहकर सम्मानित किया। इस प्रकार गजवदन देवों के द्वारा पूजित एवं सम्मानित हुए। कमलोद्भव ब्रह्माजी ने उन्हें गणों का आधिपत्य प्रदान किया। पद्मपुराण की कथा का यही सार है।[१]

गणेश की अग्रपूज्यता का कारण—कार्तिकेय और गणेश का जन्म होने के अनन्तर देवों की पार्वती जी पर बड़ी श्रद्धा हुई। उन्होंने अमृत से तैयार किया हुआ एक दिव्य मोदक (लड्डू) पार्वती के हाथ पर दिया। मोदक को देखकर दोनों बालक माता से माँगने लगे। तब पार्वती देवी पुत्रों से बोलीं—'मैं पहले इसके गुणों का वर्णन करती हूँ, तुम दोनों सावधान होकर सुनो। इस मोदक के सूँघने मात्र से अरमत्व प्राप्त होता है। जो इसे सूँघता अथवा खाता है, वह सम्पूर्ण शास्त्रों का मर्मज्ञ, सब तन्त्रों में प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञान के तत्त्व को जानने वाला और सर्वज्ञ होता है। 'पुत्रों, तुममें से जो धर्माचरण के द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त करके आयेगा, उसी को यह मोदक दूँगी। तुम्हारे पिता की भी यह सम्मति है।

माता के मुख से ऐसी बात सुनकर परम चतुर स्कन्द मयूर पर आरूढ हो त्रिलोकी के तीर्थों की यात्रा पर निकल पड़े। शीघ्र ही उन्होंने समस्त तीर्थों में स्नान कर लिया। इधर लम्बोदर गणेश स्कन्द से भी अधिक बुद्धिमान् निकले। वे माता-पिता की परिक्रमा करके बड़ी प्रसन्नता के साथ पिताजी के सम्मुख खड़े हो गये।

---

१. (क) पद्ममहापुराण, सृष्टिखण्ड
(ख) पद्मपुराण की इस कथा से पूर्णतः मिलती-जुलती कथा मत्स्यपुराण, मोर प्रकाशन, के अध्याय १५३ में भी वर्णित है।

फिर स्कन्द भी आकर पिता के सामने खड़े हुए और बोले-'मुझे मोदक दीजिये।' तब पार्वती ने उन दोनों पुत्रों की ओर देखकर कहा—'समस्त तीर्थों में किया हुआ स्नान, सम्पूर्ण देवों को किया गया नमस्कार, सब यज्ञों का अनुष्ठान तथा सब प्रकार के व्रत, मन्त्र, योग और संयम का पालन—ये सभी साधन माता-पिता के पूजन के सोलहवें अंश के भी बराबर नहीं हो सकते। अत: यह गणेश सैकड़ों पुत्रों एवं सैकड़ों गणों से भी बढ़कर है। इसलिये देवों द्वारा निर्मित यह मोदक मैं गणेश को ही अर्पण करती हूँ। माता-पिता की भक्ति के कारण ही इसकी प्रत्येक यज्ञ में सबसे पहले पूजा होगी।'[1]

टिप्पणी–शिवमहापुराण के पुत्रों का विवाद विवाह के कारण था। यहाँ उसका कारण देवनिर्मित मोदक है। पद्ममहापुराण की कथा शिवमहापुराण की कथा की अपेक्षा अधिक सुसंगत प्रतीत होती है। बाकी कथांश दोनों में समान है।

शिवमहापुराण

शिवमहापुराण में वर्णित गणेश-कथा 'श्वेतकल्प' से सम्बन्ध रखती है। इस महापुराण में वर्णित गणेश की पूरी कथा इस प्रकार है—

एक समय पार्वतीजी की जया-विजया नामवाली सखियों ने उनसे कहा—'सखि, सभी गण रुद्र के ही हैं। वे सारे के सारे शिव की ही आज्ञा के पालन में सर्वदा तत्पर रहते हैं। यद्यपि वे सभी हमारे भी हैं, तथापि उनसे हमारा मन नहीं मिलता। अत: आपको भी हमारे लिये एक गण की रचना करनी चाहिए।'

सखियों की बात से सहमत होते हुए जगदम्बा पार्वती ने एक गण की रचना का निश्चय किया। इसी समय एक दूसरी भी घटना घटित हुई। एक दिन जब पार्वती जी स्नान कर रही थीं, तब भगवान् शङ्कर द्वारपाल के रूप में खड़े हुए नन्दी को डरा-धमका कर भीतर चले गये। शङ्कर को आते देखकर स्नान करती हुई जगज्जननी पार्वती उठकर खड़ी हुईं। उस समय वे बहुत लज्जित हुईं। वे आश्चर्य-चकित हो गईं। उस समय सखियों की सलाह को उन्होंने बहुत समीचीन माना। उन्होंने सोचा—वस्तुत: मेरा एक ऐसा सेवक होना चाहिये जो मेरी आज्ञा से स्वल्प भी विचलित न हो।

उक्त विचार के मन में आते ही पार्वती देवी ने अपने शरीर की मैल से एक ऐसे चेतन पुरुष का निर्माण किया, जो सभी शुभ लक्षणों से संयुक्त था। उसके सारे अङ्ग सुन्दर एवं दोषरहित थे। उसका वह शरीर विशाल, परमशोभायमान और महान् बल पराक्रम से सम्पन्न था। देवी ने उसे अनेक प्रकार के वस्त्र, नाना

---
१. पद्ममहापुराण, सृष्टिखण्ड, ६५ अ० (मोर प्रकाशन)

प्रकार के आभूषण और बहुत सा उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—'तुम मेरे पुत्र हो। मेरे अपने ही हो। तुम्हारे समान प्रिय मेरा यहाँ कोई दूसरा नहीं है।'

बालक के, हाथ जोड़कर, सेवा का कार्य पूछने पर आगे देवी पार्वती ने पुनः कहा—'तात, तुम मेरे पुत्र हो। मेरे अपने हो। अतः तुम मेरी बात सुनो। आज से तुम मेरे द्वारपाल बन जाओ। सत्पुत्र, मेरी आज्ञा के बिना कोई भी हठ पूर्वक मेरे महल के भीतर प्रवेश न करने पाये। चाहे वह कहीं से भी आये और कोई भी हो।' ऐसा कहकर पार्वती ने गणेश के हाथ में एक सुदृढ छड़ी पकड़ा दी। उस समय उनके सुन्दर रूप को निहार कर पार्वती हर्ष-निमग्न हो गईं। फिर दण्डधारी गणराज को अपने द्वार पर स्थापित कर दिया। गणेश पार्वती के द्वार पर पहरा देने लगे। माँ पार्वती सखियों के साथ भीतर स्नान करने लगीं।

जब जगदम्बा पार्वती स्नान कर रही थीं, उसी समय भगवान् शिव द्वार पर आ पहुँचे। यह एक संयोग था। गणेश पार्वती-पति को पहचानते नहीं थे। अतः उन्होंने शिव से कहा—'देव, माताजी की आज्ञा के बिना आप अभी भीतर न जायें। वे स्नान करने बैठ गई हैं। आप कहाँ जाना चाहते हैं? इस समय यहाँ से हट जाइये।' ऐसा कहकर बालक गणेश ने उन्हें रोकने के लिये छड़ी हाथ में ले ली। उन्हें ऐसा करते देखकर शिव जी ने कहा—'मूर्ख, तू किसे रोक रहा है? दुर्बुद्धे, क्या तू मुझे नहीं जानता ? मैं साक्षात् शिव ही हूँ।'

उक्त घटना के घटित होते ही महेश्वर शिव के गंण उस बालक को समझा कर हटाने के लिये वहाँ आये और उससे कहा—'सुनों, हम मुख्य शिव-गण ही द्वारपाल हैं और शङ्कर की आज्ञा से तुम्हें हटाने के लिए यहाँ आये हैं। तुम्हें भी गण समझकर हम लोगों ने मारा नहीं है, नहीं तो तुम कबके मारे गये होते। तुम्हारा कल्याण इसी में है कि तुम स्वतः ही दूर हट जाओ। क्यों व्यर्थ में अपनी मृत्यु बुला रहे हो ?'

शिव-गणों की बात को सुनकर भी गणेश निर्भय ही बने रहे। उन्होंने शिव-गणों को फटकारा और द्वार पर से नहीं हटे। तब उन शिवगणों ने शिवजी के पास जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उनकी बातों को सुनकर उन्हें डाटते हुए शिव ने कहा—'गणों, यह कौन है, जो इतना उच्छृङ्खल होकर शत्रु की भाँति बक रहा है? इस नव-नियुक्त द्वारपाल को दूर भगा दो। तुम लोग नपुंसक की तरह खड़े होकर उसका वृत्तान्त मुझे क्यों सुना रहे हो? जाओ पता लगाओ कि यह कौन है और क्यों ऐसा कर रहा है ?' गणों ने पता लगाकर बताया कि— 'वे गिरिजा के पुत्र हैं। माता जी ने उन्हें द्वारपाल के रूप में नियुक्त किया है।'

उनकी उपर्युक्त बातों को सुनकर लीलास्वरूप शङ्कर ने विचित्र लीला करनी चाही तथा अपने गणों का गर्व भी गलित करना चाहा। इसलिये गणों को तथा देवताओं को बुलाकर गणेशजी से भीषण युद्ध करवाया। किन्तु वे कोई भी गणेशजी को पराजित न कर सके। तब गणेश से युद्ध करने के लिये स्वयं शङ्कर जी आये। सभी देव शिव के पक्ष में आ गये। गणेश ने माँ के चरणों का स्मरण किया। शक्ति ने उन्हें बल प्रदान किया। फलतः घोर युद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा स्वयं शूलपाणि महेश्वर ने आकर त्रिशूल से गणेश जी का सिर काट दिया। जब यह समाचार पार्वती को मिला, तब वे क्रुद्ध हो गईं और बहुती-सी शक्तियों को उत्पन्न करके उन्होंने बिना विचारे उन्हें प्रलय करने की आज्ञा दे दी। फिर तो शक्तियों ने प्रलय मचाना प्रारम्भ कर दिया। उनके तेज को देखकर शिव-गण भयभीत होकर भागकर दूर जा खड़े हुए।

नारदजी की प्रेरणा से देव-मण्डली ने यही निश्चय किया कि जब तक गिरिजा देवी कृपा नहीं करेंगी, तब तक सुख नहीं प्राप्त हो सकेगा। फलतः सभी भगवती शिवा के निकट गये। वहाँ उन्होंने दिव्य स्तुतिओं से भगवती को प्रसन्न किया।

ऋषियों एवं देवों के ऊपर प्रसन्न हुई देवी ने कहा—'ऋषियों, यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह तुम लोगों के मध्य पूजनीय मान लिया जाय तो संहार नहीं होगा। जब तुम उसे 'सर्वाध्यक्ष' का पद प्रदान कर दोगे तभी लोक में शान्ति हो सकती है, अन्यथा तुम्हें सुख नहीं प्राप्त हो सकता।'

पार्वती की बात जब भगवान् शङ्कर से कही गई तब उन्होंने कहा—'ठीक है, जिस प्रकार सारी त्रिलोकी को सुख मिल सके, वही करना चाहिये। अतः अब उत्तर दिशा की ओर जाना चाहिये और जो जीव पहले मिले, उसका सिर काट कर उस बालक के शरीर पर जोड़ देना चाहिये।'

शिव की आज्ञा से देवों ने उस शिशु-शरीर को धो-पोंछकर विधिवत् उसकी पूजा की। फिर वे उत्तर दिशा की ओर गये। वहाँ उन्हें पहले-पहल एक दाँत वाला एक हाथी मिला। उन्होनें उसका सिर लाकर उस शरीर पर जोड़ दिया। हाथी के उस शिर को संयुक्त कर देने के पश्चात् सभी देवों ने भगवान् शिव आदि को प्रणाम करके कहा कि हम लोगों ने अपना काम पूरा कर दिया। अब जो करना शेष है उसे आप लोग पूर्ण करें।

देवों की बात सुनकर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देव शङ्कर को प्रणाम करके बोले—'स्वामिन्, आप महात्मा के जिस तेज से हम सब उत्पन्न हुए हैं, आप का

वही तेज, वेद मन्त्र के अभियोग से, इस बालक में प्रवेश करे।' इस प्रकार सभी देवों ने मिलकर वेदमन्त्र द्वारा जल को अभिमन्त्रित किया, फिर शिवजी का स्मरण करके उस उत्तम जल को बालक के शरीर पर छिड़क दिया। उस जल का स्पर्श होते ही वह बालक, शिवेच्छा से, शीघ्र ही चेतना-युक्त होकर जीवित हो गया और सोये हुए की तरह उठ बैठा। बालक अत्यन्त सुन्दर था। उसका मुख हाथी का सा था। शरीर का रंग हरा लाल था। चेहरे पर प्रसन्नता खेल रही थी। बालक को जीवित देखकर देव-मण्डली के साथ ही पार्वतीजी भी परम प्रसन्न हुईं।

पार्वती-पुत्र गणेश के जीवित होने पर गणनायक देवों ने उनका अभिषेक किया। सबने उनका स्वागत सत्कार किया। पार्वती देवी ने अपने पुत्र का सत्कार करके उसका मुख चूमा और प्रेम-पूर्वक उसे वरदान देते हुए कहा—'बेटा! इस समय तुझे बड़ा कष्ट झेलना पड़ा है। किन्तु अब तू कृत-कृत्य हो गया है। तू धन्य है। अब से सम्पूर्ण देवों में तेरी अग्रपूजा होती रहेगी और तुझे कभी दु:ख का सामना नहीं करना पड़ेगा। यत: इस समय तेरे मुख पर सिन्दूर दिख रहा है, इसलिये मनुष्यों को सदा सिन्दूर से तेरी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य पुष्प, चन्दन, सुन्दर गन्ध, नैवेद्य, रमणीय आरती, ताम्बूल और दान से तथा परिक्रमा और नमस्कार कर विधिपूर्वक तेरी पूजा करेगा, नि:सन्देह उसे सारी सिद्धियाँ हस्तगत हो जायेंगी और उसके सभी प्रकार के विघ्न विनष्ट हो जायेंगे।'

महेश्वरी देवी की, गणेश पर, इस प्रकार कृपा-वृष्टि हो जाने पर देवगण गणेश को लेकर शिवजी के पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने त्रिलोकी की कल्याण-कामना से भवानी के उस बालक को शिवजी की गोद में बैठा दिया। शिवजी ने देव-मण्डली से कहा—'यह मेरा दूसरा पुत्र है।' तत्पश्चात् गणेश ने भी उठकर शिवजी के चरणों में अभिवादन किया। अन्य श्रेष्ठजनों को प्रणाम करने के बाद उन्होंने कहा—'यों अभिमान करना मनुष्यों का स्वभाव ही है। अत: आप लोग मेरा अपराध क्षमा करें।'

गणेश के इस प्रकार विनीत वचन को सुनकर त्रिदेवों ने एक साथ ही प्रेमपूर्वक उन्हें उत्तम वर प्रदान करते हुए कहा—'सुरवरों, जैसे त्रिलोकी में हम तीनों देवों की पूजा होती है, उसी तरह तुम सबको इन गणेश का भी पूजन करना चाहिये। मनुष्यों को चाहिये कि पहले इनकी पूजा करके तत्पश्चात् हम लोगों का पूजन करें। ऐसा करने से हम लोगों की पूजा सम्पन्न हो जायेगी। देवगणों, यदि कहीं इनकी पूजा पहले न करके अन्य देवों का पूजन किया गया तो उस पूजन का फल नष्ट हो जायेगा—इसमें अन्यथा विचार करने की आवश्यकता नहीं है।' तदनन्तर त्रिदेवों के साथ सभी देवों ने मिलकर पार्वती को प्रसन्न करने के लिये वहीं गणेश को 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया।

भगवान् शङ्कर ने पुनः उन्हें आशीष और वर प्रदान करते हुए कहा—'गिरिजानन्दन, मैं तुझपर प्रसन्न हूँ। अब कोई भी तेरा विरोध नहीं कर सकता। तू शक्ति का पुत्र है, अतः अत्यन्त तेजस्वी है। बालक होने पर भी तूने महान् पराक्रम प्रकट किया है, इसलिये तू सदा सुखी रहेगा। विघ्ननाश के कार्य में तेरा नाम सबसे श्रेष्ठ होगा । तू सबका पूज्य है, अतः अब मेरे गणों का अध्यक्ष हो जा। तू भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि को चन्द्रमा का शुभोदय होने पर उत्पन्न हुआ है। जिस समय गिरिजा के सुन्दर चित्त से तेरा रूप प्रकट हुआ, उस समय रात्रि का प्रथम प्रहर बीत रहा था। इसलिये उसी दिन से आरम्भ करके उसीं तिथि में तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये। इस व्रत से सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। तुम्हारे पूजन में दूर्वादल का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। यह दूर्वा जड़-रहित, बारह अङ्गुल लम्बी और तीन गाँठों वाली होनी चाहिए। ऐसी एक सौ एक अथवा इक्कीस दुर्वा से प्रतिमा की पूजा करनी चाहिये। गणेश की प्रतिमा धातु की, मूँगे की, श्वेत मदार की अथवा मिट्टी की होनी चाहिए।

पूजन का अधिकार—सभी वर्ण के लोगों, विशेष कर स्त्रियों को गणेश की यह पूजा अवश्य करनी चाहिए तथा अभ्युदय की कामना करने वाले राजाओं के लिये भी गणेश चतुर्थी का व्रत अवश्य कर्त्तव्य है।[१]

गणेश का विवाह—कार्तिकेय एवं गणेश के विवाह योग्य हो जाने पर माता-पिता ने उन दोनों के सामने यह शर्त रक्खी कि—'जो सारी पृथिवी की परिक्रमा करके पहले लौट आयेगा, उसी का शुभ विवाह पहले किया जायेगा।' माता-पिता की यह बात सुनकर शरजन्मा महाबली कार्तिकेय तुरन्त ही अपने स्थान से पृथिवी की परिक्रमा के लिये चल दिये। परन्तु अगाध-बुद्धि-सम्पन्न गणेश वहीं खड़े रह गये। वे सोचने लगे कि—'अब मैं क्या करूँ। कहाँ जाऊँ? परिक्रमा तो मुझसे हो नहीं सकेगी, क्योंकि कोस भर चलने के बाद मुझसे चला जायेगा नहीं। फिर सारी पृथिवी की परिक्रमा करके मैं कैसे सुख प्राप्त कर सकूँगा?'–ऐसा सोचकर गणेश ने जो किया वह उनकी अगाध बुद्धि का परिचायक है । उन्होंने स्नान कर माता-पिता से इस प्रकार कहा—'पिताजी एवं माताजी! मैंने आप लोगों की पूजा करने के लिये यहाँ दो आसन स्थापित किये हैं। आप दोनों इन पर विराजिये और मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये।' तदनन्तर गणेश ने माता-पिता की सविधि पूजा की। बहुत प्रकार की स्तुति की और फिर उनकी सात प्रदक्षिणाएँ करके कहा—'हे माताजी, तथा हे पिताजी! आप लोग मेरी उत्तम बात सुनिये और शीघ्र ही मेरा शुभ विवाह कर दीजिये। माता-पिता के द्वारा

१. शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, कुमारखण्ड, अध्याय-१३-१९

पृथिवी-परिक्रमा की बात कहने पर महामनीषी गणेश ने कहा—'मैंने एक बार नहीं, सात बार पृथिवी की परिक्रमा पूरी की है। शास्त्रों का वचन है कि—'जो पुत्र माता-पिता की पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथिवी-परिक्रमा-जनित फल सुलभ हो जाता है। जो माता-पिता को घर पर छोड़कर तीर्थ-यात्रा के लिये जाता है, वह माता-पिता की हत्या से मिलने वाले पाप का भागी होता है; क्योंकि पुत्र के लिये माता-पिता का चरणसरोज ही महान् तीर्थ है।' यदि आप लोग मेरा विवाह नहीं करेंगे तो शास्त्र-वचन असत्य हो जायेंगे। फिर तो आप लोगों का अस्तित्व भी संशयाविष्ट हो उठेगा। अतः या तो शीघ्र ही मेरा शुभ विवाह कर दीजिये अथवा यों कह दीजिये कि वेद-शास्त्र असत्य हैं। आप दोनों धर्मस्वरूप हैं, अतः भली-भाँति विचार करके इन दोनों में जो परमोत्तम प्रतीत हो, उसे प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये।'

गणेश की बुद्धि एवं तर्क से प्रसन्न तथा प्रभावित माता-पिता ने उनका अभिनन्दन किया। उनकी बात प्रेमपूर्वक स्वीकार कर ली और प्रजापति विश्वरूप की सुन्दरी दो बेटियों—'सिद्धि और बुद्धि' के साथ प्रसन्नतापूर्वक उनका विवाह कर दिया। कालान्तर में महात्मा गणेश की उन दोनों पत्नियों से दो दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें गणेश-पत्नी सिद्धि के गर्भ से 'क्षेम' नामक पुत्र पैदा हुआ और बुद्धि के गर्भ से जिस परम सुन्दर पुत्र ने जन्म लिया उसका नाम 'लाभ' हुआ।[१]

टिप्पणी-(क) शिवमहापुराण की कथा के अनुसार हाथी का जो शिर गणेश के धड़ से जोड़ा गया वह एक दाँतवाला था। एक दाँतवाले हाथी का शिर गणेश के शरीर पर जोड़ दिया गया था। अतः प्रारम्भ से ही वे एक दन्त थे।

(ख) शिवमहापुराण की रुद्र संहिता के कुमार खण्ड में गणेश की कथा के प्रारम्भ में ही ब्रह्मा ने नारद से कहा है कि—'पहले जो मैंने विधिपूर्वक गणेश की उत्पत्ति का वर्णन किया था कि शनि की दृष्टि पड़ने से गणेश का मस्तक कट गया था, तब उस पर हाथी का मुख लगा दिया गया था, वह कल्पान्तर की कथा है। अब श्वेतकल्प में घटित हुई गणेश की जन्म-कथा का वर्णन कर रहा हूँ जिसमें शङ्कर ने ही उनका मस्तक काट लिया था।' इससे यह तथ्य स्वयं सिद्ध हो जाता है कि जिस पुराण में शनि की दृष्टि से गणेश के शिर के कटने की बात है, वह पुराण शिवमहापुराण की अपेक्षा अधिक प्राचीन है, पूर्ववर्ती है।[२] पूर्ववर्ती पुराण की कथा ही उत्तरवर्ती पुराण में चर्चित होती है।

---

१. शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, कुमारखण्ड, अध्याय-२०

२. शनि की दृष्टि पड़ने से गणेश के सिर कटने की कथा ब्रह्मवैवर्तमहापुराण में है।

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

पार्वती ने शङ्कर से पुत्र के लिये प्रार्थना की। शङ्कर ने उन्हें पुत्रार्थ 'पुण्यक' व्रत करने का उपदेश दिया। माता पार्वती ने सविधि 'पुण्यक' व्रत का पालन किया। समस्त देवमण्डली एवम् ऋषि-मुनि-समुदाय व्रत की समाप्ति पर माँ दुर्गा के यहाँ पधारे। शिव-पार्वती ने सबका यथोचित सत्कार किया, पूजन किया। पुरोहित का कार्य करने वाले सनत्कुमार ने अपनी दक्षिणा के रूप में शिव को ही माँग लिया। देवों एवं श्रीविष्णु की प्रेरणा से बड़े कष्ट से पार्वती ने शिव का दान कर दिया। पार्वती के अति दुःखी हो जाने पर श्रीमन्नारायण ने शिव के निष्क्रय रूप में गोदान को विकल्प बतलाया। फिर तो माँ पार्वती ने पौरोहित्य का सम्पादन करने वाले सनत्कुमार को गोदान कर पति को वापस प्राप्त कर लिया। गौएँ विष्णु की देहस्वरूपा हैं, उसी प्रकार शिव भी विष्णु की शरीर हैं। अतः ब्राह्मण को गोमूल्य प्रदान करके शिव को लौटा लेना श्रुति-सम्मत ही था।

व्रतान्त में पार्वती ने भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य स्तुति की। पार्वती द्वारा किये गये स्तवन को सुनकर श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने उस स्वरूप का दर्शन कराया, जो सबके लिये अदृश्य और परम दुर्लभ है। श्रीकृष्ण के दिव्यातिदिव्य स्वरूप को देखकर सुन्दरी पार्वती ने मन-ही-मन उसी के अनुरूप पुत्र की कामना की और उसी क्षण वह वर उन्हें प्राप्त भी हो गया। इस प्रकार वरदायक परमेश्वर ने, पार्वती के मन में जिस-जिस वस्तु की कामना थी, उसे पूर्ण करके देवों के भी अभीष्ट की सम्पूर्ति की।

सबका सम्मान कर जगदम्बा पार्वती भगवान् शिव के साथ एकान्त में विहार करने लगीं। इस बीच श्रीकृष्ण दीन-हीन क्षीण ब्राह्मण भिक्षुक का रूप धारण कर शिव के द्वार पर पधारे। ब्राह्मण जोर-जोर से पार्वती का नाम लेकर भोजन माँग रहा था। ब्राह्मण की दीन-वाणी सुनकर शिव-पार्वती उठे। इसी समय शिवजी का शुक्रपात हो गया। वे पार्वती के साथ द्वार पर पधारे। वहाँ उन लोगों ने उस वृद्ध तथा दीन ब्राह्मण को देखा जो वृद्धावस्था से अत्यन्त पीडित था। ब्राह्मण बार-बार सुन्दर स्वादिष्ट भोजन की याचना कर रहा था। साथ-ही-साथ वह यह भी आभास देता जा रहा था कि मैं श्रीकृष्ण हूँ। मैं आप का पुत्र बनूँगा। वह कह रहा था—'प्रत्येक कल्प में श्रीकृष्ण गणेश रूप से आपके पुत्र बनकर आप की गोद में आते हैं।'

यों कहकर वह ब्राह्मण तुरन्त ही अन्तर्धान हो गया। वे परमेश्वर इस प्रकार

अन्तर्हित होकर बालक का रूप धारणकर, महल के भीतर स्थित पार्वती की शय्या पर जा पहुँचे और जन्मे हुए बालक की भाँति घर की छत के भीतरी भाग की ओर देखने लगे। बालक का स्वरूप कोटि-कोटि कन्दर्पदर्पदलन था। पार्वती की रमणीय शय्या पर सोया हुआ शिशु हाथ-पैर उछाल रहा था। इधर ब्राह्मण के अन्तर्धान हो जाने पर शङ्कर पार्वती उसे खोजने लगे। इसी बीच आकाशवाणी ने कहा—जगन्माता, शान्त हो जाओ और मन्दिर में अपने पुत्र की ओर दृष्टिपात करो। वह साक्षात् गोलोकाधिपति परिपूर्णतम श्रीकृष्ण है। प्रत्येक कल्प में तुम जिस सनातन ज्योतिरूप का ध्यान करती हो, वही तुम्हारा पुत्र है। दुर्गे, तुम क्यों विलाप कर रही हो ? यह क्षुधातुर ब्राह्मण नहीं है, यह तो विप्रवेष में जनार्दन हैं। अब कहाँ वह वृद्ध और कहाँ वह अतिथि ?

आकाशवाणी को सुनकर पार्वती घर के भीतर गईं । वहाँ उन्होंने पलङ्ग पर लेटे हुए बालक को देखा। उन्होंने शङ्कर को इसकी सूचना दी। वे तुरन्त ही अपनी प्रियतमा के साथ अपने घर में आये। वहाँ उन्होंने शय्या पर अपने पुत्र को देखा। फिर तो पार्वती ने अपने उस बालक को गोद में लेकर प्रेम के साथ उसके मुख में अपना स्तन दे दिया। शङ्कर ने भी उस बालक को अपनी गोद में उठा लिया।

गणेश का शिरश्छेदन—इस समाचार को सुनकर समग्र देवमण्डली ने गणेश का दर्शन कर उन्हें आशीर्वाद दिया। इसी बीच महायोगी सूर्य पुत्र शनैश्चर गणेश को देखने के लिये वहाँ आये। शनिदेव की पत्नी ने किसी बात से रुष्ट होकर उन्हें शाप दे दिया था कि 'तुम जिसकी ओर देखोगे, उसका सिर धड़ से पृथक् हो जायेगा।' 'तुम अब जिसकी ओर दृष्टि करोगे, वही नष्ट हो जायेगा।' अतः शनि अपनी दृष्टि नीचे ही झुकाये रखते थे। देवों ने शनि को आज्ञा दी उस बालक का दर्शन करने की। शनि देव पार्वती के पास गये। उनकी दृष्टि झुकी हुई देखकर जगदम्बा ने बालक को देखने के लिए उनसे आग्रह किया। माँ के आग्रह को शिरोधार्य कर शनि ने अपने वाम नेत्र के कोने से शिशु के मुख की ओर निहारा। शनि की दृष्टि पड़ते ही शिशु का मस्तक धड़ से अलग हो गया। फिर शनैश्चर ने अपनी आँख फेर ली और वे नीचे मुख करके खड़े हो गये। निश्चेष्ट धड़ पार्वती की गोद में पड़ा रहा और शिर गो-लोक में जाकर श्रीकृष्ण में विलीन हो गया। सर्वत्र हा-हाकार मच गया। पार्वती मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं ।

पार्वती को मूर्च्छित तथा सबको विह्वल देखकर भगवान् विष्णु गरुड पर सवार हुए और उत्तर दिशा में स्थित पुष्पभद्रा-नदी के अरण्य से एक गजेन्द्र के

शिर को काटकर लाये और गणेश के मस्तक पर जमा दिया। फिर श्रीहरि ने हुंकारोच्चारण करके खेल-खेल में उस बालक को जीवित कर दिया।

गणेश की अग्रपूजा—श्रीविष्णु ने, सर्वप्रथम उस बालक का पूजन कर उससे कहा—'सुरश्रेष्ठ, मैंने सबसे पहले तुम्हारी पूजा की है । अत: वत्स, तुम सर्वपूज्य तथा योगीन्द्र बनो।'[१]

गणेश का एकदन्त होना—ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के अनुसार एक बार शिव के शिष्य भगवान् परशुराम अपने गुरु का दर्शन करने के लिये कैलास पधारे। उस समय शङ्कर जगदम्बा पार्वती के साथ अन्त:पुर में थे। परशुराम को महल के भीतर प्रवेश के लिये उद्यत देखकर गणेश ने उन्हें कुछ देर रुक जाने के लिये कहा। किन्तु परशुराम अन्त:पुर में प्रवेश करने का हठ करते रहे। उन्होंने अनेक युक्तियों के द्वारा अपना अन्दर जाना निर्दोष बतलाया। इस प्रकार दोनों में वाद-विवाद हो गया। गणेश जी ने उन्हें अन्दर जाने से बलपूर्वक रोक दिया। फलत: दोनों में युद्ध आरम्भ हो गया। परशुराम ने गणेश पर प्रहार करने के लिये अपना कुठार उठा लिया। तब गणेश ने अपनी सूँड़ को विशाल बनाकर परशुराम को लपेट लिया और घुमाने लगे । उन्होंने परशुराम को त्रिलोकी में घुमा कर पृथिवी पर रख दिया। इस पर परम क्रुद्ध हुए परशुराम ने अपने अमोघ कुठार से गणेश पर प्रहार किया। गणेश नें उसे अपने बायें दाँत पर रोक लिया। परिणाम- स्वरूप उनका बायाँ दाँत कट कर भूतल पर गिर गया। तभी से गणेश एकदन्त (एक दाँत वाले) हो गये।[२]

टिप्पणी—शिवमहापुराण के अनुसार शङ्कर के त्रिशूल-प्रहार से गणेश का शिर कट जाने पर जिस हाथी का शिर काटकर गणेश के शरीर (धड़) से जोड़ा गया वह एक दाँतवाला था। हस्तिमुण्ड पहले से ही एक दन्त था। अत: गणेश 'एकदन्त' कहलाये।[३]

विचार करने पर प्रतीत होता है कि ब्रह्मवैवर्त पुराण का, गणेश के एकदन्त होने का, कथानक अधिक समीचीन और तथ्य से संवलित है। शिवमहापुराण ने शिव-पुत्र गणेश को महिमा-मण्डित करने के लिये हस्ति-मुण्ड को ही 'एकदन्त' बतलाया है।

गङ्गा की धारा की भाँति, संक्षेप और विस्तार की दृष्टि से भी विचार करने

---

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, गणपति-खण्ड, १३/२
२. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, गणपति खण्ड, अध्याय ४४
३. शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, कुमार-खण्ड, अध्याय १८

पर ब्रह्मवैवर्तमहापुराण में वर्णित गणेश-कथा शिवमहापुराण की गणेश-कथा की अपेक्षा प्राचीन प्रतीत होती है।

लिङ्गमहापुराण

लिङ्गमहापुराण[1] में वर्णित गणेश के प्रादुर्भाव की कथा इस प्रकार है—

एक बार की बात है। देव-मण्डली ने आपस में विचार किया कि—'प्राय: सभी असुर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, और संहार-कारी श्री शङ्कर की आराधना कर उनसे इच्छित वर प्राप्त कर लेते हैं। यही कारण है कि युद्ध में हम उनसे सदा पराजित होते रहते हैं। दैत्यों के कारण हमें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। अत: हमलोग अपनी विजय एवं दैत्यों के कार्य में विघ्न उपस्थित करने तथा सभी प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति के लिये आशुतोष शिव से प्रार्थना करें।'

ऐसा निश्चय कर देव-मण्डली ने पार्वती-वल्लभ शिव की स्तुति की। वृषभध्वज प्रसन्न हुए । उन्होंने कहा—'अभीष्ट वर माँगो।' देवों की ओर से देवगुरु वृहस्पति ने निवेदन किया—'करुणा के सागर प्रभो, दानव देवों के शत्रु हैं। आप उन दानवों की उपासना-आराधना से सन्तुष्ट होकर उन्हें मनचाहा वरदान प्रदान कर देते हैं। वर के प्रभाव से बली होकर वे हमें अत्यन्त कष्ट पहुँचाते हैं। अत: देव-द्रोही दानवों के कार्य में विघ्न उपस्थित हुआ करे—यही हमारी कामना है।'

'तथास्तु' कहकर परम सन्तुष्ट वरद आशुतोष ने सुर-समुदाय को आश्वस्त किया। कुछ ही समय के पश्चात् सर्वलोक-महेश्वर शिव की सती पत्नी पार्वती के सम्मुख परब्रह्मस्वरूप स्कन्दाग्रज का प्राकट्य हुआ।[2] उक्त परम तेजस्वी बालक का मुख हाथी का था। उसके एक हाथ में त्रिशूल तथा दूसरे हाथ में पाश था।

सर्वविघ्नेश मोदकप्रिय के धरती पर अवतरित होते ही देव-समूह ने प्रसन्नतापूर्वक गगन-मण्डल से सुमन-वृष्टि की। बार-बार उनके चरणों में प्रणति की। गजानन अपने कृपा-विग्रह माता-पिता के सम्मुख आनन्दनिमग्न होकर नृत्य करने लगे।

त्रैलोक्यतारिणी दयामयी हिमगिरिनन्दिनी पार्वती ने अपने समस्त-मङ्गलमय पुत्र को अत्यन्त सुन्दर एवं विचित्र वस्त्राभरण पहनाये। देवाधिदेव महादेव ने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणप्रिय पुत्र का जातकर्मादि संस्कार करवाया। फिर उन्होंने अपने पुत्र को गोद में उठाकर छाती से सटा लिया। आनन्दमग्न शिव ने आगे

---

१. लिङ्गमहापुराण, पूर्वभाग, अध्याय १०४-१०५ (मोतीलालबनारसीदास संस्करण)

२. लिङ्गमहापुराण, १/१०५/९-१०-(मोतीलालबनारसीदास संस्करण)

अपने पुत्र से कहा—

'मेरे पुत्र गणेश, तुम्हारा यह अवतार दैत्यों का संहार करने तथा देव, ब्राह्मण तथा ब्रह्मवादियों का उपकार करने के लिये हुआ है। देखो, यदि पृथिवी पर कोई दक्षिणाहीन यज्ञ करे तो तुम स्वर्ग के मार्ग में स्थित हो उसे स्वर्ग मत जाने दो। जो इस संसार में अनुचित ढंग से, अन्यायपूर्वक, अध्ययन, अध्यापन, व्याख्यान और दूसरा कार्य करता हो, उसके प्राणों का तुम सर्वदा हरण करते रहो। नरपुंगव प्रभो, वर्णधर्म से च्युत स्त्री-पुरुषों तथा स्वधर्म-रहित व्यक्तियों के भी प्राणों का तुम अपहरण किया करो। विनायक, जो स्त्री-पुरुष ठीक समय पर सर्वदा तुम्हारी पूजा करें, उन्हें तुम अपनी समता प्रदान करो। हे बालगणेश्वर, तुम पूजित होकर अपने युवा एवं वृद्ध भक्तों की भी सब प्रकार से इस लोक तथा परलोक में रक्षा करना। तुम विघ्न-गणों के स्वामी हो। अत: त्रिलोकी में तुम नि:सन्देह वन्दनीय तथा पूज्य बनोगे। मेरी, श्रीविष्णु, ब्रह्मा तथा अन्यान्य देवों की पूजा के अवसरों पर, यज्ञ की समायोजनाओं में ब्राह्मण लोग सर्वप्रथम तुम्हारी पूजा किया करेंगे। सबके द्वारा माङ्गलिक अवसरों पर तुम्हारी पूजा सर्वप्रथम होगी। जो तुम्हारी पूजा किये बिना श्रौत, स्मार्त अथवा लौकिक कल्याणकारी कर्मों का अनुष्ठान करेगा, उसका मङ्गल भी अमङ्गल में परिणत हो जायेगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों द्वारा भी तुम सभी कार्यों की सिद्धि के लिये भक्ष्य-भोज्य आदि शुभ पदार्थों से पूजित होओगे। तुम्हारी आराधना के बिना त्रिलोकी का कोई भी व्यक्ति कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। तुम्हारी पूजा-आराधना करने वाले व्यक्ति निश्चय ही देवराज इन्द्रादि देवों के द्वारा भी पूजित होंगे। जो साधक फल की कामना से ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र अथवा अन्य देवताओं की भी पूजा करेंगे, किन्तु तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, उन्हें तुम विघ्नों के द्वारा बाधा पहुँचाओगे।'[१]

सर्वात्मा प्रभु शिव का आशीष प्राप्त कर भगवान् गणपति ने विघ्न-गणों को उत्पन्न किया और उनके साथ बड़ी श्रद्धा से भगवान् शङ्कर के चरणों में प्रणाम किया। फिर वे त्रिलोकी के अधिपति पशुपति शिव के सम्मुख खड़े हो गये। तब से संसार में गणपति की अग्रपूजा होती है। इसके बाद श्री गणेशजी ने दैत्यों के धर्मकार्य में विघ्न पहुँचाना प्रारम्भ कर दिया। जिससे दैत्यों के कार्य की सफलता में बाधा बढ़ने लगी। यही है स्कन्द के बड़े भाई गणेश के प्रादुर्भाव की कथा।[२]

१. लिङ्गमहापुराण, पूर्वभाग, अध्याय १०५, श्लोक, २७

२. एतद्वः कथितं सर्वं स्कन्दाग्रजसमुद्भवम् । वही, १/१०५/३०

वाराहमहापुराण

बात अति प्राचीन काल की है। तपोधन ऋषि-मुनि कार्य प्रारम्भ करते थे तो अनेकविध विघ्न उपस्थित हो जाते थे। विघ्नों से प्रताडित होने के बाद ही कार्यसिद्धियाँ उन्हें मिलती थीं। किन्तु असत् मार्ग पर चलने वालों की क्रियाएँ निर्विघ्न समाप्त होती थीं। अतः ऋषियों का, तपोधनों का चिन्तित होना स्वाभाविक था। इस विषय पर परस्पर विमर्श कर देवों के साथ वे लोग भगवान् शङ्कर की शरण में गये। सविनय उन्हें प्रणाम किया और बोले—'महादेव, त्रिलोचन, अविशिष्ट व्यक्तियों के, असत्पुरुषों के कार्यों में विघ्न करने के लिये किसी व्यक्ति को उत्पन्न करने की कृपा करें।' देवों की प्रार्थना को सुनकर भगवान् शङ्कर ने निर्निमेष दृष्टि से उमा को निहारा। उन्होंने सोचा—'पृथिवी, जल, तेज और वायु की तो मूर्ति है। किन्तु आकाश की मूर्ति क्यों नहीं है ?' ऐसा सोचकर वे जोर से हँस पड़े। उनके हँसते ही आकाश से दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ एक अति तेजस्वी कुमार आविर्भूत हो गया। वह साक्षात् दूसरे रुद्र की भाँति था।[१] उसका रूप-सौन्दर्य अप्रतिम था। उमा उसके सौन्दर्य को निर्निमेष नयनों से निहारने लगीं। इस दृश्य को शङ्कर ने देखा। स्त्री-स्वभाव को चञ्चल सझकर वे कुपित हो उठे। उन्होंने गणेश को शाप देते हुए कहा—'कुमार, तुम शीघ्र ही गजानन बन जाओगे। तुम्हारा पेट अति विशाल बन जांयेगा। सर्पों की माला तुम धारण करोगे ।'[२] ऐसा कहकर वे उठ खड़े हुए। उस समय वे अपने शरीर को कँपा रहे थे। जैसे-जैसे उनका शरीर कम्पित हो रहा था, वैसे-वैसे उनके शरीर से जल की बूँदे भूतल पर गिर रही थीं। उन बिन्दुओं से अनेकविध विनायकों की उत्पत्ति हुई। वे सभी गज-मुख थे। उनके शरीर का रंग तमाल की तरह नीला थ। उनके हाथों में विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्र विराजमान थे। विनायकों की सेना से पृथिवी क्षुभित हो उठी। इस दृश्य को देखकर आकाश में विमान पर आरूढ ब्रह्मा ने कहा—'देवों, आप लोग धन्य हो। त्रिलोचन शङ्कर ने विघ्नकारी सुरद्रोहियों को झुकाने के लिये आप लोगों पर महान् अनुग्रह किया है।' फिर तो ब्रह्मा के कथन

---

१. मूर्तिमानतितेजस्वी हसतः परमेष्ठिनः ।
प्रदीप्तास्यो महादीप्तः कुमारो भासयन् दिशः ॥
परमेष्ठिगुणैर्युक्तः साक्षाद्रुद्र इवापरः ।
उत्पन्नमात्रो देवानां व्युषितः सम्प्रमोहयन् ॥ *वाराहमहापुराण, २३/१३/१५*

२. ततः शशाप तन्देवो गणेशं परमेश्वरः ।
कुमार गजवक्त्रस्त्वं प्रलम्बजठरस्तथा ।
भविष्यसि तथा सर्पैरुपवीतगतिर्ध्रुवम् ॥ *वही, २३/१८*

से शङ्कर ने गणेश को विनायकों का अधिपति बनाया और उनका नाम रक्खा— विनायक, विघ्नकर, गजास्य, गणेश और भव-पुत्र। बहुत से वरदानों से अलङ्कृत करते हुए शङ्कर ने यज्ञादि शुभ कार्यों में गणेश की प्रथम पूजा का विधान किया। जो लोग गणेश की प्रथम पूजा नहीं करेंगे उनके कार्यों की सिद्धि का विघात होगा—ऐसा भी शङ्कर ने कहा। इसके अनन्तर भवानी-शङ्कर ने देवमण्डली के समक्ष गणेश का विनायकों के अधिपति के रूप में अभिषेक किया। देवों ने उनकी दिव्य स्तुति की। इस प्रकार वे शङ्कर-पार्वती के अपत्य के रूप में विख्यात हुए।[१] गणेश का प्रादुर्भाव चतुर्थी तिथि को हुआ था। अत: इस तिथि की महती महत्ता मानी गई है। इस तिथि को जो तिलों का भोग लगाकर गणेश की पूजा करता है और फिर प्रसाद रूप में उन्हें ग्रहण करता है उस पर वे परम प्रसन्न होते हैं।[२]

स्कन्दमहापुराण

एक समय पार्वती जी ने अपने अङ्गों में उबटन लगाया और उससे जो मैल निकली, उसे हाथ पर रखकर उसकी एक सुन्दर-स्वरूप प्रतिमा बना दी। फिर उसमें उन्होंने जीव का भी सञ्चार कर दिया। तब वह बालक उनके आगे उठकर खड़ा हो गया और माता से बोला-'आज्ञा दीजिये, मैं कौन सा कार्य करूँ ?'

बालक की बात सुनकर पार्वती जी ने कहा—'मैं जब तक स्नान करूँ, तब तक तुम मेरे द्वार पर खड़े रहो। महादेवी के इस प्रकार आज्ञा देने पर गणेश जी हथियार लेकर द्वार पर खड़े हो गये। इसी समय महादेव जी आये और उन्होंने घर के भीतर प्रवेश करने का विचार किया। किन्तु द्वार पर खड़े हुए बालक ने उन्हें रोक दिया। भीतर नहीं जाने दिया। इससे महादेव जी क्रुद्ध हो गये। फलत: दोनों पिता-पुत्र में युद्ध होने लगा। महादेवजी ने त्रिशूल से उस बालक का शिर काट डाला। अपने पुत्र को मरकर गिरा हुआ देखकर पार्वती जी 'पुत्र-पुत्र' कहकर क्रन्दन करने लगीं। पार्वती को दु:खी देखकर शङ्कर चिन्तित हो उठे। उसी बीच गजासुर शिवजी से लड़ने के लिये आया। उस महादैत्य को शङ्कर ने मार डाला और उसका मस्तक लेकर पार्वती के बनाये हुए बालक के धड़ से जोड़ दिया। फिर तो वह बालक उठकर खड़ा हो गया। शिवजी ने उसका नाम 'गजानन' रक्खा। फिर सब देवों और मुनियों ने मिलकर गणेश का स्तवन किया।[३]

---

१. एवं स्तुतैस्तदा देवैर्महात्मा गणनायक: ।
अभिषिक्तस्तु रुद्रेण सोमयाऽपत्यताङ्गत: ।। *वाराहमहापुराण,* २३/३५

२. वाराहमहापुराण, अध्याय २३

३. स्कन्दमहापुराण, ३ ब्राह्मखण्ड, धर्मारण्यमाहात्म्य।

वामनमहापुराण

चिरकाल तक शङ्कर के साथ रमण करने के अनन्तर पार्वती स्नान-गृह में स्नान करने गईं। वहाँ सेविका 'मालिनी' ने उनके शरीर पर सुगन्धित उद्वर्तन (उबटन) का लेपन और मर्दन किया। पार्वती ने उद्वर्तन के मल से सुन्दर पुरुष के लक्षणों से युक्त, गजमुखधारी, एक पुरुष की रचना कर डाली। उसे वहीं भूमि पर रखकर भद्रासन पर बैठकर पार्वती ने स्नान किया। फिर शङ्कर की पूजा कर अपने भवन में चली गईं। जिस भद्रासन पर बैठकर पार्वती ने स्नान किया था उसी पर बैठकर बाद में शङ्कर जी ने भी स्नान किया। उमा के शरीर के जल से मिलकर शङ्कर के शरीर का जल जब भूमि का स्पर्श करता हुआ मल-पुरुष से जा मिला तब हाथ फटकारते हुए एक पुरुष के रूप में वह (मल-पुरुष) उठ खड़ा हुआ। उसे अपना अपत्य समझकर शङ्कर को बड़ी प्रसन्नता हुई।[१]

स्नान आदि से निवृत्त होकर शङ्कर उस पुरुष-बालक को लेकर पार्वती के पास पहुँचे और कहा—'देवि शैलपुत्री, गुणों से अलङ्कृत अपने इस पुत्र को देखो। यह वही है जिसे तुमने अपने शरीर की मैल से बनाया था।' शङ्कर के कथन को सुनकर पार्वती प्रसन्न हो उठीं। उन्होंने उस बालक को अपनी छाती से लगाकर उस पर स्नेह की अपार वर्षा की। शङ्कर ने कहा-'मुझ नायक के बिना भी तुम्हारा यह पुत्र उत्पन्न हुआ है। अतः संसार में यह 'विनायक' के नाम से प्रसिद्ध होगा। यह देवों के विघ्नों का विनाशक होगा। देवों के साथ सारे प्राणी इसकी पूजा-अर्चना करेंगे।

मत्स्यमहापुराण

शङ्कर और पार्वती का सोत्साह विवाह हुआ। हिमालय ने बड़ी विकलता के साथ बेटी की विदाई की।[२] उमा को साथ लिये हुए भगवान् शङ्कर पहुँचे मन्दराचल पर्वत पर अपने पूर्व निर्मित भवन में। उन्होंनें सादर देवों को विदा किया और फिर रम गये उमा के साथ रमण में। इस प्रकार बहुत काल व्यतीत

---

१. ततः शंभुः समागत्य तस्मिन् भद्रासनेऽपि च ।
स्नातस्तस्य ततस्तस्मात् स्थितः स मलपुरुषः ।
उमास्वेदभवस्वेदं जलभूमिसमन्वितम् ।
तत्संपर्कात् समुत्तस्थौ फूत्कृत्य करमुत्तमम् ।
अपत्यं हि विदित्वा च प्रीतिमान् भुवनेश्वरः। *वामनमहापुराण ५४/६५-६७*

२. ततो गते भगवति नीललोहिते सहोमया रतिमलभन्न भूधरः ।
सबान्धवो भवति च कस्य नो मनो विह्वलं च जगति हि कन्यकापितुः ॥
मत्स्यमहापुराण, २/१५४/४१७

होने पर पार्वती के मन में पुत्र की कामना अङ्कुरित हुई। वे सखियों के साथ कृत्रिम पुत्र बनाकर क्रीडा किया करती थीं।

एक समय की घटना है। पार्वती ने शरीर में सुगन्धित तैल और उबटन से मालिस करवाया। मैल के साथ उबटन भूमि पर गिरा। शैलजा ने उसे इकट्ठा किया। उठाया और उससे हाथीके-से मुखवाले एक पुरुष की आकृति बना डाली।[१] उसके साथ पार्वती कुछ देर क्रीडा करती रहीं। फिर उन्होंने उसे अपनी सखी जाह्नवी के जल में डलवा दिया। जल में पड़ते ही उसने विशाल आकृति धारण कर ली। पार्वती और गङ्गा—दोनों ने उसे 'पुत्र' कहकर पुकारा। अन्त में वह गजानन 'गाङ्गेय' नाम से देवताओं द्वारा सम्मानित किया गया। ब्रह्मा ने उसे विनायकों का आधिपत्य प्रदान किया।

●

१. सखीभिः सहिता क्रीडां चक्रे कृत्रिमपुत्रकैः ।
कदाचिद्गन्धतैलेन गात्रमभ्यज्य शैलजा ॥
चूर्णैरुद्वर्तयामास मलिनान्तरितां तनुम् ।
तदुद्वर्तनकं गृह्य नरं चक्रे गजाननम् ॥ *मत्स्यमहापुराण,* २/१५४/५०१-५०२

जय-विजय-कथा

श्रीमद्भागवत

एक समय सनकादि चारों ऋषि अविहत गति से विचरण करते हुए विष्णु के धाम वैकुण्ठ में पहुँचे। वहाँ छः द्वारों को पारकर जब वे सप्तम द्वार पर पहुँचे तो वहाँ के द्वारपाल जय-विजय ने उन्हें भीतर प्रवेश करने से रोक दिया। उनका वेष विष्णु जैसा था। उनके हाथ में गदा विराजमान थी। भगवद्दर्शन के लिये प्रवेश से अवरुद्ध किये जाने पर महर्षियों को कुछ क्रोध-सा आ गया। उन्होंने द्वारपालों को शाप देते हुए कहा—'तुम लोग अपनी भेदबुद्धि दोष के कारण इस वैकुण्ठ लोक से निकल कर उन पापमय योनियों में जाओ, जहाँ काम, क्रोध, लोभ, प्राणियों के ये त्रिविध शत्रु निवास करते हैं।' शाप सुनते ही जय-विजय दीनतापूर्वक महर्षियों के चरण पकड़कर पृथ्वी पर लोट गये। पुनः वे हाथ जोड़-कर बोले—'भगवन्, हम अवश्य अपराधी हैं। अतः आपके द्वारा प्रदत्त दण्ड समुचित ही है। हमने भगवान् का अभिप्राय न समझ कर उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया है। इससे हमें जो पाप लगा है, वह आपके द्वारा प्रदत्त दण्ड से धुल जाएगा। किन्तु हमारी इस दुर्दशा का विचार करके यदि करुणावश आपको स्वल्प भी अनुताप हो, तो ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे उन अधमाधम योनियों में जाने पर भी हमें भगवत्स्मृति को नष्ट करने वाला मोह न प्राप्त हो, हमें भगवन् का स्मरण बना रहे।'

इसी समय नारायण को जब यह पता लगा कि हमारे भृत्यों ने सनकादि मुनियों का अनादर किया है तो वे, लक्ष्मीजी के साथ, चलकर द्वार पर आये। उन्हें देखकर महर्षियों ने उनका स्तवन किया। भगवान् ने महर्षियों से कहा—'जय-विजय मेरे पार्षद हैं। इन्होंने आपका बहुत बड़ा अपराध किया है। आप मेरे अनुगत भक्त हैं। अतः आपका अपमान मेरा अपमान है। इसलिये आपने इन्हें जो दण्ड दिया है, वह बिल्कुल समुचित है। मेरी महिमा ब्राह्मणों के ही कारण है। अतः ब्राह्मणों के विपरीत आचरण करने वाले अपने बाहु को भी काटने में मुझे न तो सङ्कोच होगा और न विलम्ब ही। ब्रह्मर्षियों, मेरे इन सेवकों ने मेरा अभिप्राय न समझकर ही आप लोगों का अपमान किया है। इसलिये मेरे अनुरोध से आपलोग इतनी कृपा कीजिये कि इनका यह निर्वासन-काल शीघ्र ही समाप्त हो जाय। ये अपने अपराध के अनुरूप अधम गति को भोगकर शीघ्र ही मेरे पास

वापस आजायें।[१]

सनकादि के शाप का ही प्रभाव था कि जय-विजय कश्यप की पत्नी दिति के गर्भ से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के रूप में जन्म ग्रहण किये। वे ही आगे रावण और कुम्भकर्ण तथा शिशुपाल एवं दन्तवक्त्र के रूप में जन्में हैं। शिशुपाल और दन्तवक्त्र के रूप में उनका अन्तिम जन्म था। इन तीन जन्मों तक विप्रों के शाप को भोगकर वे पुनः अपने पूर्व स्थान और अधिकार को प्राप्त कर लिये।[२]

स्कन्दमहापुराण

बात पुरानी है। तृणबिन्दु की कन्या थी—'देवहूति।' उसके गर्भ से महर्षि कर्दम की दृष्टिमात्र से दो पुत्र उत्पन्न हुए। बड़े का नाम था 'जय' और छोटे का नाम था —'विजय'। बाद में उसी देवहूति के गर्भ से योगधर्म के ज्ञाता भगवान् कपिल का प्रादुर्भाव हुआ था। जय और विजय भगवान् विष्णु के भक्त थे। वे नित्य अष्टाक्षर मन्त्र (नमो नारायणाय) का जप और वैष्णव व्रतों का पालन करते थे।

एक समय राजा मरुत्त ने उन दोनों को अपने यज्ञ में बुलाया। वहाँ जय ब्रह्मा बनाये गये और विजय आचार्य। उन्होंने यज्ञ की सम्पूर्ण विधि पूर्ण की। यज्ञ की समाप्ति पर राजा ने उन दोनों को प्रभूत सम्पत्ति प्रदान की। धन लेकर दोनों भाई अपने आश्रम पर गये। वहाँ धन के विभाजन के विषय में बन्धुद्वय परस्पर भिड़ गये। जय का कथन था कि 'सम्पत्ति का विभाजन हम दोनों समानरूप से कर लें।' किन्तु विजय कहते थे कि 'नहीं, जो सम्पत्ति जिसे मिली है, वह उसी के पास रहे।' इस पर कोपाविष्ट जय ने विजय को शाप दिया—'तुम ग्रहण करके देते नहीं हो, इसलिये ग्राह बन जाओ।' जय के इस शाप को सुनकर प्रत्युत्तर में विजय ने भी शाप दिया—'तुमने मद से भ्रान्त होकर शाप दिया है, इसलिए मातङ्ग (हाथी) की योनि में जाओ।' तत्पश्चात् उन्होंने भगवान् से शापनिवृत्ति के लिये प्रार्थना की। भगवान् ने कहा—'तुम मेरे भक्त हो। अतः तुम्हारा वचन कभी

---

१. भागवत के अन्यान्य स्थलों को देखने से यह निश्चित होता है कि मुनियों का यह शाप तीन जन्मों तक के लिये था-

एवं शप्तौ स्वभवनात् पतन्तौ तैः कृपालुभिः ।
प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥ ७/१/३८

तथा

जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ।
ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ॥ १०/७४/४६

२. श्रीमद्भागवत १/१५-१७

मिथ्या न होगा। तुम दोनों अपने ही दिये हुए इन शापों को भोग कर फिर मेरे धाम को प्राप्त होओगे।' ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर वे दोनों गण्डकी नदी के तट पर ग्राह और गज बने। उस योनि में भी उन्हें पूर्व जन्म का स्मरण बना रहा और वे विष्णु के व्रत में तत्पर रहे।

एक समय कार्तिक के महीने में गजराज स्नान करने के लिये गण्डकी नदी में गया। उस समय ग्राह ने शाप के हेतु का स्मरण करते हुए गज को पकड़ लिया। ग्राह के द्वारा पकड़ लिये जाने पर गजराज ने रमानाथ का स्मरण किया। भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने चक्र चलाकर ग्राह और गजराज दोनों का उद्धार किया और उन्हें अपने ही जैसा रूप देकर वैकुण्ठ धाम ले गये। तब से वह स्थान हरिक्षेत्र के नाम से विख्यात है। वे ही दोनों विश्वविदित जय और विजय हैं, जो भगवान् के द्वारपाल हुए हैं।[१]

●

१. स्कन्दमहापुराण, वैष्णवखण्ड, कार्तिकमाहात्म्य, गीताप्रेस संस्करण

ज्योतिर्लिङ्ग-कथा

ब्रह्ममहापुराण

मालवदेश में 'अवन्ती' नामक नगरी थी।[१] इसे सम्प्रति उज्जयिनी के नाम से जाना जाता है। यह क्षिप्रा नदी के पावन मनभावन तट पर बसी है।[२] वहाँ त्रिलोचन भगवान् शङ्कर 'महाकाल' के नाम से विराजमान है।[३] उनके पार्श्वभाग में पवित्र शिवकुण्ड है। वहाँ स्नान करके महाकाल के दर्शन-पूजन का विधान है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति शिव के लोक में निवास करता है। महाप्रलय पर्यन्त यहाँ विविध भोगों को भोगने के अनन्तर प्राणी भूतल पर ब्राह्मण के कुल में जन्म ग्रहण करता है। चारों वेदों का वह महान् ज्ञाता बनता है। यहाँ पाशुपत-योग का आश्रय लेकर अन्त में वह मुक्त हो जाता है।[४]

शिवमहापुराण

शिवमहापुराण की शतरुद्रसंहिता और कोटिरुद्रसंहिता में भगवान् शङ्कर के द्वादश ज्योतिर्लिंगों का सविस्तर वर्णन है।[५] ये ज्योतिर्लिंग सकल संसार में सुविदित हैं। अत: यहाँ इनका अतिसंक्षिप्त विवरण क्रमश: प्रस्तुत किया जा रहा है। यहाँ यह बतला देना अप्रासङ्गिक न होगा कि द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों का जैसा सुसम्बद्ध और क्रम-बद्ध वर्णन शिवमहापुराण में उपलब्ध होता है, वैसा अन्य पुराणो में नहीं है। इन ज्योतिर्लिङ्गों के क्रम एवं नाम इस प्रकार हैं—१. सोमनाथ, २. मल्लिकार्जुन, ३. महाकाल, ४. ओंकारेश्वर, ५. केदारेश्वर, ६. भीमशङ्कर, ७. विश्वेश्वर, ८. त्र्यम्बकेश्वर, ९. वैद्यनाथ, १०. नागेश, ११. रामेश्वर और १२. घुश्मेश।[६]

---

१. अवन्तीनाम नगरी मालवे भुवि विश्रुता । *ब्रह्ममहापुराण, ४१/४२*

२. आस्ते तत्र नदी पुण्या क्षिप्रानामेति विश्रुता । *वही, ४१/७५*

३. तत्रास्ते भगवान् देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः ।
महाकालेति विख्यातः सर्वकामप्रदः शिवः ॥ *वही, ४१/६५-६६*

४. ब्रह्ममहापुराण के ४१वें अध्याय में महाकाल लिङ्ग का बस इतना ही संक्षिप्त परिचय प्राप्त होता है।

५. देखिये—शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, अध्याय ४२ और कोटिरुद्रसंहिता,अध्याय १४-३३

६. सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनः। उज्जयिन्यां महाकाल ओंकारे चामरेश्वरः ॥
केदारो हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करः। वाराणश्यां च विश्वेशस्त्र्यम्बको गौतमीतटे ॥
वैद्यनाथश्चिताभूमौ नागेशो दारुकावने । सेतुबन्धे च रामेशो घुश्मेशश्च शिवालये ॥
शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ४२/२-४

१. **सोमनाथ**–प्रजापति दक्ष की सत्ताईस सुन्दरी बेटियाँ चन्द्र के साथ विवाहित थीं। उनमें रोहिणी सर्वाधिक सुन्दरी थी। फलत: कामी चन्द्र उसमें सर्वाधिक आसक्त थे। दक्ष ने सभी बेटियों पर समदृष्टि रखकर समव्यवहार करने की बात चन्द्र को समझाई। किन्तु चन्द्र ने दक्ष की शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस पर क्रुद्ध दक्ष ने उन्हें क्षयी होने का शाप दे दिया।

ब्रह्मा की प्रेरणा से चन्द्रदेव ने प्रभास क्षेत्र में जाकर शङ्कर की तीव्र आराधना की । शङ्कर प्रसन्न हो उन्हें नित्य क्षय से मुक्त कर दिये। उन्होंने कहा–'चन्द्रदेव, एक पक्ष में प्रतिदिन तुम्हारी कला क्षीण हो और दूसरे पक्ष में फिर वह निरन्तर बढती रहे।' इसके बाद वे वहीं स्थित हो गये। चन्द्र की आराधना से प्रसन्न हो प्रकट हुए थे। अत: वे सोमनाथ कहलाये।

२. **मल्लिकार्जुन**–शिवलीला की बात विचित्र है। एकबार किशोर अवस्था वाले कार्तिकेय और गणेश में यह विवाद छिड़ गया कि–मेरा विवाह पहले हो, मेरा विवाह पहले हो। यह देखकर शङ्कर और पार्वती ने शर्त रक्खी–'पृथिवी की परिक्रमा करके जो पहले आयेगा, उसका विवाह पहले किया जायेगा।' कार्तिकेय मयूरपर आरूढ होकर चल पड़े पृथिवी की परिक्रमा के लिये। किन्तु मूषकवाहन लम्बोदर के लिये यह असम्भव-सा कार्य था। अत: उन्होंने बुद्धि से काम लिया। माता-पिता की परिक्रमा करके उन्होंने कहा–'पिताजी, माताजी, मेरा विवाह कर दीजिये, क्योंकि माता-पिता की परिक्रमा पृथिवी की परिक्रमा के बराबर कही गई है। फलत: उनका विवाह कर दिया गया।

जब सारी पृथिवी की परिक्रमा पूरी करके महाबली कार्तिकेय कैलास पर्वत पर पहुँचे तो उन्होंने गणेश के विवाह की बात सुनी। अत: कुपित होकर वे दक्षिण दिशा में क्रौञ्च पर्वत पर चले गये। पार्वती और शङ्कर जी उनके पास गये। उन्हें बहुत समझाया-बुझाया । किन्तु वे एक न माने। अपनी जिद पर अड़े रहे। फलत: पार्वती और परमेश्वर ज्योतिर्मय स्वरूप धारण करके वहीं प्रतिष्ठित हो गये। उसी दिन से उनका वह ज्योतिर्लिंग मल्लिकार्जुन नाम से त्रिलोकी में प्रसिद्ध हुआ। उसमें पार्वती और शिव—दोनों की ज्योतियाँ प्रतिष्ठित हैं।[१] 'मल्लिका' का अर्थ है पार्वती और अर्जुन शब्द शिव का वाचक है।

३. **महाकाल**–अवन्ती नाम की एक प्रसिद्ध नगरी थी। इसे उज्जयिनी भी कहा जाता था।[२] सम्प्रति यह उज्जैन के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ परम धार्मिक

१. तद्दिनं हि समारभ्य मल्लिकार्जुनसंभवम् ।
लिङ्गं चैव शिवस्यैकं प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ *शि०म०पु० ४/१५/१९*

२. अवन्ती नगरी रम्या मुक्तिदा सर्वदेहिनाम् ।
शिवप्रिया महापुण्या वर्तते लोकपावनी ॥ *शि०म०पु० ४/१६/५*
मिलाइये—ऊज्जयिन्यां महाकाल..........। *वही, ३/४२/३*

शिवार्चापरायण चार सहोदर ब्राह्मण-बन्धु थे–देवप्रिय, प्रियमेधा, सुकृत और सुव्रत। उसी समय रत्नमाल पर्वत पर एक असुर निवास करता था। उसका नाम था–दूषण। ब्रह्मा के वरदान के कारण वह अपराजेय और उद्धत बन बैठा था। महात्माओं पर आक्रमण करना उसका स्वभाव हो गया था। अन्त में उसने विशाल सैन्य-बल के साथ अवन्ती पर भी आक्रमण कर दिया। उसने उस समय शिवार्चा में निमग्न देवप्रिय आदि बन्धुओं को मारने के लिये तलवार उठाई। ठीक उसी समय ब्राह्मणों के द्वारा पूजित पार्थिव शिवलिङ्ग के स्थान में महान् गर्जन के साथ एक गर्त (गड्ढा) प्रकट हो गया। उस गड्ढे से तत्काल विकटरूपधारी शिव प्रकट हो गये। उन्होंने कहा–'अरे खल, मैं तुम जैसे दुष्टों के लिये महाकाल प्रकट हुआ हूँ।' ऐसा कहकर महाकाल शङ्कर ने सेना-समेत दूषण को अपने हुंकारमात्र से भस्म कर डाला।[१]

अन्त में ब्राह्मणों ने भगवान् शङ्कर से वर माँगा–'प्रभो, शिव, आप जन-सामान्य की सुरक्षा हेतु यहीं निवास करें।' उनकी प्रार्थना पर शम्भु उसी गर्त में लिङ्ग रूप से विराजमान हो गये। वहाँ की चारों ओर एक-एक कोस भूमि लिंग रूपी भगवान् शिव का स्थल बन गई। वे शिव भूतल पर महाकालेश्वर के नाम से विख्यात हुए।

४. अमरेश्वर अथवा अमलेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग–मेरु पर्वत को अपनी वृद्धि से अतिशयित करने के लिये विन्ध्य ने ओंकारेश्वर के स्थान में जाकर शङ्कर की अद्भुत आराधना की। वहाँ उसने पार्थिव मूर्ति में शिव की समाराधना करते हुए छः मास तक निरन्तर निश्चल स्थिति बनाये रक्खा। उसके तप से सन्तुष्ट हो आविर्भूत शङ्कर ने कहा–'विन्ध्य, तुम्हारे तप से प्रसन्न हूँ। वर माँग लो।'

शङ्कर की बात सुनकर विन्ध्य मेरु को अतिशयित करने वाली (लाँघने वाली) अपनी समृद्धि के साथ ही माँगा–'प्रभो, आप सर्वदा यहीं निवास करें।' उसकी इस याचना में देवों और ऋषियों-मुनियों ने भी साथ दिया। भक्तों की प्रार्थना सुनकर शम्भु ने वैसा ही किया। वहाँ जो एक ही ओंकार लिङ्ग था, वह दो स्वरूपों में विभक्त हो गया। प्रणव में जो सदाशिव थे, वे ओंकार नाम से विख्यात हुए और पार्थिव मूर्ति में जो शिवज्योति प्रतिष्ठित हुई उसकी परमेश्वर संज्ञा हुई।[२] परमेश्वर को अमरेश्वर भी कहते हैं।

---

१. महाकालः समुत्पन्नो दुष्टानां त्वादृशामहम् ।
इत्युक्त्वा हुंकृतेनैव भस्मसात् कृतवांस्तदा ॥ *शिवमहापुराण, ४,१६/३८-३९*

२. ओंकारं चैव यल्लिङ्गमेकं तच्च द्विधा गतम् । प्रणवे चैव ओंकारनामासीत् स सदाशिवः ॥
पार्थिवे चैव यज्जातं तदासीत् परमेश्वरः । भक्ताभीष्टप्रदौ चोभौ भुक्तिमुक्तिप्रदौ द्विजाः ॥
शिवमहापुराण, ४/१८/२२-२३

५. **केदारेश्वर**–हिमालय के उत्तुंग शृंग पर नर-नारायण तप-रत थे। पार्थिव लिङ्ग का पूजन उनका नित्य का नियम था। उनकी पूजा ग्रहण करने के लिये शङ्कर नित्य उनके द्वारा निर्मित पार्थिव लिङ्ग में आया करते थे। बहुत काल व्यतीत हो जाने के बाद परमेश्वर शिव ने प्रसन्न होकर कहा–"मैं तुम लोगों की आराधना से परम सन्तुष्ट हूँ। तुम दोनों वर माँग लो।"

शङ्कर के सुप्रसन्न वचन को सुनकर नर-नारायण ने कहा–'देवेश्वर, यदि आप प्रसन्न हैं और यदि हमें वर देना चाहते हैं तो आप अपने स्वरूप से पूजा ग्रहण करने के लिये यहीं स्थित हो जाइये।'

उन दोनों बन्धुओं के इस प्रकार अनुनय करने पर कल्याणकारी महेश्वर हिमालय के उस केदारतीर्थ में स्वयं ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थित हो गये।[१] उन्हें ही केदारेश्वर महादेव के नाम से दुनियाँ जानती मानती एवं पूजती है।

६. **भीमशङ्कर**–कामरूप देश में भगवान् शङ्कर भीमशङ्कर के नाम से अवतीर्ण हुए थे। बहुत पहले की बात है। वहाँ भीमनामक राक्षस निवास करता था। वह महाबली राक्षस कुम्भकर्ण के वीर्य और कर्कटी राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था तथा अपनी माता के साथ सह्य पर्वत पर निवास करता था। ब्रह्मा से अतुल बल का वर पाकर सारे ससांर से धर्म का ध्वंस करना ही उसने अपना लक्ष्य बना लिया था। इससे देव, ऋषि और मुनि सभी पीडित हो उठे।

एक बार भीम ने कामरूप के नरेश सुदंक्षिण को जीत कर उन्हें जेल में डाल दिया। सुदक्षिण शिव के परम भक्त थे। वे वहाँ भी शिव का पार्थिव लिङ्ग बनाकर पूजते थे और पञ्चाक्षर मन्त्र का तन्मय हो जप करते थे। उनके इस शिवार्चन में राजवल्लभा दक्षिणा भी श्रद्धासहित सहयोग किया करती थी।

एक बार किसी ने भीम से कहा कि राजा कारागार में आपके विनाश के लिये कोई अभिचार कर रहे हैं। इस समाचार को सुनते ही राक्षस कुपित हो उठा। उसने कोश से तलवार निकाली और पहुँच गया कारागार में राजा के पास। उसने देखा राजा सामग्रियों के साथ शिव-पूजन करने में तन्मय हैं। उसने शङ्कर को दुर्वचन कहा। राजा को डराया-धमकाया तथा शङ्कर के पार्थिव लिंग पर तलवार चलाई। वह तलवार उस पार्थिव लिंग का स्पर्श भी नहीं करने पाई थी कि उससे साक्षात् भगवान् हर प्रकट हो गये और बोले–'देखो, मैं भीमेश्वर हूँ और अपने

---

१. यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरस्त्वया।
स्थीयतां स्वेन रूपेण पूजार्थं शङ्कर स्वयम्॥
इत्युक्तस्तु तदा ताभ्यां केदारे हिमसंश्रये।
स्वयं च शङ्करस्तस्थौ ज्योतीरूपो महेश्वरः॥ *शिवमहापुराण*, ४/१९/६-७

भक्त की रक्षा के लिये प्रकट हुआ हूँ।' ऐसा कहकर उन्होंने भीम की तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर त्रिशूल का प्रहार कर उस दुष्ट के भी सैकड़ों टुकड़े कर डाले। उसके बाद ऋषियों-मुनियों की प्रार्थना पर भगवान् भीमेश्वर नाम से वहीं विराजामान हो गये।

७. विश्वेश्वर या विश्वनाथ–काशी में परमात्मा शिव ने अविमुक्त लिंग की स्थापना की है। यह लिंग काशी का कभी परित्याग नहीं करता।[1] कालान्तर में कैलाशपति कालाग्नि रुद्र एवं अविमुक्त की प्रार्थना से काशी में सर्वेश्वर साक्षात् शिव ही अविमुक्तेश्वर अथवा विश्वेश्वर के नाम से लिंग के रूप में विराजमान हो गये। यही विश्वनाथ-ज्योतिर्लिङ्ग के नाम से त्रिलोकी में विख्यात है। विश्वनाथ के ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में विराजने से ही काशी त्रिलोकी की सर्वश्रेष्ठ पुरी बन गई है।[2]

८. त्र्यम्बकेश्वर–महर्षि गौतम ने, अपनी पत्नी अहल्या के साथ, दक्षिण दिशा में ब्रह्मगिरि पर्वत पर दस सहस्त्र वर्षों तक उग्र तप किया था। एक समय वहाँ सौ वर्षों तक बड़ा भयानक अवर्षण हो गया। गौतम ने वरुण को प्रसन्न कर एक अक्षय्य जल-स्त्रोत प्राप्त किया। दूर-दूर के ऋषि-मुनि आकर गौतम के आश्रम में आश्रय लिये। आश्रम की व्यवस्था सुचारु रूप से चल रही थी।

कुछ समय के व्यतीत होने पर वहाँ जल के प्रश्न पर स्त्रियों में विवाद हो गया। मुनियों ने छल कर गौतम पर गोहत्या का पाप मढ़ा। सपत्नीक महर्षि ने भगवान् शङ्कर की आराधना की। शङ्कर सन्तुष्ट हो उन्हें दर्शन दिये। गौतम ने उनसे वर माँगा-'देवेश, यदि आप प्रसन्न हैं तो आप मुझे गङ्गा प्रदान कीजिये जिससे मैं पवित्र हो सकूँ।' शङ्कर ने उन्हें गङ्गा प्रदान किया। गङ्गा, ऋषि और देवों के आग्रह पर स्वयं भगवान् शङ्कर वहाँ त्र्यम्बकेश्वर के नाम से स्थित हो गये।[3]

गङ्गा ने देवों की स्थिति भी वहाँ चाही तो उन लोगों ने कहा–'सरिताओं

---

१. अविमुक्तं स्वयं लिङ्गं स्थापितं परमात्मना ।
न कदाचित्त्वया त्याज्यमिदं क्षेत्रं ममांशक ॥ *शिवमहापुराण, ४/२२/२१*

२. इत्येवं प्रार्थितस्तेन विश्वनाथेन शङ्करः ।
लोकानामुपकारार्थं तस्थौ तत्रापि सर्वराट् ॥
यद्दिनं हि समारभ्य हरः काश्यामुपागतः ।
तदारभ्य च सा काशी सर्वश्रेष्ठतराऽभवत् ॥४/२२/३९-४०

३. किञ्चान्यच्च शृणु स्वामिन् वपुषा सुन्दरेण ह ।
तिष्ठ त्वं मत्समीपे वै सगणः सांबिकः प्रभो ॥ *शिवमहापुराण ४/२६/३२*
धन्यासि श्रूयतां गङ्गे ह्यहं भिन्नस्त्वया नहि ।
तथापि स्थीयते ह्यत्र स्थीयतां च त्वयापि हि ॥ *वही, ४/२६/३४*
यदि प्रसन्नो देवेश प्रसन्ना त्वं सरिद्वरे ।
स्थातव्यमत्र कृपया नः प्रियार्थं तथा नृणाम् ॥ *वही, ४/२६/४०*

में श्रेष्ठ गङ्गा', सबके परम सुहृद् वृहस्पति जी जब-जब सिंह राशि पर होंगे, तब-तब हम सब यहाँ आया करेंगे। महादेवि, अत: आपको और भगवान् शङ्कर को समस्त लोगों पर अनुग्रह तथा हमारा प्रिय करने के लिये यहाँ नित्य निवास करना चाहिये। गुरु जब तक सिंह राशि पर रहेंगे तभी तक हम यहाँ निवास करेंगे। उस समय तुम्हारे जल में त्रिकाल स्नान और भगवान् शङ्कर के दर्शन करके हम सब शुद्ध होंगे। फिर तुम्हारी आज्ञा लेकर अपने स्थान को परावर्तित होंगे। यही अवसर वहाँ बारह वर्ष पर कुम्भ लगने का काल है।

उसी समय से भगवान् शङ्कर का त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग वहाँ विराजमान हुआ।

९. **वैद्यनाथ**–महान् अहङ्कारी राक्षसराज रावण कैलास पर्वत पर शङ्कर की आराधना कर रहा था। बड़ी कठिन तपस्या के बाद दुष्टों के लिये दुराराध्य शङ्कर प्रसन्न हुए। रावण ने उनसे वर माँगा—'देवेश्वर मैं आपको लंका ले चलता हूँ। आप मेरे इस मनोरथ को सफल कीजिये। मैं आपका शरणागत हूँ।' रावण की बात सुनकर शङ्कर शङ्कट में पड़ गये। फिर अन्यमनस्कभाव से उन्होंने कहा–'राक्षसराज, तुम, मेरे उस उत्तम लिङ्ग को भक्तिभाव से अपने घर ले जाओ। किन्तु यदि मार्ग में इसे तुम भूमि पर रख दोगे, तो यह वहीं सुस्थिर हो जायेगा। फिर इसे आगे नहीं ले जा सकोगे । ऐसी स्थिति में जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो।'

अभिमानी रावण ने शङ्कर की बात स्वीकार की। वह शिवलिङ्ग को लेकर लंका की ओर चला। भगवान् शङ्कर की माया अद्भुत है। मार्ग में रावण को मूत्रोत्सर्ग की इच्छा हुई। उस समय मूत्र के वेग को रोक पाना रावण के सामर्थ्य के बाहर था। इसी समय वहाँ एक गोप को देखकर उसने प्रार्थनापूर्वक वह शिवलिंग उसके हाथ में थमा दिया और स्वयं मूत्र-त्याग के लिये बैठ गया। एक मुहूर्त के अनन्तर ही शिवलिंग का भार गोप के लिये असह्य हो गया। अत: उसने उसे पृथिवी पर रख दिया। फिर तो वह हीरकमय शिवलिंग वहीं स्थित हो गया।[१] देव-मण्डली ने आकर उसकी विधिवत् स्थापना और पूजा की। यत: रावण के कटे हुए शिरों को वैद्य की भाँति जोड़ दिया था। अत: इस लिंग का नाम वैद्यनाथ रक्खा गया।

---

१. आसीन्मूत्रोत्सर्गकामो मार्गे हि शिवमायया ।
तत्स्तम्भितुं न शक्तोऽभूत्पौलस्त्यो रावण: प्रभु: ॥
दृष्ट्वैकं तत्र वै गोपं प्रार्थ्य लिङ्गं ददौ च तत् ।
मुहूर्तके ह्यतिक्रान्ते गोपोऽभूद्विकलस्तदा ॥
भूमौ संस्थापयामास तद्भारेणातिपीडित: ॥ *शिवमहापुराण, ४/२८/१७-१८*

१०. नागेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग–पार्वती की प्रिय भक्त राक्षसी दारुका अपने पति दारुक के साथ पश्चिम सागर में बसी हुई थी। राक्षसों का एक विशाल समूह उनकी सेवा-शुश्रूषा में निरत रहा करता था। उन दिनों भारत का पश्चिम से नौ-व्यापार चलता था। एक बार व्यापारियों की नावें उधर से जा रही थीं। उन पर बहुत से व्यापारी आरूढ थे। उस सार्थ (समूह) का वाहक था 'सुप्रिय' नामक वैश्य। वह सदाचारी, भस्मरुद्राक्षधारी तथा शिव का परम भक्त था। राक्षसों ने उन सबको पकड़कर कारागार में डाल दिया।

सुप्रिय का नियम था। वह शिव की पूजा किये बिना भोजन नहीं करता था। उसे भगवान् शिव का साक्षात्कार भी होता था। कारागार में सभी शङ्कर का ध्यान और 'नमःशिवाय' मन्त्र का जप करते थे। दारुक को जब इस बात का पता लगा, तब आकर उसने सुप्रिय को धमकाया। राक्षसों ने उसे डराया। भयकातर सुप्रिय ने आँखे बन्द कर शिव की बड़ी करुण स्तुति की ।

सुप्रिय की करुण पुकार सुनकर भगवान् शङ्कर एक विवर से प्रकट हो गये। उनके साथ ही चार द्वार का एक उत्तम मन्दिर भी प्रकट हो गया । उसके मध्यभाग में अद्भुत ज्योतिर्मय शिवलिङ्ग प्रकाशित हो रहा था। सुप्रिय ने उसका दर्शन-पूजन किया। शङ्कर ने सुप्रिय पर प्रसन्न होकर प्रधान-प्रधान राक्षसों का वध कर दिया। तदनन्तर शङ्कर पार्वती के सहित वहीं प्रतिष्ठित हो गये। शङ्कर का वह लिङ्ग नागेश्वर और पार्वती की प्रतिमा नागेश्वरी नाम से संसार में प्रसिद्ध हुई।[१]

११. रामेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग–राम रावण की लंका पर आक्रमण की तैयारी कर रहे थे। वे सागर के तट पर बैठकर उसे पार करने की योजना बना रहे थे। इसी समय उन्हें प्यास लगी। जल का पात्र उन्होंने हाथ में उठा लिया। किन्तु तभी उन्हें स्मरण हो आया कि अभी तो मैंने शिवार्चन किया ही नहीं है। अतः जल-पात्र उन्होंने भूमि पर रख दिया। फिर तो रघुनन्दन ने पार्थिव पूजन किया। प्रणाम करके आर्द्र-हृदय से उनका स्तवन किया। भक्ति-भाव से नृत्यकर गाल बजाकर अव्यक्त शब्द किया ।

राम की आराधना से शङ्कर प्रसन्न हो उठे। फिर तो वे ज्योतिर्मय महेश्वर वामाङ्गभूता पार्वती एवं पार्षदगणों के साथ शास्त्रोक्त निर्मल रूप धारण करके तत्काल वहाँ प्रकट हो गये । उन्होंने रावण पर राम के विजय का वर दिया। पुनः

१. इत्येवं दम्पती तौ च कृत्वा हास्यं परस्परम् ।
स्थितौ तत्र स्वयं साक्षान्महोतिकारकौ द्विजाः ।।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपो हि नाम्ना नागेश्वरः शिवः ।
नागेश्वरी शिवा देवी बभूव च सतां प्रियौ ।। *शिवमहापुराण, ४/३०/३१-३२*

राम ने प्रार्थना की–'मेरे स्वामी शङ्कर, यदि आप सन्तुष्ट हैं तो जगत् के लोगों को पवित्र करने तथा दूसरों का कल्याण करने के लिए यहाँ सदा निवास करें।'

श्रीराम की प्रार्थना सुनकर भगवान् शिव वहाँ ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में स्थित हो गये। तीनों लोकों में रामेश्वर नाम से उनकी प्रसिद्धि हुई। उनके प्रभाव से ही राम ने सागर को पार कर रावण का संहार किया और अपनी प्रियतमा सीता को प्राप्त किया ।[१]

१२. घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग–दक्षिण दिशा में देवगिरि पर्वत के सन्निकट भारद्वाजकुलोत्पन्न सुधर्मा नाम के एक ब्राह्मण रहा करते थे। उनकी प्रियतमा पत्नी का नाम 'सुदेहा' था। दोनों ही बड़े सदाचारी और सात्त्विक थे। भौतिक सम्पत्ति की भी उनके यहाँ कमी न थी। शङ्कर की भक्ति उनका सर्वस्व था ।

यह सब कुछ होने पर भी उनके पुत्र नहीं था, कोई सन्तति न थी। सारे लौकिक और पारलौकिक उपाय निष्फल हो चुके थे। तब सुदेहा ने अत्यन्त दुःखी हो बहुत हठ करके अपनी छोटी बहन घुश्मा से पति का दूसरा विवाह करा दिया। साथ ही यह वचन भी दिया कि बहन से मैं कभी ईर्ष्या डाह नहीं करूँगी।

विवाह के अनन्तर घुश्मा दासी की भाँति बड़ी बहन की सेवा करने लगी। सुदेहा उसे बहुत स्नेह-दान करती रही। घुश्मा अपनी शिव-भक्ता भगिनी की आज्ञा से नित्य एक सौ एक पार्थिव शिवलिंग बनाकर सविधि पूजन करने लगी। पूजा की परिसमाप्ति कर वह निकटवर्ती तालाब में उनका विसर्जन कर देती थी ।

कुछ काल के व्यतीत हो जाने पर, शङ्कर जी की कृपा से, उससे सौभाग्यवान् सद्गुणसम्पन्न एक पुत्र हुआ। घुश्मा का कुछ मान बढ़ा। इससे सुदेहा के मन में ईर्ष्या का अङ्कुर प्रस्फुटित हुआ। समय पर उस पुत्र का विवाह हुआ। पुत्रवधू का घर में आगमन हुआ। अब तो सुदेहा की ईर्ष्यालता आकाश को छूने लगी। एक रात्रि में उसने शयन कर रहे पुत्र को छुरिका से मारकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया और उसके अंगों को ले जाकर उसी तालाब में डाल दिया जिसमें घुश्मा पार्थिव लिङ्गों को प्रक्षिप्त करती थी।

प्रातः होने पर पुत्र की शय्या की स्थिति को देखकर घर में कुहराम मच गया। किन्तु घुश्मा पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह अविचल भाव से

१. त्वया स्थेयमिह स्वामिन् लोकानां पावनाय च ।
परेषामुपकारार्थं यदि तुष्टोऽसि शङ्कर ॥
इत्युक्तस्तु शिवस्तत्र लिङ्गरूपोऽभवत्तदा ।
रामेश्वरश्च नाम्ना वै प्रसिद्धो जगतीतले ॥
रामस्तु तत्प्रभावाद्वै सिन्धुमुत्तीर्य चाञ्जसा ।
रावणादीन्निहत्याशु राक्षसान् प्राप तां प्रियाम् ॥ *शिवमहापुराण, ४/३१/३६-४१*

पार्थिवार्चन में लगी रही। उसका मन बेटे को देखने के लिये तनिक भी उत्सुक नहीं हुआ। उसे शङ्कर की कृपा पर अविचल श्रद्धा और विश्वास था।

घुश्मा पार्थिवार्चन की सारी प्रक्रिया पूरी करने के बाद लिङ्गों को तालाब में फेंकने गई। उन पार्थिव लिङ्गों को तालाब में डालकर जब वह लौटने लगी तो उसे अपना पुत्र उसी तालाब के तट पर खड़ा दिखाई दिया। उसे देखकर भी घुश्मा को न तो हर्ष हुआ और न विस्मय ही। वह पूर्ववत् स्वस्थ बनी रही। इसी प्रकार उस पर प्रसन्न हुए ज्योतिःस्वरूप महेश्वर शिव शीघ्र उसके समक्ष प्रकट हो गये। उन्होंने घुश्मा से कहा—'सुमुखि, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। वर माँगो। तेरी दुष्ट सौत ने इस बच्चे को मार डाला था। अतः मैं उसे त्रिशूल से मारूँगा।'[१] शङ्कर का वचन सुनकर घुश्मा ने बहन को क्षमा करने की प्रार्थना की और कहा—'प्रभो यदि आप वर देना चाहते हैं तो लोगों की रक्षा के लिये सदा यहाँ निवास कीजिये और मेरे नाम से ही आप की ख्याति हो।'

घुश्मा की प्रार्थना सुनकर भगवान् शङ्कर ने कहा—'मैं तुम्हारे ही नाम से घुश्मेश्वर कहलाता हुआ सदा यहाँ निवास करूँगा । मेरा यह ज्योतिर्लिङ्ग घुश्मेश के नाम से प्रसिद्ध होगा। यह सरोवर शिवलिङ्गों का आलय हो जाय और इसीलिये इसकी तीनों लोकों में शिवालय के नाम से प्रसिद्धि हो।' ऐसा कहकर भगवान् शिव वहाँ ज्योतिर्लिङ्ग रूप में स्थित हो गये। उनकी घुश्मेश नाम से प्रसिद्धि हुई और उस सरोवर का नाम शिवालय हो गया ।

नारदमहापुराण

त्र्यम्बकेश्वर–गोदावरी गङ्गा के पावन तट पर गौतम मुनि का आश्रम था। अपनी दुष्कर तपस्या के लिये मुनिवर गौतम भुवन-विदित थे। एक बार देश में बारह वर्ष का घोर अवर्षण पड़ा। भूख से पीडित होकर चारों ओर प्राणी मरने लगे। सर्वत्र हाहाकार मच गया। उस दुर्भिक्ष के काल में भूख से पीडित होकर मुनि-जन गौतममुनि के आश्रम में आकर शरण ग्रहण किये। उन लोंगों ने मुनि से भोजन की याचना की। गौतम ने उन्हें आश्वस्त कर अपने आश्रम के पार्श्वभाग में स्थापित किया । उन्हें भोजन देने का वचन दिया।

मुनियों को आश्वासन देकर गौतम ने गङ्गा का ध्यान किया । उनके स्मरण ध्यान करते ही भूतल से देवी गङ्गा का प्रवाह फूट पड़ा। उसे देखकर मुनिवर

१. एतस्मिन्समये तत्र स्वाविरासीच्छिवो द्रुतम् ।
ज्योतीरूपो महेशश्च सन्तुष्टः प्रत्युवाच ह ॥
प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि दुष्टया मारितो ह्ययम् ।
एनां च मारयिष्यामि त्रिशूलेन वरानने ॥ *शिवमहापुराण, ४/३३/३४-३५*

गौतम प्रसन्न हो उठे। शुष्क धरातल आर्द्र हो उठा।[1] मुनि ने उस जल से खेती की। सुन्दर शाली धान पैदा किया और उससे मुनियों को भोजन दिया। आश्रम में यह क्रम १२ द्वादश वर्षों तक चला। सभी ऋषि-मुनि गौतम का सप्रेम आतिथ्य पाकर प्रसन्न थे। इस प्रकार मुनि गौतम की तपस्या से तपस्वियों ने दुर्भिक्ष की काली छाया को काट दिया, समाप्त किया। द्वादश वर्षों के व्यतीत हो जाने पर पुनः सुभिक्ष काल के उपस्थित होने पर ऋषियों–मुनियों ने गौतम के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर उनकी अनुमति से अपने-अपने देश के लिये प्रस्थान किया।

इस प्रकार संयतेन्द्रिय मुनि गौतम ने बहुत दिनों तक वहाँ तपस्या की। उनके घोर तप से भगवान् त्र्यम्बक सन्तुष्ट हो वर देने के लिये उनके समक्ष उपस्थित हुए। गौतम ने उनसे वर माँगा—'यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो अपने चरणों की शाश्वत भक्ति प्रदान करें और अपने इसी रूप से आप मेरे आश्रम के समीप स्थित इस पर्वत पर विराजमान हों, जिससे मैं आपका नित्य दर्शन करता रहूँ। यही मेरी वर-याचना है।'[2]

मुनि गौतम के उक्त प्रार्थना करने पर त्र्यम्बक शङ्कर वहीं विराजमान हो गये। जिस पर्वत पर त्र्यम्बकेश्वर महादेव हैं, वह त्र्यम्बक गिरि कहलाता है।[3] गोदावरी, गङ्गा के जल में स्नान कर जो व्यक्ति पर्वत पर विराजमान त्र्यम्बकेश्वर का दर्शन-पूजन करते हैं वे साक्षात् महेश्वर बन जाते हैं।[4]

टिप्पणी—नारदमहापुराण में त्र्यम्बकेश्वर शिव की कथा तो अवश्य है। किन्तु उन्हें ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में नहीं वर्णित किया गया है

महाकाल—नारदमहापुराण के उत्तर खण्ड में वसुमोहिनी-महाकाल संवाद एक प्रमुख प्रकरण है। अनेक ज्योतिर्लिंग-कथाओं का प्रादुर्भाव इसी प्रकरण से हुआ है। अवन्ती देश में महाकाल का माहात्म्य भी उक्त प्रकरण की देन है

---

१. विश्वास्यैवमृषीन् सर्वान् गौतमस्तपसो बलात् ।
दध्यौ प्रसन्नमनसा गङ्गां सर्वार्थसाधिनीम् ।
स्मृतमात्रा तु सा देवी तत्रोद्भूता धरातलात् ।
तां तु दृष्ट्वा मुनिर्गङ्गां संप्लावितधरातलाम् ॥ *नारदमहापुराण, उ०ख०, ७३/११-१२*

२. ममाश्रमसमीपेऽत्र पर्वतोपरि शङ्कर ।
त्वामेवं संस्थितं पश्याम्येष एव वरो मम ॥ *नारदमहापुराण, उ०ख०, ७३/२२*

३. तेन रूपेण तत्रैव न्यवसत् त्र्यम्बकः सति ।
स गिरिस्त्र्यंबकाख्यस्तु ततः प्रभृति कीर्त्यते ॥ *नारदमहापुराण, उ०ख०, ७३/२४*

४. स्नात्वा गोदावरीतोये त्र्यम्बकं ये गिरिस्थितम् ।
उपचारैः पूजयन्ति ते स्युः साक्षान्महेश्वराः ॥ *वही, ७३/२६*

अवन्ती देश में महाकाल नामक एक पवित्र वन है। उसे श्रेष्ठ तपःस्थल बतलाया गया है। वहाँ देव महाकाल नित्य तप में निरत रहते हैं। भूतल पर महाकाल से उत्तम कोई क्षेत्र नहीं है। वहाँ जाकर मानव देवों से स्पर्धा करने लगता है ।[१]

टिप्पणी—इस प्रकरण में भी महाकाल का वर्णन ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में नहीं किया गया है ।

रामेश्वर-ज्योतिर्लिङ्ग—नारदमहापुराण में रामकथा, रामायण की समाप्ति पर सेतु-माहात्म्य के सन्दर्भ में रामेश्वर की अतिसंक्षिप्त चर्चामात्र की गई है। उसके अनुसार सागर पर बाँधे गये सेतु के पास राम ने रामेश्वर की उपासना की थी। रामेश्वर के दर्शनमात्र से प्राणियों को अमरत्व की प्राप्ति हो जाती है। रामेश्वर की पूजा-अर्चना से व्यक्ति सांसारिक समृद्धि को प्राप्त कर लेता है ।[२]

टिप्पणी—यहाँ रामेश्वर को ज्योतिर्लिङ्ग नहीं कहा गया है ।

स्कन्दमहापुराण

दशरथनन्दन श्रीराम ने राक्षसों के सहित रावण का संहार करके गन्धमादन पर्वत पर सीता की अग्नि-परीक्षा ली। वहीं अगस्त्यप्रभृति मुनियों ने राम की स्तुति करते हुए कहा—'जगन्नाथ, आप जगत् के रक्षक हैं। गन्धमादन पर्वत का यह शिखर अतिशय पुण्यमय तथा मोक्षदायक है। लोकसंग्रह के लिये आप यहाँ शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा कीजिये। इससे रावण के वध से जनित दोष भी दूर हो जायेगा। प्रभो, गन्धमादनपर्वत पर आपके द्वारा जिस शिवलिङ्ग की स्थापना होगी, उसका दर्शन विश्वनाथ के दर्शन से कोटिगुना अधिक फलदायक होगा। वह शिवलिङ्ग जगती में आपके नाम से विख्यात होगा। अतः आप शिवलिङ्ग की स्थापना में विलम्ब न करें।'

मुनियों के उपर्युक्त वचनों को सुनकर श्रीराम जी ने लिंग की स्थापना के

---

१. महाकालवनं पुण्यं तपःस्थानमनुत्तमम् ।
यत्र देवो महाकालः स्थितस्तपंसि नित्यदा ॥
महाकालवनात्क्षेत्रं नापरं विद्यते भुवि ।
यत्र गत्वा नरो देवि स्पर्द्धते दैवतैः सह ॥ *ना०म०पु०, उ०ख०, ७८/४-५*

२. सेतोः संदर्शनं पुण्यं यत्र रामेश्वरो विभुः ।
दर्शनादेव मर्त्यानाममरत्वं प्रयच्छति ।
रामेश्वरं तु संपूज्य नरो नियतमानसः ।
सर्वाः समश्नुते भूतीर्नात्रा कार्या विचारणा ॥ *ना०म०पु०, उ०ख०, ७६/३-४*

लिये पुण्यकाल निश्चित किया, जो दो ही मुहूर्त में आने वाला था। उसे निश्चित करके उन्होंने हनुमान् जी को शिवलिङ्ग ले आने के लिये कैलाशपर्वत पर भेजा। हनुमान् जी महान् पराक्रमी थे। उन्होंने दो मुहूर्त का पुण्यकाल जानकर भी अपनी भुजाओं पर ताल ठोंकी। थोड़ी ही देर में वे कैलास पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ उन्हें लिङ्गरूपधारी महादेव जी का दर्शन नहीं हुआ। तब उन्होंने महादेव जी को प्रसन्न किया और उनकी कृपा से शिवलिङ्ग को प्राप्त किया। इधर समय बीत रहा था। तत्त्वदर्शी मुनियों ने जब यह देखा कि हनुमान् जी अभी नहीं आये तथा स्थापना का मुहूर्त अब व्यतीत ही होना चाहता है, तब उन्होंने रामचन्द्र से कहा—'महाबाहु श्रीराम जी, अब तो पुण्यकाल व्यतीत होने ही वाला है। अत: जानकी जी ने लीलापूर्वक बालू का जो शिवलिङ्ग बनाया है, उसी को इस समय स्थापित कर दीजिये।' यह सुनकर श्रीरघुनाथ जी ने शीघ्रतापूर्वक श्रीजानकी जी तथा मुनियों के सहित मङ्गलाचार प्रारम्भ किया और ज्येष्ठमास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथिको बुधवार तथा हस्त नक्षत्र के योग में गन्धमादन पर्वत पर सेतु की सीमा में, लिङ्गरूपधारी शिव की स्थापना की। उस समय लिङ्ग में पार्वती के सहित भगवान् शङ्कर प्रत्यक्ष प्रकट हो गये थे। सबके समक्ष उन्होंने राम को इस प्रकार वरदान दिया—'राघवेन्द्र, आपके द्वारा स्थापित इस शिव-लिङ्ग का जो भी दर्शन करेंगे उनके समस्त पाप अस्त हो जायेंगे। जैसे धनुष्कोटि में निमज्जन करने से व्यक्ति के समग्र पाप विनष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार इस रामेश्वर लिंग के दर्शन से महापातक भी नष्ट हो जायेंगे।

तदन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने भगवान् रामेश्वर के सामने नन्दिकेश्वर की स्थापना की। फिर उन्होंने अपने धनुष की कोटि से रामेश्वर शिव के अभिषेक के लिये, धरती फोड़कर एक कूप तैयार किया। उसी के जल से उन्होंने रामेश्वर को स्नान कराया । वही पुण्यमय तीर्थ 'कोटितीर्थ' के नाम से भूतल पर विख्यात हुआ ।[१]

•

१. स्कन्दमहापुराण, ब्रह्मखण्ड, सेतु-माहात्म्य, अध्याय-४४

त्रिपुर-कथा

शिवमहापुराण

कार्तिकेय ने अपने अद्भुत युद्ध-कौशल से असुर तारक का विनाश कर दिया। इससे उसके तीनों पुत्रों को महान् सन्ताप हुआ। उनमें तारकाक्ष सबसे ज्येष्ठ था, विद्युन्माली मझला था और छोटे का नाम था—कमलाक्ष। तीनों ने पिता के वध का बदला लेने का संकल्प किया। फलतः उन लोगों ने ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिये मेरु पर्वत की कन्दरा में अद्भुत तप प्रारम्भ किया। सुदीर्घ तपस्या के बाद प्रसन्न हुए ब्रह्मा से उन लोगों ने वरदान माँगा—'देवेश, हमें यह वर दीजिये कि समस्त-प्राणियों में हम सबके लिये अवध्य हो जाँय। हमें स्थिर कर दें। हमारे जरा रोग आदि सभी शत्रु नष्ट हो जाँय। मृत्यु का हमारे पास आने का साहस न हो। हम लोग अजर-अमर हो जाँय तथा समस्त प्राणियों को मौत के घाट उतारते रहें।' उनकी बातों को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा यह सम्भव नहीं है। संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक जीव मृत्यु का ग्रास बनता ही है। अतः दूसरा वर माँगो।

ब्रह्मा की बात को सुनकर असुरों ने दूसरा वरदान माँगा—'देवेश, हम तीनों बन्धुओं के लिये क्रमशः स्वर्णमय, रजतमय और अयोमय (लौहनिर्मित) तीन पुरों का निर्माण करवा दें। ये आकाश में सञ्चरण करने वाले हों। जब कभी मध्याह्न की बेला में अभिजित् मुहूर्त होने पर, चन्द्रमा के पुष्य नक्षत्र में स्थित होने पर ये तीनों नगर आकाश में एक के ऊपर एक स्थित हों तब भगवान् शङ्कर एक असंभव रथ पर आरूढ होकर, एक काल में एक ही बाण से, हमारे नगरों को भस्म करने में समर्थ हों।' असुरों ने शङ्कर के द्वारा त्रिपुरों के विनाश की बात इसलिये कही थी, क्योंकि वे शङ्कर के उत्कट भक्त थे। अतः शङ्कर कभी भी ऐसा नहीं करेंगे।

असुरों की बुद्धिभरी बात सुनकर ब्रह्मा ने तथाऽस्तु कहकर उनके मनोरथ को पूरा करते हुए दानव शिल्पी मय को सोने, चाँदी और लोहे के तीन नगर निर्मित करने की आज्ञा दी। बुद्धिमान् मय ने ब्रह्मा के आदेश का अक्षरशः पालन किया। असुरों को मनोनुकूल नगरों को प्रदान कर मय स्वयं भी उसी में प्रवेश कर गया। त्रिपुर के प्रत्येक भवन में शिवालय तथा अग्निहोत्रशालाएँ विराजमान थीं। उनमें शिवभक्ति-साधक ब्राह्मण सदा निवास करते थे। त्रिपुर परम धार्मिक, संयमी

और सदाचारी थे। उनमें यदि कोई दोष था तो यही कि वे देवद्रोही, देवशत्रु थे।

त्रिपुरों के प्रताप से त्रिलोकी सन्तप्त थी। देवमण्डली उद्विग्न हो शङ्कर की शरण में गई। उनसे त्रिपुर के विनाश की अभ्यर्थना की। शङ्कर ने कहा—'देवों, त्रिपुराधीश्वर मेरे भक्त हैं। त्रिपुरवासी सदाचारी एवं परमधार्मिक हैं। ऐसी स्थिति में मैं उनका वध कैसे कर सकता हूँ ? आपलोग इस कार्य के लिये, विष्णु के शरणागत होइये।'

तदनन्तर देवगण भगवान् विष्णु के पास गये। उन लोगों ने अपना करुण कष्ट विष्णु को सुनाया। उनके द्वारा ऐसी व्यवस्था की गई जिससे वे असुर शैव-सतनान-धर्म से विमुख होकर सर्वथा अनाचारपरायण हो गये। सारा धर्म-कर्म विलुप्त हो गया। स्नान, दान एवं पूजन आदि सब समाप्त हो गये । फलतः माया और अलक्ष्मी त्रिपुर में निवास करने लगीं। सन्मार्ग से च्युत होने पर भाइयों सहित उस दैत्यराज की तथा मय की भी शक्ति कुण्ठित हो गई।

अवसर देखकर देवों ने शङ्कर से त्रिपुरवध की प्रार्थना की। ब्रह्मा और विष्णु के विशेष निवेदन पर शङ्कर उनके विनाश के लिये तैयार हुए। फिर देवों की सहायता से विश्वकर्मा ने एक अद्भुत सर्वदेवमय रथ का निर्माण किया। पृथिवी उस रथ का पटल थी, ब्रह्मा सारथी थे, हिमालय धनुष था, चन्द्र और सूर्य रथ के चक्र (पहिया) थे, विष्णु बाण थे और अग्नि उस बाण की नोक (अग्रभाग) थे। देवों के जय-घोष के मध्य भगवान् शङ्कर उस अद्भुत रथ पर आरूढ हुए। अब वे सुरद्रोहियों के तीनों पुरों को पूर्णतया दग्ध करने के लिये उद्यत थे। उस समय लक्ष्य पर दृष्टि को अचलकर शङ्कर खड़े थे। परन्तु उनके अंगुष्ठ के अग्र भाग में स्थित होकर गणेश निरन्तर पीडा पहुँचाते रहे, जिससे वे तीनों पुर त्रिशूलधारी शङ्कर का लक्ष्य नहीं बन सके।[१] अतः आकाशवाणी की प्रेरणा से शङ्कर ने गणपति की पूजा की। फिर तो भगवान् शङ्कर को उन तारक-पुत्र महामनस्वी दैत्यों के तीनों नगर यथोक्त रूप से आकाश में स्थित दीख पड़े। तत्काल वे तीनो पुर कालवश झटिति एकता को प्राप्त हो गये। उस समय अभिजित् मुहूर्त चल रहा था। देवों की प्रेरणाभरी प्रार्थना से शङ्कर ने बाण को खींचकर लक्ष्य की ओर छोड़ दिया। फिर क्या था, तीनों पुर क्षण भर में जलकर राख हो गये। मरने की बेला में तारकाक्ष ने शङ्कर की दिव्य स्तुति की। त्रिपुर के

१. ततोऽङ्गुष्ठे गणाध्यक्षः स तुदत्यनिशं स्थितः ।
न लक्ष्यं विविशुस्तानि पुराण्यस्य त्रिशूलिनः ॥
शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, अध्याय-१०/४

विनष्ट हो जाने पर देव-समूह आनन्द में निमग्न हो उठा।

त्रिपुर के नाश करने से ही शङ्कर को 'त्रिपुरारि' कहा जाता है। यह शंङ्कर के अनन्त नामों में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है ।[१]

श्रीमद्भागवत

भगवत्कृपा से एक बार देवों ने युद्ध में असुरों को जीत लिया। हारे हुए असुर मायावियों के शिरोमणि मय दानव की शरण में गये। शक्तिसम्पन्न असुर मय ने सोने, चाँदी और लोहे के तीन विमान बना दिये। ये विमान क्या थे, तीन पुर ही थे। वे इतने अद्भुत थे कि उनका गमनागमन परिलक्षित नहीं होता था। वे अपार सम्पत्तियों से भरे हुए थे। त्रिपुराधिपति त्रिपुरों के द्वारा देव-मण्डली को धर्षित करने लगे। निराश-हताश देव अशरण शरण शङ्कर की शरण में गये। शङ्कर ने त्रिपुरनाश का सङ्कल्प कर देवों को अभय-दान दिया। फिर देवों के समक्ष ही शङ्कर ने अपने धनुष पर बाण चढ़ा कर तीनों पुरों को लक्ष्य बनाकर छोड़ दिया। त्रिपुर के प्राणी दग्ध होकर विमान से गिरने लगे। यह देखकर मायावी मय ने उन दैत्यों को उठाकर अपने बनाये हुए अमृत के कुण्ड में डाल दिया। उस सिद्ध अमृत-रस का स्पर्श होते ही असुरों का शरीर अत्यन्त तेजस्वी और वज्र के समान सुदृढ हो गया। वे चमकती-दमकती बिजली की भाँति उठ खड़े हुए।

उस समय भगवान् विष्णु ने देखा कि शङ्कर का उद्योग निरर्थक सिद्ध हो रहा है। अत: उन्होंनें चित्ताकर्षक गाय का रूप धारण कर ब्रह्मा को अपना वत्स बनाया। दोनों ही मध्याह्न की बेला में त्रिपुर में गये और उस सिद्ध रस के कूप का सारा रस पी गये। यद्यपि उसके रक्षक दैत्य इन दोनों को देख रहे थे, फिर भी भगवान् की माया से वे इतने मोहित हो गये थे कि उन्हें रोक न सके। मयासुर ने इस घटना को दैव का दुर्लङ्घ्य विधान बतलाकर असुरों के शोक को शान्त किया।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी शक्तियों के द्वारा भगवान् शङ्कर के युद्ध की सामग्री तैयार की। उन्होंने धर्म से रथ, ज्ञान से सारथि, वैराग्य से ध्वजा, ऐश्वर्य से घोड़े, तपस्या से धनुष, विद्या से कवच, क्रिया से बाण और अपनी अन्यान्य शक्तियों से अन्यान्य वस्तुओं का निर्माण किया। इन सामग्रियों से सुसज्ज हो शङ्कर रथ पर आरूढ हुए। उन्होंने हाथ में धनुष-बाण धारण किया। उस समय अभिजित् नक्षत्र चल रहा था। उपयुक्त समय समझकर शङ्कर ने धनुष पर बाण-सन्धान कर लक्ष्य की ओर छोड़ दिया। देखते-ही-देखते तीनों पुर जल

१. शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, अ० १-१०

कर राख बनय गये। आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं। देवों ने पुष्प-वर्षा तथा अप्सराओं ने नृत्य-गान कर प्रसन्नता व्यक्त की। इस प्रकार उन तीनों पुरों को जलाकर भगवान् शङ्कर ने 'पुरारि' की पदवी धारण की।[1]

लिङ्गमहापुराण

दैत्य तार का पुत्र था तारक। तारक का वध शिव-पुत्र कार्तिकेय ने किया था। तारक के तीन बेटे थे—विद्युन्माली, तारकाक्ष और कमलाक्ष। पिता का वध कर दिये जाने के बाद तारक के तीनों पुत्रों ने, देवों के प्रति प्रतिशोध की भावना से, तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया। ब्रह्मा ने कहा—'अपनी रुचि के अनुरूप वर माँगो।' दैत्यों ने अमरता का वर माँगा। किन्तु 'सभी अमर नहीं हो सकते। अतः दूसरा वर माँगो।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर उन दैत्यों ने सुविचारित वर माँगते हुए कहा—'पितामह, हमारे तीन पुर हों। उनमें रहकर हम समग्र भू-मण्डल पर विचरण करें । सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर, पुष्य नक्षत्र की बेला में, जब तीनों पुर एक के ऊपर एक स्थित हों तब एक ही बाण से जो प्रभु उन पर प्रहार करें वही हमारी मृत्यु के कारण बनें।'[2] उनकी बातों को सुनकर ब्रह्मा ने 'एवमस्तु' कहा और स्वर्ग चले गये।

दैत्यों का शिल्पी था मय दानव। उसने अपनी तपस्या के प्रभाव से तारक-पुत्रों के लिये तीन पुरों का निर्माण किया। उनमें सुवर्ण का पुर भूतल पर विचरण करता था। पुरों का विस्तार और आयाम विशाल था। तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली के पुर क्रमशः सुवर्ण, रजत तथा अयस् के थे। मय दानव भी त्रिपुर में ही निवास करता था। उन पुरों में निवास करते हुए तारकाक्ष आदि त्रिलोकी के लिये अप्रधृष्य बन गये थे। उनमें स्वर्ग की समग्र समृद्धियाँ विराजमान थीं। घर-घर में शिवालय सुशोभित थे। वेद की पाठशालाओं से नगरों की सुषमा कुछ और ही थी। स्त्रियाँ सती साध्वी थीं। दान और सदाचार उन पुरों के प्रधान कर्तव्य थे। सभी निवासी शैव थे। शिवार्चन और शिवाचार वहाँ का सामान्य व्यवहार था। सर्वत्र सुख-शान्ति का साम्राज्य था। फिर भी वे त्रिलोकी के लिये त्रास-दायक थे।

---

१. श्रीमद्भागवत—सप्तम स्कन्ध, अध्याय-१०/५३-७०

२. वयं पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम् ।
विचरिष्याम लोकेश त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो ।
तथा वर्षसहस्रेषु समेष्यामः परस्परम् ।
एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चानघ ॥
समागतानि चैतानि यो हन्याद्भगवांस्तदा ।
एकेनेषुणा देवः स नो मृत्युर्भविष्यति ॥ *लिङ्गमहापुराण, १/७१/१५-१६*

त्रिपुर से सन्त्रस्त देवमण्डली भगवान् विष्णु की शरण में गई। भगवान् विष्णु ने विचार किया—'जब तक त्रिपुरवासी लिंगार्चन-परायण रहेंगे तब तक उन्हें न तो पराजित किया जा सकता है और न मारा ही जा सकता है। अत: उन पर विजय प्राप्ति के लिये मैं उन्हें धर्म से च्युत करूँगा। उनके धर्म में विघ्न करूँगा।' ऐसा विचार कर मायावी विष्णु ने अपने शरीर से एक मायामय पुरुष उत्पन्न किया। उसके लिये एक अलग से शास्त्र का निर्माण किया । वह शास्त्र श्रौत-स्मार्त नियमों के विपरीत तथा वर्ण एवं आश्रम की व्यवस्था से रहित था। उसका सिद्धान्त था कि स्वर्ग और नरक इसी भूतल पर हैं । स्वर्ग और नरक की कोई अलग दुनियाँ नहीं है। शास्त्र को सम्यग् रूप से पढ़ाकर विष्णु ने मायावी उस पुरुष को त्रिपुर में प्रेषित किया। वहाँ पहुँचकर मायावी ने ऐसी माया फैलायी कि सकल त्रिपुर-निवासी श्रौत-स्मार्त कृत्यों का, विधि-विधानों का परित्याग करके उसके शिष्य बन गये। नारद जी भी मायावी से दीक्षा लेकर त्रिपुर-निवासियों को धर्म-भ्रष्ट करने में सहायक बने। जहाँ कभी धर्म की ध्वजा फहराती थी वहाँ अब अधर्म का प्रभाव प्रभावी था।[१]

त्रिपुर के धर्म-भ्रष्ट हो जाने पर देवों को साथ लेकर विष्णु ने भगवान् शङ्कर की स्तुति की। शङ्कर प्रसन्न हुए और उनसे बोले—'देवताओं, सम्प्रति आपका क्या कार्य है—यह मैं जानता हूँ । विष्णु और नारद के मायामय कृत्यों को भी समझता हूँ। यत: त्रिपुर-निवासी धर्म-विचलित हो गये हैं। अत: उनके पुरों का शीघ्र ही विनाश करूँगा ।'[२] गणाध्यक्ष नन्दी की आज्ञा से ब्रह्मादिक देवों ने शङ्कर के लिए एक अद्भुत रथ, सारथि, शर और शरासन का निर्माण किया। ऐसा रथ तैयार किया गया जो सब प्रकार से अभूतपूर्व था, अद्भुत था। उस समय शैलाधिपति हिमगिरि धनुष के रूप में, शेषनाग धनुष की प्रत्यञ्चा के रूप में, विष्णु शर के रूप में और उमासहित शङ्कर शर-शल्य के रूप में विराजमान थे।[३]

देवों के साथ भवानी-शङ्कर ने भी सर्वप्रथम गणेश की पूजा की।[४] फिर अद्भुत रथ पर आरूढ होकर शङ्कर त्रिपुर विनाश के लिये चल पड़े। उनके चतुर्दिक् सुर-सैन्य भी चल रहा था। भगवान् शङ्कर त्रिपुर-विनाश के लिये सन्नद्ध

---

१. यह कथा शिवमहापुराण की कथा से प्राय: साम्य रखती है।

२. ज्ञातं मयेदमधुना देवकार्यं सुरेश्वरा: ।
विष्णोर्मायाबलं चैव नारदस्य च धीमत: ।
तेषामधर्मनिष्ठानां दैत्यानां देवसत्तमा: ।
पुरत्रयविनाशं च करिष्येऽहं सुरोत्तमा: ॥ *लिङ्गमहापुराण, १/७१/१७-१९*

३. ध्यातव्य है कि इस कथानक में इसी स्थल पर पशु, पाश, पशुपति एवं पाशुपत व्रत की चर्चा की गई है । *लिङ्गमहापुराण, १/७२/३४-४४*

४. संपूज्य पूज्यं सह देवसंघैर्विनायकं नायकमीश्वराणाम् ।
गणेश्वरैरेव नगेन्द्रधन्वा पुरत्रयं दग्धुमसौ जगाम ॥ वही, १/७२/५०

होकर खड़े हो गये। उनके हाथ में शर-सज्ज सायक था। वह पाशुपतास्त्र से सुसज्जित था। इसी समय पुष्य नक्षत्र की पावन बेला में तीनों पुर एक के ऊपर एक स्थित हो गये। अब भी भगवान् भवानीपति भव बाण नहीं छोड़ रहे थे। देवों ने सोचा शङ्कर कदाचित् त्रिपुरवासियों की पूर्वकृत भक्ति का स्मरण कर रहे हैं। अत: उन लोगों ने एक बार पुन: शङ्कर की दिव्य स्तुति की। ब्रह्मा ने भगवान् शङ्कर को प्रेरित किया। शङ्कर ने क्रोध भरे नयनों से नगरों को निहारा। वस्तुत: शङ्कर की नेत्राग्नि से ही तीनों नगर भस्म हो गये थे। फिर भी उन्होंने देवों की प्रार्थना से प्रयोग करके एक शर से ही त्रिपुर को दग्ध कर कथामात्र शेष कर डाला।[1]

विशेष—पाशुपत व्रत, धर्म एवं दर्शन का जैसा वर्णन लिंग पुराण में, विशेषत: उसके उत्तर भाग में उपलब्ध है, वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

मत्स्यमहापुराण

मय नामक दानव महान् मायावी था। देवों के द्वारा पराजित हो जाने पर उसने अति भीषण तप प्रारम्भ किया। इस तप में विद्युन्माली और तारक (तारकाक्ष) ने भी उसका साथ दिया।[2] ब्रह्मा उनके तप से प्रसन्न हो वर देने आये। विश्वकर्मा मय ने उनसे वर माँगा—'देव, देवों से पराजित दैत्यों एवं दानवों के लिये सम्प्रति कोई शरण नहीं है। अत: उनकी रक्षा के लिये मैं देवों से भी दुर्लङ्घ्य त्रिपुर दुर्ग निर्माण करना चाहता हूँ। यह दुर्ग भूमिचारी, जलज, तेजस्वी मुनियों के शाप, देव-आयुध और देवों के लिये भी अलङ्घनीय हो।'[3]

'असत् आचरण वालों के लिये सर्वथा अमरत्व की अपेक्षा नहीं की जा सकती। अत: दूसरा वर माँगो।'—इस प्रकार ब्रह्मा के कहने पर मय ने कहा—'सम्मुख संग्राम में शम्भु यदि एक बार छोड़े गये एक ही बाण से दुर्ग को जलावें तभी त्रिपुर-वासियों का विनाश हो। दूसरे लोगों के लिये ये अवध्य ही बने रहें।'[4] ब्रह्मा ने मय की प्रार्थना स्वीकार करते हुए 'एवमस्तु'—'ऐसा ही होगा' कहा और वहाँ से चले गये। ब्रह्मा के चले जाने पर मय ने विचार किया—'एक सौ योजन विस्तार वाले तीनों पुरों का निर्माण करूँगा। इस कार्य का प्रारम्भ पुष्य नक्षत्र में

---

१. त्रिपुर-दाह की कथा लिङ्गमहापुराण और शिवमहापुराण में प्राय: समानरूप से वर्णित है।

२. तस्यैव कृतिमुद्दिश्य तेपतु: परमन्तप: ।
विद्युन्माली च बलवान् तारकाख्यश्च वीर्यवान् ॥ *मत्स्यमहापुराण, गीताप्रेस, १२९/५*

३. भूम्यानां जलजानाञ्च शापानां मुनितेजसाम् ।
देवप्रहरणानाञ्च देवानाञ्च प्रजापते ।
अलङ्घनीयं भवतु त्रिपुरं यदि ते प्रियम् ॥ *मत्स्यमहापुराण, गीताप्रेस, १२९/२०-२१*

४. शम्भुरेकेषुणा दुर्गं सकृन्मुक्तेन निर्दहेत् ।
समं च संयुगे हन्यादवध्यं शेषतो भवेत् ॥ *वही, १२९/२४-२५*

होगा । ये आकाश में पुष्ययोग की बेला में ही परस्पर एक पर एक समता को प्राप्त होंगे। उसी समय एक शर के प्रहार से ये विनष्ट किये जा सकेंगे। भूतल पर विचरण करने वाला पुर आयस होगा, नभस्तल में सञ्चरण करने वाला चाँदी का होगा और उसके ऊपर का नगर सुवर्ण का बनेगा।'

ये नगर शत्रुओं के लिये अपराजेय थे। ये बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं, यन्त्रचालित शतघ्नियों, तोपों, चक्र, शूल आदि अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित एवं सुरक्षित थे। इनकी रक्षा तारक तथ विद्युन्माली के साथ स्वयं मय दानव किया करता था। उसकी साधिकार घोषणा थी—'भगवान् त्रिनेत्र को छोड़कर त्रिपुर को विनष्ट करने की किसमें शक्ति है ?'[१]

ऐसा सोचकर मय ने त्रिपुर का निर्माण कर डाला। त्रिपुर मन की गति से चलने वाले थे। आज की सकल निर्माण शैली के ये नगर आदर्श थे, एक्जाम्पुल थे। कृष्ण इस्पात से निर्मित नगर में तारक का आधिपत्य था। राजतपुर में विद्युन्माली का शासन था और सुवर्ण-निर्मित नगर का अधिपति स्वयं मय दानव था।[२]

समग्र संसार के दानव-दैत्य मय की कृप से आकर त्रिपुर में निवास करने लगे। सब प्रकार का सदाचार तथा धार्मिकता वहाँ विराजमान थी। वहाँ जहाँ-तहाँ शङ्कर के मन्दिर बने थे। सभी शिवार्चन किया करते थे। धर्म, अर्थ और काम की वहाँ प्रचुरता थी। इस प्रकार वहाँ धार्मिकता तथा सदाचार की संप्रभुता में महान् काल व्यतीत हो गया।

काल की गति और समाज की स्थिति परिवर्तित होती रहती है। सर्वत्र समय समान नहीं होता। एक दिन सन्ध्या काल की बेला में दरिद्रता (अलक्ष्मी), असूया (ईर्ष्या), प्यास, बुभुक्षा, कलि और कलह—एक साथ ही त्रिपुर में प्रविष्ट हुए और वहाँ अपने आधिपत्य का विस्तार किया।[३] सभी दानव-दैत्य इनसे

---

१. अट्टालिकैर्यन्त्रशतघ्नीभिश्च सचक्रशूलोपलकम्पनैश्च।
सतारकाख्येन मयेन गुप्तं स्वस्थञ्च गुप्तं तडिन्मालिनापि ।
को नाम हन्तुं त्रिपुरं समर्थो मुक्त्वा त्रिनेत्रं भगवन्तमेकम् ॥ *मत्स्यमहापुराण, १२९/३५-३६*

२. कार्ष्णायसमयं यत्तु मयेन विहितं पुरम् । तारकाख्योऽधिपस्तत्र कृतस्थानाधिपोऽवसत् ॥
यत्तु पूर्णेन्दुसङ्काशं राजतं निर्मितं पुरम् । विद्युन्माली प्रभुस्तत्र विद्युन्मालीत्विवाम्बुदः ॥
सुवर्णाधिकृतं यच्च मयेन विहितं पुरम् । स्वयमेव मयस्तत्र गतस्तदधिपः प्रभुः ॥
मस्त्यमहापुराण १३०/७-९

३. अथालक्ष्मीरसूया च तृड्बुभुक्षे तथैव च । कलिश्च कलहश्चैव त्रिपुरं विविशुः सह ॥
सन्ध्याकालं प्रविष्टास्ते त्रिपुरञ्च भयावहाः । समध्यासुः समं घोराः शरीराणि यथामयाः ॥
मत्स्यमहापुराण, १३१/१७-१८

प्रभावित हो उठे। मय ने इस दृश्य को स्वप्न में देखा। प्रात:काल नित्य कृत्य के अनन्तर मय सभा-भवन के सिंहासन पर आरूढ हुआ। उस समय तारक और विद्युन्माली उसके पार्श्व भाग में विराजमान थे। दानव मय ने रात्रि में दृष्ट भयावह दु:स्वप्न को सबके समक्ष विस्तार के साथ वर्णित किया ।

स्वप्न-वर्णन की बेला में मय ने दु:स्वप्न के प्रभाव को निरस्त करने के लिये सदाचरण और शुभाचरण के लिये सबको प्रेरित किया। देवों के प्रति सद्भाव रखने की बात कही। उसने महेश्वर की पूजा की भी सलाह दी। किन्तु भावी के प्रबल होने के कारण दानव-दैत्यों ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। वे सभी दुर्भावनाओं के वशीभूत हो, सत्य धर्म का परित्याग कर, अकार्य करने लगे।'[१] उनकी सारी बातें विपरीत होनें लगीं। देवों और तपस्वियों को वे पीडित करने लगे।[२] चतुर्दिक् अत्याचार और दुराचार का साम्राज्य व्याप्त हो गया।

सकल त्रिलोकी के प्रकम्पित हो जाने पर देवतादि ब्रह्मा के शरण में गये। वे स्वयं देवताओं को लेकर शङ्कर की सभा में पहुँचे। वहाँ देवों ने दिव्य स्तुति से भगवान् भव को प्रसन्न किया। आशुतोष ने देवों को पूर्ण आरक्षण का आश्वासन और अपने लिये एक दिव्य अनुपम तथा अभूतपूर्व रथ के निर्माण का आदेश दिया। देवों ने प्रभु के आदेश का पालन किया। रथ झटिति तैयार कर लिया गया। सम्पूर्ण शर्प शर बनकर शङ्कर के तूणीर में अवस्थित हो गये।[३] चादों वेद अश्व बन कर रथ को खींच रहे थे। सूर्य-चन्द्र चक्र थे उसके। जिस शर से शङ्कर ने त्रिपुर को दग्ध किया था, वह विष्णु, सोम और अग्नि का बना हुआ था।[४] ब्रह्मा उस रथ के सञ्चालक थे। इस प्रकार के अद्भुत रथ को देखकर प्रसन्न शङ्कर उस पर आरूढ हुए।

शङ्कर के आरूढ होते ही रथवाहक अश्वों ने भूतल पर घुटने टेक दिये। इस दयनीय दृश्य को देखकर दयालु शम्भु ने उन्हें बल देकर उठाया। त्रिपुर-नाश की इच्छा करने वाले लोग शङ्कर के रथ की चारो ओर से रक्षा कर रहे थे। देव

---

१. अथ दैवपरिध्वस्ता दानवास्त्रिपुरालया: ।
हित्वा सत्यञ्च धर्मञ्च अकार्याण्युपचक्रमु: ॥ *मत्स्यमहापुराण, १३१/३९*

२. पुरा सुशीला भूत्वा च दु:शीलत्वमुपागता: ।
देवांस्तपोधनांश्चैव बाधन्ते त्रिपुरालया: ॥ *वही, १३१/४६॥*

३. ते सर्पा दर्पसम्पूर्णाश्चापतूणेष्वनूनगा: ।
अवतस्थु: शरा भूत्वा नानाजातिशुभानना: ॥ *मत्स्यमहापुराण, १३३/२६*

४. सगर्भं त्रिपुरं येन दग्धवान् स त्रिलोचन: ।
स इषुर्विष्णुसोमाग्नित्रिदैवतमयोऽभवत् ॥ *वही, १३३/४१*

और प्रमथ-गण गर्जन से आकाश को गुञ्जायमान कर रहे थे।

शङ्कर की विजय-यात्रा प्रारम्भ थी। इसी समय देव-मण्डली से निकलकर नारद त्रिपुरदैत्यों के मध्य में जा पहुँचे। ऋषि को अपने मध्य आया देखकर दैत्यों ने सादर उनका अभिनन्दन किया, पूजन एवं सत्कार किया।

सत्कृत नारद के सुखासनासीन होने पर दानवाधिपति मय ने अपने नगर में घटित होने वाले उत्पातों के कारण दुर्निमित्तों के विषय में उनसे पूछा। नारद ने नित्रपुरान्तक शङ्कर के युद्धार्थ आगमन की सूचना दी और उसे शङ्कर के शरण में जाने की प्रेरणा भी प्रदान की।

नारद के देव-मण्डली में लौट जाने पर मय ने देवों के साथ युद्ध करने के लिये दानवों को ललकारा और उन्हें शस्त्र-सज्ज होकर अट्टालिकाओं की रक्षा का भार सौंपा। इसके बाद वह मन्दिर में गया। वहाँ उसने शङ्कर की पूजा की, दिव्य स्तुति की और उनके शरणागत हुआ। शङ्कर ने उसे अभय-दान देकर निर्भय बना दिया।[1]

इधर भगवान् शङ्कर ने देवों को आज्ञा दी कि वे दानवों पर आक्रमण कर दें और यह भी कहा कि पुष्य नक्षत्र की बेला में तीनों पुरों के एक रेखा में स्थित होने पर मैं उन्हें एक ही बाण से निर्दग्ध कर दूँगा।[2] शङ्कर का आदेश मिलते ही इन्द्र ने देव-सेना के साथ त्रिपुर पर भीषण आक्रमण कर दिया। उद्धत दानवों ने भी उनका उसी रूप में प्रतिकार किया। दोनों दलों में भयङ्कर मार-काट मच गई। तारकाक्ष, विद्युन्माली और मय के नेतृत्व में दानव-सेना भी कम भयङ्कर न थी।

युद्ध अपने पूर्ण यौवन पर चल रहा था। लड़ते-लड़ते विद्युन्माली नन्दी के हाथों मारा गया। इस स्थिति में हताश-निराश होते दानवों को धैर्य धारण कराकर मय ने माया से एक अमृतमय विशाल वापी का निर्माण किया। उसमें जीवनदायिनी महान् औषधियों का योग था।[3] यह वापी ६ कि.मी. लम्बी और ३ कि.मी. चौड़ी थी। मय ने मृत विद्युन्माली को उस वापी में डुबो दिया। वापी के अमृत-मय जल के संस्पर्श से वह महादैत्य वैसे ही जीवित होकर उठ बैठा जैसे इन्धन के प्रक्षेप

---

१. मयमभयपदैषिणं प्रपन्नं न किल बुबोध तृतीयदीप्तनेत्रः।
तदभिमतमदात्ततः शशाङ्की स च किल निर्भय एव दानवोऽभूत्॥ *मत्स्यमहापुराण, १३४/३३*

२. अहं च रथवर्येण निश्चलाचलवत् स्थितः।
पुरः पुरस्य रन्ध्रार्थी स्थास्यामि विजयाय वः॥
यदा तु पुष्ययोगेन एकत्वं स्थास्यते पुरम्।
तदेतन्निर्दहिष्यामि शरेणैकेन वासव॥ *वही, १३५/११-१२*

३. वापीममृततोयेन पूर्णां स्रक्ष्ये वरौषधीः।
जीविष्यन्ति तदा दैत्याः सञ्जीवनवरौषधैः॥ *मत्स्यमहापुराण, १३६/१०*

से बुझती हुई अग्नि भभक कर प्रज्वलित हो उठती है।[१] विद्युन्माली के जीवित होते ही चतुर्दिक् प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। युद्ध में विनिहत सारे दैत्य दानव वापी के अमृत-जल का स्पर्श पाकर जीवित हो समर भूमि में कूदने लगते थे।

प्रमथों के एक प्रमुख सेनापति शङ्कुकर्ण ने इस रहस्य को कथञ्चित् ज्ञात कर अपने स्वामी शङ्कर से, शत्रुओं को पुनर्जीवन प्रदान करने वाली अमृत-वापी की बात बतलाई।[२]

दैत्यों और दानवों के बढते प्रताप को देखकर भगवान् विष्णु शङ्कर के शर से निकल कर युद्ध-स्थल में ही एक सुन्दर वृषभ के रूप को धारण किये। शङ्कर के वृषभ नन्दी ने भी उसका सम्मान किया। उस वृषभ-रूपधारी केशव ने दैत्यों की समग्र सेना का विमर्दन करते हुए त्रिपुर में प्रवेश किया। वहाँ जाकर उन्होंने वापी के समस्त अमृत का पान उसी प्रकार कर डाला जैसे शर्वरी के घोर अन्धकारको रवि पान कर डालता है।[३] वापी शुष्क निर्जल बन गई। अमृत-पान से मत्त अत: हुंकारते हुए वृषभरूपधारी विष्णु पुन: शङ्कर के शर में ही प्रवेश कर गये।

वापीपालों ने जाकर मय से सारी घटना का वर्णन किया। मय ने इसको विष्णु का कृत्य माना। अपनी स्थिति को किञ्चिद् दयनीय मानते हुए मय ने असुरों को प्रेरित कर त्रिपुरों को पश्चिम सागर के ऊपर ले जाकर स्थित किया। उसका मानना था कि सागर के ऊपर देव-प्रमथादि युद्ध नहीं कर सकेंगे। किन्तु उसका यह अनुमान अप्रामाणिक सिद्ध हुआ। देवंता वहाँ युद्ध करने में समर्थ थे।[४]

भगवान् शङ्कर सुसन्नद्ध होकर अपने अद्भुत रथ पर खड़े हो गये। वे तीनों पुरों के सङ्गम की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी समय तारक (तारकाक्ष) और नन्दी का भीषण संग्राम आरम्भ हुआ। नन्दी ने तीक्ष्ण परशु की धार से तारक का वध कर डाला।[५]

---

१. स वाप्यां मज्जितो दैत्यो देवशत्रुर्महाबल: ।
उत्तस्थाविन्धनैरिद्ध: सद्यो हुत इवानल: ।। *मत्स्यमहापुराण,* १३६/१७

२. अस्मिन् किल पुरे वापी पूर्णामृतरसाम्भसा ।
निहता निहता यत्र क्षिप्ता जीवन्ति दानवा: ।। *वही,* १३६/५०

३. रथचरणकरोऽथ महामृधे वृषभवपुर्वृषभेन्द्रपूजित: ।
दितितनयबलं विमर्द्य सर्वं त्रिपुरपुरं प्रविवेश केशव: ।।
सजलजलदराजितां समस्तां कुमुदवरोत्पलफुल्लपङ्कजाढ्याम् ।
सुरगुरुरपिबत्पयोऽमृतन्तद्रविरिव सञ्चितशार्वरन्तमोऽन्धम् ।। *वही,* १३६/६३-६४

४. युध्यतां निघ्नतां शत्रून् भीतानाञ्च द्रविष्यताम् ।
सागरोऽम्बरसङ्काश: शरणं नो भविष्यति ।
सिंहनादं तत: कृत्वा देवा देवरथञ्च तम् ।
परिवार्य ययुर्हृष्टा: सायुधा: पश्चिमोदधिम् ।। *मत्स्यमहापुराण* १३७/२१-२७

५. गणेश्वरै: कृतस्तत्र तारकाख्ये निषूदिते ।। *वही,* १३८/४६

मत्स्यमहापुराण में वर्णित त्रिपुर-कथा में शिलाद-तनय नन्दी का पराक्रम अद्भुत था। विद्युन्माली के साथ रोमहर्षण युद्ध करते हुए उन्होंने अप्रतिहत शक्ति के प्रबल प्रहार से उसकी जीवन-लीला समाप्त कर दी। विद्युत् की भाँति स्फूर्तिशाली विद्युन्माली रण-भूमि में धूलि चाट रहा था।[१]

तारक (तारकाक्ष) और विद्युन्माली के मारे जाने के बाद मय ने प्रमथों का मन्थन प्रारम्भ किया। संयोग से उसी समय पुष्य-योग की पावन बेला आ उपस्थित हुई। त्रिपुर सीधी एक रेखा में स्थित हो गये। भगवान् शङ्कर इसी संयोग की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने त्रिदेवों के तेज से सम्पन्न शर को सद्यः त्रिपुरों को लक्ष्य कर छोड़ दिया। त्रिपुर धू-धू कर जलने लगे। इस दृश्य को देखकर शङ्कर शोकाकुल हो उठे, क्योंकि उनका भक्त मय दानव भी दग्ध होने वाला था। अतः उन्होंने नन्दी को जलते हुए त्रिपुर में मय के त्राण के लिये भेजा। नन्दी ने जाकर गृह के सहित मय दानव को त्रिपुर से निकल जाने की प्रेरणा दी। शिव-भक्त मय ने वैसा ही किया।[२] मय-निर्मित तीनों पुर जलकर सागर में जा गिरे।[३]

टिप्पणी—मोर प्रकाशन एवं गीताप्रेस से प्रकाशित मत्स्यपुराण में एक अध्याय का अन्तर है। उदाहरणार्थ मोर प्रकाशन का १३९ अध्याय गीताप्रेस के प्रकाशन में १४० हो गया है।

●

---

१. तामेव तु विनिष्क्रम्य शक्तिं शोणितभूषणाम् ।
विद्युन्मालिं समुद्दिश्य चिक्षेप प्रमथाग्रणीः ॥
तया भिन्नतनुत्राणो विभिन्नहृदयस्त्वपि ।
विद्युन्माल्यपतद्भूमौ वज्राहत इवाचलः ॥ *मत्स्यमहापुराण, १४०/३५-३६, ३८*

२. स मयम्प्रेक्ष्य गणपः प्राह काञ्चनसन्निभः ।
विनाशस्त्रिपुरस्यास्य प्राप्तो मय सुदारुणः ॥
अनेनैव गृहेण त्वमपक्राम ब्रवीम्यहम् ।
श्रुत्वा नन्दिवचनं दृढभक्तो महेश्वरे ॥
तेनैव गृहमुख्येन त्रिपुरादपसर्पितः ॥ *वही, १४०/५१-५२*

३. रथाच्च सम्पत्य हरेषुदग्धं क्षिप्तं पुरं तन्मकरालये च ॥ *वही, १४०/८४*

नारद-कथा

श्रीमद्भागवतमहापुराण

महर्षि पाराशर व्यास ने वेदों का विभाजन किया। महाभारत की रचना की। पुराण-वाङ्मय का सृजन किया। फिर भी उनका अन्त:करण सन्तुष्ट न था। वे सरस्वती नदी के तट पर अपने आश्रम में बैठे थे। उनका चित्त उद्विग्न थ। वे किञ्चित् चिन्तित थे। प्रात:काल की बेला थी। पूरब में रविमण्डल उदित हो रहा था। इसी समय महर्षि नारद उनके आश्रम में पहुँचे। व्यास ने वीणावादक नारद का स्वागत किया। आसन पर विराजमान हो जाने पर नारद ने व्यास के अपरितोष का कारण पूछा। व्यास ने अपने चित्त की खिन्नता तो स्वीकार की किन्तु कारण के प्रति अनभिज्ञता व्यक्त की और नारद से हेतु की जिज्ञासा की। नारद ने कहा—'व्यासजी, आपने बहुत कुछ किया है। किन्तु भगवद्भक्ति के प्रवाह को प्रवाहित करने वाले, भगवान् के गुण-गणों से अलङ्कृत ग्रन्थ की रचना नहीं की है। यही कारण है आप की मानसिक खिन्नता का। इसी क्रम में उन्होंने स्वयं अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा[१]—

'व्यासजी, मेरे पूर्वजन्म का वृत्तान्त है। वेदवादी ब्राह्मणों के घर एक विधवा दासी थी। मैं उसी का बेटा था। वर्षा ऋतु में चातुर्मास्य करने के लिये वहाँ कुछ महात्मा लोग आये। यद्यपि मैं पाँच वर्ष का ही बालक था। फिर भी गृहस्वामी ने मुझे महात्माओं की सेवा-शुश्रूषा में नियुक्त कर दिया। मैं किसी प्रकार की चञ्चलता नहीं करता था, जितेन्द्रिय था, खेल-कूद से दूर रहता था और आज्ञानुसार उन महात्माओं की सेवा करता था। मेरे इस शील-स्वभाव को देखकर समदर्शी मुनियों ने मुझ सेवक पर अत्यन्त अनुग्रह किया। उनकी अनुमति प्राप्त करके बरतनों में लगा हुआ जूठन मैं एक बार खा लिया करता था। इससे मेरे सारे पाप प्रच्छालित हो गये। इस प्रकार उनकी सेवा करते-करते मेरा हृदय शुद्ध हो गया। वे लोग जैसा भजन-पूजन करते थे, उसी में मेरी भी रुचि हो गई।[२] उन महात्माओं का प्रतिदिन सत्सङ्ग होता था। उसमें कृष्ण की मनोहर लीलाओं की चर्चा हुआ करती थी। उसे अतिशय प्रेम एवं तन्मयता से मैं सुना करता था। उससे श्रीकृष्ण के प्रति मेरी प्रगाढ रुचि हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि चराचर जगत् को मैं अपने स्वरूप में ही देखने लगा। वे महात्मा वर्षा और

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण, १/५/२३ और आगे

२. तद्धर्म एवात्मरुचि: प्रजायते ॥१/५/२५

शरद्—दो ऋतुओं में वहाँ निवास किये। उनके इस चातुर्मास्य में निरन्तर कृष्ण-कथा के श्रवण का फल यह हुआ कि रजोगुण एवं तमोगुण को नष्ट करने वाली भगवद्भक्ति का मेरे हृदय में प्रादुर्भाव हो गया। मैं उनका बड़ा ही अनुरागी था, विनयी था। उन लोगों की सेवा से मेरे पाप धुल चुके थे। मेरे हृदय में श्रद्धा थी, इन्द्रियों में संयम था। वाणी और मन से मैं उनका आज्ञाकारी था। जाते समय महात्माओं ने कृपा करके मुझे गुप्त ज्ञान का उपदेश किया।

मैं अपनी जननी का एकमात्र पुत्र था। एक तो वह स्त्री थी, दूसरे मूढ और तीसरे दासी। मुझे भी उसके अतिरिक्त कोई सहारा न था। उसने अपने आपको मेरे स्नेहपाश में आबद्ध कर रक्खा था। मैं भी अपनी माता के स्नेहपाश में उपनिबद्ध हो उस ब्राह्मण बस्ती में ही रहा। उस समय मेरी अवस्था पाँच वर्ष की थी। दिशा, देश और काल के सम्बन्ध में मुझे कुछ भी ज्ञात न था। एक दिन की घटना है। मेरी माता गाय दुहने के लिये रात्रि की बेला में घर से बाहर निकली। सर्प ने उसे डस लिया। वह भगवान् को प्यारी बन बैठी। मैंने इसे भी भगवान् का बहुत बड़ा अनुग्रह ही माना। माता से विमुक्त हो जाने के बाद मैं उत्तर दिशा की ओर चल पड़ा।

मैं चलता रहा। लम्बा मार्ग तय कर एक विजन वन में पहुँचा। वहाँ एक पीपल का वृक्ष था। उसी के नीचे आसन लगाकर मैं बैठ गया। महात्माओं से जैसा मैंने सुना था, हृदयस्थ परमात्मा के उसी रूप का मन-ही-मन ध्यान करने लगा। यह प्रभु-कृपा थी। भगवान् मेरे हृदय में शनैः शनैः प्रकट हो गये। वह क्षण और आनन्द अवर्णनीय है। वस्तुतः मैं आनन्द के सागर में इस प्रकार निमग्न हो गया कि मेरी ध्याता, ध्यान और ध्येय के भेद की प्रतीति ही समाप्त हो गई। भगवान् का वह अनिर्वचनीय स्वरूप समस्त-शोक-भञ्जक और मनरञ्जक था। यह रूप केवल क्षण भर हृदय में विराजमान था। उसके अन्तर्हित होते ही मैं विकल हो उठा। आसन से उठ खड़ा हुआ। मैंने उस स्वरूप के पुनः ध्यान की बार-बार चेष्टा की। किन्तु सफलता हाथ न लगी। मेरी विकलता आकाश का स्पर्श करने लगी। इसी समय आकाशवाणी हुई—'खेद है कि इस जन्म में तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकोगे। जिनकी वासनाएँ पूर्णतया शान्त नहीं हो गई हैं, ऐसे अधकचरे योगियों को मेरा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। निष्पाप बालक, तुम्हारे हृदय में मुझे प्राप्त करने की लालसा जाग्रत् करने के लिये ही मैंने एक बार तुम्हें अपने रूप की झाँकी दिखलाई है। अल्पकालिक सन्त-सेवा से ही तुम्हारी चित्तवृत्ति मुझमें स्थिर हो गई है। अब तुम इस प्राकृत मलिन शरीर को छोड़कर मेरे पार्षद बन जाओगे।' इतना

कहकर आकाशवाणी विरत हो गई। फिर तो मैं सानन्द भगवल्लीलाओं का वर्णन करता हुआ विचरण करने लगा। समय पर काल आया और मेरी मृत्यु हो गई। मैं भगवान् का पार्षद बना। कल्प के अन्त में ब्रह्मा के साथ नारायण के हृदय में निवास किया और दूसरे कल्प के प्रारम्भ में सिसृक्षु ब्रह्मा की इन्द्रियों से, मरीचि आदि ऋषियों के साथ, मैं भी प्रकट हो गया। तभी से मैं त्रिलोकी में, बिना किसी अवरोध के सर्वदा विचरण करता रहता हूँ। यह वीणा भगवान् ने अनुग्रह करके मुझे प्रदान की है। इसी पर उनकी अमल विमल लीला का गान करता रहता हूँ।' इतना कहकर नारद वहाँ से चले गये।[१]

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

श्रीकृष्ण की आज्ञा से ब्रह्मा ने अपने सृष्टि-कार्य का प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उन्होंने मानसिक और कायिक सृष्टि की। उसी क्रम में उनके कण्ठ-प्रदेश से नारद का प्राकट्य हुआ। ब्रह्मा ने उन्हें भी सृष्टि करने का आदेश दिया। नारद का मन तप की तरफ आकृष्ट था । अतः उन्होंने विवाह और सृष्टि के लिये अनिच्छा प्रकट की। इस पर ब्रह्मा क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने नारद को शाप देते हुए कहा—'नारद , मेरा शाप है—तुम्हारे ज्ञान का लोप हो जायेगा। तुम पचास कामिनियों के क्रीडामृग बन जाओगे। तुम गन्धर्वों में जन्म लेकर उनमें श्रेष्ठ पुरुष होओगे। उस समय तुम्हारा नाम 'उपबर्हण' होगा। चिरकाल तक उन कामिनियों के साथ विहार कर फिर दासीपुत्र बनोगे। तदनन्तर वैष्णवों के संसर्ग और उनकी जूठन खाने से तुम पुनः श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करके मेरे पुत्ररूप में प्रतिष्ठित होओगे। उस समय मैं पुनः तुम्हें दिव्य एवं पुरातन ज्ञान प्रदान करूँगा। इस समय मेरी दृष्टि से अदृश्य हो जाओ और अवश्य नीचे गिरो ।[२]

उन दिनों जो गन्धर्वों के अधिपति थे, गन्धर्वराज थे, वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य से सम्पन्न होने पर भी प्रारब्धवश पुत्र-विहीन थे। उन्होंने पुष्कर तीर्थ में पुत्र के लिये शिव को लक्ष्य करके महान् तप किया। आशुतोष शङ्कर प्रसन्न हो प्रकट हुए। उन्होंने सस्नेह कहा—'गन्धर्वराज, तुम कोई वर माँगो।' गन्धर्वराज ने विनम्र होकर कहा—'प्रभो, मुझे श्रीहरि की भक्ति और वैष्णव पुत्र का वरदान देने की कृपा करें।' भगवान् शङ्कर ने 'तथास्तु' कहा। भगवान् के वरदान को प्राप्त कर कृतार्थ होकर गन्धर्वराज अपने घर पधारे। समय आने पर उनकी प्राण-प्रिया पत्नी ने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया। यह संयोग ही था कि आचार्य वसिष्ठ ने मङ्गल

---

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण, १/५-६

२. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, ब्रह्मखण्ड, ८/३७-३८

संस्कार सम्पन्न कर उस बालक का 'उपबर्हण' नाम रक्खा। 'उपबर्हण' का अर्थ होता है—पूज्यों में सर्वश्रेष्ठ।

समय की गति के साथ बालक 'उपबर्हण' बड़े हुए। उन्होंने वसिष्ठ जी से हरि-मन्त्र की दीक्षा ली और परम दुष्कर तप प्रारम्भ किया। उस समय वे युवावस्था से सम्पन्न थे। कालान्तर में चित्ररथ गन्धर्व की पचास बेटियों के साथ उनका विवाह हुआ, क्योंकि वे सभी उपबर्हण के यौवन और सौन्दर्य पर विमुग्ध थीं। एक दिन उपबर्हण सभी पत्नियों के साथ ब्रह्मा की सभा में पहुँचे। वहाँ वे श्रीहरि का यशोगान करने लगे। वहीं अप्सरा-शिरोमणि 'रम्भा' भी नृत्य कर रही थी। उसके सौन्दर्य पर नारद विमुग्ध हो उठे। वासना के वशीभूत हो उनका वीर्य स्खलित हो गया। यह दृश्य देखकर ब्रह्माजी ने उन्हें शाप देते हुए कहा—'तुम गन्धर्व-शरीर का परित्याग कर शूद्रयोनि को प्राप्त हो जाओ। फिर समयानुसार वैष्णवों का संसर्ग प्राप्त कर पुनः मेरे पुत्र रूप में प्रतिष्ठित हो जाओगे।'[१]

ब्रह्मा के शाप को सुनकर उपबर्हण ने योगधारणा के द्वारा अपने गन्धर्व शरीर का परित्याग कर दिया। इससे उनके सारे स्वजन-परिजन शोकाकुल हो उठे। उनकी प्रेयसी प्रधान पटरानी मालावती विलाप करने लगी। फिर उसने भवगान् श्रीकृष्ण का स्तवन किया। उनसे अपने पति उपबर्हण को जीवित करने की प्रार्थना की। भगवान् ने उसकी प्रार्थना अङ्गीकार कर शक्तिसहित गन्धर्व के शरीर में प्रवेश किया। भगवान् के शरीर में प्रवेश करते ही गन्धर्व उपबर्हण जीवित हो उठे। मालावती प्रसन्न हो उठी। उसने दान और मङ्गलाचार आदि क्रियाएँ सम्पन्न की। फिर क्या था ? उपबर्हण गन्धर्व अपनी पत्नियों के साथ वन में विहार करने लगे। उन्होंने अपनी आयु का शेषांश सानन्द व्यतीत करना प्रारम्भ किया।

आखिर, एक दिन उपबर्हण की आयु का अन्तिम दिन आ ही गया। फिर अन्तकाल की उपस्थिति होने पर, ब्रह्माजी के शापवश, अपने प्राणों का परित्याग करके विद्वान् गन्धर्व ने ब्राह्मण के वीर्य और शूद्रा के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। गोपराज द्रुमिल की पत्नी कलावती ने मुनिवर काश्यप के स्खलित शुक्र को ग्रहण कर लिया था, उससे उसको पुत्र की प्राप्ति हुई थी। नारद के कलावती के गर्भ में आने पर गोपराज द्रुमिल ने बदरिकाश्रम में जाकर योगधारणा के द्वारा अपने शरीर का परित्याग कर दिया।

पति के परलोक चले जाने पर कलावती शोक-विह्वल थी। उसे एक

---

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, ब्रह्मखण्ड, अध्याय-१३

ब्राह्मण ने देखा। उसे दया आई। उसने उसे माता कहकर आदर-भाव प्रदर्शित किया। उसे वह अपने घर लाया। समय पूरा होने पर कलावती ने एक अति सुन्दर बालक को जन्म दिया। क्रमशः बढ़ता हुआ वह बालक पाँच वर्ष का पूरा हो गया। उसे पूर्वजन्म की सारी बातें याद थीं। वह नित्य-निरन्तर कृष्ण के स्मरण-चिन्तन में निरत रहता था ।

इस प्रकार वह गोपी का बालक ब्राह्मण के घर में प्रतिदिन बढ़ने और हृष्ट-पुष्ट होने लगा। ब्राह्मण पुत्रसहित उस गोपी का अपनी पुत्री की भाँति पालन करते थे। इसी बीच कुछ अति तेजस्वी ब्राह्मण उस गृहस्थ के घर आये। देखने में वे पाँच वर्ष के बालक की भाँति प्रतीत होते थे। गृहस्थ ब्राह्मण ने उन तेजस्वी महात्माओं का स्वागत-सम्मान किया। भोजन के सयम उन चारों मुनिवरों ने ब्राह्मण के दिये हुए फल-फूल आदि का आहार ग्रहण किया। उनकी जूठन उस शिशु ने खाई। उनमें जो चतुर्थ मुनि थे उन्होंने उस बालक को प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्ण-मन्त्र का उपदेश दिया। ब्राह्मण और अपनी माता की आज्ञा से वह बालक उन चारों महात्माओं का दास बनकर उनकी शुश्रूषा करता रहा।

संयोग अति प्रबल होता है। एक दिन उस शिशु की माता रात्रि की बेला में मार्ग पर चल रही थी। इतने में ही एक सर्प ने उसे डँस लिया। वह श्रीहरि का स्मरण करती हुई तत्काल वैकुण्ठ लोक को चली गई। प्रातःकाल वह बालक उन ब्राह्मणों के साथ गृहस्थ ब्राह्मण के घर से चल दिया। उन कृपालु ब्राह्मणों ने उस बालक को तत्त्वज्ञान प्रदान किया। इसके बाद वे सब ब्रह्मकुमार उस शिशु को वहीं छोड़कर अपने स्थान को चले गये। वह शिशु बड़ा ज्ञानी था। उसका नाम नारद रक्खा गया था।[१] महात्माओं के चले जाने पर वह बालक गङ्गा के पावन तट पर एक पिप्पल के वृक्ष के नीचे योगासन लगाकर सुदीर्घ काल तक ध्यान की मुद्रा में बैठा रहा। वह निरन्तर उस मन्त्र का जप करता था, जिसका उपदेश उसे जाते समय सनत्कुमार ने प्रदान किया था। उस समय वह बालक एक सहस्र दिव्य वर्षों तक बिना अन्न-जल ग्रहण किये ध्यान में बैठा रहा। एक समय उसने ध्यान में देखा—एक दिव्य लोक है। वहाँ दिव्य रत्नजटित सिंहासन पर एक बालक विराजमान है। उसका सौन्दर्य वाणी का विषय नहीं बन सकता। शान्त

---

१. (क) अनावृष्टि के अन्त में वह बालक उत्पन्न हुआ था। अतः जन्मकाल में जगत् को नार (जल) प्रदान किया। इससे उसका नाम नारद हुआ। *ब्र०वै०, प्र०ख०, २०/७-११*

(ख) पूर्वजन्म की बातों को स्मरण करने वाला वह महाज्ञानी बालक दूसरे बालकों को नार अर्थात् ज्ञान देता था, इसलिये भी नारद नाम से विख्यात हुआ।

ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्मखण्ड, अ० २०/८

स्वभाव वाला वह गोपी का बालक श्यामसुन्दर की उस बाँकी-झाँकी को देखकर ध्यान से विरत हो गया। ध्यान मग्न होने पर जब फिर वह उनका दर्शन न कर सका तो शोकाकुल हो उठा। उस ध्यानस्थ सौन्दर्य को पुनः न देखकर नारद रोने लगे। इसी समय आकाशवाणी हुई—'बालक एक बार जो झाँकी तेरे ध्यान में आ गई है, वही पर्याप्त है। अब फिर तुझे उसका दर्शन नहीं हो सकता, क्योंकि जिसके अन्तःकरण की वासना परिपक्व नहीं हुई है, ऐसे कुयोगियों को उस स्वरूप का दर्शन होना अत्यन्त दुष्कर है। अगले जन्म में तुझे पुनः मेरे स्वरूप का दर्शन सुलभ होगा।'

आकाशभाषित का श्रवण कर वह बालक बड़ी प्रसन्नता के साथ पुनः ध्यान के प्रयास से विरत हो गया। समय आने पर उसने तीर्थ भूमि में अपने शरीर को त्याग दिया। इस प्रकार महामुनि नारद शाप से मुक्त हो गये। गोप शरीर का त्याग कर वह जीव ब्रह्म-विग्रह में विलीन हो गया।[1]

ब्रह्माण्डमहापुराण

ब्रह्माण्डपुराण के उपोद्धतपाद के द्वितीय अध्याय में नारद की एक अद्भुत कथा दी गई है। वहाँ पहले तो उन्हें कश्यप का मानसपुत्र कहा गया है और पुनः यह भी कहा है कि दक्ष ने नारद को शाप दिया कि—'ब्रह्माजी, नारद का यह शरीर नष्ट हो जाय और वे मेरी कन्या से आप के पुत्र रूप में जन्म ग्रहण करें।'

इस प्रकार शाप देने के अनन्तर समय आने पर दक्ष में अपनी प्रिय पुत्री का विवाह ब्रह्मा से कर दिया। शाप के कारण उससे पुनः नारद का प्रादुर्भाव हुआ।[2]

मानसः कश्यपस्यासीद् दक्षशापवशात् पुनः ।
तस्मात् स कश्यपस्याथ द्वितीयो मानसोऽभवत् ॥३/२/१४॥
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति ।
ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने ॥
तस्मात् स नारदो जज्ञे भूयः शापवशादृषिः ॥३/२/१८

•

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, ब्रह्मखण्ड, अध्याय-२१
२. यहाँ यह ध्यान देना है कि यहाँ वर्णित कथांश अपने आप में बहुत स्पष्ट नहीं है।

नीलकण्ठ-कथा

पद्ममहापुराण

देव और दानव मिलकर सागर का मन्थन कर रहे थे। लक्ष्मी को प्राप्त करना उनका लक्ष्य था। मन्थन की इस प्रक्रिया में सबसे पहले कालकूट नामक महाभयङ्कर विष प्रकट हुआ। पहले यह बहुत बड़े पिण्ड के रूप में था। वह प्रलयङ्कर अग्नि के समान अत्यन्त भयङ्कर प्रतीत होता था। उसे देखते ही सम्पूर्ण देवता और दानव भयाक्रान्त हो भाग चले। उन्हें भयभीत हो भागते हुए भगवान् शङ्कर ने देखा । उनके मन में दया आई। उन्होंने सबको रोक कर कहा— 'देवताओं, विष से भय मत करो। इस कालकूट नामक महान् विष को मैं अभी अपना आहार बना लूँगा।' शङ्कर के सान्त्वना-वचन को सुनकर सभी उनके चरणों पर गिर पड़े और उनकी स्तुति करने लगे।

देव-दानवों की स्तुति से प्रसन्न शङ्कर ने उस भयङ्कर विष को पी लिया। देव-दानव आदि संसार के सभी प्राणी संकट से मुक्त हो गये।[1]

शिवमहापुराण

शिवमहापुराण में समुद्र-मन्थन की कथा स्वतन्त्र रूप से वर्णित नहीं है। इसकी शतरुद्र-संहिता के षोडशवें अध्याय में शङ्कर के यक्षेश्वरावतार की कथा वर्णित है। इसी में स्वल्प किन्तु विशद रूप से शिव के द्वारा विषपान और उसके फलस्वरूप उनके नीलकण्ठ होने की कथा वर्णित है। कथा का संक्षिप्त प्रारूप इस प्रकार है—

बात पुरानी है। एक समय अमृत के लिये महाबलशाली देवों एवं दैत्यों ने क्षीरसागर का मन्थन किया। मन्थन से सर्वप्रथम कालानल के समान विष निकला। उसे देखकर ही सारी-देव-दानव-मण्डली भयविह्वल हो भाग कर भगवान् शङ्कर की शरण में गई। विष्णुसमेत सभी लोगों ने नतमस्तक हो दया-सागर शङ्कर की स्तुति की। भक्तवत्सल भगवान् ने उस महाघोर विष का पान कर लिया। उस विषम विष को शङ्कर ने अपने गले में धारण कर लिया। विष ने अपना प्रभाव दिखलाया। शङ्कर का कण्ठ नीला हो गया। उससे उनके सौन्दर्य में चार चाँद लग गया। दुनियाँ शङ्कर की कृपापरवशता तथा भक्तवत्सलता को बतलाने के लिये उन्हें 'नीलकण्ठ' कहने लगी।[2]

१. टिप्पणी—यहाँ विषपान से शङ्कर के कण्ठ के नीले पड़ने की बात शब्दत: उपात्त नहीं है।

२. शिवमहापुराण, ३/१६, २-८।

रुद्रसंहिता के सृष्टि खण्ड में नारद-मोह की कथा विस्तार के साथ वर्णित है। उसके चतुर्थ अध्याय में अपमानित अतः क्रुद्ध नारद भगवान् विष्णु से कह रहे हैं—'महेश्वर रुद्र ने यदि कृपा करके विष का पान न कर लिया होता तो छल-कपट में निरन्तर निरत रहने वाले तुम्हारी सारी माया विनष्ट हो गयी होती।'[१]

टिप्पणी—शङ्कर की कथाओं में 'नीलकण्ठ'-कथा अति प्रबल है। बहुत महत्त्वशालिनी है। शङ्कर की सारी शिवता इस कथा में समाविष्ट है। किन्तु शिवमहापुराण में इसे जो महत्त्व-मिलना चाहिये था, वह नहीं मिला है। इससे अच्छा तो इस कथा का वर्णन वैष्णव पुराण श्रीमद्भागवत में ही किया गया है।

श्रीमद्भागवत

देव, दानव और दैत्य—सभी मिलकर सागर का मन्थन कर रहे थे। भगवान् श्रीहरि इस मन्थन की क्रिया में उनके सहायक थे, नायक थे। अमृत की प्राप्ति उनका लक्ष्य था। अमृत-पान कर वे सभी अमर और प्रबल होना चाहते थे।

मन्थन की इस प्रक्रिया में सागर से सर्वप्रथम जो पदार्थ प्रादुर्भूत हुआ वह था—'अत्युग्र महाविष'। उसकी उग्रता असह्य थी। वह चतुर्दिक्, ऊपर-नीचे सर्वत्र प्रसृत होकर (पसर कर) सबको दग्ध कर रहा था। त्रिलोकी कम्पायमान थी। विष के इस असह्य प्रताप को देखकर असहाय देव-शिरोमणियों के साथ सारी प्रजा हाहाकार करती हुई अशरण-शरण भगवान् सदाशिव की शरण में गई। उनकी लम्बी-चौड़ी स्तुति करके अपने परित्राण की कामना की।

भगवान् शङ्कर ने चराचर जगत् की इस विपत्ति को देखा। उन्हें प्राणियों पर दया आई। उन्होंने जगदम्बा पार्वती से कहा—'देवि, इस समय सारी प्रजा विपत्ति-ग्रस्त है। अपने प्राणों की रक्षा के लिये यह मेरी शरण में आई है। अतः मैं विपत्ति का वारण कर इन्हें निर्भय बनाऊँगा। दीन-दुःखियों की रक्षा करना ही बड़ों का बड़प्पन है।[२] अतः मैं प्रजा के कल्याण के लिये इस विष का स्वयं पान करूँगा।' पार्वती शङ्कर के प्रभाव को जानती थीं। अतः उन्होंने शङ्कर का समर्थन कर दिया।[३] फिर क्या था ? भगवान् ने दोनों हाथ की चुलुकी बनाई और पीना प्रारम्भ कर दिया उस हालाहल विष को जिसने त्रिलोकी को दग्ध करना प्रारम्भ कर दिया था। खींच लिया समग्र विष को शङ्कर ने एक श्वास में। किन्तु महाप्रतापी

---

१. चेत्पिबेन्न विषं रुद्रो दयां कृत्वा महेश्वरः ।
भवेन्नष्टाऽखिला माया तव व्याजरते हरे ॥ *शिवमहापुराण, २/१/४/८*

२. आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे ।
एतावान् हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम् ॥ *श्रीमद्भागवत, ८/७/३८।*

३. तद् विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञान्वमोदत ॥ *वही, ८/७/४१*

विष ने भी अपना प्रताप प्रदर्शित किये बिना न छोड़ा। उसने शङ्कर के कण्ठ के उस भाग को नीला बना दिया जहाँ उन्होंने उसे रोक रक्खा था। परन्तु उनके कण्ठ की यह नीलिमा उनका विभूषण बन गई। सारा संसार शङ्कर को 'नील-कण्ठ' कहने लगा।[1] यही है शङ्कर के नीलकण्ठ कहे जाने की कहानी श्रीमद्भागवतमहापुराण में।

अग्निपुराण

भगवान् विष्णु के निर्देश पर देवों ने, दानवों के साथ मिलकर, क्षीर-सागर का मन्थन प्रारम्भ किया। उन लोगों का यह उद्योग अमृत-प्राप्ति के लिये था।

सागर के मन्थन होने पर सर्वप्रथम भयङ्कर विष उससे निकला। भगवान् शङ्कर ने इस विष को अपने कण्ठ में धारण कर लिया। इससे उनका कण्ठ नीला पड़ गया और वे 'नील-कण्ठ' कहे जाने लगे।[2]

स्कन्दमहापुराण

विष्णु की सम्मति एवम् आकाशवाणी की प्रेरणा से देवों, दैत्यों और दानवों ने सन्धि कर समुद्र-मन्थन प्रारम्भ किया। समुद्र में गिरे हुए रत्नों को निकालना ही उनका लक्ष्य था। उन लोगों ने मन्दर को मथानी और वासुकि नाग को डोरी बनाया। विष्णु की सहायता से समुद्र-मन्थन चल रहा था। कच्छपरूपधारी भगवान् की पीठ स्वभावतः कठोर थी। उस पर घूमने वाला मन्दराचल भी वज्रसार की भाँति दृढ था। उन दोनों की रगड़ से समुद्र में वडवानल प्रकट हो गया। साथ ही हालाहल विष भी उत्पन्न हुआ। उस विष को सर्वप्रथम नारद जी ने देखा। उन्होंने देवों से सागर-मन्थन बन्द करने की सलाह दी। किन्तु स्वार्थ-सिद्धि में संलग्न देवों ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। वे मन्थन करते ही जा रहे थे। फलतः प्रभूत हालाहल प्रादुर्भूत हुआ। उसने त्रिलोकी को दग्ध करना प्रारंभ किया। विष्णु और विष्णु-लोकवासी भी विष के प्रभाव से श्याम वर्ण के हो गये। ब्रह्मा और विष्णु भी विष के वेग को रोक न सके। भगवान् शङ्कर ने देखा त्रिलोकी कालकूट के तेज से दग्ध हो रही है। फलतः दयापरवश हो उन्होंने उस लोकसंहारकारी कालकूट विष को स्वयं ही अपना ग्रास बना लिया। उन्होंने उस

---

१. तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ।
यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥ *श्रीमद्भागवत, ८/७/४३।*

२. क्षीराब्धेर्मथ्यमानाच्च विषं हालाहलं ह्यभूत् ।
हरेण धारितं कण्ठे नीलकण्ठस्ततोऽभवत् ॥ *अग्निमहापुराण, ३/८-९*

टिप्पणी–श्रीमद्भागवत के समुद्र-मन्थन से उत्पन्न वस्तुओं के क्रम में जो वैज्ञानिकता है, उसका अग्निपुराण में अभाव देखा जाता है। यहाँ तत्त्वों का तारतम्य कुछ और ही है।

विष को निर्मल (निर्दोष) कर दिया। इस प्रकार भगवान् शङ्कर की बड़ी भारी कृपा होने से देवता, असुर, मनुष्य तथा सम्पूर्ण त्रिलोकी की उस समय कालकूट विष से रक्षा हुई।[१]

ब्रह्माण्डमहापुराण

अमृत के लिये देव-दानव समुद्र का मन्थन कर रहे थे। अतिशय मन्थन करने पर सर्वप्रथम कालानल के समान घोर विष उत्पन्न हुआ। भगवान् विष्णु रक्तगौराङ्ग थे। वही सबसे आगे थे। अत: वे विष के प्रभाव से कृष्ण वर्ण के बन गये।[२] यह देखकर भयभीत देव-दानव ब्रह्मा की शरण में गये। अपने को असमर्थ पाकर ब्रह्मा ने उन सबको शङ्कर की शरण में जाने की सलाह दी और स्वयं उनकी दिव्य-भव्य स्तुति की। शङ्कर उनकी स्तुति से प्रसन्न हुए। ब्रह्मा ने उनसे विष पीने की प्रार्थना की। सन्तुष्ट शङ्कर ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर विष को उठाकर पी लिया। विष के पीते ही भगवान् शिव का कण्ठ नील वर्ण का बन गया।[३] उन्होंने उसे कण्ठ में धारण कर लिया था। अत: वे 'नीलकण्ठ' कहलाये।

●

---

१. स्कन्दमहापुराण, माहेश्वरखण्ड, अध्याय-५-११

२. निर्दग्धो रक्तगौराङ्गं कृत: कृष्णो जनार्दन: ।
तं दृष्ट्वा रक्तगौराङ्गो कृतं कृष्णं जनार्दनम् ॥ २/२५/५७

३. पिबतो मे महाघोरं विषं सुरभयप्रदम् ।
कण्ठ: समभवत्तूर्णं कृष्णो वै वरवर्णिनि ॥ २/२५/८६-८७

नृसिंह-कथा

ब्रह्ममहापुराण

कथा सतयुग की है। दैत्यों का आदिपुरुष हिरण्यकशिपु था। उसने चिरकाल तक घोर तप किया। ब्रह्मा उसके तप से सन्तुष्ट होकर वर देने आये। दैत्यराज ने वर माँगा—"पितामह, देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस मुझे मार न सकें अथवा ऋषि क्रुद्ध होकर मुझे शाप न दें। प्रथम वर तो मैंने आप से यह माँगा। मेरी मृत्यु अस्त्र, शस्त्र, पर्वत, पादप, शुष्क एवं आर्द्र किसी पदार्थ से न हो, न ऊपर हो और न नीचे हो। एक पाणि-प्रहार से सपरिकर जो मुझे नष्ट कर सके वही मेरी मौत बने। अर्थात् उसी के हाथों मेरी मृत्यु हो। सारे देवों के अधिकार मुझे प्राप्त हो जायें। यह मेरा द्वितीय वर है।" इस पर ब्रह्मा ने 'एवमस्तु' कहा।

वरदान से दर्पित दैत्य ने त्रिलोकी में अत्याचार का ताण्डव फैला दिया। चतुर्दिक् त्राहि-त्राहि मच गई। सभी देव संत्रस्त हो वासुदेव की शरण में गये। भगवान् ने शीघ्र ही दैत्य के वध का आश्वासन देकर देवों को विदा किया।

देवों के चले जाने के बाद भगवान् वासुदेव ने आधा मानव और आधा सिंह का अर्थात् नृसिंह का रूप धारण कर गरजते हुए हिरण्यकशिपु की पुरी में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने एक थप्पड़ से ही दैत्यराज के प्राणों का हरण कर लिया। इस प्रकार त्रिलोकी पर अत्याचार और घोर अनाचरण करने वाला हिरण्यकशिपु इस संसार से विदा होकर चला गया।[१]

पद्ममहापुराण

जय और विजय श्रीहरि के पार्षद थे। वे श्वेतद्वीप में द्वारपाल का कार्य करते थे। एक समय सनकादि योगीश्वर भगवान् का दर्शन करने के लिये श्वेतद्वीप में आये। जय और विजय ने उन्हें अन्दर जाने से रोका। इस पर मुनि-जन क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने जय-विजय को शाप दे दिया—'द्वारपालों, तुम दोनों भगवान् के धाम का परित्याग करके भू-लोक में चले जाओ।' पता लगते ही श्रीहरि ने महात्माओं के साथ ही जय-विजय को अपने पास बुलाया और उनसे कहा—

---

१. नरस्यार्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः ।
नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ।
दैत्यं सोऽतिबलं दृष्ट्वा दृप्तशार्दूलविक्रमः ।
दृप्तदैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना ॥ *ब्रह्ममहापुराण, १०४/७०-७२*

'द्वारपालों, तुम लोगों ने महात्माओं का अपराध किया है। अत: तुम इस शाप का उल्लंघन नहीं कर सकते। तुम यहाँ से जाकर या तो सात जन्मों तक मेरे पापहीन भक्त होकर रहो या तीन जन्मों तक मेरे प्रति शत्रु-भाव रखते हुए समय व्यतीत करो।'

जगदीश्वर की बात सुनकर जय-विजय ने कहा—'मानद, हम आपसे बिछुड़ कर बहुत दिनों तक अलग नहीं रह सकते। अत: केवल तीन जन्मों तक ही शत्रुभाव धारण कर के रहेंगे।'

भगवान् से इस प्रकार निवेदन करके वे दोनों महाबली द्वारपाल कश्यप के वीर्य से दिति के गर्भ में आये और महापराक्रमी असुर होकर प्रकट हुए। उनमें बड़े का नाम हिरण्यकशिपु था और छोटे का हिरण्याक्ष। हिरण्याक्ष का वध भगवान् वाराह ने किया था।

भाई का वध कर दिये जाने पर हिरण्यकशिपु ने मेरुगिरि की उपत्यका में भीषण तप से भगवान् शङ्कर को प्रसन्न किया । आशुतोष उसके समक्ष प्रकट हुए। वरदान माँगने को कहा। हिरण्यकशिपु ने वरदान माँगा—'भगवन्, देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, सिद्ध, महात्मा, यक्ष, विद्याधर और किन्नरों से, समस्त रोगों से, सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से तथा सम्पूर्ण महर्षियों से भी मेरी मृत्यु न हो सके।'

शङ्कर ने 'एवमस्तु' कहकर उसे वरदान दे डाला। वर के प्रभाव से अजेय बना दैत्य त्रिलोकी का अधिपति बन बैठा। देव, दानव और मानव–सभी उसके किङ्कर थे। उसने राजा उत्तानपाद की पुत्री कल्याणी के साथ विवाह किया था। उसी के गर्भ से दैत्यशिरोमणि प्रह्लाद का जन्म हुआ।

प्रह्लाद शनै: शनै: कुछ बड़ा हुआ। हिरण्यकशिपु ने उसे गुरुकुल में पढ़ने के लिये भेजा। कुछ समय तक अध्ययन करके एक दिन प्रह्लाद गुरु के साथ अपने पिता के पास आया। श्रद्धा से उन्हें प्रणाम किया। पिता ने पुत्र से प्यार के साथ पूछा—'बेटा, तुमने गुरु से जो अध्ययन किया है, उसमें से कुछ जानने योग्य तत्त्व मुझसे कहो।' प्रह्लाद ने भगवान् विष्णु की प्रशंसा की। इस पर हिरण्यकशिपु गुरु पर क्रुद्ध हो उठा। उसने दैत्यों से कहा—'इस ब्राह्मण का वध कर डालो।' किन्तु प्रह्लाद ने यह कहकर मना कर दिया कि यह शिक्षा मुझे गुरु ने नहीं दी है, अपितु यह मुझे भगवान् विष्णु की कृपा से प्राप्त हुई है। प्रह्लाद के मुख से बार-बार विष्णु की महिमा को सुनकर हिरण्यकशिपु अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला—'अरे, यह प्रह्लाद बड़ा पापी है। यह शत्रु की पूजा करता है। मैं आज्ञा देता

हूँ—'इसे भयंकर शस्त्रों से मार डालो। जिसके बल पर यह 'श्रीहरि ही रक्षक हैं' ऐसा कहता है, उसे आज ही देखना है। उस हरि का रक्षा-कार्य कितना सफल है—यह अभी ज्ञात हो जायेगा।'

दैत्याधिपति की आज्ञा मिलते ही दैत्यों ने प्रह्लाद पर प्रहार प्रारम्भ कर दिया। किन्तु भवत्कृपा से सारे अस्त्र-शस्त्र प्रह्लाद का बाल भी बांका न कर सके। वे सभी-के-सभी निष्फल होकर गिर पड़े। यह देखकर हिरण्यकशिपु को महान् आश्चर्य हुआ। उसने विषैले नागों, मतवाले दिग्गजों, भयङ्कर विष और अग्नि के द्वारा भी प्रह्लाद को मारने का प्रयास किया। किन्तु उसके ये सभी उपाय भी निष्फल हो गये। प्रह्लाद को डाटते हुए फिर उसने कहा—'तुम्हारे अनुसार यदि विष्णु सर्वत्र है तो तुम उसे इस स्तम्भ में दिखलाओ। अन्यथा मिथ्या बातें बनाने के कारण तुम्हारा वध कर डालूँगा।'

ऐसा कहकर दैत्यराज ने तलवार खींच ली और क्रोधपूर्वक प्रह्लाद को मार डालने के लिये उनकी छाती पर प्रहार करना चाहा। उसी क्षण स्तम्भ से वज्र गिरने जैसी भयंकर ध्वनि हुई । ध्वनि के साथ ही स्तम्भ से तेजोराशिसंवलित नृसिंह भगवान् का प्रादुर्भाव हुआ। उनकी आकृति अति भयानक थी। उनकी ग्रीवा की जटाओं (सटाओं) से अग्नि की लपटे निकल रही थीं। उससे समस्त दैत्य-सेना जल कर भस्म हो गई। तलवार लेकर प्रहार के लिये झपटते हुए हिरण्यकशिपु को पकड़कर नृसिंह ने उसे अपनी गोद में रखलिया और उसके मुख की ओर देखा । उसमें श्रीविष्णु की निन्दा तथा वैष्णव भक्त से द्वेष करने का जो पाप था, वह भगवान् के स्पर्शमात्र से ही जलकर भस्म हो गया। तदनन्तर नृसिंह ने अपने नखों से हिरण्यकशिपु को विदीर्ण कर डाला। इससे दैत्यराज का अन्तःकरण निर्मल हो गया। उसने साक्षात् भगवान् का मुख देखते हुए प्राणों का परित्याग किया। अतः वह कृतकृत्य हो गया। श्रीहरि ने अपने तीक्ष्ण नखों से उसकी देह के शत-शत टुकड़े कर डाले। उन्होंने उसकी लम्बी आँतों को निकालकर अपनी ग्रीवा में डाल लिया। उस समय नृसिंह भयङ्कर क्रुद्ध थे। किसी का साहस उनके पास जाने का नहीं हो रहा था। देवों की प्रार्थना से प्रकट हुई लक्ष्मी ने अपने प्राण-प्रिय पति का क्रोध शान्त किया। भगवान् ने अपना दुःसह तेज भी समेट लिया। फिर भक्तवत्सल श्रीहरि ने, देवताओं को साथ लेकर, प्रह्लाद को दैत्यों का अधिपति नियुक्त किया। उन्हें बहुत-सा आश्वासन दिया। पुनः देवताओं के द्वारा उनका अभिषेक कराकर उन्हें अनन्य भक्ति प्रदान की।

इसके बाद भगवान् के ऊपर पुष्पों की वृष्टि हुई और वे देवगणों से अपनी

स्तुति सुनते हुए वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर विष्णुभक्त प्रह्लाद धर्मपूर्वक राज्य करने लगे।[१]

विष्णुमहापुराण

हिरण्यकशिपु ने भीषण तपस्या करके ब्रह्मा से वर प्राप्त किया। वर के प्रभाव से वह त्रिलोकी का अधिपति बन बैठा। सूर्य, चन्द्र तथा यम आदि के अधिकारों का वह स्वयं निर्वहण करता था। सन्त्रस्त देव स्वर्ग छोड़कर मानव वेष में अवनि-तल पर विचरण करते थे। सिद्ध-गन्धर्व पन्नग आदि हिरण्यकशिपु की उपासना में संलग्न रहते थे। वह त्रिलोकी का एकमात्र निरंकुश शासक था। मदिरापान कर मत्त हो जाने पर उसकी निरङ्कुशता निरर्गल हो जाती थी।

उसका धर्मात्मा पुत्र था—प्रह्लाद । वह बालक गुरु के घर जाकर बालोचित पाठ पढ़ने लगा। एक दिन की बात है। वह अपने गुरु के साथ पिता के पास गया। वहाँ उसने श्रद्धा के साथ पिता के चरणों पर अपना मस्तक रखकर प्रणाम किया। पिता ने स्नेह के साथ उठाकर कहा—'वत्स, तुमने अब तक जो कुछ पढ़ा है, उसका सारभूत कुछ अंश हमें सुनाओ।'[२]

प्रह्लाद ने विनम्रता के साथ कहा—पिताजी, मेरे मन में जो सबके साररूप में स्थित है वह मैं आपको सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये—आदि, मध्य और अन्त से विहीन, अजन्मा, बृद्धि-क्षय-शून्य, अच्युत, समस्त कारणों के कारण तथा जगत् के पालक और अन्तकर्ता श्रीहरि को मैं प्रणाम करता हूँ।'[३]

हिरण्यकशिपु ने जब बालक के मुख से उक्त बातें सुनी तो उसके क्रोध की सीमा न रही। उसने गुरु को डाटते हुए कहा—'रे दुर्बुद्धि अधम ब्राह्मण, तूने मेरी अवज्ञा कर इस बालक को मेरे विपक्षी की स्तुति से युक्त यह कैसी शिक्षा दी है?'[४]

गुरु ने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया कि मैंने इसे यह शिक्षा नहीं दी है। तब हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद से ही ऐसी शिक्षा के उपदेष्टा का नाम पूछा। प्रह्लाद ने कहा—'पिताजी, हृदय में स्थित भगवान् विष्णु ही तो सम्पूर्ण जगत् के

---

१. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, उत्तरार्द्ध ।

२. पठ्यतां भवता वत्स सारभूतं सुभाषितम् ।
कालेनैतावता यत्ते सदोद्युक्तेन शिक्षितम् ।। *विष्णुमहापुराण, १/१७/१३*

३. अनादिमध्यान्तमजमवृद्धिक्षयमच्युतम् ।
प्रणतोऽस्म्यन्तसन्तानं सर्वकारणकारणम् ।। *वही, १/१७/१५*

४. ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षस्तुतिसंहितम् ।
असारं ग्राहितो बालो मामवज्ञाय दुर्मते ।। *विष्णुमहापुराण, १/१७/१७*

उपदेष्टा हैं। उन परमात्मा के अतिरिक्त भला और कौन किसी को कुछ सिखा सकता है ?'[१]

प्रह्लाद की बात श्रवण कर हिरण्यकशिपु अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।[२] उसने कहा—'इस पापी को यहाँ से निष्काशित करो और गुरु के गृह में ले जाकर इसे शासित करो। इस दुर्मति को न जाने किसने मेरे विपक्षी की प्रशंसा में नियुक्त कर दिया है?'

अपने प्रभु की आज्ञा सुनकर दैत्यगण प्रह्लाद को पुनः गुरु-गृह ले गये। वहाँ वे गुरुजी की रात-दिन भली प्रकार सेवा-शुश्रूषा करते हुए विद्याध्ययन करने लगे। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर दैत्यराज ने प्रह्लाद को बुलवाया और कहा—'बेटा, आज कोई गाथा (कथा) सुनाओ।'

पिताजी की आज्ञा मिलते ही तपाक से प्रह्लाद ने कहा—'जिनसे प्रधान, पुरुष और यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है, वे सकल प्रपञ्च के कारण श्रीविष्णु भगवान् हम पर प्रसन्न हों।'[३]

प्रह्लाद के मुख से ऐसी बात सुनते ही हिरण्यकशिपु आपे से बाहर हो गया। उसने दैत्यों को आदेश देते हुए कहा—'अरे, इस दुरात्मा का वध कर डालो। इसके जीवित रहने से अब कोई लाभ नहीं है। स्वपक्ष का हानिकारक यह बालक अपने कुल के लिये अङ्गार-स्वरूप ही है।[४]

दैत्याधिपति का आदेश मिलते ही सभी के सभी दैत्य अस्त्र-शस्त्र लेकर प्रह्लाद के विनाश के लिये तत्पर हो गये। प्रह्लाद सर्वत्र भगवद्दर्शन ही कर रहे थे। अस्त्र-शस्त्र में ही उन्हें भगवान् का ही साक्षात्कार हो रहा था। अतः उस भगवद्दर्शी पर आयुध-प्रहारों का कुछ भी प्रभाव न हुआ। वह ज्यों-के-त्यों बलसम्पन्न ही बने रहे।'

प्रह्लाद की उक्त स्थिति को देखकर हिरण्यकशिपु ने विषधरसर्पों, महान् दिग्गजों, तथा अग्नि आदि के द्वारा उसकी इहलीला समाप्त करने की चेष्टा की।

---

१. शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतो यो हृदि स्थितः।
तमृते परमात्मानं तात कः केन शास्यते ।। *विष्णुमहापुराण, १/१७/२०*

२. **टिप्पणी**—प्रह्लाद और हिरण्यकशिपु के कथोपकथन का यह अंश श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध की प्रह्लाद-कथा से अर्थतः और शब्दतः भी प्रायः साम्य रखता है। हाँ, भागवत का अंश अधिक साफ-सुथरा है।

३. यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम् ।
कारणं सकलस्यास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ।। *वही, १/१७/३०*

४. दुरात्मा वध्यतामेष नानेनार्थोऽस्ति जीवता ।
स्वपक्षहानिकर्तृत्वाद्यः कुलाङ्गारतां गतः ।। *वही, १/१७/३१*

किन्तु भगवान् के रक्षक रहते उसका बाल भी बाँका न हुआ। तब गुरुओं ने उससे कहा—'दैत्येश्वर, आप क्रोध समाप्त करें। इसे हम लोगों के संरक्षण में दे दें। हम इसे मार्ग पर लाने का प्रयास करेंगे। फिर भी यदि यह नहीं सुधरेगा तो दुर्निवारिणी कृत्या उत्पन्न कर इसका वध करवा देंगे। इसके बाद प्रह्लाद दैत्य-बालकों के साथ गुरु के आश्रम पर रहकर विद्याभ्यास करने लगा। गुरुजन पढ़ाकर जब निवृत्त हो जाते तब प्रह्लाद दैत्य-कुमारों को एकत्रित कर उन्हें उपदेश देने लगता। वह संसार और शरीर की नश्वरता, शरीर की अपवित्रता, जरा की दुर्निवार्यता, सांसारिक सम्बन्धों की अस्थिरता और नारायण की सर्वव्यापकता का उपदेश देते हुए उनसे दैत्यभाव के परित्याग और समता की बात कहा करता था।[१]

दानवों ने भय से प्रह्लाद के उपदेश की बात दैत्यपति से जाकर कह दी। उसने अपने रसोइयों को आदेश दिया—'भोजन में विष मिलाकर प्रह्लाद को मार डालिये।' किन्तु भगवान् को भोग लगाने के बाद भोजन से विष का प्रभाव समाप्त हो जाता था। अत: उसने दैत्यपुरोहितों को आदेश दिया कि वे कृत्या उत्पन्न कर अतिशीघ्र प्रह्लाद का विनाश कर डालें ।[२]

पहले तो गुरुओं ने प्रह्लाद को समझाने का प्रयास किया। किन्तु जब वह अनन्त की महत्ता के प्रतिपादन से न रुका तो उन लोगों ने कृत्या को उत्पन्न कर प्रह्लाद को मरवाने का प्रयत्न किया। जब कृत्या का त्रिशूल प्रह्लाद के वक्ष:स्थल से टकराकर खण्डित हो गया तो पलट कर उसने पापी गुरुओं पर प्रहार किया और स्वयं भी नष्ट हो गई।[३]

अपने गुरुओं को कृत्या के द्वारा जलाये जाते देखकर महामति प्रह्लाद 'हे कृष्ण, रक्षा करो, हे अनन्त, बचाओ', ऐसा कहते हुए उनकी ओर दौड़े । वे जाकर गुरुओं से लिपट गये। उनके स्पर्श करते ही वे ब्राह्मण स्वस्थ होकर उठ बैठे और विनयावनत उस बालक से कहने लगे—'वत्स, तू महान् है। तू दीर्घायु, निर्द्वन्द्व, बल-वीर्य-सम्पन्न तथा पुत्र, पौत्र एवं धन-ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न होओ।' प्रह्लाद के ऊपर इस प्रकार की आशीष-वृष्टि कर उन पुरोहितों ने जाकर हिरण्यकशिपु से सारी घटना का यथावत् वर्णन कर डाला। दैत्यराज ने प्रह्लाद को बुलाकर उससे उसके प्रभाव का कारण पूछा। प्रह्लाद ने इसे भगवान् की कृपा का फल बतलाया।

---

१. विस्तार के लिये देखिये—*विष्णुमहापुराण, १/१७*

२. त्वर्यतां त्वर्यतां हे हे सद्यो दैत्यपुरोहिता: ।
कृत्यां तस्य विनाशाय उत्पादय माचिरम् ।। *वही, १/१८/९*

३. अपापे तत्र पापैश्च पातिता दैत्ययाजकै: ।
तानेव सा जघानाशु कृत्या नाशं जगाम च ।। *वही, १/१८/३७*

प्रह्लाद के उत्तर से क्रोधान्ध हिरण्यकशिपु ने उसे प्रासाद के ऊपर से ही नीचें फेंकवा दिया। किन्तु कृष्ण की कृपा से उसका एक बाल भी बाँका न हुआ। इस पर दैत्यराज ने मायावी शम्बर से माया का प्रयोग कर बालक को मार डालने के लिये कहा।

शम्बर ने प्रह्लाद को मार डालने के उद्देश्य से अगणित मायाओं का प्रयोग किया। उस समय भी प्रह्लाद केवल भगवान् का ही स्मरण करते थे। उनके मन में शम्बर के प्रति किञ्चित् भी मत्सर न था। उस समय भगवान् की आज्ञा से प्रह्लाद की रक्षा के लिये प्रकाश-पुञ्ज से प्रज्वलित सुदर्शन चक्र वहाँ आ पहुँचा।[१] आते ही उसने शम्बर की सहस्र मायाओं को काटकर नष्ट कर दिया। विफल-मनोरथ हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को पुन: गुरु-गृह ही प्रेषित कर दिया। गुरुओं ने शुक्रनीति का प्रबल अभ्यास करवा कर पुन: बालक को पिता के समक्ष उपस्थित किया। हिरण्यकशिपु ने राजनीति की बातें पूछी। प्रह्लाद ने सर्वत्र भगवद्दर्शन की बात का प्रतिपादन कर नीतिशास्त्र को निरर्थक बतलाया। इस पर दैत्याधिपति ने क्रुद्ध होकर उसे नागपाशों से बँधवा कर महासागर में फेंकवा दिया। इतना ही नहीं उसने बड़े-बड़े पर्वतों से भी सागर को बहुत दूर तक पटवा दिया, जिससे दबकर प्रह्लाद वहीं मर जाय । किन्तु आश्चर्य यह कि वह वहाँ भी भगवान् की दिव्य स्तुति में निमग्न हो गया ।

स्तुति करते-करते प्रह्लाद भगवन्मय बन गये। फिर क्या था? उरगों का बन्धन विनष्ट हो गया। पर्वत दूर फेंका गये। प्रह्लाद जल से बाहर निकल आये। भगवान् प्रह्लाद के समक्ष आ विराजे । उन्होंने प्रह्लाद से वर माँगने की बात कही। प्रह्लाद ने दृढ़ भक्ति माँगी और पिता हिरण्यकशिपु को पाप से विमुक्त कर देने की प्रार्थना भी की। भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्हें अन्त में मुक्ति का वर स्वत: प्रदान कर भगवान् अन्तर्हित हो गये ।

मुक्त होकर प्रह्लाद पिता के पास पहुँचे। श्रद्धा के सहित उसके चरणों पर मस्तक रख कर प्रणाम किया। हिरण्यकशिपु ने सस्नेह बालक को उठाकर वक्षःस्थल से लगा लिया। उसके बाद वह महान् असुर अपनी करनी पर पश्चात्ताप कर फिर प्रह्लाद से प्रेम करने लगा। प्रह्लाद भी अपने गुरु और माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा करने लगे ।

---

१. ततो भगवता तस्य रक्षार्थं चक्रमुत्तमम् ।
आजगाम समाज्ञप्तं ज्वालामालि सुदर्शनम् ।। *विष्णुमहापुराण, १/१९/१९*

कुछ समय व्यतीत हो जाने पर नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णु के द्वारा पिता के मारे जाने पर प्रह्लाद दैत्यों के अधिपति बने।[१] बहुत दिनों तक वैभव-सुख का भोगकर अन्त में वे परम निर्वाण को प्राप्त किये।

शिवमहापुराण

शिवमहापुराण में नृसिंह-कथा शिव के शरभावतार की कथा के सन्दर्भ में वर्णित है। वहाँ शरभावतार (शार्दूलावतार) की अतिशय महत्ता द्योतित करने के लिये ही नृसिंह-कथा का उपन्यास किया गया है। अत: इस कथा की योजना के पीछे साम्प्रदायिक असहिष्णुता का अनायास नग्न स्वरूप देखा जा सकता है। कथा का संक्षिप्त प्रारूप इस प्रकार है—

वाराह भगवान् के द्वारा अनुज हिरण्याक्ष के मारे जाने पर हिरण्यकशिपु को महान् शोक और क्रोध हुआ। उसने श्रीहरि से बदला देने की सोची। अत: भीषण तप करके उसने ब्रह्मा से वर माँगा—'आप की सृष्टि का कोई भी प्राणी मेरा वध न कर सके।' ब्रह्मा ने 'तथास्तु' कहकर उसकी इच्छा की पूर्ति की।[२] फिर तो तप से विरत होकर वह लौट आया अपनी राजधानी 'शोणितपुर' में। वर के प्रभाव से त्रिलोकी को अपने वश में करके वह निष्कण्टक राज्य करने लगा। उसके अत्याचार से त्रिलोकी काँप उठी।

हिरण्यकशिपु का पुत्र था—प्रह्लाद। प्रह्लाद हरि का भक्त था। अत: राक्षस-राज अपने बेटे से ही बैर करने लगा। अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षा के लिये विष्णु नृसिंह का रूप धारण कर, सन्ध्या की बेला में, सभा के मध्य स्तम्भ से प्रकट हो गये।[३] उस समय उनके क्रोध की सीमा न थी। उन्होंने बहुत से दैत्य-वीरों का वध कर दिया। फिर मुड़े दैत्यराज हिरण्यकशिपु की ओर। थोड़ी देर तक दोनों में महाभयङ्कर संग्राम हुआ। अन्त में प्रबल पड़े नृसिंह। उन्होंने हठात् पकड़ लिया हिरण्यकशिपु को। उसे लिटा लिया अपनी जाँघों पर और स्वयं बैठ गये देहली पर। हिरण्यकशिपु छटपटा रहा था। नृसिंह ने अपने नखों से उसके उदर को विदीर्ण कर उसकी इहलीला समाप्त कर दी। भगवान् के इस कृत्य से न केवल देवता अपितु सारा संसार सुखी हो उठा। सर्वत्र प्रसन्नता की लहर दौड़ने लगी।

---

१. पितर्युपरतिं नीते नरसिंहस्वरूपिणा ।
विष्णुना सोऽपि दैत्यानां मैत्रेयाभूत्पतिस्तत: ॥ *विष्णुमहापुराण, १/२०/३२*

२. वर्षाणामयुतं तप्त्वा ब्रह्मणो वरमाप स: ।
न कश्चिन्मारयेन्मां वै त्वत्सृष्टाविह तुष्टत: ॥ *शिवमहापुराण, ३/१०/१३*

३. सभास्तम्भात्तदा विष्णुरभूदाविर्द्रुतं मुने ।
सन्ध्यायां क्रोधमापन्नो नृसिंहवपुषा तत: ॥ *शिवमहापुराण, ३/१०/१७*

हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर भी नृसिंह की क्रोधज्वाला शान्त न हुई। ब्रह्मादि देव डरवश दूर ही खड़े थे। उन लोगों ने प्रभु के क्रोध की शान्ति के लिये प्रह्लाद को उनके पास प्रेषित किया। नृसिंह ने प्रह्लाद को छाती से लगा लिया। इससे उन्हें परम शान्ति मिली। किन्तु फिर भी उनके क्रोध की आग शान्त न हुई।[1]

भयभीत देवगण पहुँचे शङ्कर की शरण में। शङ्कर ने उन्हें आश्वस्त कर वीरभद्र को भेजा नृसिंह को शान्त करने के लिये। वे पहुँचे नृसिंह के पास। सर्वप्रथम वीरभद्र ने प्रशंसापूर्वक उन्हें शान्त करने का प्रयास किया। किन्तु जब वे शान्त नहीं हुए तो शिव ने शरभावतार धारण कर उन्हें बार-बार पराजित कर उनका अहङ्कार विनष्ट कर दिया। वीरभद्र ने नृसिंह की चमड़ी निकाल ली। उसी को शङ्कर धारण करते हैं। तभी से शङ्कर को 'कृत्तिवासा' कहा जाता है।[2]

श्रीमद्भागवत-महापुराण

दैत्य हिरण्यकशिपु का अत्याचार अपनी चरम सीमा पर था। उसने ब्रह्मा से वरदान माँग रक्खा था—'आपके द्वारा रचित किसी भी प्राणी से मेरी मृत्यु न हो। न तो मैं घर के भीतर मरूँ और न बाहर। न रात में मरूँ न दिन में। किसी अस्त्र-शस्त्र से मेरी मौत न हो। न भूमि पर मरूँ और न आकाश में। मनुष्यों तथा जानवरों से भी मेरी मृत्यु न हो। निर्जीव या सजीव से भी मेरा अन्त न हो। सुर, असुर और नागजाति भी मृत्यु का कारण न बने। युद्ध-भूमि में मेरा सामना कोई न कर सके। सारे प्राणियों पर मेरा एकाधिपत्य हो।' फलतः वह निरंकुश होकर त्रिलोकी पर शासन कर रहा था। उसके भाई के हन्ता विष्णु उसके शत्रु थे। उनका विनाश ही इसका लक्ष्य था। अतः यज्ञ-यागादिक क्रियाएँ इसके राज्य में पूर्णतः निषिद्ध थीं। हिरण्यकशिपु के शासनकाल में भूल से भी विष्णु का नाम लेना अपनी मृत्यु का आमन्त्रण था। वह स्वयं ही अपने को सर्वश्रेष्ठ समझता था।

सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची थी। उद्विग्न भयसंत्रस्त देव-मण्डली ने अपना कष्ट नारायण से निवेदित किया। उन्हें आश्वस्त करते हुए नारायण ने कहा—'देवों, मैं असभ्य दैत्य-शिरोमणि की दुष्टता से सुपरिचित हूँ। आप लोग समय की प्रतीक्षा कीजिये। मैं उसकी शान्ति करूँगा। जब हिरण्यकशिपु अपने पुत्र महात्मा प्रह्लाद

---

१. उरसाऽऽलिङ्गयामास तं नृसिंहः कृपानिधिः।
हृदयं शीतलं जातं रुड्ज्वाला न निवर्तिता ॥ शिवमहापुराण, ३/१०/२९

२. वीरभद्रोऽपि भगवान् गणाध्यक्षो महाबलः।
नृसिंहकृत्तिं निष्कृष्य समादाय ययौ गिरिम्।
नृसिंहकृत्तिवसनस्तदाप्रभृति शङ्करः ॥ वही, ३/१२/३५-३६

से वैर करेगा। तब मैं युद्ध में उसका वध करूँगा, भले ही वह वर पाकर प्रबल क्यों न बना हो।' विष्णु का वचन सुनकर आश्वस्त देवमण्डली चली गई।

हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे। प्रह्लाद उन सबमें छोटा था। भगवान् वासुदेव में उसकी स्वाभाविक प्रीति थी, भक्ति थी। कृष्ण की भक्ति से उसका अन्त:करण व्याप्त था। उसका मन सर्वदा कृष्ण के लिए व्याकुल रहता था। पिता हिरण्यकशिपु के लाख मना करने पर भी प्रह्लाद भगवद्भक्ति से विरत न होता था। अत: दैत्यराज ने पुत्र प्रह्लाद का वध करवा कर अपना मार्ग निष्कण्टक बनाना चाहा। उसने प्रह्लाद को मारने के लिये बहुत से उपाय किये। किन्तु उसे सफलता न मिली। प्रह्लाद का मरना तो दूर रहा उसका बाल भी बाँका न हो सका। त्रिलोकीनाथ उसकी रक्षा कर रहे थे। जब चतुर्दिक् उसका पौरुष निष्फल हो गया तब एक दिन क्रोध में अत्युन्मत्त होकर उसने प्रह्लाद से कहा—'मेरे क्रुद्ध हो जाने पर लोकाधिपतियों समेत सारी त्रिलोकी कम्पायमान हो उठती है। किन्तु अरे मूढ! तुम किसके बल पर मेरी आज्ञा का उल्लंघन करते हो ?' प्रह्लाद ने कहा राजन्, मैं जिस ईश्वर का भरोसा करता हूँ वही आपका और सारे बलशालियों का बल है, अवलम्बन है। आप भी असुरभाव का परित्याग कर उन्हीं की शरण ग्रहण कीजिये।

प्रह्लाद के निर्भय वचन को सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोध से लाल हो गया। उसने कोष से तीक्ष्ण तलवार निकाल ली और डॉटते हुए कहा—'स्पष्ट ही अब तुम मरने वाले हो, क्योंकि अब आँय-बाँय-साँय बकना शुरू कर दिये हो। अरे मूढबुद्धि, मृत्यु की गोद में पहुँचे हुए व्यक्ति के वचन विकल (अव्यवस्थित) हो उठते हैं। तुम अभागे ने मेरे अतिरिक्त जिस ईश्वर की बात की है, वह कहाँ है ? यदि तुम कहते हो कि वह सर्वत्र रहने वाला सर्वव्यापी है, तो इस स्तम्भ में क्यों नहीं दिखलाई पड़ रहा है ? बुला तू अपने रक्षक शरणदाता हरि को। अब मैं तेरे शिर को धड़ से अलग कर दे रहा हूँ।' ऐसा कहकर हाथ में नंगी तलवार लिये हुए हिरण्यकशिपु अपने सिंहासन से उछला। सर्वप्रथम उसने स्तम्भ में तलवार (मुष्टि) से जोरदार प्रहार किया। उसकी तलवार अभी स्तम्भ का स्पर्श करती ही कि, उसके पूर्व, उससे गरजते हुए नृ-सिंह भगवान् प्रकट हो गये।

यह न पूरे मानव थे और न जानवर ही। युद्ध करके उन्होंने दैत्यराज को पकड़ लिया। राजभवन की देहली पर बैठ गये और अपनी जाँघों पर उसे लिटाकर वज्रसदृश नखाङ्कुरों से उसके वक्ष:स्थल को विदीर्ण कर दिया। सबके

देखते-ही देखते, अपने पराक्रम से त्रिलोकी को कम्पित करने वाला वह दैत्यशिरोमणि संसार से विदा हो गया। देवों ने प्रसन्नता में भगवान् नृसिंह की दिव्य स्तुतियाँ करके अपनी कृतज्ञता प्रकट की।[1]

अग्निमहापुराण

वराह भगवान् के द्वारा हिरण्याक्ष के मारे जाने पर उसके भाई हिरण्यकशिपु ने देवों को जीतकर स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। उसने यज्ञ के भाग को भी स्वयं भोगना प्रारम्भ कर दिया। सारे देवताओं के अधिकार उसके अधीन थे।

दु:खी देवों ने नारायण की स्तुति की। भगवान् ने नृसिंह का रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध किया। उस समय देव-मण्डली भी भगवान् का अनुवर्तन कर रही थी।[2] दैत्यराज का वध कर देने के अनन्तर श्रीहरि ने स्वर्ग का साम्राज्य और अधिकार देवों को समर्पित कर दिया।

बस इतनी ही स्वल्प नृसिंहावतार की कथा अग्निमहापुराण में वर्णित है।

लिङ्गमहापुराण

हिरण्यकशिपु का बेटा था—प्रह्लाद। वह भगवान् विष्णु का महान् भक्त था। वह जन्म से ही उनकी पूजा किया करता था। नारायण के नाम का कीर्तन और स्मरण उसका सार्वकालिक कार्य था। पुत्र के इस कृत्य से हिरण्यकशिपु सर्वदा जलता रहता था। एक बार उसने प्रह्लाद से कहा—'दुर्बुद्धे, तुम देवों और दानवों के अधिपति मुझे नहीं जानते हो। विष्णु आदि कोई भी देवता मेरी समता नहीं कर सकते। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो मुझसे स्वल्प नारायण को छोड़कर भक्तिपूर्वक सर्वदा मेरी ही आराधना किया करो। पिता की बात को प्रह्लाद ने अनसुनी कर दी। वे सर्वदा नारायण-नारायण बोलते थे और दैत्यबालकों को भी यही बोलने की प्रेरणा दिया करते थे। वे दैत्यकुमारों को निरन्तर अध्यात्म की शिक्षा प्रदान करते थे। हिरण्यकशिपु के समक्ष इन्द्र आदि देवता भी सर्वदा भय से काँपते रहते थे। किन्तु आज उसका अपना ही पुत्र उसे नगण्य समझ रहा था। उसके आदेश की अवहेलना कर रहा था। अत: उसने दैत्यों को आदेश दिया कि वे दुष्पुत्र प्रह्लाद का वध कर दें। दैत्यों ने विविध अस्त्र-शस्त्रों से प्रह्लाद पर प्रहार करना प्रारम्भ किया। परन्तु वे सभी नारायण के प्रभाव से निष्फल हो जाते थे।

प्रह्लाद के उक्त प्रभाव को देखकर हिरण्यकशिपु का गर्व विगलित हो चुका

---

१. श्रीमद्भागवत, सप्तम स्कन्ध, अध्याय- ३-८

२. हिरण्याक्षस्य वै भ्राता हिरण्यकशिपुस्तथा ॥
जितदेवयज्ञभाग: सर्वदेवाधिकारकृत् ।
नारसिंहवपु: कृत्वा तं जघान सुरै: सह ॥ *अग्निमहापुराण, ४/३-४*

था। उसके वध के लिये विष्णु नृसिंह की आकृति धारण कर वहीं आविर्भूत हो गये। उन्होंने प्रह्लाद को सस्नेह निहारा और अधम दानव हिरण्यकशिपु का अपने नखाङ्कुशों से वध कर डाला। उन्होंने उसके बन्धु-बान्धवों का भी वध कर दिया। वे उस समय प्रलयाग्नि की भाँति क्रुद्ध थे। देवों ने उनकी स्तुति कर उन्हें शान्त करना चाहा, किन्तु सब निष्फल रहे। तब आत्मत्राण हेतु देवों ने शङ्कर की शरण ली। उनकी स्तुति की। उनसे अपनी व्यथा की कथा कही।[1]

स्तुति से सन्तुष्ट शङ्कर ने कहा—'आप सब निर्भय रहें। मैं उनका उपशमन करूँगा, वध करूँगा।' इसके बाद देवता निर्भय हो चले गये। शिव ने शरभ का स्वरूप धारण किया और वहाँ पहुँचे जहाँ गर्वोन्मत्त नृसिंह विराजमान थे। शरभ ने नृसिंह के प्राणों का अपहरण कर लिया। इस पर प्रसन्न देवों ने उनकी स्तुति की। फिर तो वे जहाँ से आये थे वहीं चले गये। नृसिंह भी सिंह के स्वरूप का परित्याग कर नर हो वहाँ से प्रस्थान किये।[2]

विशेष—शरभवाली कथा शिवमहापुराण और लिङ्गमहापुराण में कुछ तीव्र साम्प्रदायिक भावना के साथ अङ्कित हुई है। इस प्रकार के कथांश महापुराणों में उस समय जोड़े गये जब साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना अपने चरमोत्कर्ष पर थी।

कूर्ममहापुराण

घटना वैवस्वत मन्वन्तर की है। दिति के दो पुत्र थे—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। इनमें प्रथम, प्रथम था और द्वितीय, द्वितीय । दोनों बल के दर्प से भरपूर थे। हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा से वरों को प्राप्त किया था। उसके अत्याचार से पीडित होकर देव एवं महर्षि-गण ब्रह्मा की शरण में पहुँचे। उनसे अपनी कष्ट-कथा कही। ब्रह्मा देवों को लेकर क्षीरशायी नारायण की शरण में पहुँचे। उनकी दिव्य स्तुति की। क्षीरशायी प्रसन्न हो उठे। उन्होंने आगमन का कारण पूछा। देवताओं ने हिरण्यकशिपु के अत्याचार की कथा कही और यह भी कहा कि आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उसका वध नहीं कर सकता।

नारायण ने देवों की दुःख-गाथा सुनी। उन्होंने तत्काल एक अतिप्रतापी भयानक पुरुष की रचना कर डाली। वह उन्हीं की भाँति चतुर्भुज और शङ्ख, चक्र

---

१. सैहीं समानयन् योनिं बाधते निखिलं जगत् ।
यत्कृत्यमत्र देवेश तत्कुरुष्व भवानिह ॥ १/९६/५४

२. ययौ प्रान्ते नृसिंहस्य गर्वितस्य मृगाशिनः ।
अपहृत्य तदा प्राणान् शरभः सुरपूजितः ।
सिंहात्ततो नरो भूत्वा जगाम च यथाक्रमम् ॥ १/९५/६१-६२

एवं गदा धारण किये हुए था। नारायण ने उसे आदेश दिया—'दैत्यराज हिरण्यकशिपु का बलपूर्वक वध कर शीघ्र यहाँ आओ।'[१]

गरुड पर आरूढ होकर वह देव हिरण्यकशिपु की राजधानी में पहुँचे। दैत्यों ने दैत्यपति से कहा—'प्रतीत होता है, जनार्दन ही भैरव निनाद करते हुए यहाँ आ रहे हैं।' प्रह्लाद आदि अपने चारों पुत्रों के साथ दैत्याधिपति ने उन महापुरुष पर आक्रमण कर दिया। भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। उन महापुरुष ने हिरण्यकशिपु के चारों पुत्रों का पैर पकड़कर दूर फेंक दिया।[२]

महापुरुष के द्वारा पुत्रों की यह दुर्दशा देखकर हिरण्यकशिपु स्वयं सामने आया। वह भी महाबली तो था ही। उसने महापुरुष की छाती पर बड़े वेग से पैर से प्रहार किया। उन्हें महती पीडा हुई। वे गरुड के सहित अदृश्य हो गये और जा पहुँचे वहाँ जहाँ नारायण विराजमान थे। उनसे उन्होंने अपनी वह दुर्दशा कही जो हिरण्यकशिपु ने की थी।[३]

नारायण एक क्षण तक सोचते रहे। फिर उन्होंने धारण किया वह शरीर जो आधा मानव का था और आधा सिंह का। नृसिंह रूप हो वे प्रकट हो गये हिरण्यकशिपु की राजधानी में । नारायण के उस अतितेजस्वी स्वरूप को देखकर दैत्य-समूह किंकर्तव्यविमूढ हो गया। इस स्थिति में हिरण्यकशिपु ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को आदेश दिया—'यह नृसिंह पूर्व में आये हुए पुरुष की अपेक्षा न्यूनशक्तिवाला है। अतः अपने अनुजों के साथ जाकर इसे शीघ्र विनष्ट कर दो।' पिता की आज्ञा का पालन करते हुए प्रह्लाद ने नृसिंह से युद्ध किया। किन्तु वह पराजित हो गये।[४] इसके बाद हिरण्यकशिपु का लघु बन्धु हिरण्याक्ष लड़ने के लिये आया। उसने शङ्कर का ध्यान कर अमोघ पाशुपतास्त्र का प्रयोग किया। किन्तु उस अस्त्र ने नृसिंह का कुछ भी नहीं बिगाड़ा। इस दृश्य को देखकर प्रह्लाद समझ गये कि यह और कोई नहीं साक्षात् नारायण हैं। बस क्या था ? अस्त्रो-शस्त्रों को फेंक कर,

---

१. शङ्खचक्रगदापाणिं तं प्राह गरुडध्वजः ।
हत्वा तं दैत्यराजानं हिरण्यकशिपुं पुनः ॥
इमं देशं समागन्तुं क्षिप्रमर्हसि पौरुषात् । *कूर्ममहापुराण, १/१६/३७-३८*

२. अथाऽसौ चतुरः पुत्रान् महाबाहुर्महाबलः ।
प्रगृह्य पादेषु करैश्चिक्षेप च ननाद च। *वही, १/१६/५०-५१*

३. अदृश्यः प्रययौ तूर्णं यत्र नारायणः प्रभुः ।
गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमखिलं तदा ॥ *वही, १/१६/५३*

४. स तन्नियोगादसुरः प्रह्लादो विष्णुमव्ययम् ।
युयुधे सर्वयत्नेन नरसिंहेन. निर्जितः ॥ *वही, १/१६/५९-६०*

विशुद्ध अन्तःकरण से, वह जा गिरा नृसिंह के चरणों में। श्रद्धासहित शिर से उन्हें प्रणाम किया। उसने भाईयों को, पिता को और हिरण्याक्ष को यह कह कर युद्ध से रोका कि यह साक्षात् नारायण हैं। अतः सभी लोग इनकी शरण ग्रहण करें।[१]

किन्तु हिरण्यकशिपु पुत्र प्रह्लाद की शिक्षा पर ध्यान न देता हुआ जा भिड़ा भगवान् नृसिंह से। क्रुद्ध नृसिंह ने, प्रह्लाद के सामने ही, अपने सुतीक्ष्ण नखों से विदीर्ण कर हिरण्यकशिपु को पृथिवी पर फेंक दिया।[२] बड़े भाई के मरते ही हिरण्याक्ष प्रह्लाद एवं युद्ध-भूमि को छोड़ कर भाग खड़ा हुआ।[३] अनुह्लाद आदि शतशः असुर नृसिंह के शरीर से उद्भूत सिंहों के द्वारा मार डाले गये। तदनन्तर नृसिंह भगवान् अपने स्वरूप को समेट कर परम नारायण रूप में समाहित हो गये।

नृसिंह भगवान् के चले जाने के बाद प्रह्लाद ने पिता जी के स्थान पर अपने चाचा हिरण्याक्ष का सविधि अभिषेक करा दिया। बाद में वाराह भगवान् के द्वारा हिण्याक्ष का वध कर दिये जाने पर प्रह्लाद ने अपने पिता के राज्य का पालन किया। वह भगवान् विष्णु की भक्ति करता था। देवताओं के साथ उसने वैर-भाव का परित्याग कर दिया था। आसुर-भाव का तो लेश भी उसमें न था।

मत्स्यमहापुराण

बात प्राचीन समय की है। आदिदैत्य हिरण्यकशिपु ने घोर तप किया। ब्रह्मा प्रसन्न होकर उससे वर माँगने के लिये कहे। आदिदैत्य ने ब्रह्मा से वरदान माँगा—'देवशिरोमणे, देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस, मनुष्य तथा पिशाच आदि कोई भी मुझे मार न सकें। ऋषि-गण मुझे कभी शाप न दें। अस्त्र, शस्त्र, पर्वत, पादप तथा शुष्क एवम् आर्द्र किसी वस्तु से मेरी मृत्यु न हो। न मैं दिन में मरूँ और न रात्रि में ही। सारे देवों का कार्य मैं अकेले ही करूँ। ब्रह्मा ने सहर्ष इन वरों को उसे प्रदान कर दिया।

वर मिल जाने से दैत्य दर्पित हो उठा। उसने त्रिलोकी को अपने वश में करके सबका उत्पीडन प्रारम्भ किया। भयभीत देवगण विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—'देवों, भय मत करो। देव एवम् इन्द्र आदि के लिये अवध्य उस दैत्याधिपति का वध मैं स्वयं करूँगा।' विष्णु के वचन

---

१. निवार्य पितरं भ्रातॄन् हिरण्याक्षं तदाब्रवीत्।
गच्छध्वमेनं शरणं विष्णुमव्यक्तमव्ययम्॥ *कूर्ममहापुराण,* १/१६/६५-६८

२. संरक्तनयनोऽनन्तो हिरण्यनयनाग्रजम्।
नखैर्विदारयामास प्रह्लादस्यैव पश्यतः॥ *कूर्ममहापुराण,* १/१६/७३-७४

३. हते हिरण्यकशिपौ हिरण्याक्षो महाबलः।
विसृज्य पुत्रं प्रह्लादं दुद्रुवे भयविह्वलः॥ *वही,* १/१६/७४-७५

से आश्वस्त होकर देव-मण्डली निज-निज धाम पधारी। भगवान् विष्णु ने हिरण्यकशिपु के संहार का संकल्प मन में लिया। फिर वे ओंकार को सहायक बनाकर पहुँच गये हिरण्यकशिपु की राज-सभा में।[1] यह राज-सभा विश्वकर्मा के द्वारा बनाई गई थी।

सभा के मध्य में हिरण्यकशिपु विराजमान था। सुन्दरियाँ एवं दैत्य-वीर उसे घेरे हुए थे। इसी रूप में उसे नृसिंह ने देखा।[2]

दैत्याधिपति के साथ दैत्य-सभासदों ने भी अद्भुत तेज से सम्पन्न नृहरि को देखा। उनमें दैत्यराज का बेटा प्रह्लाद भी था। उसने अपनी दिव्य दृष्टि से समागत देव को पहचान लिया। उसने अपने पिताजी से कहा—'सामने उपस्थित इस नृसिंह शरीर में मैं सकल त्रिलोकी को विराजमान देख रहा हूँ। इसे देखकर मेरा मन संशयग्रस्त हो रहा है। कहीं यह घोर रूप दैत्यों के विनाश के लिये न आया हो।'[3]

हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद के वचन को सुना और ध्यान से नृसिंह को देख कर असुरों को आदेश दिया—'इस अपूर्व जंगली जानवर को बाँध लो। यदि इसमें किसी प्रकार का संशय हो तो इसका वध कर डालो।'[4] असुर आक्रमण करने लगे। नृसिंह ने क्षण भर में दैत्यों के सकल प्रयासों को निष्फल कर सारी सभा को रौंद डाला। स्वयं दैत्याधिपति युद्धार्थ नृसिंह के समक्ष उपस्थित हुआ। उसने प्रबल, प्रबलतर और प्रबलतम अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार किया। किन्तु वे सभी नृसिंह के तेज से वैसे ही भस्म हो गये जैसे प्रदीप्त अग्नि में आहुतियाँ झटिति भस्म हो जाती हैं।[5] हिरण्यकशिपु की माया भी मायापति के सामने निष्फल सिद्ध हुई।

अन्त में नृसिंह ने ओंशब्द का उच्चारण करते हुए उछल कर हिरण्यकशिपु को पकड़ लिया और अपने सुतीक्ष्ण नखों से विदीर्ण कर उसे भूतल पर फेंक दिया।

---

१. ततोऽपश्यत् विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम् ।
सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम् ॥ *मत्स्यमहापुराण, १६०/३८*

२. कनकविमलहारविभूषिताङ्गं दितितनयं स मृगाधिपो ददर्श ।
दिवसकरमहाप्रभालसं तं दितिजसहस्रशतैर्निषेव्यमाणम् ॥ *मत्स्यमहापुराण, १६०/८८*

३. अव्यक्तप्रभवं दिव्यं किमिदं रूपमागतम् ।
दैत्यान्तकरणं घोरं संशतीव मनो मम ॥ *वही, १६२/५*

४. मृगेन्द्रो गृह्यतामेष अपूर्वं सत्त्वमास्थितः ।
यदि वा संशयं कश्चिद् बध्यतां वनगोचरः ॥ *वही, १६१/१५*

५. एतान्यस्त्राणि दिव्यानि हिरण्यकशिपुस्तदा ।
असृजन्नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिवाहुतिम् ॥ *वही, १६१/२८*

ब्रह्माण्डमहापुराण

कश्यप की पत्नी दिति से दो पुत्र और एक कन्या हुई। पुत्र थे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। कन्या का नाम था—सिंहिका। सिंहिका का विवाह विप्रचित्ति से हुआ था। यह राहु की जननी थी।

हिरण्यकशिपु ने चिरकाल तक दुष्कर तप किया। सन्तुष्ट हुए ब्रह्मा से उसने वर माँगा—'सबकी अपेक्षा मैं अमर बन जाऊँ, आप की सृष्टि का कोई भी प्राणी हमारा वध न कर सके। देवताओं को जीतकर उनका अधिकार मैं स्वयं ग्रहण कर लूँ। मैं न गीले अस्त्र-शस्त्रों से मरूँ और न सूखे। मैं न दिन में मरूँ और न रात्रि में ही' आदि, आदि। ब्रह्मा वर देने के लिये विवश थे। अत: उन्होंने 'तथास्तु' कहकर उसकी बात स्वीकार कर ली। फलत: हिरण्यकशिपु दूसरे ब्रह्मा की भाँति प्रभावशाली बन बैठा। उसके लिये प्रसिद्धि थी—'राजा हिरण्यकशिपु जिस-जिस दिशा की ओर दृष्टि फेरता, ऋषि, महर्षि और देवता—सभी उस दिशा को प्रणाम करते थे।'[१]

जब हिरण्यकशिपु का अत्याचार अपनी चरम चीमा पर पहुँच गया तब भगवान् विष्णु नरसिंह का रूप धारण कर उसके पास आये। उन्होंने उस महाबलशाली दैत्य से बाहु-युद्ध किया और अन्त में उसे नखों से विदीर्ण कर मार डाला। नख न तो आर्द्र होते हैं और न शुष्क ही।[२]

हिरण्यकशिपु के साथ बहुत से दैत्य भी मारे गये। उनमें हिरण्याक्ष के पाँच पुत्र शम्बर, शकुनि आदि प्रमुख थे।

●

१. हिरण्यकशिपू राजा यां यामाशां निरैक्षत।
तस्यै तस्यै तदा देवा नमश्चक्रुर्महर्षिभि: ॥ ब्रह्माण्डमहापुराण, ३/३/२५

२. तत: स बाहुयुद्धेन दैत्येन्द्रं तं महाबलम्।
नखैर्बिभेद संक्रुद्धो नार्द्रा: शुष्का नखा इति ॥ वही, ३/३/२९

परशुराम-कथा

ब्रह्ममहापुराण

चन्द्रवंश में प्रसिद्ध प्रथम राजा थे—पुरूरवा। प्रयाग उनकी राजधानी थी। इसी वंश में आगे चलकर एक राजा हुए—कुश। कुश के चार पुत्रों में कुशिक सबसे बड़े थे। पह्लवों ने कुशिक को पराजित कर दिया था। कुशिक तप में निरत हुए। कुशिक के पुत्र गाधि हुए। यह इन्द्र के अंश से उत्पन्न हुए थे। गाधि की एक बेटी थी—'सत्यवती'। उसका विवाह शुक्राचार्य के पुत्र ऋचीक के साथ हुआ था। एक बार ऋषि ऋचीक ने पुत्रोत्पत्ति के लिये दो चरु तैयार किये। एक अपनी पत्नी सत्यवती के लिये था और दूसरा अपनी सास पौरुकुत्सा के लिये। एक चरु ब्राह्मण के गुणों से संस्कारित था तो दूसरा क्षात्र तेज से भावित था। ऋचीक ठीक से समझाते हुए दोनों चरु अपनी पत्नी को पकड़ा कर तपस्या करने चले गये। इसी समय तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से, अपनी पत्नी के साथ, निकले हुए राजा गाधि बेटी से मिलने के लिये ऋचीक के आश्रम पर गये। सत्यवती ने बड़ी प्रसन्नता से दोनों चरु माता को दिखलाया। माता ने बेटी का चरु स्वयं खा लिया और अपना बेटी को खिला दिया।[१]

सास की धूर्तता और चरु-परिवर्तन की बात जब ऋचीक को ज्ञात हुई तो उन्होंने अपनी अर्धाङ्गिनी से कहा—'देवि, तुमने बहुत अनुचित किया। तुम अपनी माता के द्वारा ठग ली गई। तुम्हारा पुत्र क्षत्रियगुणों से भरपूर और क्रूरकर्मा होगा एवं तुम्हारा भाई ब्राह्मण-गुणों से अलङ्कृत तथा महान् तपोधन होगा।' पत्नी ने जब बार-बार विनती की तब ऋचीक ने कहा—'ठीक है, चरु का प्रभाव मिथ्या होने वाला नहीं है। किन्तु इसका प्रभाव तुम्हारे पुत्र पर न होकर पौत्र पर होगा। पुत्र ब्राह्मण-संस्कारों से संस्कारित और पौत्र क्षत्रियोचित कर्मों से क्रूर होगा।

समय आने पर सत्यवती ने एक पुत्र का प्रसव किया। उसका नाम रक्खा गया—जमदग्नि। जमदग्नि का विवाह सूर्यवंशीय राजा रेणु की बेटी रेणुका से हुआ था। इसी रेणुका के पुत्र के रूप में जन्म लिया भगवान् जामदग्न्य परशुराम ने। यह बड़े दारुण स्वभाव के थे। इन्हें सारी विद्याएँ हस्तगत थीं। धनुर्वेद के यह

---

१. चरुव्यत्यास का कारण माता का अज्ञान और धूर्त बुद्धि दोनों था। ये दोनों बातें इस पुराण में एक साथ एक ही अध्याय में वर्णित की गई हैं। देखिये-*ब्रह्ममहापुराण*, ८/३६-३९

पारङ्गत विद्वान् थे।[१] इन्होंने अपने पिता के वध का स्मरण करके[२] भू-मण्डल से दुष्ट क्षत्रियों का कई बार विनाश किया था। दूसरी ओर गाधि ने जिस पुत्र को पैदा किया वह कुशिकवंश के यश की वृद्धि करने वाला और तप, विद्या तथा सत्त्व-गुण का आकर था।

हैहय राजा कार्तवीर्य अर्जुन योगिराज दत्तात्रेय का भक्त शिष्य था। उनका वरदान उसे प्राप्त था। उसके सहस्र बाहु थे। अत: वह युद्ध-भूमि में शत्रुओं के लिये अजेय था। अपने बाहु-बल के कारण वह अभिमानी और अत्याचारी बन बैठा था। भृगुनन्दन भगवान् परशुराम ने उसकी सारी भुजाओं को अपने चमकते-दमकते परशु से काट कर ससैन्य उसका वध कर डाला था। उस समय सारी पृथिवी करोड़ों अत्याचारी क्षत्रियों से व्याप्त थी। अत: परशुराम ने सकल-भू-मण्डल को इक्कीस बार क्षत्रियों से विहीन कर डाला।[३]

इतना महान् नर-संहार करने के अनन्तर पापप्रक्षालन के लिये परशुराम ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। उसमें उन्होंने प्रभूत दान के अनन्तर सकल पृथिवी कश्यप को प्रदान कर दी।[४]

संसार के मङ्गल के लिये आज भी भगवान् परशुराम महेन्द्र पर्वत पर घोर तप में संलग्न हैं।[५] परशुराम भी भगवान् विष्णु के अवतार कहे जाते हैं। यह महर्षि जमदग्नि के पुत्र हैं। अत: इन्हें 'जामदग्न्य' कहा जाता है।

पद्ममहापुराण

महर्षि जमदग्नि भृगुवंशी महात्मा थे। देवराज इन्द्र ने उनकी तपस्या से प्रसन्न हो उन्हें सुरभि गौ प्रदान की थी। यह गौ सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली थी। जमदग्नि ने राजा रेणुक की सुन्दरी कन्या रेणुका के साथ सविधि विवाह किया था। महर्षि जमदग्नि को इसी रेणुका से महातेजस्वी एक पुत्र पैदा

---

१. आर्चीको जनयामास जामदग्न्यं सुदारुणम् ।
सर्वविद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ।
रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥ *ब्रह्ममहापुराण, ८/५२/५३*

२. जघान क्षत्रियान् राम: पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ *वही, ७२/३९*

३. कीर्णा क्षत्रियकोटीभिर्मेरुन्दरभूषणा ।
त्रि:सप्तकृत्व: पृथिवी तेन नि:क्षत्रिया कृता ॥ *वही, १०४/११०*

४. यस्मिन् यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दन: ।
मारीचाय ददौ प्रीत: कश्यपाय वसुंधराम् ॥ *वही, १०४/११२*

५. अद्यापि च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दन: ।
चरमाणस्तपो घोरं जामदग्न्य: पुन: प्रभु: ॥
आस्ते वै देववच्छ्रीमान् महेन्द्रे पर्वतोत्तमे । *वही, १०४/११४-११५*

हुआ। यह भगवान् विष्णु के अंश के अंश से प्रकट हुआ था। पितामह भृगु ने महान् पराक्रमी उस बालक का नाम रक्खा—'राम'। जमदग्नि का पुत्र होने के कारण उसे 'जामदग्न्य' भी कहा जाता था।

राम धीरे-धीरे बड़े हुए। उपनयन संस्कार के पश्चात् उन्होंने सब विद्याओं में प्रवीणता प्राप्त कर ली। वे विष्णु के उपासक महान् तपस्वी थे। विष्णु ने प्रसन्न हो उन्हें अपना परशु, वैष्णव धनुष और अनेक दिव्यास्त्र प्रदान करके कहा था—'मैं तुम्हें अपनी उत्तम शक्ति से सम्पन्न कर रहा हूँ। मेरी शक्ति से आविष्ट होकर तुम पृथिवी के भारभूत दुष्ट राजाओं का वध करो। इससे देवताओं का महान् हित होगा। उन्हें मारकर समुद्रपर्यन्त सारी पृथिवी अपने अधिकार में कर लो। धर्मपूर्वक इसका पालन करो। अन्त में मेरे परमपद के भागी बनोगे।'

एक समय हैहय-कुल-भूषण 'अर्जुन' सब राष्ट्रों को जीतकर अपनी विशाल सेना के साथ मुनि जमदग्नि के आश्रम पर पधारे। उन्होंने बहुत-सी वस्तुएँ प्रदान कर मुनि का सम्मान किया। मुनि ने भी गौ सुरभि के प्रताप एवं प्रसाद सेससैन्य राजा का अभूतपूर्व सत्कार किया। राजा को उस गौ की शक्ति का चमत्कार देखकर बड़ा कौतूहल और आश्चर्य हुआ। अतः उन्होंने महर्षि जमदग्नि से उस गौ की याचना की।

जमदग्नि ने हैहयराज की उस याचना को अस्वीकार कर दिया। फिर तो राजा ने बल का प्रयोग किया और उस गौ का हरण कर लिया। इस स्थिति को देखकर सुरभि के क्रोध की सीमा न रही। उसने सींगों से राजा के सब सैनिकों को मार डाला। फिर वह स्वयं अन्तर्धान होकर क्षण भर में इन्द्र के पास जा पहुँची। इधर अपनी सेना का सर्वनाश देखकर राजा अर्जुन क्रोध से उन्मत्त हो उठा। उसने मुष्टिका-प्रहारों से मार-मार कर जमदग्नि का वध कर डाला। इसके बाद वह अपनी नगरी को चला गया।

यह एक संयोग की बात थी। इसी समय राम, परशु मिल जाने से अब परशुराम, अपने पिता जमदग्नि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने पिता को मारा गया देखा। वे क्रोध से मूर्च्छित हो उठे। घटना को सुनने के बाद उन्होंने प्रतिज्ञा की—'पृथिवी को क्षत्रिय-विहीन कर डालूँगा।' फिर उन्होंने अपना परशु उठाया और हैहयराज के नगर में अकेले ही जा धमके। उन्होंने राजा को युद्ध के लिये ललकारा। भयङ्कर संग्राम का प्रारम्भ हुआ। अन्त में हैहय की सेना का संहार कर परशुराम ने उसे भी मृत्यु के घाट उतार दिया।

इस प्रकार सहस्रार्जुन (सहस्रबाहु वाले अर्जुन) का संहार करने के अनन्तर

महान् प्रतापी परशुरामजी ने कुपित होकर सम्पूर्ण राजाओं का संहार कर दिया। एकमात्र राजा इक्ष्वाकु के महान् कुल पर उन्होंने हाथ नहीं उठाया। इसका कारण था, एक तो वह नाना का कुल था, दूसरे माता रेणुका ने इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रियों को मारने की मनाही कर दी थी। इसलिये उक्त वंश की उन्होंने रक्षा की।

इस प्रकार मही-मण्डल को क्षत्रिय-विहीन बनाकर प्रतापी परशुरामजी ने महान् यज्ञ अश्वमेध का आयोजन किया। उसमें उन्होंने सप्तद्वीपा वसुमती का ब्रह्मणों को दान कर डाला। तदनन्तर वे नर-नारायण के आश्रम में तपस्यार्थ चले गये। वे भगवान् विष्णु की शक्ति आवेशावतार थे। अतः शक्ति के आवेश से उन्होंने जो कुछ किया, उसकी उपासना नहीं करनी चाहिये।

भगवद्भक्त महात्माओं तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिये भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्ण के अवतार ही उपासना के योग्य हैं, क्योंकि वे अपने ईश्वरीय गुणों से परिपूर्ण हैं और उपासना करने पर मनुष्यों को मोक्ष प्रदान करने वाले हैं।[१]

श्रीमद्भागवतमहापुराण

चन्द्रवंश में क्षत्रिय गाधि का जन्म हुआ था। यह कुशाम्बु के बेटे थे। गाधि की एक बेटी थी। उसका नाम था—'सत्यवती' । महर्षि ऋचीक ने गाधि से उनकी कन्या को माँगा। वे 'सत्यवती' से विवाह करने के इच्छुक थे। फलतः गाधि ने अपनी बेटी का विवाह ऋचीक मुनि से कर दिया। सत्यवती को कोई भाई नहीं था। अतः गाधि की पत्नी ने ऋचीक से एक बेटे की प्रार्थना की। उन्होंने सास की प्रार्थना स्वीकार करके दो चरु तैयार किया—एक सास के लिये दूसरा अपनी पत्नी के लिये। चरु तैयार करके मुनि स्नान करने के लिये चले गये। इसी बीच सत्यवती की माता ने बेटी से अपना चरु माँगा। ऋचीक की पत्नी ने अपने लिये तैयार किये गये चरु को श्रेष्ठ समझकर माता को दे दिया और माता के लिये तैयार किये गये चरु को स्वयं खा लिया । जब मुनि ऋचीक को इस बात का पता लगा तो उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—'तुमने बड़ा अनर्थ किया। चरु के बदलने का परिणाम यह होगा कि तुम्हारा बेटा भयङ्कर दण्डधर होगा और तुम्हारा भाई ब्रह्मवेत्ताओं का शिरोमणि बनेगा।' सत्यवती ने पतिदेव से प्रार्थना की कि आप ऐसी कृपा करें कि मेरा बेटा भयङ्कर दण्डधर न बने। पत्नी की प्रार्थना पर पिघल कर मुनि ने कहा—'ठीक है। तेरा पुत्र तो दण्डधर न होगा, किन्तु पौत्र अवश्य भीषण दण्डधर योद्धा हेगा। समय आने पर सत्यवती ने पुत्र का प्रसव किया। ऋषि ऋचीक ने अपने बेटे का नाम रक्खा—'जमदग्नि'। जमदग्नि ने रेणु की पुत्री रेणुका से विवाह किया। रेणुका से उनके कई पुत्र हुए। इनमें सबसे छोटे बेटे

१. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड

का नाम था 'राम' । यह वासुदेव के अंश थे। इन्होंने ही हैहय-कुल का विध्वंस किया था। कहा जाता है कि राम (परशुराम) ने इक्कीस बार भूमण्डल को क्षत्रिय-विहीन बना डाला था। उस समय के क्षत्रिय पृथ्वी के भार बन गये थे। वे ब्राह्मणों के विद्वेषी थे। सत्त्वगुण का उन लोगों ने परित्याग कर दिया था। अत: छोटा-सा भी अपराध कर देने पर परशुराम उनका वध कर देते थे।

एक बार क्षत्रिय-शिरोमणि, दत्तात्रेय का प्रिय शिष्य, अर्जुन (सहस्रार्जुन) वन में आखेट के लिये विचरण कर रहा था। उसी क्रम में उसने महर्षि दमदग्नि के आश्रम में प्रवेश किया। तपोधन जमदग्नि ने अपनी कामधेनु के प्रभाव से सेना-परिच्छद–सहित राजा का भव्य दिव्य स्वागत सत्कार किया । अपने ही ऐश्वर्य का अतिक्रमण करने वाले मुनि के इस वैभव को सहस्रार्जुन बर्दास्त न कर सका। उसने अपने सैनिकों से हठात् मुनि की गाय कामधेनु का हरण करवा लिया। गाय चिल्ला रही थी। आश्रम से जाना नहीं चाहती थी । किन्तु सहस्रार्जुन के सैनिक बछड़े के सहित गाय को बलात् माहिष्मती लाये। माहिष्मती सहस्रार्जुन की राजधानी थी। गाय लेकर सहस्रार्जुन के चले जाने पर परशुराम आश्रम में आये। उसकी दुष्टता की गाथा को उन्होंने सुना। सुनते ही परशुराम, आहत सर्प की भाँति, आग-बबूला हो उठे। उनके क्रोध का पारावार न रहा। उन्होंने अपने घोर परशु एवं धनुष-बाण को उठाया और उस दुष्ट राजा का पीछा करते हुए माहिष्मती की ओर दौड़े। सहस्रार्जुन ने अपनी राजधानी में झपट कर प्रवेश करते हुए वीरवर परशुराम को देखा। वे अकेले थे। उनका सामना करने के लिये सहस्रार्जुन ने अपनी जगत्प्रसिद्ध सात अक्षौहिणी सेना भेज दी। परशुराम ने शीघ्र ही सारी सेना का विनाश कर डाला। इस दृश्य को देखकर सहस्रार्जुन युद्ध करने के लिये स्वयं बाहर आया। दोनों वीरों में भीषण संग्राम का समारम्भ हुआ। झंझावात के समान परशुराम के सम्मुख सहस्रार्जुन व्यजन का पवन प्रतीत हो रहा था। मुनि ने राजा की सारी भुजाओं को, कदली की तरह, काट कर उसके सिर को धड़ से पृथक् कर दिया। पिता के मारे जाने पर सहस्रार्जुन के सारे पुत्र, गीदड़ की भाँति, भयभीत होकर भाग निकले। परशुराम गाय को आश्रम में लाये। उन्होंने अपने पिता और भाइयों से युद्ध के वृत्तान्त के साथ सहस्रार्जुन के समर-भूमि में वध की बात बतलाई।

राजा के वध की बात को सुनकर पिता जमदग्नि प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने कहा—'क्षमा ब्राह्मण का सबसे बड़ा गुण है। ब्राह्मण को क्षमाशील होना चाहिये। राजा सर्वदेवमय होता है। अत: राम, तुमने वध करके उचित नहीं किया। इसलिये

पाप का मार्जन करने के लिये नारायण का ध्यान करते हुए तुम तीर्थों का भ्रमण करो।' परशुराम ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया। उन्होंने पूरे एक वर्ष तक सकल पृथिवी के तीर्थों का सेवन किया और फिर आश्रम में आये।

परशुराम की माता का नाम रेणुका था। एक बार रेणुका जल लेने के लिये नदी में गई। वहाँ उसने गन्धर्वराज चित्ररथ को अप्सराओं के साथ जलक्रीडा करते हुए देखा। चित्ररथ के साथ विहार करने की स्पृहा रेणुका के मन में भी अङ्कुरित हुई। मुनि की होमबेला का अतिक्रमण हो रहा है—इसका भी स्मरण उसे न रहा। जब उसे इस बात का ध्यान आया तो जल लेकर जल्दी-जल्दी आश्रम पहुँची और विलम्ब के लिये पतिदेव से क्षमा-याचना की। पत्नी के मानसिक व्यभिचार को ज्ञात कर मुनि कुपित हो उठे । उन्होंने अपने बेटों से कहा—'पुत्रों, इस पापिनी का वध कर डालो।' किन्तु बेटों ने उनके आदेश का पालन नहीं किया। फिर जमदग्नि ने परशुराम से माता के सहित भाइयों के वध के लिये कहा। परशुराम ने पिता के आदेश का अविकल पालन किया। पिता प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कहा—'बेटा, वरदान माँगो।' परशुराम ने वरदान माँगा—'माताजी के सहित मेरे सभी भाई जीवित हो जाँय और उन्हें इसकी स्मृति न हो कि मैंने उनका वध किया है।' ठीक है, ऐसा ही होगा—पिता के यह कहते ही वे सभी जीवित हो उठे। उन्हें प्रतीत हो रहा था कि जैसे वे सभी सोकर उठे हों। परशुराम पिता के तप के इस प्रभाव से परिचित थे। यही कारण था कि पिता के आदेश देते ही उन्होंने परिवारजनों का वध कर डाला था ।

परशुराम ने सहस्रार्जुन का वध कर दिया था। इसलिये उसके पुत्र क्रुद्ध थे। वे परशुराम से बदला लेना चाहते थे। अतः एक बार जब भाइयों के सहित परशुराम वन में गये हुए थे तब अवसर देखकर वे जमदग्नि के आश्रम में प्रवेश किये। उस समय जमदग्नि यज्ञशाला में भगवान् का ध्यान कर रहे थे। उन दुष्टों ने उसी अवस्था में उनका शिर काट लिया और उसे अपने साथ लेते गये। रेणुका के करुण विलाप का भी प्रभाव उन पर न पड़ा। परशुराम जब जङ्गल से लौटे तो उन्होंने विलाप करती हुई माता से सारा वृत्तान्त सुना। उनके शोक का पारावार न रहा। पिता के शव को परशुराम ने भाइयों के पास रख दिया। दुष्ट क्षत्रियों के विनाश का अकल्प संकल्प उनके मन में उदित हुआ। उन्होंने अपना कठोर कुठार हाथ में लिया और फिर एक बार माहिष्मती को क्षत्रियविहीन बनाने के लिये अकेले ही चल पड़े। वहाँ इन्होंने ब्राह्मण के वध से निःश्रीक सहस्रार्जुन के पुत्रों का विध्वंस ही कर डाला। उनके शिरों को काट-काट कर वहाँ एक विशाल पर्वत

ही तैयार कर दिया। परशुराम ने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियों से विहीन बना डाला। माहिष्मती से पिता के कटे शिर को लाकर, उसे शरीर से जोड़कर, परशुराम ने उन्हें जीवित कर सप्तर्षि-मण्डल में स्थापित कर दिया। फिर उन्होंने कई यज्ञों के द्वारा भगवान् यज्ञ-पुरुष की समाराधना की और समूची पृथिवी ब्राह्मणों को दान में दे दी। परशुराम आज भी महेन्द्र आदि पर्वतों पर, शान्त होकर, तप में निरत हैं। इस प्रकार भगवान् नारायण ने ही परशुराम के रूप में, भृगुवंश में, अवतार लेकर पृथिवी के भारभूत राजाओं का कई बार संहार किया और पृथिवी के भार को हल्का किया।[१]

अग्निमहापुराण

एक समय क्षत्रिय निरङ्कुश और उद्धत हो गये थे। पृथिवी उनके भार से पीडित थी। अत: देवों और विप्रों की रक्षा करने वाले श्रीहरि ने शान्ति की स्थापना हेतु जमदग्नि की धर्मपत्नी रेणुका की कुक्षि से जन्म लिया। उन भार्गवकुल-भूषण का नाम था—राम। वे शस्त्र-विद्या के पारगामी योद्धा थे।

उस समय दत्तात्रेय का कृपापात्र कार्तवीर्य राजा था। उसकी सहस्त्रभुजायें थीं। उसका यथार्थ नाम था—अर्जुन। एक समय वह आखेट के लिये जङ्गल में गया। इतस्तत: परिभ्रमण से श्रान्त होकर वह मुनि जमदग्नि के आश्रम के सन्निकट विश्राम कर रहा था। मुनि ने राजा होने के कारण उसे भोजन के लिये आमन्त्रित किया।

जमदग्नि के पास एक गाय थी। वह कामधेनु थी। कल्पवृक्ष के गुण उसमें विद्यमान थे। उसी के प्रभाव से मुनि ने सैन्य-समेत राजा के भोजन का प्रबन्ध किया। कामधेनु के अद्भुत प्रभाव को देखकर राजा ने मुनि से उसकी प्रार्थना की। मुनि ने उसकी याचना अस्वीकृत कर दी। फिर तो उसने बलपूर्वक गाय का हरण कर लिया। जब इस बात का पता राम (परशुराम) को चला तो उन्होंने समर-भूमि में अपने परशु से उसका शिर काट कर गिरा दिया और कामधेनु को लेकर आश्रम पर लौट आये।

राम जब वन में गये हुए थे तब सहस्रार्जुन के पुत्रों ने आकर जमदग्नि का शिर काट डाला। आश्रम पर लौट कर जब उन्होंने अपने पिता की यह दशा देखी तो उनके क्रोध का पारावार न रहा। फलस्वरूप उन्होंने इक्कीस बार अखिल भू-मण्डल के क्षत्रियों का विनाश कर डाला। इसी क्रम में उन्होंने कुरुक्षेत्र में पाँच कुण्डों का निर्माण कर पितरों का सन्तर्पण किया। अन्त में कश्यप को सकल

---

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण, नवमस्कन्ध, अध्याय- १५-१६

पृथिवी का दान कर तप करने के लिये महेन्द्र पर्वत पर चले गये और वे वहाँ आज भी विराजमान हैं।[१]

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

एक समय राजा कार्तवीर्य आखेट के प्रसङ्ग से जंगल में गया। वहाँ मुनि जमदग्नि ने अपनी गौ कामधेनु के प्रभाव से, सैन्य-सहित राजा का अद्भुत स्वागत किया। उस स्वागत-सत्कार को देखकर राजा आश्चर्य-चकित हो उठा। जब उसे यह पता चला कि मुनि के सारे वैभव का मूल एक गौ है, तो उसने मुनि को सादर अपने पास बुलाकर उनसे उस कामधेनु की सविनय याचना की। मुनि ने निर्भय हो कामधेनु देना अस्वीकार कर दिया। बलात् गौ का हरण करने के लिये उद्यत राजा की समस्त सैन्य-शक्ति को कामधेनु के द्वारा उत्पन्न सेना ने विनष्ट कर दिया । राजा और मुनि के भीषण संग्राम को ब्रह्मा ने आकर शान्त कर दिया। फलतः राजा अपनी राजधानी को चला गया। मुनिवर जमदग्नि प्रसन्न हो आश्रम में पधारे।

कार्तवीर्य प्रतिशोध की भावना से जल रहा था। उसने बार-बार महर्षि जमदग्नि पर आक्रमण किया और अन्त में उनका वध भी कर डाला। ऋषिपत्नी रेणुका विलाप करने लगी। उसी समय परशुराम पुष्कर क्षेत्र से वहाँ पधारे। सारी बातें सुनने के बाद भार्गव परशुराम ने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रिय-विहीन करने की प्रतिज्ञा की और राजा कार्तवीर्यार्जुन के वध करने का प्रण भी कर लिया। अपने पूर्वज महर्षि भृगु के समझाने-बुझाने के बाद, भाइयों के साथ, परशुराम ने पिता का दाहसंस्कार आदि कृत्य सम्पन्न किया। जमदग्निपत्नी रेणुका पति के साथ चिता में सती हो गई।

ब्रह्मा के उपदेश से परशुराम भगवान् शङ्कर की शरण में गये। शङ्कर ने कृपापूर्वक उन्हें मन्त्र और कृष्णकवच का उपदेश दिया। परशुराम ने पुष्कर क्षेत्र में तप कर सिद्धि प्राप्त की। पुनः उन्होंने कार्तवीर्य के ऊपर आक्रमण किया। कार्तवीर्य ने भी पूर्ण तैयारी के साथ उनका सामना किया। उसकी सागर-सी लहराती सेना में देश-देश के प्रसिद्ध वीर क्षत्रिय विराजमान थे। भाइयों के साथ युद्ध करते हुए परशुराम ने उन सबका वध कर डाला। अन्त में कार्तवीर्य और परशुराम का महाभयङ्कर युद्ध हुआ। इस युद्ध में परशुराम ने श्रीहरि का स्मरण करते हुए ब्रह्मास्त्र द्वारा राजा के समस्त सैन्य का विनाश कर पाशुपतास्त्र का

---

१. त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं निःक्षत्रामकरोद् विभुः ।
कुरुक्षेत्रे पञ्च कुण्डान् कृत्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् ।
कश्यपाय महीं दत्वा महेन्द्रे पर्वते स्थितः ॥ *अग्निमहापुराण, ४/१९-२०*

प्रयोग करके राजा की जीवन-लीला समाप्त कर दी। इसी प्रकार परशुराम ने अपने विद्या-गुरु शिव जी का स्मरण करते हुए खेल-ही-खेल में क्रमशः इक्कीस बार समस्त भूमण्डल को राजाओं से रहित बना डाला। परशुराम ने अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिये क्षत्रियों के गर्भस्थ तथा माता की गोद में खेलने वाले शिशुओं का, तरुणों तथा वृद्धों का भी संहार कर डाला।

इस प्रकार कार्तवीर्य भक्ति के प्रभाव से गोलोक में श्रीकृष्ण के सन्निकट चला गया और परशुराम श्रीहरि का स्मरण करते हुए अपने आश्रम को लौट गये। महेश्वर ने इक्कीस बार पृथिवी को राजाओं से रहित तथा परशुराम को परशु (फरसे) द्वारा क्रीडा करते देखकर उनका नाम परशुराम रख दिया।

कार्तवीर्य का विध्वंस कर परशुराम सपरिवार शिवजी का दर्शन करने के लिये कैलास पधारे। जिस समय वीरवर परशुराम शिवजी के प्रासाद में प्रवेश कर रहे थे उस समय द्वार पर विराजमान गणेश ने उन्हें रोक कर कहा—'भाई, क्षण भर के लिये रुकिये। सम्प्रति महादेव निद्रा के वशीभूत होकर शयन कर रहे हैं। मैं क्षण भर में उन ईश्वर की आज्ञा लेकर यहाँ आता हूँ और फिर आप को साथ लिवा ले चलूँगा। अतः इस समय रुक जाइये।'

गणेश की बात सुनकर शिव-दर्शन के लिये आतुर परशुराम ने आग्रह करके उनसे कहा—'भाई, मैं ईश्वर को प्रणाम करने के लिये अन्तःपुर में जाऊँगा और भक्तिपूर्वक माता पार्वती को नमस्कार करके शीघ्र ही घर को लौट जाऊँगा। जिस परमेश्वर से मैंने विविध-विध विद्याओं और बहुविध शस्त्रों को प्राप्त किया है, उन्हें प्रणाम पूर्वक देखना चाहता हूँ।' परशुराम के आग्रह को सुनकर गणेश ने उन्हें समझाते हुए कहा कि 'इस समय भगवान् शङ्कर एवं माता जी अन्तःपुर में हैं। अतः आपको वहाँ नहीं जाना चाहिये।' किन्तु परशुराम जी हठ करते ही रहे । उन्होंने अनेक युक्तियों के द्वारा अपना अन्दर जाना निर्दोष बतलाया। इस प्रकार दोनों में परस्पर वाद-विवाद होता रहा। गणेश जी विनयपूर्वक ही परशुराम को रोकते रहे। पर जब परशुराम जी बलपूर्वक जाना चाहे तो गणेश जी ने रोक दिया। फिर क्या था, उन दोनों में परस्पर वाग्युद्ध और करताडन होने लगा। अन्त में परशुराम ने गणेश जी पर अपना परशु उठा लिया। इस स्थिति को देखकर कार्तिकेय जी बीच में आकर परशुराम जी को समझाये। परशुराम जी ने कुठार प्रहार तो नहीं किया किन्तु उन्होंने गणेशजी को धक्का दे दिया। वे गिर पड़े। फिर उठकर उन्होंने परशुरामजी को फटकारा। इस पर परशुराम जी ने पुनः अपना कठोर कुठार उठा लिया। तब गणेशजी ने अपनी सूँड़ को बहुत लम्बी कर लिया

और उसमें परशुराम को लपेट कर उन्हें घुमाने लगे। इस प्रकार उन्होंने परशुराम को त्रिलोकी में सर्वत्र घुमाया। गोलोकधाम में राधा-कृष्ण की युगल-जोड़ी का दर्शन कराया। इस दर्शन से परशुराम जी भ्रूणहत्याजनित पाप से निर्मुक्त हो गये। इसके बाद गणेशजी ने परशुराम को भूतल पर लाकर छोड़ दिया। होश में आने पर परशुराम ने दमकते चमकते अपने कुठार को गणेश पर चला दिया। पिता के उस अमोघ अस्त्र को आते देखकर स्वयं गणेश ने उसे अपने बायें दाँत से पकड़ लिया, उस अस्त्र को व्यर्थ नहीं होने दिया। तब महादेव जी के बल से वह परशु वेग पूर्वक गिरकर मूलसहित गणेश के दाँत को काटकर पुनः परशुराम के हाथ में लौट आया।

ठीक उसी समय शङ्कर की निद्रा समाप्त हो गई। कोलाहल सुनकर वे पार्वती के साथ बाहर आये। सारी स्थिति की जानकारी ली । पार्वती ने शिव से क्रोध न करने की प्रार्थना की। किन्तु अपने समक्ष परशुराम को देखकर वे स्वयं क्रुद्ध हो उठीं। परशुराम को मारने के लिये वे आगे बढ़ीं । यह स्थिति देखकर वे घबड़ा उठे। उन्होंने मन-ही-मन गुरु को प्रणाम करके अपने इष्टदेव का स्मरण किया। स्मरण करते ही भगवान् कृष्ण वामन के रूप में वहाँ आविर्भूत हो गये। शङ्कर-पार्वती ने उनकी स्तुति की। वामन श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया। परशुराम पर क्रोध न करने के औचित्य का प्रतिपादन किया और गणेश-स्तोत्र को प्रकट किया। वामन की प्रेरणा से परशुराम ने गौरी की दिव्य स्तुति की । माँ सन्तुष्ट हो गई। उसने परशुराम पर आशीषों एवं वरदानों को झड़ी लगा दी। परशुराम ने गणेश की भक्तिपूर्वक पूजा की और गुरु-पत्नी और गुरुदेव शिव को प्रणाम कर अपने अभीष्ट स्थान के लिये प्रस्थान किया।[१]

स्कन्दमहापुराण

नर्मदा के उत्तर तटपर नर्मदापुर नाम का एक स्थान था। वहाँ बहुत से देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि तथा तपस्वी आदि निवास करते थे। वहाँ के निवासियों में जमदग्नि नामक एक मुनि भी थे। उन्होंने अपने तप से भगवान् महादेव को प्रसन्न किया। जमदग्नि ने उनसे वरदान माँगा—'देव, देव-पितृ-कार्य की सिद्धि के लिये मुझे कामधेनु प्रदान कीजिये।' सन्तुष्ट शङ्कर ने उन्हें कामधेनु प्रदान कर दी। मुनि जिन-जिन कामनाओं के लिये याचना करते कामधेनु सद्यः उन्हें पूरा कर देती थी। अब वे सुवर्ण के पात्रों में परोस कर प्रतिदिन सहस्राधिक ऋषियों को भोजन कराते थे।

---

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, गणपति खण्ड, अध्याय-२२-४६

एक दिन की बात है, माहिष्मतीपुरी का अधीश्वर कार्तवीर्य आखेट के लिये विन्ध्यपर्वत पर आया। आखेट करते हुए वह नर्मदा नदी के तट पर निवास करने वाले महर्षि जमदग्नि के आश्रम पर पहुँचा। उसने जमदग्नि से कहा—'मुने, यह गाय आपके योग्य नहीं है। इसे मुझे दे दीजिये।' कार्तवीर्य का यह वचन सुनकर मुनिवर जमदग्नि बहुत देर तक सोच-विचार में पड़े रहे। उन्हें कुछ भी उत्तर न देते देख राजा ने मुनि को मरवा दिया और स्वयं उनकी कामधेनु को बलपूर्वक हरकर ले जाने लगा। जब वह आश्रम से बाहर निकला तब उस होमधेनु पर कोड़ों की मार पड़ने लगी। बार-बार ताडित किये जाने पर गाय ने शाप देते हुये कहा—'अरे, ओ अधम नृपति, रेणुकानन्दन परशुराम तेरे समस्त कुल का संहार कर डालेंगे।'

इस प्रकार शाप देकर कामधेनु पुनः स्वर्ग चली गई। परशुराम ने जब पिता के वध का समाचार सुना तो वे प्रज्वलित अग्नि की भाँति क्रोध से जल उठे और सद्यः आश्रम पर पहुँचे। पिता को मारा गया देखकर क्रोध से उनका पराक्रम द्विगुणित हो गया। उन्होंने झटिति माहिष्मती नगरी की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने जब कार्तवीर्य अर्जुन को देखा तब क्रोधपूर्वक उसे ललकारते हुए कहा—'अरे ओ नराधम, ठहर, ठहर। मेरे पिता की हत्या करके अब तूँ बच कर कहाँ जा सकता है ?' ऐसा कहकर उन्होंने अपने कठोर कुठार को हाथ में उठाया और कार्तवीर्य के भुजवन को, उसके शिर के सहित काट डाला। उस समय मुनिवर परशुराम क्षत्रिय-जाति के लिये प्रलयङ्कर बन गये थे। महान् पराक्रमी दुरात्मा कार्तवीर्य के मारे जाने पर आकाश में दुन्दुभियाँ बज उठीं। देवों ने पुष्पों की वर्षा की। उसी कार्तवीर्य अर्जुन के प्रति क्रोध होने से परशुराम जी ने समूची पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दिया। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर वे आश्रम पर लौट आये। आते ही उन्होंने माँ के चरणों की वन्दना की। मुनीश्वरों को प्रणाम किया । फिर उन्होंने विधिपूर्वक परशुरामेश्वर महादेव की स्थापना की।[१]

ब्रह्माण्डमहापुराण

परशुराम अमित तेजसी जमदग्नि के पुत्र थे । वे अपने पिता की शुश्रूषा अति श्रद्धा के साथ करते थे। एक बार उनकी इच्छा हुई अपने पितामह ऋचीक के पास जाने की। उन्होंने माता-पिता से इसके लिये सादर आज्ञा ली और चल पड़े पितामह के आश्रम की ओर। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पितामह ऋचीक और पितामही सत्यवती का दर्शन किया। उन्हें विनम्र प्रणाम कर उनका आशीर्वाद

१. स्कन्दमहापुराण, आवन्त्यखण्ड-रेवाखण्ड

लिया। वहाँ कुछ दिन रहे। पुन: और्व, दधीचि के आश्रमों से होते हुए वे अपने वंश के प्रधान एवं पूर्व पुरुष महर्षि भृगु के आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने भृगु और ख्याति को प्रणाम किया। कुछ दिन वहाँ रहे। पुन: भृगु की आज्ञा से तप द्वारा शङ्कर को सन्तुष्ट कर अस्त्र-शस्त्र-ग्राम की उपलब्धि के लिये वे हिमालय पर्वत पर चले गये। वहाँ किरातवेशधारी शङ्कर ने उनकी परीक्षा ली और फिर प्रसाद रूप में परशु उन्हें प्रदान किया। शङ्कर की आज्ञा से परशुधारी राम ने देव-शत्रु दानवों को युद्ध में पराजित कर स्वर्ग का साम्राज्य देवों को अर्पित किया।

स्वर्ग के साम्राज्य पर देवों को प्रतिष्ठित कर परशुराम ने अपने आश्रम पर पहुँच कर पुन: प्रबल तपस्या प्रारम्भ की। भगवान् शङ्कर उनके समक्ष प्रकट हुए। परशुराम ने उनसे अशेष अस्त्र, शस्त्र और शास्त्र प्रदान करने की प्रार्थना की। सन्तुष्ट शङ्कर ने उन्हें सब कुछ प्रदान किया। शङ्कर की कृपा से परशुराम अजेय और अप्रतिम बन बैठे। भगवान् के अन्तर्हित हो जाने पर परशुराम ने सम्पूर्ण युद्ध-सामग्री को शङ्करानुचर महोदर के पास यह कहकर रख दिया कि—'यह सब आप अपने पास सुरक्षित रक्खें। अवसर उपस्थित होने पर, मैं आपका स्मरण करूँगा। फिर कृपाकर आप सारी युद्ध-सामग्री मेरे पास उपस्थित कर दिया करें।'[१]

महोदर से सप्रश्रय विदा होकर परशुराम भृगु, च्यवन, और्व और ऋचीक के आश्रमों से होते हुए अपने पिता के पुण्य आश्रम पर पहुँचे। जमदग्नि ने परशुराम को देखकर महती प्रसन्नता की अनुभूति की।

एक दिन हैहयनरेश सहस्रार्जुन आखेट के लिये जङ्गल में गये। वहाँ से जब वह लौट रहे थे तब नर्मदा तटवासी महर्षि जमदग्नि के आश्रम में उनका दर्शन करने के लिये गये। महर्षि ने सहस्रार्जुन से आश्रम में रुक कर आतिथ्य स्वीकार करने की बात कही । सहस्रार्जुन ने मुनि के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए आश्रम में व्यवधान उत्पन्न होने के भय से पहले तो चले जाने की ही इच्छा व्यक्त की। किन्तु जब महर्षि जमदग्नि ने आग्रह किया तो फिर वे ससैन्य रुक कर आश्रम का आतिथ्य लेने लगे। महर्षि ने अपनी होमधेनु सुरभि के प्रभाव से सेना-समेत राजा का ऐसा आतिथ्य किया जैसा कि स्वर्गलोग में भी सुलभ न था। महर्षि के इस अद्भुत आतिथ्य का मूलभूत कारण है कामधेनु सुरभि। इस तथ्य से जब

---

१. तथेत्युक्त्वा ततः शम्भुरस्त्रशस्त्राण्यशेषतः । ददौ रामाय सुप्रीतः समन्त्राणि क्रमान्नृप ।।
सप्रयोगं ससंहारमस्त्रग्रामं चतुर्विधम् । प्रसादाभिमुखो रामं ग्राहयामास शङ्करः ।।
ब्रह्माण्डमहापुराण, ३/२५/३८-३९

राजा और मन्त्री आदि अवगत हुए तो उनके आश्चर्य का अवसान न रहा। राजा महर्षि को सप्रश्रय प्रणाम कर राजधानी के लिये प्रस्थित हुए। उसी समय उनके एक मन्त्री चन्द्रगुप्त[१] ने जैसे भी संभव हो वैसे सुरभि को राज-सम्पत्ति बना लेने की मन्त्रणा एवं प्रेरणा दी। इस पर राजा ने चन्द्रगुप्त को ही महर्षि के पास प्रेषित किया। मन्त्री ने महर्षि को शाम, दाम और फिर दण्ड की नीति से समझाने का भरपूर प्रयास किया। किन्तु जमदग्नि ने गाय देने में असमर्थता व्यक्त की। उन्होंने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया।[२]

ब्रह्मर्षि की निश्चित अवधारणा को सुनकर क्रुद्ध पापमपि मन्त्री चन्द्रगुप्त मुनि की पयस्विनी को हठात् ले जाने का प्रयास करने लगा। जमदग्नि ने गाय की ग्रीवा पकड़ कर रोका। सैनिकों ने उन्हें प्रहार कर चेतनाशून्य कर दिया और गाय को मारते हुए ले चले। इस दृश्य को देखकर सुरभि को महान् क्रोध हुआ। उसने सारे सैनिकों को सींग से मार कर भगा दिया और स्वयं गोलोक चली गई। बछड़े को लेकर सैनिक राजा के पास गये। वहाँ उन्होंने उनसे अशेष वृत्तान्त का निःशेष वर्णन किया। महर्षि जमदग्नि के वध को सुनकर चिन्तामग्न हो उठा सहस्त्रार्जुन। वह सोचने लगा—'अहो, मैं कितना निर्दय हूँ। मैंने उभय लोक-विरोधी कार्य किया है।' इस प्रकार पश्चात्ताप की आग में झुलसता हुआ वह अपने नगर में प्रविष्ट हुआ।

इधर पति को निश्चेष्ट देखकर रेणुका छाती पीट-पीटकर रो रही थी। इसी समय परशुराम जंगल से समिधा आदि लेकर लौटे। उन्होंने माता-पिता की दयनीय दशा को देखा। रेणुका ने उनके समक्ष इक्कीस बार छाती पीट-पीट कर विलाप किया था। अतः जननी को सान्त्वना देते हुए परशुराम ने इक्कीस बार भूमण्डल को क्षत्रियविहीन बनाने की प्रतिज्ञा की।[३] इसी समय वंशप्रवर्तक भृगु महाराज आश्रम में प्रवेश करते हैं। सारे तथ्य को जानने के अनन्तर उन्होंने मृत-सञ्जीविनी विद्या का सफल प्रयोग कर जमदग्नि को जीवित कर दिया।

मुनिवर भृगु के चले जाने पर क्रोधावेश में परशुराम ने कार्तवीर्य के वध की पुनः प्रतिज्ञा की।[४] जमदग्नि ने पुत्र की प्रतिज्ञा सुनी। उन्होंने क्षमा का महत्त्व

---

१. चन्द्रगुप्त जाति से अब्राह्मण था—ऐसा स्पष्ट सङ्केत उसी कथानक में दिया गया है- देखिये, ब्रह्माण्डमहापुराण, ३/२८/५२-५३

२. जीवन्नाहं तु दास्यामि वासवस्यापि दुर्मते ।
गुरुणा याचितं किं ते वचसा नृपतेः पुनः ॥ *ब्रह्माण्डमहापुराण, ३/२८/७२*

३. यस्मादुरः प्रतिहतं त्वया मातर्ममाग्रतः ।
एकविंशतिवारं हि भृशं दुःखपरीतया ॥
त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्रां करिष्ये पृथिवीमिमाम् ॥ *वही, ३/३०/७२-७३*

४. कार्तवीर्यं निहत्याजौ पितुर्वैरं प्रसाधये ॥ *वही, ३/३१/५*

बतलाते हुए पुत्र को राजा के वध की प्रतिज्ञा से विरत होने की शिक्षा दी। किन्तु पिता की शान्ति-शिक्षा परशुराम को स्वीकार्य नहीं हुई। इस पर जमदग्नि ने अपने पुत्र को विश्व-विधाता ब्रह्मा के पास भेजा। ब्रह्मा ने उन्हें कैलसा पर शिव के पास जाने की सलाह दी। वहाँ पर परशुराम पर प्रसन्न हुए शङ्कर ने जगन्मङ्गल कृष्णकवच और पाशुपतादि विविध अस्त्र-शस्त्र-समुदाय प्रदान किया। फिर शङ्कर ने यह भी कहा—'वत्स, कवच के सिद्ध हो जाने पर तुम अपने प्रतिज्ञा-सागर को अनायास पार कर जाओगे।'[१]

शङ्कर के प्रसाद स्वरूप कृष्ण-कवच को प्राप्त कर परशुराम महाराज पुष्करतीर्थ में गये। वहाँ उन्होंने कवच को सिद्ध किया। फिर उन्होंने सहस्त्रार्जुन की नगरी माहिष्मती पर आक्रमण किया। हृदय-विदारक युद्ध में परशुराम ने सेना और पुत्रों के साथ सहस्त्रार्जुन का वध कर डाला। सहस्त्रार्जुन के पाँच पुत्र युद्ध-भूमि से भागकर अपने प्राणों की रक्षा किये। भागे हुए राजकुमार थे—शूर, वृषास्य, वृष, शूरसेन और जयध्वज। देश-देश के जो राजा-गण सहस्त्रार्जुन की ओर से युद्ध में भाग लिये थे वे सभी परशुराम के चमकते-दमकते परशु के शिकार बने।

इस प्रकार अपनी सुदुस्तर प्रतिज्ञा को निस्तीर्ण कर परशुराम अपनी सफलता की प्रसन्नता में गुरु विश्वनाथ का दर्शन करने, जगदम्बा उमा को प्रणाम करने और दोनों गुरुपुत्रों—गणेश एवं कार्तिकेय से मिलने कैलास गये। वहाँ वे शिव-मन्दिर में प्रवेश का प्रयास कर रहे थे। 'माता-पिता सम्प्रति शयन कर रहे हैं। अत: कुछ काल यहाँ बाहर ही रुक जाइये। बन्धुवर, ईश्वर की आज्ञा लेकर फिर मैं आपको अन्दर ले चलूँगा।' यह कहकर गणेश ने परशुराम को द्वार पर ही रोका।[२]

गणेश के वचन को सुनकर परशुराम ने कहा—'बन्धुवर, मैंने सहायकों सहित सहस्त्रार्जुन का युद्ध में वध कर दिया है। यह सब शम्भु का कृपा-प्रसाद है। अत: मैं माता-पिता पार्वती-परमेश्वर—का दर्शन कर अतिशीघ्र अपने घर जाना चाहता हूँ।' गणेश ने बार-बार समझाकर उन्हें रोकने का प्रयास किया। किन्तु वे मानते न थे। फलत: उन दोनों में द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हो गया। कार्तिकेय ने मध्यस्थता कर उन लोगों को अलग करने का प्रयास किया। किन्तु परशुराम

---

१. लीलया यत्प्रसादेन कार्तवीर्यं हनिष्यसि ।
त्रि:सप्तकृत्वो निर्भूपां महीं चापि करिष्यसि ॥ *ब्रह्माण्डमहापुराण, ३/३२/५५*

२. ईश्वराज्ञां गृहीत्वाहमत्रागत्य क्षणान्तरे ।
त्वया सार्द्धं प्रवेक्ष्यामि भ्रातस्तिष्ठात्र साम्प्रतम् ॥ ३/४१/३५-३६

गणेश पर परशु का प्रहार करने के लिये समुद्यत हो गये। यह देख गजानन ने शुण्डानन में लपेट कर परशुराम को अखिल ब्रह्माण्ड में घुमा कर लाकर धरातल पर पटक दिया जहाँ वे दोनों पहले खड़े थे। इसे परशुराम ने अपना अपमान समझा। उन्होंने गणेश को लक्ष्य कर अपना अमोघ परशु चला दिया। पिता के द्वारा प्रदत्त उस अमोघ परशु को गणेश ने अपने वाम दशन पर रोक लिया।[१] परशु अमोघ था। अत: उस अपना प्रभाव प्रदर्शित किया। गणेश का वाम दन्त कटकर भूतल पर गिर पड़ा। इस पर चतुर्दिक् हाहाकार मच गया। धरा कम्पित हो उठी।

कोलाहल सुनकर पार्वती और शङ्कर बाहर निकले। गणेश की रक्तदिग्ध दशा देखकर पार्वती ने स्कन्द से उसका कारण पूछा। उन्होंने माताजी से सारी सत्य घटना का वर्णन कर डाला। उसे सुनकर पार्वती ने शङ्कर से कहा—'आप ने कृपाकर इस शिष्य को पुत्र के समान माना । इसे त्रैलोक्यविजय नामक कवच प्रदान किया, तेजस्वी बनाया, जिसके बलपर यह अत्यन्त तेजस्वी राजा कार्तवीर्य का युद्ध में वध कर सका। अपना कार्य सिद्ध कर लेने के बाद देखिये शिष्य ने आपको यह गुरु-दक्षिणा दी है। इसने आपके ही प्रदत्त कुठार से आपके ही बेटे का दशन काट डाला। नि:सन्देह आप इसी से कृतार्थ होंगे। आप अपने इस शिष्य के साथ यहाँ रहिये। मैं पुत्रों के साथ अपने पिता जी के घर जा रही हूँ।

शङ्कर ने पार्वती के कोप और व्यङ्ग्य से भरे वचन को सुना । उन्होंने मन-ही-मन राधाकृष्ण का स्मरण किया। शङ्कर के स्मरण करते ही राधा-कृष्ण वहाँ उपस्थित हुए। उन दोनों ने उमा को विविध विधाओं से समझाया। अन्तत: पार्वती का हृदय परशुराम के प्रति वात्सल्य भाव से भर गया। उन्होंने चरण-पतित परशुराम को सस्नेह उठाकर अपने हाथ से दुलारा। परशुराम ने सबकी स्तुति की। उन्होंने गणेश से अपने कृत्य के लिये क्षमा माँगी। राधिकेश्वर कृष्ण ने राधिका के गोद से गणेश को उठाकर उनकी तथा परशुराम की परस्पर मैत्री करवा दी। पार्वती-शङ्कर और राधा-कृष्ण परशुराम पर प्रसन्न हो आशीष दिये। सबका अभिनन्दन कर, सबकी आज्ञा ले परशुराम अपने गृह के लिये, अकृतव्रण के साथ, प्रस्थान किये। आश्रम में पहुँचकर परशुराम ने पूज्य माता-पिता के चरणों में सादर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। समाचार के सन्दर्भ में परशुराम ने अपने पिता को सहस्रार्जुन के वध की बात भी बतलाई।

यद्यपि सहस्रार्जुन ने जमदग्निका महान् अपमान किया था। किन्तु फिर भी सहस्रार्जुन के वध की बात जमदग्नि को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने परशुराम से

१. गणेशस्त्वभिवीक्ष्याथ पित्रा दत्तं परश्वधम् ।
अमोघं कर्तुकामस्तु वामे तं दशनेऽग्रहीत् ॥ ३/४२/३

कहा—'वत्स, आपने क्षत्रियों की हत्या की है। अतः बारह वर्ष तक यम-नियम का पालन करते हुए तपस्या कीजिये। इससे आपका प्रायश्चित्त पूरा हो जायेगा। पिता की आज्ञा पाकर परशुराम तपस्या के लिये, अकृतव्रण के साथ, महेन्द्रपर्वत पर चले गये। वहाँ उन्होंने पिता के निर्देशानुसार प्रायश्चित्त का पूर्ण अनुष्ठान किया।

इधर कार्तवीर्य के जो शूर, शूरसेन आदि पुत्र रणभूमि से भागकर अपने प्राणों की रक्षा किये थे वे एक दिन जंगल में आखेट के लिये गये थे। वहाँ से वे लौटते हुए, भावी के वशीभूत होकर, जमदग्नि के आश्रम पर पहुँचे। आश्रम पर पहुँचते ही उनके हृदय में पूर्व वैर की अग्नि धधक उठी। उन लोगों ने महर्षि जमदग्नि का शिर काट लिया और उसे वे अपने साथ लेते गये। शोकाभिभूत रेणुका ने विलाप करके अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। परशुराम के भाइयों ने माता-पिता की और्ध्वदैहिक क्रिया की। आश्रम का प्रसन्न वातावरण शोक की काली छाया से अभिभूत हो उठा।

प्रायश्चित्त का अनुष्ठान पूर्ण कर परशुराम पिता के आश्रम में पधारे। वहाँ उन्होंने पिता के वध और माता के मरण की सारी घटना सुनी। शोक और क्रोध से जलते हुए परशुराम ने तीन दिन आश्रम में व्यतीत किये। उन्होंने हृदय में दृढ निश्चय किया—'समग्र क्षत्रिय-वंश का विनाश कर उनके रुधिर से माता-पिता का तर्पण करूँगा।' भाइयों को अपना निश्चय सुनाया और वे वहाँ से चल पड़े माहिष्मती के लिये। एकमात्र अकृतव्रण उनके साथ थे।

माहिष्मती के पास पहुँच कर परशुराम ने महोदर का स्मरण किया। महोदर ने रथ, सारथी और अस्त्र-शस्त्र सब कुछ परशुराम के पास पहुँचा दिया। मुनि ने युद्धार्थ शङ्खनाद किया। शूर, शूरसेन आदि अन्य अनेक राजाओं के साथ युद्ध के लिये बाहर निकले। भयङ्कर संग्राम हुआ। अन्ततः परशुराम के अस्त्र-शस्त्रानल में सभी शूरसेनादि क्षत्रिय, पतङ्ग-पङ्क्ति की भाँति, जल मरे। परशुराम उस समय इतने क्रुद्ध थे कि उन्होंने पावकास्त्र का प्रयोग कर पुरी माहिष्मती को ही दग्ध कर दिया। पुरी को धधकती अग्नि की लपलपाती लपटों में स्वाहा होते देख प्राण-त्राण की कामना से वीतिहोत्र वहाँ से भाग निकला।

प्रतिशोध को पूरी तरह पूर्ण कर परशुराम ने रथ से समग्र भूमण्डल का भ्रमण किया। सामने आये हुए क्षत्रियों का वध किया और पुनः महेन्द्राचल पर तप के लिये चले गये। किन्तु अभी तक न तो उनका कोपानल उपशमित हुआ था और न प्रतिशोध की भावना ही क्षीण हुई थी। अतः उन्होंने पुनः पृथिवी का भ्रमण किया और क्षत्रियों का विनाश किया। इस प्रकार अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार

परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया। कुरुक्षेत्र में स्यमन्तपञ्चक अर्थात् पाँच सरोवरों का निर्माण कराकर उन्हें क्षत्रिय-रक्त से परिपूर्ण कर दिया। फिर उनमें स्नान कर पितरों का तर्पण किया। वहाँ वे कुरुक्षेत्र के तपोवन में कुछ दिनों तक तपस्या में निरत रहे। तभी से वह क्षेत्र उत्तमोत्तम तीर्थ बन गया। कुरु क्षेत्र में समन्त (स्यमन्त भी) पञ्चकतीर्थ अतिपावन माना गया है।

वहाँ से चलकर परशुराम गया तीर्थ में पितरों का श्राद्ध किये। अन्तरिक्ष में स्थित पितरों ने उन्हें आगे क्षत्रिय-जाति के वध से रोका और प्रायश्चित्त करने की सलाह दी। जिसे मुनिवर ने सहर्ष शिरोधार्य किया। फिर वे तीन बार पृथिवी की परिक्रमा कर सभी तीर्थों में स्नान, ध्यान और पूजन किये तथा पुनः तपस्यार्थ महेन्द्र पर्वत पर चले गये। वहाँ मुनियों ने उन्हें अश्वमेध यज्ञ करने की सम्मति दी। जिसे राम ने स्वीकार कर उनकी इच्छा की पूर्ति की। उस यज्ञ में परशुराम ने, महेन्द्रपर्वत को छोड़कर, समूची पृथिवी कश्यप को दान में प्रदान कर दी। फिर वे शान्त मन से उसी पर्वत पर सर्वदा के लिये अपना निवास बना लिये तथा तपस्या में निरत हो गये।[१]

परशुराम महेन्द्र पर्वत पर तपरत थे। सगर के पुत्रों ने सागर के तट की भूमि खोद दी थी। फलतः दक्षिण-पश्चिम के तट पर विश्वविश्रुत गोकर्ण क्षेत्र सागर के जल में निमग्न हो गया। वहाँ के ऋषि-मुनि स्थान-भ्रष्ट हो भगवान् परशुराम की शरण में गये। परशुराम उनके साथ सह्यपर्वत के समीप सागर के तट पर पहुँचे। सागर के स्वामी वरुण भयवश परशुराम के सामने उपस्थित हुए। परशुराम ने आदेश दिया—'सागर के जल को पीछे करो। मुनियों के आवास की व्यवस्था होनी चाहिये।' वरुण के आदेश से सागर ने मुनियों के लिये भूमि खाली कर दी। वह स्थान शूर्पारकतीर्थ के नाम से भूतल पर विख्यात हुआ। इससे भी परशुराम की ख्याति में महती वृद्धि हुई ।[२]

•

---

१. ब्रह्माण्डमहापुराण, ३/४७/५९

२. तीर्थं शूर्पारकं तत्तु श्रीमल्लोकपरिश्रुतम् ।
उत्सारयित्वा सलिलं समुद्रस्तावदात्मनः ॥ *ब्रह्माण्डमहापुराण, ३/५८/२०*

पार्वती-कथा

ब्रह्ममहापुराण

ब्रह्मा से उत्पन्न शरीर के धारण के काल में दक्ष ने रुद्र से वैर मान लिया था। उन दोनों ने एक दूसरे को शाप भी दिया था। जब प्रचेता-पुत्र के शरीर में दक्ष विद्यमान था तब भी पूर्व जन्म का वैर उसमें अपना प्रभाव दिखला रहा था। उसने हरिद्वार (गङ्गाद्वार) में एक महान् यज्ञ का आयोजन किया। उसमें रुद्र को भाग नहीं दिया गया। फलस्वरूप सती ने अपना शरीर वहीं त्याग दिया था। यही सती आगे हिमालय-पुत्री पार्वती के रूप में जन्म-ग्रहण कीं।

महर्षि कश्यप के उपदेश से हिमालय ने गुणशालिनी पुत्री के लिये घोर तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न ब्रह्मा ने उसे मनोवाञ्छित वर प्रदान किया। फलस्वरूप उसकी पत्नी मेना से, पुत्रों के अतिरिक्त, तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं— अपर्णा, एकपर्णा तथा एकपाटला। अपर्णा ने शुष्क पर्ण का भी परित्याग कर दुश्चर तप किया। माता मेना ने बेटी को उमा (अर्थात् उस तप को मत करो)— ऐसा कहकर तप से विरत करने का निष्फल प्रयास किया था। फलतः उस तपस्विनी हिमपुत्री को संसार 'उमा' इस नाम से पुकारने लगा। उमा का विवाह महादेव से हुआ था। शुक्राचार्य इन्हीं के दत्तक पुत्र थे। एकपर्णा देवल की जननी थी। एकपाटला का विवाह ऋषि जैगीषव्य के साथ हुआ था। अलर्क इन्हीं के पुत्र थे। शंख और लिखित एकपाटला के ही अयोनिज पुत्र थे।

शम्भु-वरण के लिये पार्वती ने घोर तप किया। ब्रह्मा ने उन्हें वर और आश्वासन देते हुए कहा—'देवि, जिसको प्राप्त करने के लये आप नियमनिष्ठ हो तपरत हैं, वे ही शम्भु स्वयं यहाँ आकर आपका वरण करेंगे।'[1]

ब्रह्मा और देवों के आश्वासन देकर चले जाने पर पार्वती शङ्कर की प्रतीक्षा में निरत थीं। शङ्कर विकृत वेश धारणकर पार्वती के पास पहुँचे और कहा— 'देवि, मैं आपका वरण कर रहा हूँ।' पार्वती ने अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया कि ब्राह्मण वेशधारी यह शङ्कर ही हैं। अतः बड़े प्रेम से उन्होंने उनका स्वागत-सम्मान किया और कहा—'ब्राह्मणदेव, कन्या होने के नाते मैं अस्वतन्त्र हूँ। अतः आप मेरे जननी-जनक से मुझे माँगो।' पार्वती की बात का सम्मान करते हुए शङ्कर ने उसी वेष में जाकर हिमालय से उनकी पुत्री को माँगा। विरूप ब्राह्मण को रुद्र

१. स देवदेवः परमेश्वरः स्वयं स्वयंभुरायास्यति देवि तेऽन्तिकम्। *ब्रह्ममहापुराण* ३२/१००

समझ कर शाप के भय से हिमालय ने कहा—'मैं बेटी के विवाह के लिये स्वयंवर का आयोजन करूँगा। उसमें वह जिसका वरण कर लेगी उसी के साथ उसका विवाह होगा।' ब्राह्मण ने खिन्न मन से अपने लिये पार्वती को दुर्लभ बतलाया। पार्वती ने उन्हें पूर्ण आश्वस्त करते हुए उनके स्कन्ध पर अशोक के पुष्पों का गुच्छा (स्तबक) रख कर कहा—'लीजिये, मैंने आप का वरण कर लिया।'[१] इस पर प्रसन्न हो शङ्कर ने अशोक वृक्ष तथा पार्वती के चित्रकूट नामक आश्रम को बहुत-सा वरदान प्रदान किया। फिर वे वहाँ से चले गये।

शङ्कर के अन्तर्हित हो जाने पर उदासमुख पार्वती शिला पर बैठी थीं। उसी समय उन्हें किसी बालक के आर्त रुदन की ध्वनि सुनाई पड़ी। उन्होंने उठ कर देखा। समीप के सरोवर में ग्राह ने एक विप्रकुमार को पकड़ रक्खा है। वह अपने माता-पिता का अकेला पुत्र था। उसका विलाप हृदय-विदारक था। पार्वती ने इस करुण दृश्य को देखा। उनका हृदय विगलित हो उठा। उन्होंने ग्राह से प्रार्थना की बालक को छोड़ देने की। ग्राह ने कहा—'देवि, जो छठे दिन मुझे सर्वप्रथम प्राप्त हो जाता है, वहीं मेरा आहार विधाता के द्वारा निर्धारित किया गया है। अत: ब्रह्मा के द्वारा आज छठे दिन प्रेषित अपने इस आहार को मैं कथञ्चिदपि नहीं छोड़ूँगा।[२]

पार्वती ने ग्राह की बात सुनी। उन्होंने बड़ी विनम्रता से कहा—'ग्राहराज, आपको बार-बार प्रणाम कर रही हूँ। हिमालय के उत्तुङ्ग शृंग पर रहकर मैंने जो भी तपस्या की है, उसका फल लेकर इस विप्रकुमार को छोड़ दीजिये—यह मेरी आप से प्रार्थना है।' इस पर ग्राह ने पार्वती को उत्तर दिया—'आपने अपने जीवन में जो कुछ भी तप संचित किया है, उसके बदले में ही मैं इस बालक को छोड़ सकात हूँ, अन्यथा नहीं।' इसे सुनकर पार्वती ने आजीवन अर्जित अपने तपको पण पर (शर्त पर) रख कर कहा—'लीजिये सारे तप के पुण्यों को और छोड़ दीजिये इस ब्राह्मण-बालक को।' इस पर प्रसन्न ग्राह ने कहा—'आप अपने तप को अपने पास रखिये और ले जाइये इस विप्र-कुमार को। मैं आपकी ब्राह्मण-भक्ति पर परम प्रसन्न हूँ।'[३] ऐसा कहकर उस जलचर ने बालक को छोड़ दिया और अन्तर्हित हो गया। ग्राह के द्वारा छोड़ा गया वह बालक भी वहीं अन्तर्धान हो गया।

ग्राह को तपोदान करने के अनन्तर पार्वती ने सोचा मेरा तप शून्य हो गया

---

१. गृहीत्वा स्तवकं पौष्यं हस्ताभ्यां तत्र संस्थिता ।
स्कन्धे शंभो: समाधाय देवी प्राह वृतोऽसि मे ॥
तत: स भगवान् देवस्तया देव्या वृतस्तदा ॥ *ब्रह्ममहापुराण, ३३/२१-२२*

२. यो देवि दिवसे षष्ठे प्रथमं समुपैति माम् ।
स आहारो मम पुरा विहितो लोककर्तृभि: ।
सोऽयं मम महाभागे षष्ठेऽहनि गिरीन्द्रजे ।
ब्रह्मणा प्रेरितो नूनं नैनं मोक्ष्ये कथञ्चन ॥ *वही, ३३/४४-४५*

३. गृहाण तप एवं त्वं बालं चेमं सुमध्यमे ।
तुष्टोऽस्मि ते विप्रभक्त्या वरं तस्माद्ददामि ते ॥ *वही, ३३/५३*

है। अतः उन्होंने पुनः नियम ग्रहण कर तप प्रारम्भ किया। सन्तुष्ट शङ्कर उनके समक्ष प्रकट हुए। उन्होंने कहा—'महाव्रतधारिणी देवी, वह ग्राह मैं ही था। अतः उसे दान किया गया तप मुझे ही प्रदान किया गया है। इसलिये वह सहस्र प्रकार से अक्षय होकर तुम्हें प्राप्त होगा।'[१] अब तप करने की आवश्यकता ही नहीं है।'

शङ्कर के आदेश को प्राप्त कर पार्वती तप से विरत हो गईं। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। अब वे स्वयंवर के शुभ मुहूर्त की सधैर्य प्रतीक्षा करने लगीं।

पर्वतराज हिमालय ध्यान-परायण थे। उन्होंने ध्यान से पार्वती के द्वारा शङ्कर के वरण को जान लिया था। फिर भी उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिये सकल त्रिलोकी में बेटी के स्वयंवर की घोषणा करवाई।

निश्चित समय पर भगवान् विष्णु के सहित अमरेन्द्र, महेन्द्र, गन्धर्वेन्द्र, असुरेन्द्र आदि सभी दिव्य वेष में हिमालय के पृष्ठ पर पधारे। सबके हृदय उत्सुकता से उमड़ रहे थे। सखियों के साथ हाथ में माला लिये पार्वती रङ्गभूमि में शनैः-शनैः पधारीं।[२] भगवान् शङ्कर पार्वती की मनोभावना को जानते थे। अतः वे काकलीधारी बालक के रूप में पर्वतराजपुत्री की गोद में आ विराजे। अपने चिरकांक्षित सत्पति को इस प्रकार प्राप्त कर पार्वती धन्य-धन्य हो उठीं। देवों ने इस दृश्य को देखा। वे सभी क्रुद्ध हो उठे। अपना-अपना अस्त्र-शस्त्र उठाकर बालक पर प्रहार करना चाहे। किन्तु ईश्वरेच्छा ने सबके हाथों को ऊपर ही स्तम्भित कर दिया। ब्रह्मा ने देवों की दुरवस्था को देखा। उन्हें यह समझते-देर नहीं लगी कि यह बालक और कोई नहीं, साक्षात् शङ्कर हैं। वे मन-ही-मन उनकी शरण में गये। दिव्य स्तुति की और देवताओं को भी शङ्कर के शरणागत किये।[३] सबने मन-ही-मन शङ्कर को प्रणाम किया। सबके अन्तःकरण शुद्ध हो चुके थे। आशुतोष प्रसन्न हो उठे। सभी अपनी पूर्व स्थिति में आ गये। सबको शङ्कर ने अपने दिव्य तेजस्वी स्वरूप का दर्शन कराया। पार्वती ने उन प्रभु के चरणों पर स्वयंवर की माला समर्पित कर दी। उपस्थित सारी मण्डली ने साधु-साधु कहकर जगज्जननी-जनक को प्रणामाञ्जलि समर्पित की।[४]

---

१. मह्यमेतत्तपो देवि त्वया दत्तं महाव्रते ।
तत्तेनैवाक्षयं तुभ्यं भविष्यति सहस्रधा ॥ *ब्रह्ममहापुराण,* ३३/६२

२. सर्वर्तुपुष्पां सुसुगन्धमालां प्रगृह्य देवी प्रसभं प्रतस्थे ॥ *वही,* ३४/२६

३. गच्छध्वं शरणं सर्वे शीघ्रश्चैव महेश्वरम् ।
सार्धं भवान्या देवेशं परमात्मानमव्ययम् ॥ *वही,* ३४/४६

४. तस्य देवी तदा हृष्टा समक्षं त्रिदिवौकसाम् ।
पादयोः स्थापयामास स्रङ्मालाममितद्युतेः ।
साधु साध्विति संप्रोच्य सर्वे देवाः पुनर्विभुम् ।
सह देव्या नमश्चक्रुः शिरोभिर्भूतलाश्रितैः । *वही,* ३४/५२-५३

तदनन्तर हिमालय की प्रेरणा से शङ्कर की आज्ञा लेकर ब्रह्मा ने शास्त्र-विधि के अनुसार शिव-पार्वती के विवाह की सारी विधि सम्पन्न करवाई। ये सभी विधियाँ वे ही हैं जो आज की पौराणिक विधि से मेल खाती हैं। उमा-शङ्कर के विवाह की समाप्ति पर देवों ने उनकी भव्य-दिव्य स्तुति की। देवस्तुति से सुप्रसन्न शङ्कर ने उनसे वर माँगने को कहा। देवोंने अपना वर भविष्य में माँगने की बात कहकर उन्हीं के पास धरोहर के रूप में रख दिया।[१] भगवान् शङ्कर ने भी 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

मदन-दहन—देवों को विदा कर भगवान् शङ्कर जगदम्बा उमा के साथ अपने भवन में पधारे। जिस समय वे दोनों सुखद शैया पर विराजमान थे, उसी समय रति के साथ कामदेव वहाँ आया। उसने शङ्कर को अपने बाणों का लक्ष्य बनाने का मन किया। उसकी इस दुष्टता को ज्ञात कर शङ्कर ने उस पर अवज्ञापूर्वक अपने तृतीय नेत्र से देखा। वह जलकर राख बन गया। रति के करुण-क्रन्दन से आर्द्र होकर शङ्कर-पार्वती ने उससे कहा—'भद्रे, तुम्हारा पति भस्म हो गया। अब इस समय इसकी पुनः उत्पत्ति नहीं हो सकती। यह अशरीर रहकर भी तुम्हारा सब कार्य करेगा। जब भगवान् विष्णु कृष्ण के रूप में अवतरित होंगे तब तुम्हारा यह पति उनके पुत्र के रूप में जन्म लेगा।'[२]

मेरुपर्वत पर गमन—शङ्कर-पार्वती हिमालय पर ही निवास करते हुए विविध क्रीडाओं में निरत थे। एक दिन पार्वती अपनी जननी मेना से मिलने गईं। मेना ने उनका सम्मान तो किया, किन्तु बात ही बात में यह भी कह दिया कि तुम्हारा पति दरिद्रों की भाँति क्रीडा किया करता है। देवों की ऐसी क्रीडा नहीं हुआ करती।[३] माता की यह बात, बाण की तरह, पार्वती के हृदय में बिद्ध हे गई। उन्होंने पतिदेव से आग्रह किया उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र जाने की, रहने की। शङ्कर ने उनकी बात मान ली और मेरुपर्वत को अपना आवास बनाया।[४]

---

१. तवैव भगवन् हस्ते वर एषोऽवतिष्ठताम् ।
यदा कार्यं तदा नस्त्वं दास्यसे वरमीप्सितम् ॥ *ब्रह्ममहापुराण,* ३५/२७

२. दग्ध एष ध्रुवं भद्रे नास्योत्पत्तिरिहेष्यते ।
अशरीरोऽपि ते भद्रे सर्वं कार्यं करिष्यति ॥
यदा तु विष्णुर्भगवान् वसुदेवसुतः शुभे ।
तदा तस्य सुतो भूयः पतिस्ते संभविष्यति ॥ *वही,* ३६/१०-११

३. उमे तव सदा भर्ता दरिद्रक्रीडनैः शुभे ।
क्रीडते नहि देवानां क्रीडा भवति तादृशी ॥ *वही,* ३७/३३-३४

४. श्रुत्वा स देव्या वचनं सुरेशस्तस्याः प्रियार्थं श्वसुरं विहाय ।
जगाम मेरुं सुरसिद्धसेवितं भार्यासहायः रवगणैश्च युक्तः ॥ *वही,* ३७/४०

पद्ममहापुराण

तारकासुर के अत्याचार से त्रिलोकी सन्त्रस्त थी। देवमण्डली निर्वासित जीवन व्यतीत कर रही थी। अत: सम्पूर्ण देव मिलकर ब्रह्मा की शरण में गये। वे अपनी व्यथा-कथा ब्रह्मा को कह सुनाये। उन्होंने देवों को आश्वासन देते हुए कहा—देवों, तारक सुरासुर सबके लिये अवध्य है। तपस्या में रत तारक ने मुझसे वरदान माँगा था—'सात दिन के बालक से ही मेरी मृत्यु हो।' मैने इसे 'तथास्तु' कहकर स्वीकार भी कर लिया था। सात दिन का वही बालक उसे मार सकता है, जो भगवान् शङ्कर के वीर्य से उत्पन्न हो। हिमवान् की बेटी उमा ही ऐसे बालक को उत्पन्न कर सकती है।

तदनन्तर जगत् को शान्ति प्रदान करने वाली गिरिराज हिमालय की पत्नी मेना ने शुभ ब्राह्म मुहूर्त में एक कन्या को जन्म दिया। गिरिराजकुमारी उमा रूप, माधुर्य, औदार्य, सौभाग्य एवं ज्ञान आदि की खान थीं। उनका सौन्दर्य त्रिलोकी का अनुपम रत्न था। पार्वती हिमवान् के गृह में शुक्ल पक्ष के चन्द्र की भाँति दिनानुदिन बढ़ने लगीं। एक दिन देवराज इन्द्र ने मुनि नारद का स्मरण किया। नारद इन्द्र के घर पहुँचे। इन्द्र ने नारद से सादर कहा—'देवर्षे, शङ्कर के साथ पार्वती के विवाह के लिये हम सबको उद्योग करना चाहिये।' इन्द्र के अभिप्राय को समझ कर नारद हिमालय के भवन पहुँचे। मुनि का सम्मान करने के अनन्तर मेना और हिमालय ने अपनी प्रिय बेटी का हाथ नारद को दिखलाया। हस्तरेखा विशारद नारद ने कहा—'यह साक्षात् शिवा है। तुम्हारे कुल को पवित्र करने के लिये ही इसने तुम्हारी पत्नी के गर्भ से जन्म लिया है। अत: जिस प्रकार यह शीघ्र ही पिनाकपाणि भगवान् शङ्कर का संयोग प्राप्त करे, उसी उपाय का तुम्हें अवलम्बन करना चाहिये। इससे देवों के महान् कार्य की सिद्धि भी होगी।'

नारद हिमवान् को सही सलाह देकर चले गये। फिर उन्हीं की प्रेरणा से इन्द्र ने काम को शङ्कर की समाधि भङ्ग करने के लिये साग्रह भेजा। अपने प्रबल दल के साथ काम शङ्कर के पास पहुँचा। उसने शङ्कर को अपने अमोघ बाणों का लक्ष्य बनाया। शङ्कर का चित्त विचलित हुआ। उन्होंने क्रोध के साथ कामदेव पर दृष्टिपात किया। उनके तृतीय नेत्र से समुद्भूत कोपानल से काम क्षणभर में ही जल कर क्षार हो गया। काम को दग्ध कर शिव की क्रोधाग्नि समस्त जगत् को भस्म करने के लिये बढ़ने लगी। यह देखकर शिव ने उस कामाग्नि (काम को जलाने वाली अग्नि) को आम्र के वृक्ष, वसन्त, चन्द्र, पुष्प-समूह, भ्रमर तथा कोकिल के मुख में बाँट दिया। वह कामाग्नि सम्पूर्ण लोक को क्षोभ में डालने वाली है। इसके प्रसार को रोकना दुष्कर कार्य है।

प्राणप्रिय पति के भस्म हो जाने पर काम की पत्नी रति विलाप करने लगी। दयार्द्र शम्भु ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—'सुन्दरि, समय आने पर यह कामदेव शीघ्र ही उत्पन्न होगा। संसार में इसकी अनङ्ग के नाम से प्रसिद्धि होगी।' शिव से आश्वासन मिलने पर रति चली गई।

उधर नारद जी के कथनानुसार हिमवान् अपनी कन्या को वस्त्राभूषणों से विभूषित करके, उनकी दो सखियों के साथ, उन्हें भगवान् शङ्कर के समीप ले आ रहे थे। उन्होंने मार्ग में रति के मुख से मदन-दहन का समाचार सुना। फलत: वे कुछ भयभीत हुए। उन्होंने बेटी को लेकर अपनी पुरी में लौट जाने का विचार किया। यह जानकर पार्वती ने अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति की इच्छा से तप करने की अडिग इच्छा व्यक्त की। इस पर हिमालय ने कहा—'बेटी, 'उ' 'मा'—ऐसा मत करो। तुम भी चपल सुकोमल बालिका हो। तुम्हारा शरीर तप का कष्ट सहन करने में समर्थ नहीं है। भावी अवश्य घटित होती है। अत: तुम्हें तपस्या करने की कोई आवश्यकता नहीं है।' पिता के समझाने पर भी पार्वती अपने दृढ निश्चय पर अडिग रहीं। यह देखकर हिमवान् मन-ही-मन प्रसन्न हुआ। उसी समय आकाशवाणी ने कहा—'गिरिराज, तुमने 'उ' 'मा' कहकर अपनी बेटी को तपस्या करने से रोका है। अत: संसार में यह 'उमा' के नाम से विख्यात होगी। उसे मूर्तिमती सिद्धि समझो। यह अपनी अभिलषित वस्तु अवश्य प्राप्त करेगी।' आकाशभाषित को सुनकर पर्वतराज ने पुत्री को तपस्या की आज्ञा देकर अपने भवन की राह ली।

हिमालय के उत्तुंग दुर्गम श्रृंगपर पार्वती भीषण तप में रत हुईं। उनकी सेवा में दो सखियाँ विराजमान थीं। उनके उग्र तप से त्रिलोकी सन्तप्त हो उठी। इन्द्र ने सप्तर्षियों का स्मरण किया। वे महात्मा इन्द्र की सभा में उपस्थित हुए। देवराज ने उनसे निवेदन किया—'महात्माओं, सम्प्रति पार्वती भीषण तपस्या कर रही हैं। उनके तपस्तेज से त्रिलोकी दग्ध हो रही है। अत: आप लोग संसार के हित के लिये, अति शीघ्र वहाँ जाकर, उन्हें अभिमत वस्तु की प्राप्ति का विश्वास दिला कर तपस्या बन्द करवा दीजिये।' सप्तर्षिगण शीघ्र ही पार्वती के पास पहुँचे। उनकी भाव-दृढता की परीक्षा के लिये उन लोगों ने शङ्कर के अवगुणों और विष्णु के सद्गुणों की चर्चा की। किन्तु पार्वती अपने दृढ निश्चय से विचलित नहीं हुईं। देवी के अविचलित भावों को ज्ञात कर ऋषि-समूह शिव के पास पहुँचा। पार्वती के भीषण तप की बात ऋषियों ने शङ्कर से कही और यह भी प्रार्थना की कि आप शीघ्र ही पार्वती का पाणिग्रहण कीजिये। दयालु शङ्कर ने ऋषि-प्रार्थना स्वीकार कर ली। भगवान् के द्वारा प्रार्थना स्वीकार कर लेने पर ऋषि-जन हिमालय के घर

पधारे। 'शङ्कर तुम्हारी कन्या का पाणिग्रहण करने के लिये तैयार हैं'—यह बात उन लोगों ने हिमालय से कही। शङ्कर की स्वीकृति जानकर हिमालय आनन्द-निमग्न हो उठे।

हिमालय की सप्रसन्न स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर महर्षिगण हिमालय को साथ लेकर तपस्यारत पार्वती के पास पहुँचे। 'स्थूणानिखननन्याय' से सप्तर्षियों ने एक बार पुन: पार्वती के भावों की परीक्षा ली। पर्वतराज कुमारी उमा की दृढता को जानकर उन लोगों ने पार्वती से कहा—'तुम्हारी यह कामना शीघ्र ही पूर्ण होगी। अब अपने इस सुमनोहर रूप को तपस्या की अग्नि में मत जलाओ। कल प्रात:काल भगवान् शङ्कर स्वयं आकर तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे। हम लोग पहले आकर तुम्हारे पिताजी से भी प्रार्थना कर चुके हैं। अब तुम अपने पिता के साथ घर जाओ, हम भी अपने आश्रम को जाते हैं।' उनके इस प्रकार कहने पर पार्वती यह सोचकर कि तपस्या का यथार्थ फल प्राप्त हो गया, तुरन्त ही पिता के शोभा-सम्पन्न दिव्य भवन में चली गईं।

दूसरे दिन भगवान् शङ्कर देवताओं के साथ हिमालय की सुसज्जित नगरी में पधारे। उस समय शङ्कर का सौन्दर्य त्रिलोकी का सार था। उन्हें देखकर आबालवृद्ध सभी प्रसन्न थे। तदनन्तर विश्वविधाता ब्रह्मा जी तथा भगवान् शङ्कर क्रमश: विवाह-मण्डप में पधारे। वहाँ शिव ने पर्वतराजकुमारी पार्वती के साथ शास्त्रोक्त विधि से वैवाहिक कार्य सम्पन्न किया। गिरिराज ने उन्हें अर्घ्य दिया और देवताओं ने विनोद के द्वारा उन्हें प्रसन्न किया। शिव ने पार्वती के साथ आनन्ददायिनी वह रात्रि वहीं व्यतीत की। प्रात:काल देवताओं के स्तवन करने पर वे उठे और गिरिराज से विदा ले वायु के समान वेगशाली नन्दी पर सवार हो पत्नी-सहित मन्दर पर्वत पर चले गये। पुत्री को पतिगृह प्रेषित कर पिता हिमालय का मन उदास हो उठा। क्यों न हो, कन्या की विदाई हो जाने पर भला, किस पिता का हृदय व्याकुल नहीं होता ?[१]

पार्वती का गौरी नाम पड़ने का कारण—एक दिन परिहास-प्रिय शङ्कर ने श्यामवर्णा पार्वती को 'काली' कह दिया। देवी कुपित हो उठीं। उन्होंने गौर-वर्णा होने का अकल्प सङ्कल्प मन में लिया। फलत: वे तपस्यार्थ हिमालय की गोद में पहुँची। वहाँ उन्होंने भीषण तप किया। तप से सन्तुष्ट ब्रह्मा ने उन्हें सुवर्ण-वर्णाभा गौरी होने का वरदान दिया। पार्वती ने अपने शरीर की श्याम त्वचा को छोड़ दिया। वह सुवर्णवर्ण की गौरी बन गईं। उनकी परित्यक्त नीलाम्बुजवर्णा

१. पद्ममहापुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ४५/४४२

त्वचा घण्टाधारिणी त्रिलोचना कौशिकी देवी का रूप धारण कर विन्ध्याचल पर्वत पर निवास करने लगी। पार्वती का शङ्कर के गण वीरक के ऊपर क्रोध ही सिंह के रूप में प्रकट हुआ। ब्रह्मा के आदेश से वह सिंह कौशिकी देवी का वाहन बना। गौरवर्ण प्राप्त कर लेने पर पार्वती शिव के पास पहुँची। उन्होंने हर्ष में भरकर देवी का स्वागत किया।[१]

शिवमहापुराण

एकबार भगवान् विष्णु के नेतृत्व में सम्पूर्ण देवमण्डली गिरिराज हिमालय के घर पधारी। हिमालय ने सबका स्वागत-सत्कार किया। देवों ने हिमालय से कहा—'गिरिराज, पहले जगदम्बा उमा दक्ष-पुत्री सती के रूप में प्रकट हुई थीं। शङ्कर से उनका विवाह हुआ था । पिता से अनादर पाकर वे सती देवी यज्ञ में शरीर का परित्याग कर अपने परम धाम को पधार गईं। यदि वे सती पुनः तुम्हारे घर में प्रकट हो जाँय तो देवों का परम कल्याण हो सकता है। देवों की सलाह को हिमालय ने सहर्ष स्वीकार किया। तदनन्तर देवोंने दक्ष को उमाराधन की विधि बतालाई और वे स्वयम् एकान्त में जाकर श्रद्धापूर्वक देवी की स्तुति करने लगे। देवी ने देवों को दर्शन दिया और उनकी प्रार्थना से हिमालय की बेटी बन कर रुद्रदेव के साथ विवाह की बात स्वीकार कर ली।

उधर हिमवान् की पत्नी मेना बड़ी प्रसन्नता से शिव सहित शिवा की उत्कृष्ट आराधना में संलग्न हो गई। अन्ततः उसकी तपस्या सफल हुई। देवी ने उसे दर्शन देकर वरदान माँगने को कहा। मेना ने वरदान माँगा—'प्रथमतः मेरे सौ पुत्र हों। वे सभी दीर्घायु और यशस्वी बनें। तदनन्तर आप ही देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये मेरी पुत्री तथा रुद्रदेव की पत्नी होइये और तदनुसार लीला कीजिये।' देवी ने मेना की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

समय आने पर देवी उमा ने हिमवान् के हृदय में प्रवेश किया। पर्वतराज ने शुभ बेला में मेना के गर्भ में देवी का आधान किया । देवी मेना के गर्भ में आई । देवों ने गर्भस्था देवी का स्तवन किया। कालपूर्ण होने पर वसन्त ऋतु में, चैत्रमास की नवमी तिथि को, मृगशिरा नक्षत्र में, अर्धरात्रि की बेला में, चन्द्रमण्डल से आकाशगङ्गा की भाँति, मेना के उदर से देवी शिवा का अपने ही स्वरूप में प्रादुर्भाव हुआ। माता मेना से बातें कर देवी नवजात कन्या के रूप में परिवर्तित हो गई ।

भारतीय पद्धति के अनुसार हिमवान् ने अपनी पुत्री के 'काली' आदि

---

१. पद्ममहापुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ४६/११९

सुखदायक नाम रक्खे। माता ने कालिका को 'उ' 'मा' (अरी, तपस्या मत कर) कहकर तप करने से रोका था। अत: आगे चलकर पार्वती 'उमा' नाम से विख्यात हुईं। विद्याध्ययन के योग्य होने पर शिवा ने गुरु से विद्याध्ययन किया। एक बार भ्रमण करते हुए नारद हिमवान् के घर पधारे। उसने अपनी पुत्री का हाथ नारद को दिखलाया। नारद ने पार्वती का सारा भावी फल कह सुनाया। उसे सुनकर हिमवान् और मेना चिन्तित हुए। नारद ने उन्हें आश्वासन देकर पार्वती का विवाह शिव जी के साथ करने को कहा और यह भी कहा कि शिव को प्राप्त करने के लिये पार्वती तपस्या करें।

एक बार भगवान् शिव तपस्या के लिये गङ्गावतरण तीर्थ में पधारे। हिमवान् ने उनका स्वागत-सम्मान किया। आगे चलकर हिमवान् ने पार्वती को शिव की सेवा में रखने के लिये उनसे आज्ञा माँगी। एक लम्बे शास्त्रार्थ के अनन्तर शिव ने स्वीकृति प्रदान कर दी। उसके बाद पार्वती प्रतिदिन शिव की सेवा करने लगीं। उस समय तारकासुर का अत्याचार त्रिलोकी को कम्पित कर रहा था। अत: शिव पार्वती से विवाह कर तारकनिसूदन पुत्र को उत्पन्न करें इस अभिप्राय से इन्द्र ने शिव को मोहित करने के लिये गणों के साथ कामदेव को प्रेषित किया। काम ने शिव को अपने बाण का लक्ष्य बनाया। क्रुद्ध हुए शिव ने काम को अपने तृतीय नेत्र की अग्नि से भस्म कर दिया। पार्वती निराश होकर रोती हुई पितृ-गृह लौट गईं। शङ्कर भी उस स्थान से अदृश्य हो गये।

पुन: नारद की प्रेरणा से पार्वती, शिव का वरण करने के लिये घोर तप में प्रवृत्त हुईं। शङ्कर ने उनकी दृढता की परीक्षा सप्तर्षियों के माध्यम से तथा स्वयं जटिल ब्राह्मण बनकर ली। परीक्षा में खरी उतरने पर शिव ने पार्वती के साथ विवाह करने का निश्चय कर लिया। देवमण्डली ने शी पार्वती के साथ विवाह करने के लिये शिव से प्रार्थना की। शङ्कर ने तदर्थ स्वीकृति प्रदान कर दी।

विवाह के पूर्व आचार के सम्पन्न हो जाने पर शिव ने नारद जी के द्वारा सभी देवताओं को आमन्त्रण भेजा। सभी सादर शिव के आश्रम में पधारे। शिव ने मङ्गलाचार एवं ग्रहपूजन आदि सम्पन्न करके विशाल बारात के साथ हिमालय के लिये प्रस्थान किया । शिव के अमङ्गल स्वरूप को देखकर हिमालय की अर्द्धाङ्गिनी महारानी मेना अपनी बेटी का विवाह शिव से न करने के लिये अड़ गईं। लोगों के समझाने पर उन्होंने कहा—'यदि शिव सुन्दर शरीर धारण कर लें, तब मैं अपनी पुत्री दे सकती हूँ। अन्यथा कोटि यत्न करने पर भी नहीं दूँगी। यह बात मैं सत्यता और सुदृढ निश्चय के साथ कह रही हूँ।'

अन्ततः मेना के हठ पर शङ्कर को अपना अति सौम्य रूप धारण करना पड़ा। शङ्कर की अद्भुत रूप-सम्पदा को देखकर मेना के हर्ष का पारावार न रहा। फिर तो शङ्कर-पार्वती का लोक-पावन विवाह सम्पन्न हो गया।

टिप्पणी—यहाँ यह ध्यान रखना है कि शङ्कर के विवाह के समय जो-जो आचार और विधियाँ सम्पन्न की गईं थीं, वे आज भी लोक प्रचलित हैं। लोकाचार एवं शास्त्राचार–दोनों प्रकार की रीतियाँ—शिवमहापुराण में शिव-पार्वती के विवाह पर सम्पादित की गई थीं। इन्हें आज भी देश की ग्राम्य-संस्कृति में ज्यों-का-त्यों देखा जा सकता है।[1]

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण में पार्वती-कथा उनके गर्वमोचन-कथा के प्रसङ्ग में प्रस्तुत की गई है। कथा का सार-भाग इस प्रकार है—

सती-कथा का पटाक्षेप हो चुका था। शङ्कर उनके विरह में व्याकुल थे। उधर मेना ने देवी को जन्म दिया। उनकी आकृति अनुपम थी। विधाता की सृष्टि में गिरिराजनन्दिनी के लिये कोई उपमा न थी। गुणों की तो वे खान थीं। चन्द्रकला की भाँति दिनानुदिन बढ़ती हुई पार्वती ने यौवन की देहली पर जब पैर रक्खा तो एक दिन आकाशवाणी ने उनसे कहा—'शिवे, तुम कठिन तप करके शिव को पति-रूप में प्राप्त करो। क्योंकि तपस्या के बिना ईश्वर को पाना अथवा उनके अंश से गर्भ धारण करना असम्भव है।' आकाशवाणी सुनकर यौवन-सौन्दर्य के गर्व से भरी हुई पार्वती हँसकर चुप ही रहीं। उन्होंने सोचा—'मैं तो जन्म-जन्म की शिव-प्रिया हूँ । शिव की प्राणाधिष्ठात्री हूँ। अतः देखते ही वे मुझे क्यों नहीं ग्रहण करेंगे ।'

पार्वती अपने को समस्त रूप और गुणों की खान समझती थीं। उन्हें अपनी रूप-सम्पदा पर अभिमान था। अतः साध्वी शिवा ने तपस्या में स्वयं को तपाया नहीं। उन्होंने शिव को सामान्य दृष्टि से सोचा। उनका मानना था कि पुरुष स्त्रियों का, उद्दाम यौवन-सम्पदा से, क्रीत दास है। अतः शिव मुझे देखते ही उत्कण्ठित हो ग्रहण कर लेंगे।

उसी समय भगवान् शङ्कर तपस्यार्थ हिमालय पर पधारे। समाचार मिलने पर हिमालय ने उनकी अगवानी, स्तुति और सत्कृति की। उस समय शिव का स्वरूप कोटि-कोटि कन्दर्पों को लजाने वाला था। उस रूप को देखकर मेना के हर्ष का पारावार न रहा। सभी पार्वती के सौभाग्य की सराहना कर रहे थे। हिमवान्

---

१. शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, पार्वती खण्ड।

और मेना शिव का दर्शन कर अपने आवास पर वापस आ गये। उन दोनों पति-पत्नी ने परस्पर सलाहकर पार्वती को शिव के पास भेजा। अत्यन्त मनोहर वेश में वे, सखियों के साथ, शिव के निकट गईं। शिव का दर्शन करके शिवा ने सात बार परिक्रमा की और मुस्कराकर उन्हें प्रणाम किया। शिव ने उन्हें अनुपम पति प्राप्त होने का आशीष दिया। पार्वती ने शङ्कर की षोडशोपचार से पूजा की। यह उनका प्रतिदिन का नियम बन गया। वे प्रतिदिन भक्ति-भाव से शिव की पूजा कर पिता के घर लौट जाया करती थीं ।

अप्सराओं के द्वारा इन्द्र ने यह सुना कि भगवान् महेश्वर पार्वती पर अनुरक्त हैं। अत: उन्होंने कामदेव को वहाँ भेजा जहाँ शङ्कर-पार्वती विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर मदन ने अपने अमोघ अस्त्र का शङ्कर पर प्रयोग किया। किन्तु काम का वह दुर्निवार बाण भी शङ्कर पर व्यर्थ हो गया। काम काँपने लगा। वह शङ्कर से भयभीत था। उसने इन्द्र आदि देवों का स्मरण किया। सकल देव-मण्डली आकर, प्रसन्न करने के लिये, शङ्कर की स्तुति करने लगी। इतने में ही शङ्कर के ललाट स्थित तृतीय नेत्र से कोपाग्नि प्रकट हुई । उसने सबके देखते-देखते मदन को जलाकर राख बना डाला। सारे देव शोकाकुल हो उठे। रति का विलाप धैर्य-धारियों के धैर्य को भी विगलित करने वाला था। पार्वती शङ्कर की स्तुति करती हुई रोने लगीं। रोती हुई पार्वती को वहीं छोड़कर शङ्कर अन्यत्र चले गये। पार्वती का सारा अभिमान चूर-चूर हो चुका था। सबके अपने-अपने घर चले जाने पर भी पार्वती लज्जावश पिता के घर नहीं गईं । वह सखियों के बार-बार मना करने पर भी तपस्या के लिये वन में चली गईं। सखियों ने उनका अनुगमन किया। हिमालय पर्वत की गोद में, गङ्गा के पावन तट पर पार्वती ने भीषण तप प्रारम्भ किया। ऐसा तप बड़े-बड़े योगियों के लिये भी कठिन था।

इस प्रकार बहुत वर्षों तक कठोर तप करके भी जब पार्वती शङ्कर को न पा सकीं, तब वे शोक से सन्तप्त होकर, अग्निकुण्ड का निर्माण करके, उसमें प्रवेश करने के लिये उद्यत हो गईं। उसी समय भगवान् शङ्कर ब्राह्मण बालक का रूप धारण करके पार्वती के समक्ष प्रस्तुत हो गये। उनके हाथ में दण्ड और छत्र था । वे ब्राह्मण-ब्रह्मचारी के रूप में थे। उन्हें अपने समक्ष देखकर पार्वती ने पूछा—'आप कौन हैं ?' पार्वती का हृदय रह-रह कर उमड़ रहा था कि उस बालक को अपने हृदय से लगा लें। प्रेमविवश पार्वती की मन:स्थिति को भाँप कर शङ्कर ने ब्रह्मचारी के रूप में अपना परिचय दिया और प्रश्न किया कि तुम कौन हो ?

ब्रह्मचारी के प्रश्न के उत्तर में पार्वती ने अपने पूर्व जन्म का परिचय देते हुए वर्तमान जन्म, कर्म, तपस्या और उसका उद्देश्य कह सुनाया। उसी प्रसङ्ग में उन्होंने कहा—'दीर्घकाल तक कठोर तप करके भी मैं अपने प्राणबल्लभ शङ्कर को न पा सकी। इसलिये अग्नि में प्रवेश करने जा रही थी। किन्तु आपको देखकर क्षणभर के लिये रुक गई। अब आप जाँय। मैं अग्नि में प्रवेश करूँगी। ब्रह्मन्, महादेव जी की प्राप्ति का संकल्प मन में लेकर शरीर का त्याग करूँगी और जहाँ-जहाँ भी जन्म लूँगी, परमेश्वर शिव को ही पति के रूप में प्राप्त करूँगी। प्रत्येक जन्म में भगवान् शिव ही मेरे प्राणों से भी बढ़कर प्रियतम पति होंगे।'

ऐसा कहकर पार्वती वहाँ ब्राह्मण वटु के बार-बार मना करने पर भी, उसके समक्ष ही, अग्नि-कुण्ड में प्रविष्ट हो गईं। पार्वती के अग्नि में प्रविष्ट होते ही उनके तप के प्रभाव से वह अग्नि तत्काल चन्दन के समान शीतल हो गई। जब पार्वती अग्निकुण्ड में रहकर ऊपर आने लगीं तब उस ब्राह्मण रूपधारी शिव ने कहा—'सुन्दरि, यदि तुम संहारकर्ता शिव को चाहती हो, तब तो सर्वलोकभयङ्कर रुद्र को अपने प्रति अनुरक्त पाओगी। अब तुम शीघ्र ही अपने पिता के घर जाओ। वहाँ मेरे आशीर्वाद और अपने तप के फल से तुम्हें परम दुर्लभ शिव के दर्शन प्राप्त होंगे।' ऐसा कहकर वे ब्राह्मण वटु वहीं अन्तर्धान हो गये। बालक के अदृश्य हो जाने पर पार्वती शिव के नाम का सादर उच्चारण करती हुई अपने पिता के गृह के लिये प्रस्थान कीं। पार्वती के आगमन की बात को सुनकर हिमवान् अपने कुटुम्ब के साथ, उनकी अगवानी कर सादर उन्हें घर लाये।

एक दिन शिव नर्तक नट के वेश में हिमवान् के घर पहुँचे।[१] नर्तक नट ने भिक्षा में पार्वती को माँगा। किन्तु विष्णु-माया से मोहित हुए शैलराज ने उसकी याचना स्वीकार नहीं की। फिर तो नट ने और कुछ नहीं लिया। वह वहीं अन्तर्धान हो गया। इस घटना से हिमवान् और मेना की शिव के प्रति भक्ति अति प्रबल हो उठी।

इसके आगे ब्रह्मा जी की आज्ञा से देवताओं का शिवजी से शैलराज के घर जाने का अनुरोध करना, शिव का ब्राह्मणवेष में जाकर अपनी ही निन्दा करके हिमालय के मन में अश्रद्धा उत्पन्न करना, मेना का पुत्री को साथ लेकर कोप-भवन में प्रवेश और शिव को कन्या न देने के लिये दृढ निश्चय, सप्तर्षियों और अरुन्धती का आगमन तथा शैलराज एवं मेना को समझाना, वशिष्ठ और

---

१. ब्रह्मवैवर्त के अनुसार नट बहुत ही वृद्ध और जरा से आक्रान्त जर्जर था। किन्तु शिवमहापुराण में वर्णित नट तरुण और तेजस्वी था। दोनों ही पुराणों में यह कथा एक जैसी ही वर्णित है।

हिमवान् की बात-चीत, शिव की महत्ता तथा देवताओं की प्रबलता का प्रतिपादन, प्रसङ्गवश राजा अनरण्य, उनकी पुत्री पद्मा तथा पिप्पलाद मुनि की कथा, सप्तर्षियों के समझाने पर पत्नी-सहित हिमवान् का शिव के साथ अपनी पुत्री के विवाह का निश्चय करना, शिव-बारात, पार्वती-शिव-परिणय तथा लोकाचार की कथा ब्रह्मवैवर्त एवं शिवमहापुराण में एक जैसी ही वर्णित है। दोनों में अद्भुत साम्य है। किसने किससे इस पूर्ण प्रसङ्ग को लिया है—यह कहना सरल नहीं है। किन्तु यदि अति सूक्ष्म दृष्टि से परिशीलन किया जाय तो यह स्पष्ट प्रतिभासित होने लगता है कि शिवमहापुराण की अपेक्षा ब्रह्मवैवर्त का कथानक सरल सपाट और पूर्वकालिक है। ब्रह्मवैवर्त में नर्तक नट बने हुए शिव सीधे हिमालय के घर पार्वती की याचना करने पहुँच जाते हैं। किन्तु शिवपुराण में पार्वती के अनुनय विनय एवम् अनुरोध पर नट बने शिव भिक्षा में पार्वती को माँगते हैं। इस प्रकार के और भी कई त्तत्व हैं जिनके बल पर यह कहना संभव है कि शिवमहापुरण का प्रसङ्ग अर्वाक्कालीन है, अपेक्षाकृत परवर्ती है।[१]

लिङ्गमहापुराण

मेना और हिमालय ने पार्वती को पुत्री के रूप में प्राप्त करने के लिये तप किया था। उसी के फलस्वरूप पार्वती ने मेना की कुक्षि से जन्म ग्रहण किया। पुत्री के उत्पन्न होने पर गिरिराज ने जातकर्मादि सारी क्रियाएँ सम्पन्न कीं। पार्वती बड़ी पुत्री थीं। पार्वती को अपर्णा कहते हैं। दूसरी पुत्री का नाम था—एकपर्णा। तीसरी सबसे छोटी पुत्री थी—एकपाटला। अपर्णा, एकपर्णा और एकपाटला—ये ही तीन पुत्रियाँ हिमालय की थीं ।[२]

शङ्कर को पति के रूप में प्राप्त करने के लिये पार्वती हिमालय के उत्सङ्ग में अद्भुत तप में रत हुईं। इसी समय दितिपुत्र तार का बेटा तारक वर के प्रभाव से त्रिलोकी को कम्पित कर रहा था। उसने देवों को स्वर्ग से बहिष्कृत कर दिया था। विष्णु का सुदर्शन चक्र भी उस पर निष्फल था। दु:खी देवमण्डली ब्रह्मा के पास गई। ब्रह्मा ने देवों से कहा कि शिव-पार्वती के पुत्र कार्तिकेय ही तारक का वध कर सकते हैं। अत: आपलोग शङ्कर का मन पार्वती के सौन्दर्य पर मुग्ध करने का प्रयास कीजिये। ब्रह्मा के निर्देश को प्राप्त कर देवों के सहित वृहस्पति ने उन्हें प्रणाम किया। फिर वे मेरु के शिखर पर पहुँच कर कामदेव का स्मरण किये। उनके स्मरण करते ही पत्नी रति के साथ कामदेव वहाँ आ पहुँचा। इन्द्र ने

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, *अध्याय*- ३९-४६

२. ज्येष्ठा ह्यपर्णा ह्यनुजा चैकपर्णा शुभानना ।
तृतीया च वरारोहा तथा चैवैकपाटला ॥ *१/१०१/६*।

उससे कहा—'काम, शङ्कर को अम्बिका पार्वती से जोड़ने का प्रयास करो।'[1] काम ने शक्र का आदेश स्वीकार किया। वसन्त और रति के साथ काम वहाँ पहुँचा जहाँ शङ्कर विराजमान थे। शङ्कर को पार्वती के साथ संयुक्त करने की इच्छा मनोज ने मन में ली। शङ्कर ने इस दृश्य को देखा। फिर उन्होंने अपने तृतीय नेत्र से अनायास ही मदन की ओर निहारा। मदन शङ्कर के पास ही खड़ा था। शम्भु के तृतीय नेत्र के पड़ते ही वह जल कर क्षार बन गया। रति विलाप करने लगी। शङ्कर ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा—'रति, धीरज रक्खो। अमूर्त होते हुए भी तुम्हारा पति रति की बेला में अपना कार्य सम्पन्न करेगा। द्वापर में विष्णु जब कृष्ण के रूप में अवतार लेंगे तब उनका पुत्र तुम्हारा पति होगा। रति धैर्य धारण कर वहाँ से अमूर्त मदन के साथ चली गई।[2]

पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती का तप निर्विघ्न चलता रहा। मरीचि आदि महर्षियों के साथ ब्रह्मा उनके आश्रम पर गये। उन्हें तप से रोका और कहा कि शङ्कर अवश्य ही आपका वरण करेंगे। अपने तप के तेज से व्यर्थ ही संसार को दग्ध मत करो। ऐसा कहकर ब्रह्मा ने पार्वती को प्रणाम किया और अपने लोक चले गये। उनके चले जाने के बाद ब्राह्मण का वेश बनाकर शङ्कर पार्वती की तपःस्थली पर पहुँचे। उनके अपूर्व तेज को देखकर पार्वती ने पहचान लिया कि यह भगवान् शङ्कर ही हैं। अतः उन्होंने शम्भु की सविधि पूजा और स्तुति की। भगवान् सन्तुष्ट हुए। हिमालय के कुल-धर्म की रक्षा करते हुए उन्होंने कहा—'देवि, तुम्हारे पिता के द्वारा समायोजित स्वयंवर में मैं स्वयं तुम्हारे पास उपस्थित होऊँगा।' ऐसा कहकर ब्राह्मण वेशधारी शङ्कर वहाँ से चले गये। पार्वती भी तप से विरत हो पिता के घर चली गईं। तप से लौटी हुई बेटी को पाकर मेना और हिमवान् परम प्रसन्न हुए। उन्हें यह ज्ञात नहीं हो सकता था कि शङ्कर ने पार्वती से क्या कहा है। अतः हिमालय ने पार्वती के स्वयंवर की घोषणा सभी लोकों में कर दी। विष्णुप्रभृति सभी देव स्वयंवर में समुपस्थित हुए। अपनी सखियों जया और विजया के साथ स्वयंवर स्थल में पार्वती उपस्थित हुईं। जयमाल लेकर विजया पार्वती के पार्श्व में खड़ी थी। सभी देवादिक जन जयमाल पाने के लिये

---

१. तमाह भगवान् शक्रः संभाव्य मकरध्वजम् ।
शङ्करेणाम्बिकामद्य संयोजय यथासुखम् ॥ *लिङ्गमहापुराण, १/१०१/३५*

२. अमूर्तोऽपि ध्रुवं भद्रे कार्यं सर्वं पतिस्तव ।
रतिकाले ध्रुवं भद्रे करिष्यति न संशयः ॥ *वही, १/१०१/४३*
सा प्रणम्य तदा रुद्रं कामपत्नी शुचिस्मिता ।
जगाम मदनं लब्ध्वा वसन्तेन समन्विता ॥ *वही, १/१०१/४५-४६*

लालायित थे, विकल थे।

इसी समय एक अद्भुत घटना घटी। शङ्कर को कुछ लीला करने की सूझी। वे सुन्दर शिशु का रूप धारण कर पार्वती के ललित उत्सङ्ग में सो गये।[१] देवों ने पार्वती की गोद में एक शिशु को देखा। 'यह शिशु कौन है ?' ऐसी मन्त्रणा कर वे क्षुभित हो उठे। उसे मारने के लिये इन्द्र आदि देवों ने अपने-अपने आयुधों को उठा लिया। किन्तु शिशुरूपधारी शङ्कर ने लीलावश सबकी बाहुओं को स्तम्भित कर दिया। विष्णु भी अपना चक्र न चला सके। सभी स्तम्भित और निश्चेष्ट हो गये। क्रोध से सभी का अन्तःकरण भर गया। पर कोई कुछ भी नहीं कर सकता था। ब्रह्मा ने इस स्थिति को देखा। उन्होंने ध्यान लगाया। फिर तो उनकी समझ में आ गया कि यह भगवान् शङ्कर हैं। वे ही उमा की गोद में बालक बनकर बैठे हैं। समझ में आते ही ब्रह्मा ने शङ्कर को प्रणाम कर उनकी अनेक प्रकार से स्तुति की। ब्रह्मा की प्रेरणा से सभी देवता मन-ही-मन शङ्कर की शरण में गये। शंङ्कर ने प्रसन्न हो सबको यथापूर्व बना दिया। सबका स्तम्भन समाप्त हो गया। फिर त्रिनेत्रधर भगवान् शङ्कर अपने अमित तेजस्वी स्वरूप में प्रकट हो गये। उस तेज के सामने सबकी दृष्टियाँ देखने में असमर्थ हो गईं । शम्भु ने सबको दिव्य दृष्टि प्रदान की। सबने शङ्कर के स्वरूप का साक्षात्कार कर अम्बासहित उन्हें प्रणाम किया। आकाश से पुष्प-वृष्टियाँ होने लगीं। सर्वत्र उत्सव का वातावरण फैल गया। जगदम्बा पार्वती ने शङ्कर के चरणों पर माल्यार्पण कर उनका वरण किया।[२]

पार्वती के द्वारा शङ्कर का वरण कर लेने के अनन्तर ब्रह्मा ने शङ्कर से प्रार्थना की पार्वती के साथ विवाह-क्रिया सम्पन्न करने की। शङ्कर ने स्वीकृति प्रदान की। फिर तो ब्रह्मा ने वेंद-विहित विधान से विवाह-क्रिया की प्रक्रिया पूरी की।[३] विवाह सम्पन्न हो जाने पर भगवान् शङ्कर भवानी को लेकर देवों और अपने गणों के साथ वाराणसी पुरी में पधारे।[४]

---

१. शिशुर्भूत्वा महादेवः क्रीडार्थं वृषभध्वजः ।
उत्सङ्गतलसंसुप्तो बभूव भगवान् भवः ॥ *लिङ्गमहापुराण, १/१०२/२८-२९*

२. तस्य देवी तदा दृष्टा समक्षं त्रिदिवौकसाम् ।
पादयोः स्थापयामास मालां दिव्यां सुगन्धिनीम् ॥ *वही, १/१०२/६१-६२*

३. हस्तं देवस्य देव्याश्च युयोज परमं प्रभुः ।
ज्वलनश्च स्वयं तत्र कृतांजलिरुपस्थितः ॥ *वही, १/१०३/५९*

४. कृतोद्वाहस्तदा देव्या हैमवत्या वृषध्वजः ।
सगणो नन्दिना सार्धं सर्वदेवगणैर्वृतः ।
पुरीं वाराणसीं दिव्यामाजगाम महाद्युतिः ॥ *वही, १/१०३/७१*

वाराहमहापुराण

सती ने पर्वतराज हिमालय पर तपस्या करते हुए योगाग्नि के द्वारा अपने शरीर को भस्म कर दिया था। फिर वे हिमालय की बेटी बनीं। उनका नाम रक्खा गया—उमा। उन्हें कृष्णा भी कहा जाता था।[१] उनके शरीर का सौन्दर्य अद्भुत था। त्रिलोचन शङ्कर हमारे पति होंगे—ऐसा कहकर उन्होंने तपस्या प्रारम्भ की। आशुतोष शङ्कर उनपर प्रसन्न हो गये। उन्होंने अत्यन्त वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया और लड़खड़ाते हुए पहुँच गये उमा के पास। उन्होंने उमा से कहा—'देवि, मैं अत्यन्त भूखा हूँ। अतः मुझे भोजन प्रदान करो। तुम्हारा कल्याण होगा।' विप्र का वचन सुनकर उमा ने कहा—'मैं फल आदि आपको खाने के लिए दूँगी। अतः आप शीघ्र स्नान करके आइये और भरपेट भोजन कीजिये।' उमा के इस प्रकार कहने पर वे ब्राह्मणदेवता समीप में ही प्रवहमान नदी गङ्गा में स्नान के लिये उतरे। उस समय उन्हें एक लीला सूझी। उन्होंने एक मायामय मकर से अपने आप को पकड़वा दिया। पकड़ने वाला मकर भी शङ्कर और पकड़े जाने वाले वृद्ध विप्र भी शङ्कर। मकर के द्वारा पकड़ लिये जाने पर वृद्ध ब्राह्मण ने अपनी अशक्ति प्रदर्शित करते हुए उमा से कहा—'कन्ये, बड़ा अनर्थ हुआ। इस मकर से मुझे बचाओ, बचाओ। इसके खाने के पहले मुझे बाहर निकाल लो।' उमा बड़ी असमञ्जस में पड़ गईं। उन्होंने पितृभाव से हिमालय का और पतिभाव से शङ्कर का स्मरण किया। उन्होंने सोचा—'मैं तपःपूत हूँ। अतः कैसे किसी अन्य का हाथ पकड़ूँ? यदि इन्हें हाथ से पकड़ कर जल से बाहर नहीं खींचती हूँ तो मुझे ब्रह्महत्या भी लगेगी।' ऐसा विचार कर उन्होंने ब्राह्मण का हाथ पकड़ कर जल से बाहर खींचा। बाहर आते ही विप्रवेश त्याग कर रुद्र स्वरूप में सामने खड़े हो गये। पार्वती ने देखा कि जिस रुद्र को अपनी तपस्या से प्राप्त करने का प्रयास मैं कर रही थी वही मेरे समक्ष खड़े हैं। वे लज्जित हो गईं। उन्हें अपने पूर्व त्याग का स्मरण हो आया। कुछ बोल न सकीं। शङ्कर ने हँसते हुए कहा—'भद्रे! तुमने मेरा हाथ पकड़ा है। अतः अब मुझे कैसे छोड़ सकती हो?' रुद्र के प्रणय-भरे वचन को सुनकर लजाती मुस्कराती हुई उमा ने कहा—'त्रिलोकी के अधिपति, आपको पति के रूप में प्राप्त करने के लिये ही मेरा यह प्रयास है। आप ही हमारे जन्म-जन्मान्तर के पति हैं। आपके अतिरिक्त दूसरा अन्य मेरा पति नहीं बनेगा। किन्तु पाणिग्रहण का कार्य विधि-विधान से होना चाहिये। मेरे पिता पर्वतराज हिमालय हैं। उनकी आज्ञा लेकर ही फिर आप मेरा हाथ पकड़ेंगे।' शङ्कर सहमत

---

१. उमा नामेति महती कृष्णा चेत्यभिधानतः ॥ *वाराहमहापुराण, २२/५*

हो गये। उमा पिता के भवन पहुँचीं । उन्होंने अपने आश्रम में घटी सारी घटना का यथावत् वर्णन अपने पिता से कर दिया। सुनकर हिमालय धन्य-धन्य हो उठे, कृतकृत्य बन गये। उन्होंने कहा—'बेटी, तुमने तो मुझे निहाल कर दिया।' फिर तो नगराज ने ब्रह्मा का आदेश लेकर बड़े समारम्भ के साथ विवाह की तैयारी की। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र मन्दराचल को शङ्कर के पास भेजा। उसने विवाहार्थ शङ्कर का आह्वान किया। फिर तो ब्रह्मा की उपस्थिति में शङ्कर-पार्वती का सविधि मङ्गल विवाह सम्पन्न हुआ।[१]

पार्वती-शङ्कर का विवाह तृतीया तिथि को हुआ था। अत: तृतीया तिथि को नमक का वर्जन करना चाहिये। ऐसा न करने वाला व्यक्ति पाप का भागी बनता है।[२] इस तिथि को उपवास करने वाला व्यक्ति सभी मनोरथों को प्राप्त कर लेता है, पुण्य का भागी बनता है।

स्कन्दमहापुराण

तारक असुर से त्रिलोकी सन्त्रस्त थी। देव निराश्रित और निर्वासित थे। उनसे आकाशवाणी ने कहा—'देवों, शङ्कर का सुत ही तारक के वध में समर्थ होगा। अत: उनके विवाह का यत्न करो।' देवमण्डली हिमालय के घर गई और कहा—'गिरिराज, आप देवों का कार्य सिद्ध करने के उद्देश्य से भगवान् शङ्कर का विवाह करने के लिये स्वयं ही एक कन्या उत्पन्न करें।' हिमालय ने देवों की प्रार्थना स्वीकार कर मेना के गर्भ में कन्या का आधान किया। कुछ समय व्यतीत होने पर मेना के गर्भ से एक कन्या उत्पन्न हुई, जो जगत् में 'गिरिजा' नाम से विख्यात हुई। गिरिजा के प्रकट होते ही सारी त्रिलोकी आनन्द में निमग्न हो उठी। असुर भय-संत्रस्त हो उठे।

सती-शिरोमणि गिरिजा हिमालय के घर में चन्द्र-कला की भाँति दिनानुदिन बढ़ने लगीं। वे कल्याणी जब आठ वर्ष की हो गईं, उस समय शिव हिमालय की कन्दरा में भीषण तप कर रहे थे। एक दिन परम बुद्धिमान् हिमवान् अपनी दुलारी बेटी को साथ लेकर महादेव का दर्शन करने के लिये गये। उन्होंने शङ्कर की स्तुति की और कहा—'देवेश्वर, आप मुझे इस कन्या के साथ प्रतिदिन अपने दर्शन के लिये आने की आज्ञा दें।' शङ्कर ने पर्वतराज की प्रार्थना अस्वीकृत कर दी। पार्वती ने शङ्कर से उत्तर-प्रत्युत्तर किया, शास्त्रार्थ किया। अन्ततः शङ्कर ने

---

१. देखिये–वाराहमहापुराण, २२वाँ अध्याय ।

२. एतत्सर्वं तु गौर्या वै सम्पन्नन्तु तृतीयया ।
तस्यान्तिथौ तृतीयायां लवणं वर्जयेत् सदा ॥ *वही, २२/५१-५३*

पार्वती को प्रतिदिन सेवा करने की आज्ञा प्रदान कर दी। अब तो प्रतिदिन पिता के साथ पार्वती शिव-सेवा में संलग्न हो गईं।

एक दिन देवराज इन्द्र ने कामदेव का आवाहन कर कहा—'इस समय देवताओं का कार्यसिद्ध करने के लिये तुम भगवान् शङ्कर पर चढ़ाई करो। महामते, ऐसी चेष्टा करो जिससे भगवान् शिव पार्वती के साथ विवाह कर लें।' इन्द्र की आज्ञा शिरोधार्य कर कामदेव अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये शिव के पास पहुँचा। यह एक संयोग ही था कि उसी समय गिरिजा भी सखियों के साथ शिव की सेवा में पहुँचीं। अवसर अच्छा देखकर कामदेव ने संमोहन नामक बाण से शिव पर प्रहार किया। शङ्करजी का धैर्य विलुप्त-सा होने लगा। उन्होंने पार्वती के शरीर को सस्पृह नेत्रों से निहारा। फिर शङ्कर को अपनी दशा पर आश्चर्य हुआ। वे सचेत हो अपने चतुर्दिक् दृष्टिपात किये। इसी समय उनकी दृष्टि कामदेव पर पड़ी। वह शङ्कर पर प्रहार करने के लिये पूर्ण सन्नद्ध था। उसे देखते ही शङ्कर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपना तृतीय नेत्र खोलकर उसकी ओर देखा। देखते ही मदन अग्नि की उठती हुई लपटों से घिर गया। उसे भस्म होते देखकर देव-मण्डली हाहाकार करने लगी। काम को जलाकर शङ्कर अन्तर्धान हो गये।

पार्वती ने विलाप करती हुई काम-पत्नी रति को आश्वासन दिया—'सखि, तुम शोक मत करो। मैं कामदेव को जीवन दिलाऊँगी।' उसे आश्वासन दे पार्वती वहीं भीषण तप में रत हो गईं। माता-पिता के द्वारा घर वापस चलने के लिये आग्रह करने पर पार्वती ने कहा—'मैं घर नहीं चलूँगी। आपलोग मेरी प्रतिज्ञा सुनें। मैं उत्तम तपस्या के द्वारा भगवान् शङ्कर को पुनः यहीं बुलाकर उनका वरण करूँगी।' माता-पिता से ऐसा कहकर पार्वती भीषण तप में रत हुईं। तप के तेज से त्रिलोकी कम्पित हो उठी। ब्रह्मा-विष्णु आदि देवों ने शङ्कर से प्रार्थना की—'प्रभो, आप गिरिराजकुमारी पार्वती से विवाह करें। आपके सन्तान से ही तारकासुर के वध का विधान है।'

उधर पार्वती देवी बड़ी कठोर साधना में संलग्न थीं। उन्होंने तप से शङ्कर को जीत लिया। देवी की तपस्या से हार मानकर भगवान् शिव समाधि से विरत हो, शीघ्र उस स्थान पर पधारे जहाँ पार्वती विराजमान थीं। शङ्कर ने ब्रह्मचारी का वेश धारण कर पार्वती की दृढता की परीक्षा ली। पार्वती परीक्षा में शत-प्रतिशत उत्तीर्ण हुईं। ब्रह्मचारी अन्तर्हित हो गये। पुनः भगवान् शङ्कर अपने असली स्वरूप से वरदान देन के लिये पार्वती के समक्ष प्रत्यक्ष हुए। उन्होंने उनसे कहा—'देवि, वर माँगो।' पार्वती ने अपने आप को शङ्कर की शक्ति बत्तलाते हुए विवाह करने की बात कही और यह भी निवेदन किया कि आप सप्तर्षियों के साथ मेरे पिता

के पास जाकर मेरी याचना कीजिये। शङ्कर ने विवाह की बात तो अङ्गीकार कर ली किन्तु याचना को अस्वीकृत कर कैलास की यात्रा की ।

उसके बाद हिमवान् सपरिवार पार्वती से मिलने वहाँ गये जहाँ वह तप में निरत थीं। पार्वती ने अपने तप की सिद्धि की बात माता-पिता और बन्धु-बान्धवों से कही। सभी प्रसन्न हो पार्वती को सादर घर लाये। चतुर्दिक् प्रसन्नता का वातावरण व्याप्त था ।

कैलास पहुँचकर शङ्कर ने सप्तर्षियों को हिमालय के घर भेजा। वे वहाँ पहुँचकर हिमालय को प्रेरित किये कि वह अपनी बेटी का विवाह शीघ्र शिव से कर दे। हिमालय ने अपने परिवार से सलाह ली । मेना ने शिव के साथ पुत्री के विवाह के औचित्य का प्रबल प्रतिपादन किया। सफल मनोरथ हो ऋषिगण शिव के पास पधारे। शिव ने नारद द्वारा सकल देव-मण्डली का आह्वान किया। विष्णु के कथन से शिव ने गृह्यसूत्रोक्त विधि से सारे पूर्व वैवाहिक क्रिया-कलापों का सम्पादन किया। तदनन्तर वे विशाल बारात लेकर हिमवान् की नगरी में पधारे। शङ्कर धर्म-स्वरूप वृष पर आरूढ थे। गिरिराज ने विश्वकर्मा निर्मित विशाल भवन में सारी बारात को सादर ठहराया।

विवाह-कृत्य का सम्पादन गर्गाचार्य करवा रहे थे। उनकी आज्ञा से माङ्गलिक कार्यों को करवा कर वर-वधू को विवाह-मण्डप में लाया गया। रुद्र को उनके वासस्थान से हाथी की पीठ पर बैठाकर लाया गया था। मण्डल में वर-वधू की मङ्गल आरती उतारी गई। पुण्य घड़ी की उपस्थिति होने पर, गर्गाचार्य आदि ब्राह्मणों के सङ्कल्प का उच्चारण करने पर, हिमवान् ने शङ्कर को पार्वती का दान कर दिया। सम्पूर्ण वैवाहिक विधि शास्त्र और आचार के अनुसार पूर्ण करवाई गई। विवाह सम्पन्न हो जाने पर वधू पक्ष के लोगों ने बारातियों को सादर सविनय सुस्वादु भोजन करवाया ।

विवाह सम्पन्न हो जाने पर दूसरे दिन बारात लौटी। हिमवान् ने अपने बन्धुओं के साथ गन्धमादन पर्वत तक वर का अनुगमन किया। उस समय शिव और पार्वती दोनों महातेजस्वी दम्पत्ति हाथी पर आरूढ हो शोभा पा रहे थे।[१]

टिप्पणी—शिवमहापुराण में तपस्यारत पार्वती के भाव की दृढता की परीक्षा, शिव की आज्ञा से सप्तर्षियों ने भी की थी। किन्तु स्कन्दमहापुराण में इसकी कोई चर्चा नहीं की गई है। शिवमहुपराण के अनुसार शिव ने वृद्ध ज्योतिषी का रूप धारण कर पार्वती के माता-पिता के सामने अपनी (शिव की)

१. स्कन्दमहापुराण, माहेश्वर खण्ड, अध्याय २०-२५

निन्दा की थी। जिससे मेना ने हठ किया कि मैं अपनी बेटी का विवाह अमङ्गल वेशधारी शिव से नहीं करूँगी। आगे सप्तर्षियों और अरुन्धती के अतिशय समझाने पर किसी-किसी प्रकार वह शिव से बेटी के विवाह के लिये तैयार हुईं। बारात के हिमालय पहुँचने पर भी मेना ने, शिव के अमङ्गल वेश को देखकर कोप-भवन में प्रवेश किया है और शिव के मङ्गल स्वरूप धारण करने पर ही बेटी के विवाह के लिये तैयार हुई हैं। ये प्रसङ्ग स्कन्दपुराण में नहीं हैं। इसमें मेना के व्यवहार अतिशय सरल और सहयोगात्मक रूप में वर्णित हैं। शिव और शिव-पार्वती के हाथी पर आरूढ होने की बात भी स्कन्दपुराण की ही है। शिवपुराण इसकी चर्चा नहीं करता।

दोनों महापुराणों की पार्वती-कथा का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्कन्दपुराण की कथा सीधी-सादी, सरल और स्वाभाविक रूप से वर्णित है। शिवपुराण बहुत कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन करके इसे प्रस्तुत करता है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि स्कन्दमहापुराण की अपेक्षा शिवमहापुराण की कथा अवान्तर काल की है।

वामनमहापुराण

हिमालय-मेना की सबसे छोटी बेटी का नाम था—काली।[१] दो बेटियों के तपस्या के लिये निकल जाने पर मेना ने 'उ मा' कहकर काली को तपस्या के लिये जाने से रोका। अत: काली का नाम ही 'उमा' पड़ गया। माता के रोकने पर भी उमा तपस्या के लिये चली गईं। उनका उद्देश्य था शङ्कर को पति बनाना। अपने मनोरथ की पूर्ति के लिये उमा ने हिमालय पर घोर तप प्रारम्भ किया। ब्रह्मा ने उमा को बुला लाने के लिये देवों को भेजा। किन्तु उमा का तेज इतना असह्य था कि देवमण्डली उनके पास तक जाने का साहस ही न कर सकी। फलत: वह ब्रह्मा के पास लौट आई। ब्रह्मा ने देवताओं से कहा—'आप लोग अपने-अपने स्थान पर जाँय। तारकासुर तथा महिषासुर को अब युद्ध में मारा गया ही समझें।' ब्रह्मा के आश्वासन से देवता लोग प्रसन्न एवं निश्चिन्त हो अपने-अपने लोक में पधारे।

प्रियतमा के वियोग से सन्तप्त शङ्कर भ्रमण करते हुए हिमालय के पास पहुँचे। पर्वतराज हिमालय ने उनका सम्मान किया। शङ्कर हिमालय के, एक रात्रि के लिये, अतिथि बने। दूसरे दिन हिमालय ने शङ्कर से निवेदन किया—'प्रभो, तपस्या के सारे साधन यहाँ उपस्थित हैं। अत: अब आप यहीं रहें।' पर्वतराज की

---

१. नीलाञ्जनचयप्रख्या नीलेन्दीवरलोचना ।
रूपेणानुपमा काली जघन्या मेनका सुता ॥ *वामनमहापुराण*, ५१/४

प्रार्थना स्वीकार कर शिव हिमालय में ही आश्रम बनाकर रहने लगे। एक दिन गिरिराजकुमारी काली शङ्कर के आश्रम पर पहुँचीं। उन्हें देखते ही शङ्कर समझ गये कि उनकी प्रिया सती ने फिर से जन्म ग्रहण कर लिया है। उन्होंने 'स्वागतम्' कहकर काली का सम्मान किया और पुनः ध्यान में निरत हो गये। सर्वाङ्गसुन्दरी उमा ने हाथ जोड़कर सखियों के साथ उनके चरणों में प्रणाम किया। शङ्कर ने बड़ी देर तक निर्निमेष नयनों से काली को निहारा और फिर कहा—'यह ठीक नहीं है।' ऐसा कहकर वे अपने गणों के साथ अन्तर्धान हो गये। शङ्कर के निष्ठुर वचन को सुनकर पार्वती का हृदय जल उठा। उनके दुःख का पारावार न रहा। उन्होंने पिता हिमालय से कहा—'मैं पिनाकधारी शङ्कर की आराधना करने के निमित्त घोर तप करने के लिये भीषण अरण्य में जाऊँगी।' हिमालय ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी। पार्वती तपस्यार्थ हिमालय की उपत्यका में सखियों के साथ चली गईं। वहाँ वह शङ्कर की मृण्मयी मूर्ति की पूजा करती हुई तप में संलग्न हो गईं। शङ्कर उनकी श्रद्धा और तपस्या से प्रसन्न हो उठे। उन्होंने मुञ्ज-मेखलाधारी बटुका रूप धारण किया और पार्वती के पास पहुँच गये उनकी परीक्षा करने।

पार्वती ने वटुका स्वागत कर उनका परिचय पूछा। वटु ने कहा—'मेरा आश्रम वाराणसी में है। सम्प्रति मैं पृथूदक की तीर्थयात्रा के लिये निकला हूँ। उसी प्रसङ्ग से यहाँ आ गया। अब मुझे बतलाओ इस तारुण्य की बेला में तुम अपना सुकोमल शरीर तप की अग्नि में क्यों जला रही हो ?' पार्वती की सखी 'सोमप्रभा' ने वटु को बतलाया कि इनकी तपस्या शङ्कर को पति रूप में प्राप्त करने के लिये है। इस पर वटु ने अट्टहास लगाया और इस जोड़ी को असङ्गत बतलाया। इस पर पार्वती क्रुद्ध हो उठीं। उन्होंने सोमप्रभा से कहा कि—'इस भिक्षु को रोको। यह और कुछ कहना चाहता है। निन्दक की अपेक्षा श्रोता को अधिक पाप लगता है।' पार्वती के इतना कहते ही वटुरूप का परित्याग कर शङ्कर अपने असलीरूप में प्रकट हो गये। उन्होंने पार्वती से कहा—'प्रिये, तप का परित्याग कर अपने पिता के घर जाओ। तुम्हारे लिये मैं सप्तर्षियों को वहाँ भेजूँगा। तुम्हारे द्वारा पूजित शङ्कर की यह मृण्मय मूर्ति 'भद्रेश्वर' इस नाम से संसार में प्रसिद्ध होगी। इसके पूजन से लोगों के सकल मनोरथों की पूर्ति होगी।' शङ्कर के आदेश के मिलते ही पार्वती पिता हिमालय के घर चली गईं। शङ्कर भी मन्दराचल पर चले गये। प्रसन्न मन्दर ने उनकी यथोचित सपर्या की। फिर शङ्कर ने अरुन्धती सहित सप्तर्षियों का स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही सप्तर्षि वहाँ आ पहुँचे।

शङ्कर ने पार्वती की याचना करने के लिये उन्हें हिमालय के पास भेजा। शङ्कर की आज्ञा सहर्ष स्वीकार कर सप्तर्षि-मण्डल हिमालय के पास पहुँचा। हिमालय ने प्रसन्न हो उनका सम्मान किया और उनके आगमन का कारण पूछा। ऋषियों ने कहा—'शैलराज, भगवान् शङ्कर आपकी पुत्री काली को अपनी धर्मपत्नी बनाने के लिये याचना कर रहे हैं। इसी निमित्त से हम लोग यहाँ आये हुए हैं।' हिमालय ने अपने जनों से मन्त्रणा की। सबने शङ्कर के साथ काली के विवाह का प्रफुल्ल मन से समर्थन किया। हिमवान् की पत्नी मेना ने कहा—'शैलराज, पितरों ने इसी हेतु यह कन्या मुझे प्रदान की है। शङ्कर के द्वारा इससे उत्पन्न हुआ पुत्र ही दैत्यशिरोमणि महिष तथा तारक का वध करेगा।'[१] पत्नी मेना के अभिमत को सुनते ही हिमालय ने शङ्कर के लिये बेटी का वाग्दान कर दिया। सप्तर्षियों ने तीसरे दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में विवाह की तिथि निर्धारित कर हिमालय से विदा ली। उन लोगों ने शङ्कर को सारा समाचार दिया। शङ्कर सुर और गणों की बारात लेकर हिमालय के राज-प्रासाद पहुँचे। वहाँ बड़े धूम-धाम से शास्त्रीय विधि के अनुसार शङ्कर और पार्वती का विवाह सम्पन्न हुआ।[२]

विवाह की क्रिया पूरी हो जाने पर मालिनी (मालिन) ने अपने नेग के लिये शङ्कर का चरण पकड़ा । इसी अन्तराल में ब्रह्मा ने पार्वती के अनुपम मुख को निहारा। सौन्दर्य की आभा प्रभा से प्रभावित ब्रह्मा का वीर्य बालुओं के समूह में स्खलित हो गया। उसी से अट्ठासी सहस्र बालखिल्य महर्षि उत्पन्न हो गये।[३]

तदनन्तर हर कौतुकागार में गये। वहाँ रात्रिभर वे काली के साथ रमण में निरत रहे । प्रातः उठने पर हिमालय से बिदाई लेकर शङ्कर अपने वासस्थान मन्दराचल पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने यथायोग्य पूजा कर देवों को सादर विदा किया।

शङ्कर काली के साथ चिरकाल तक रमण करते रहे। एक बार उन्होंने उपहास में पार्वती को 'काली' कह दिया। इससे वे दुःखी और क्रुद्ध हुईं । शङ्कर से अनुज्ञा लेकर गौरी बनने के लिये वे तपस्यार्थ हिमालय पर्वत पर चली गईं। वहाँ पहुँचकर काली ने अपनी सखियों जया-विजया आदि का स्मरण किया।

---

१. यस्तस्यां भूतपतिना पुत्रो दत्तो भविष्यति ।
स हनिष्यति दैत्येन्द्रं महिषं तारकं तथा ।। *वामनमहापुराण,* ५२/५६

२. वामनमहापुराण में शङ्कर के स्वरूप को देखकर मेना के दुःखी होने की बात नहीं कही गई है।

३. तदा कालीमुखं ब्रह्मा ददर्श शशिनोऽधिकम् ।
तद्दृष्ट्वा मोहमगमच्छुक्रच्युतिमवाप च ।। *वामन पु०,* ५३/५६-५७
ततोऽब्रवीद्धरो ब्रह्मन्न द्विजान् हन्तुमर्हसि ।
अमी महर्षयो धन्या बालखिल्याः पितामह ।। *वही,* ५३/५८

स्मरण करते ही वे सेवा में आकर उपस्थित हो गईं। काली एक पैर के बल पर खड़ी होकर भीषण तप में रत हो गईं। उसी समय हिमालय के गहन वन से निकल कर एक व्याघ्र पार्वती के समक्ष आकर स्थित हो गया। वह निर्निमेष नेत्र से पार्वती को देख रहा था। वह सोच रहा था कि जब यह गिर पड़ेंगी तब मैं इन्हें साहाय्य प्रदान करूँगा । पार्वती पर उसकी दृष्टि स्थिर हो गई थी। पूरे सौ वर्ष पूर्ण होने पर ब्रह्मा वरदान देने के लिये पधारे। काली ने विधाता से कहा—'पहले इस व्याघ्र को वरदान दें। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।' ब्रह्मा ने व्याघ्र को वरदान दिया—'तुम देवी के गणपति बनोगे। महादेवी और शङ्कर में तुम्हारी अविचल भक्ति होगी। तुम्हें कोई जीत नहीं सकेगा और तुम बड़े धार्मिक बनोगे।'[1]

ब्रह्मा ने व्याघ्र को वर देने के अनन्तर काली से वर माँगने के लिये कहा। काली ने अपने शरीर कर रंग सुवर्णवर्ण होने का वर माँगा। ब्रह्मा ने तथास्तु कहा। फिर क्या था ? काली ने अपने शरीर के काले कोश का परित्याग कर दिया। उनके शरीर का रङ्ग कमल-किञ्जल्क जैसा बन गया। वे अब गौरी हो गईं। उन्होंने अपने शरीर से जिस कोश का परित्याग किया था उससे 'कौशिकी' देवी का प्राकट्य हो गया। उस 'कौशिकी' को सहस्राक्ष इन्द्र ने ले जाकर विन्ध्याचल पर्वत पर प्रतिष्ठित किया और कहा—'देवि, आप यहाँ विराजमान रहें। देवता आपकी पूजा करेंगे।' 'विन्ध्यवासिनी' इसी नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। पुनः विन्ध्यवासिनी को सिंह वाहन प्रदान कर इन्द्र स्वर्ग चले गये। उमा भी गौरी बनकर सादर सविनय शिव की सेवा में पुनः उपस्थित हुईं ।[2]

मत्स्यमहापुराण

मत्स्यमहापुराण के १५३वें अध्याय में पार्वती-प्रसङ्ग वर्णित है। इस एक ही विशालकाय अध्याय में पार्वती की प्रायः पूरी कथा समेट कर भर दी गई है। यह एक आश्चर्य जनक बात है कि मत्स्यमहापुराण और पद्ममहापुराण—दोनों में पार्वती-कथा न केवल समान रूप से वर्णित है, अपितु समान शब्द, समान भाव तथा समान छन्दों में भी वर्णित है । परिवर्तन के लिये अत्यन्त स्वल्प स्थान सुलभ है। आकार-प्रकार भी दोनों स्थानों में एक जैसा ही है।

ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि किसने किस का अनुकरण किया है। कौन महापुराण उत्तमर्ण है और कौन अधमर्ण है। यह एक अलग शोध का विषय है। किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से, सामान्य रूप से, विचार करने पर

---

१. ततः प्रादाद्वरं ब्रह्मा व्याघ्रस्याद्भुतकर्मणः ।
गाणपत्यं विभौ भक्तिमजेयत्वं च धर्मिताम् ॥ *वामनमहापुराण, ५४/२०*

२. वामनमहापुराण, अ० ५४

यही प्रतीत होता है कि मत्स्यपुराण पूर्ववर्ती है और पद्मपुराण उत्तरवर्ती। उदाहरण के लिये एक श्लोक उद्धृत किया जा रहा है—

(क) प्रकृत्या स तु दिग्वासा भीमः पितृवनेशयः ।
कपाली भिक्षुको नग्नो विरूपाक्षः स्थिरक्रियः ॥

मत्स्यपु०, अ० १५३/३३१

(ख) प्रकृत्या तु स दिग्वासा भीमो भस्मास्थिभूषणः ।
कपाली भिक्षुको नग्नो विरूपाक्षोऽस्थिरक्रियः ॥

पद्मपु०, सृष्टिखण्ड, अ०४५, श्लोक ३२९

यहाँ श्लोक के चरमांश 'स्थिरक्रियः' और 'अस्थिरक्रियः' पदों पर विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि 'स्थिरक्रियः' का ही सुधरा हुआ रूप 'अस्थिरक्रियः' है और यही इस प्रसङ्ग में अधिक सङ्गत भी है। इससे इङ्गित होता है कि पद्मपुराण मत्स्यपुराण का अधमर्ण है। इसकी यह अधमर्णता अन्य कथाओं में भी खोजी जा सकती है, देखी जा सकती है।

देवीभागवत

त्रिलोकी तारकासुर से सन्त्रस्त थी। ब्रह्मा ने उसे वरदान दे रक्खा था— 'भगवान् शङ्कर का औरस पुत्र ही तुम्हें मार सकेगा।' सती मर चुकी थीं। पार्वती का प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ था। ऐसी स्थिति में शङ्कर के पुत्र की कल्पना ही नहीं हो सकती थी। फलतः देवमण्डली भयभीत हो गिरि-गुहा की शरण ली।

सन्त्रस्त एवं चिन्तित देव-गण, भगवान् विष्णु के साथ, हिमालय पर भगवती दुर्गा की आराधना करने लगे। कुछ समय व्यतीत होने पर जगदम्बा प्रसन्न हो प्रकट हो गईं। उस दिन चैत्र शुक्लपक्ष की नवमी तिथि थी और दिन था— शुक्रवार। देवों ने विनम्रकन्धर हो देवी की दिव्य स्तुति की और उनसे अपने कष्ट की करुण-गाथा कही। उत्तर में जगदम्बा ने कहा—'मेरी शक्ति 'गौरी' हिमलय के घर आविर्भूत होगी। उस शक्ति के साथ शिव का सम्बन्ध स्थापित करने के लिये आप लोगों को प्रयास करना चाहिये। गौरी ही आप लोगों का कार्य सम्पन्न करेगी। इस सम्बन्ध में हिमालय का परम कर्तव्य है कि वह भक्ति भरे मन से मेरी उपासना करे। फिर उसके घर गौरी का आविर्भाव अवश्य होगा।'

देवी की बात हिमालय भी सुन रहे थे। उसे सुनकर उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। उसके बाद देवी ने अपने भावी पिता हिमालय को विविध भाँति से ज्ञानोपदेश दिया। जिसे पाकर वह कृतार्थ हो गये।[१] इस ज्ञानोपदेश के साथ ही देवी भागवत का सप्तम स्कन्ध समाप्त हो जाता है और फिर कथा दूसरी ओर मुड़ जाती है।

१. देवीभागवत, ७/३१-४०

बलराम-कथा

ब्रह्ममहापुराण

देवकी के उदर में, सप्तम गर्भ के रूप में, शेषावतार बलराम जी आये। भगवान् के आदेश से माया ने देवकी के गर्भ को खींचकर रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया। रोहिणी वसुदेव की ही पत्नी थीं। वे उन दिनों, कंस के भयवश, नन्द के गोकुल में निवास करती थीं। समय आने पर वहीं बलराम का जन्म हुआ। वे कृष्ण की बाल-लीलाओं में उनके सहचर थे। वत्सचारण एवं गोचारण भी उन्होंने कृष्ण के साथ-साथ किया था।

वृन्दावनलीला के अनन्तर जब बलराम और कृष्ण कंस के धनुर्याग में सम्मिलित हुए थे उस समय मथुरा के महान् मल्ल मुष्टिक का वध बलराम ने ही किया था । बार-बार मथुरा पर आक्रमण करने वाले जरासन्ध को पराजित करने, उसकी विशाल वाहिनी का विध्वंस करने में बलरामजी की प्रमुख भूमिका थी।

द्वारका-निर्माण के अनन्तर बलराम एक बार अपने बन्धुओं से मिलने वृन्दावन गये। उन्होंने वहाँ गोपियों के साथ वन-विहार किया। उस समय विहार के लिये आह्वान करने पर यमुना जब बलराम के पास नहीं गईं तो उन्होंने उन्हें हल से खींचा। इसपर यमुना जी विकल हो बलराम की इच्छा का अनुवर्तन कीं।[१] द्वारका लौटने पर रेवती के साथ बलराम का विवाह हुआ।

अनिरुद्ध की विवाह-विधि पूरी होने पर द्यूत-प्रसङ्ग में अन्याय से क्रुद्ध हुए बलदेव जी ने रुक्मी का वध किया था।[२] ब्रह्ममहापुराण के वर्णन से प्रतीत होता है कि रुक्मी की पौत्री के विवाह के अनन्तर बाण-पुत्री ऊषा का अनिरुद्ध के साथ विवाह हुआ था। कृष्ण-बाण के महासंग्राम के अवसर पर भी बलराम ने अपने अद्भुत बल-कौशल का प्रदर्शन किया था। जाम्बवती-सुत साम्ब और दुर्योधन-पुत्री लक्ष्मणा का विवाह बलराम के अद्भुत शौर्य का प्रतीक है । उनके द्वारा हस्तिनापुर का यमुना की ओर कर्षण उनकी निर्भीकता और अतुलनीय बलवत्ता का स्मरण आज भी कराता है। नरकासुर के मित्र द्विविद वानर का वध बलभद्र के मुशल का ही विलास था।[३]

---

१. ब्रह्ममहापुराण, अध्याय - ९०
२. वही, अध्याय ९१
३. ब्रह्ममहापुराण, अध्याय - १००

ब्राह्मणों के शाप के प्रभाव से प्रभास में यदुवंशियों के विनाश के अनन्तर बलराम ने भी इस संसार का परित्याग कर स्वलोक-गमन किया था।[1]

पद्ममहापुराण

ब्रह्मादि देवों की प्रार्थना से अवतार लेने के लिये तत्पर भगवान् विष्णु ने अपनी माया से कहा—'देवकी का सप्तम गर्भ अनन्त (शेषनाग) का अंश होगा। उसे खींच कर तुम देवकी की सौत रोहिणी के उदर में स्थापित कर देना। उसके बाद देवकी के अष्टम गर्भ से मेरा अंश आविर्भूत होगा।'

समय आने पर भगवान् की प्रेरणा से देवकी का सप्तम गर्भ अनन्त के अंश से प्रकट हुआ। वह गर्भ जब बढ़कर कुछ पुष्ट हुआ तो माया देवी ने उसे खींच कर रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया। गर्भ का संकर्षण करने (खींचने) से उस बालक का जन्म हुआ था। अत: संसार में वह 'संकर्षण' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भाद्रपद के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में, शुभ लग्न का उदय होने पर, रोहिणी देवी ने भगवान् सङ्कर्षण को जन्म दिया।[2] बलराम जी व्रज की प्राय: सभी लीलाओं में कृष्ण के साथ थे। गोचारण करते हुए उन्होंने प्रलम्बासुर का वध किया था।

व्रज से कृष्ण की मथुरा-यात्रा तथा वहाँ की लीलाओं में भी बलराम कृष्ण के साथ-साथ थे। क्रूर कंस की सभा में जब कृष्ण चाणूर कर मर्दन कर रहे थे तो बलराम जी ने मुष्टिक की इहलीला समाप्त की थी। कृष्ण के द्वारा कंस के मारे जाने पर जब उसका छोटा भाई सुनामा लड़ने के लिये आया तो बलराम जी ने मुक्के के प्रहार से ही उसके प्राणों को ले लिया था।

गुरु सान्दीपनि के यहाँ शिक्षा, जरासन्ध की पराजय आदि कार्यों के अनन्तर जब कृष्ण-बलराम द्वारका में निवास करने लगे तब वहाँ एक दिन इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न रैवत नामक एक राजा आये। उनकी रेवती नामक एक कन्या थी। वह सारे शुभ लक्षणों से सम्पन्न थी। रैवत ने बड़ी प्रसन्नता के साथ अपनी कन्या का विवाह बलराम जी के साथ कर दिया। बलराम जी ने वैदिक विधि के अनुसार रेवती का पाणि-ग्रहण किया।

---

१. ब्रह्ममहापुराण में वर्णित बलदेव की कथा में कुछ नवीनता नहीं है। यह कथा यहाँ भी अन्य वैष्णव-पुराणों की भाँति वर्णित है।

२. यहाँ महीनों का नाम शुक्लपक्ष से मास का आरम्भ मानकर दिया गया है। जहाँ कृष्णपक्ष से महीनों का आरम्भ होता है, वहाँ भाद्रमास का कृष्णपक्ष आश्विन का कृष्णपक्ष होगा। श्रावण का कृष्णपक्ष भाद्र का कृष्णपक्ष होगा। अत: बलदेव जी की जन्माष्टमी आश्विन कृष्ण पक्ष में मनानी चाहिये और कृष्ण की जन्माष्टमी भाद्र कृष्ण पक्ष में।

विदर्भराजकुमारी रुक्मिणी का सन्देश मिलने पर श्रीकृष्ण के साथ बलराम भी कुण्डिनपुर उनका हरण करने गये थे। श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण की बेला में जब जरासन्ध आदि दुर्धर्ष राजाओं के साथ रुक्मी ने विशाल सेना लेकर कृष्ण का पीछा किया तो यह महाबाहु बलभद्रजी ही थे जिन्होंने रथ से कूद कर अपने आयुध हल और मूसल के दनादन प्रहार से शत्रुशैन्य को मथ कर विद्रावित किया था, युद्ध-भूमि से खदेड़ा था।

ऊषा-अनिरुद्ध की प्रणय-लीला की बेला में जब बाणासुर ने अनिरुद्ध को नागपाश से बाँधकर निरुद्ध कर दिया था, तब श्रीकृष्ण ने यादवों की विशाल वाहिनी के साथ बाण की राजधानी शोणितपुर पर आक्रमण किया। उस समय शोणितपुर की रक्षा में नियुक्त शङ्कर के साथ कृष्ण का अविस्मरणीय युद्ध हुआ था। उस युद्ध में बलराम ने अपने मुसल के प्रहार से गणेश का एक दाँत तोड़ दिया था। इसी से वे एकदन्त कहे जाते हैं।[१]

मुनियों के शापवश जब सब युदवंशी वीर परस्पर लड़ मरे तब बलरामजी भी अपना श्रीविग्रह छोड़कर अपने स्वरूप में लीन हो गये। उस समय रेवती देवी ने बलराम जी के शरीर को अङ्क में लेकर चिता की अग्नि में प्रवेश किया और दिव्य विमान पर बैठकर वे अपने स्वामी के निवास-स्थान दिव्य सङ्कर्षण लोक में चली गईं।[२]

विष्णुमहापुराण

विष्णुमहापुराण में बलराम की कथा स्वतन्त्र, स्वल्प, किन्तु प्रायः कृष्ण-कथा की पूरिका है। इस पुराण में वर्णित बलराम की कथा भागवत की कथा से अधिकांश से साम्य रखती है। फिर भी इसके कुछ अंश का निरूपण यहाँ किया जा रहा है।

कालयवन के पतन के बाद श्रीकृष्ण और बलराम द्वारकावासी बन गये। सम्पूर्ण विग्रह शान्त हो जाने पर बलदेव जी बन्धु-बान्धवों के दर्शन की उत्कण्ठा से नन्दजी के गोकुल में पधारे। वहाँ वे गोप-गोपियों से सप्रेम मिले, उनके साथ वन-विचरण किया, वारुणी मदिरा का पान किया और फिर किया यमुना-विहार भी। विहार के लिये जब यमुना बलराम के पास न आईं तो उन्होंने उन्हें हल के अग्रभाग से खींचा। फलतः यमुना को अपना मार्ग वक्र कर उनके पास वन में जाना पड़ा।[३]

---

१. विस्तार के लिये देखिये पीछे पद्ममहापुराण में 'ऊषा-कथा'।
२. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय-२७९
३. साकृष्टा सहसा तेन मार्गं सन्त्यज्य निम्नगा।
यत्रास्ते बलभद्रोऽसौ प्लावयामास तद्वनम्॥ *विष्णुमहापुराण,* ५/२५/११

रुक्मिणी के हरण की बेला में विपक्षियों की उद्वेलित विशाल वाहिनी को बलभद्र जैसे वीर ने ही सम्भाला था, पराजित किया था।[१]

कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न ने अपने मामा रुक्मी की सुन्दरी कन्या से विवाह किया था। उससे उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम था—अनिरुद्ध। अनिरुद्ध का विवाह रुक्मी की पौत्री के साथ हुआ था। उस विवाह में सम्मिलित होने हेतु बलराम आदि यदुवंशी रुक्मी की राजधानी 'भोजकट' गये थे। कन्यादान आदि के बाद रुक्मी ने बलराम कों द्यूत-क्रीडा के लिये बुलाया। उस क्रीडा में रुक्मी ने छल किया। फलतः बलराम जी क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने जुआ खेलने के पाशों के प्रहार से ही रुक्मी का वध कर दिया।[२] उसके पक्षावलम्बी कई राजाओं का वध भी वहाँ बलराम जी ने किया। इस दृश्य को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण कुछ भी नहीं बोले। वे वर-वधू को लेकर द्वारका चले आये।

अनिरुद्ध-हरण के प्रसङ्ग में जब कृष्ण बाणासुर का रोमहर्षक संग्राम चल रहा था, उस समय बलराम ने अपने हल और मुसल के प्रयोग से विपक्षी सैन्य को मथ कर रख दिया था।

एक बार की घटना है। जाम्बवती-नन्दन साम्ब ने स्वयंवर के अवसर पर दुर्योधन की पुत्री का बल पूर्वक हरण कर लिया। तब महावीर कर्ण, दुर्योधन, भीष्म और द्रोण आदि ने युद्ध में उन्हें हराकर बाँध लिया। समाचार मिलने पर यदुवंशी क्रुद्ध हो उठे। उन लोगों ने आक्रमण कर उन्हें मारने के लिये बड़ी तैयारी की।[३] किन्तु महाबली बलराम ने सबको रोक दिया। वे अकेले ही हस्तिनापुर पहुँचे। कौरवों ने उनका महान् आदर सत्कार किया। बलराम ने उनसे साम्ब को सद्यः छोड़ देने की बात कही। इस पर कुपित हो कौरवों ने बलराम से बहुत अपमानजनक बातें कहीं। उनकी बातों को सुनकर वे कुपित हो हस्तिनापुर को हल से खींचकर गङ्गा में डुबा देना चाहे। हल से खींचते ही हस्तिनापुर डगमगाने लगा। कौरव भयभीत हो उठे। वे बलराम की शरण में आये और बहुत से उपहारों के साथ वधूसमेत साम्ब को उन्हें समर्पित कर दिये।

आज भी हस्तिनापुर गङ्गा की ओर कुछ झुका हुआ-सा दिखलाई देता है।

---

१. श्वोभाविनि विवाहे तु तां कन्यां हृतवान् हरिः ।
विपक्षभारमासज्य रामादिष्वथ बन्धुषु ॥ *विष्णुमहापुराण,* ५/२६/६

२. ततो बलः समुत्थाय कोपसंरक्तलोचनः ।
जघानाष्टापदेनैव रुक्मिणं स महाबलः ॥ *वही,* ५/२८/२३

३. तच्छ्रुत्वा यादवाः सर्वे क्रोधं दुर्योधनादिषु ।
मैत्रेय चक्रुः कृष्णश्च तान्निहन्तुं महोद्यमम् ॥ *वही,* ५/३५/६

यह बलराम जी के बल और शूरता-वीरता का परिचय प्रदान करने वाला उनका प्रभाव ही है।[१]

नरकासुर के वध से कुपित द्विविद नामक वानर ने महान् उत्पात मचा रक्खा था। बलराम जी ने इसका भी वध किया था।

ऋषियों के शाप-प्रभाव से प्रभास क्षेत्र में यदुवंशी परस्पर लड़कर विनाश को प्राप्त हो गये। उस समय कृष्णचन्द्र और उनके सारथी दारुक को छोड़कर और कोई अवशेष न बचा। उस समय वहाँ उन दोनों ने घूमते हुए देखा कि श्रीबलरामजी एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं और उनके मुख से एक बहुत विशाल सर्प निकल रहा है। निकल कर वह समुद्र की ओर गया और फिर सागर में समा गया। इस प्रकार बलराम जी का प्रयाण देखकर कृष्ण ने भी धरा-मण्डल को छोड़ने का मन बनाया ।[२]

श्रीमद्भागवतमहापुराण

सहस्रवदन शेष स्वयंप्रकाश हैं। वे भगवान् अनन्त की कला होने के कारण अनन्त हैं। यह अनन्त ही भगवान् कृष्ण का प्रिय कार्य करने के लिये उनके बड़े भाई बलराम के रूप में अवतार ग्रहण किये थे।[३]

जब कंस ने एक-एक करके देवकी के छः बालकों का वध कर दिया तब भगवान् के अंशस्वरूप श्रीशेष जी देवकी के गर्भ में पधारे। यह देवकी के सातवें गर्भ थे। शेष को अनन्त भी कहते हैं। इस गर्भ के आने से देवकी प्रसन्न थी। किन्तु कंस इसका भी वध कर देगा—यह सोचक वह उद्विग्न भी थी। सर्वव्यापी ईश्वर ने इस स्थिति को जाना। अतः उन्होंने अपनी योगमाया को आदेश दिया—'देवि, तुम व्रज में जाओ। वहाँ नन्द बाबा के गोकुल में वसुदेव की पत्नी रोहिणी निवास करती हैं । उनकी और भी पत्नियाँ कंस के भय से गुप्त स्थानों में रह रही हैं। सम्प्रति मेरा वह अंश जिसे शेष कहते हैं, देवकी के गर्भ में विराजमान है। उसे वहाँ से निकाल कर तुम रोहिणी के उदर में स्थापित कर दो। देवकी के गर्भ से खींचे जाने के कारण शेष जी को संसार में लोग 'संकर्षण' कहेंगे। वे लोक क्रा

---

१. अद्याप्याघूर्णिताकारं लक्ष्यते तत्पुरं द्विज ।
एष प्रभावो रामस्य बलशौर्योपलक्षणः ।। *विष्णुमहापुराण, ५/३५/३७*

२. विष्णुमहापुराण, ५/३७/५३-५६

३. वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट् ।
अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ।। *श्रीमद्भागवत १०/१/१/२४*

रञ्जन करने के कारण 'राम' भी कहलायेंगे। बलशालियों में श्रेष्ठ होने के कारण 'बलभद्र' नाम से भी उनकी ख्याति होगी।[१]

योगमाया ने भगवान् की आज्ञा को शिरोधार्य किया। फिर वह भूतल पर गई और वह सब किया जैसा कि भगवान् ने उसे आदेश दिया था।[२] जब योगमाया ने देवकी का गर्भ ले जाकर रोहिणी के उदर में रख दिया, तब दु:खी पुरवासी कहने लगे—'हाय, बेचारी देवकी का यह गर्भ नष्ट ही हो गया।'

कृष्ण की शिशु-क्रीडा, बाललीला, वत्सचारण और गोचारण आदि में बराबर बलराम साथ में थे। कृष्ण की कुछ ऐसी भी लीलाएँ हैं जिनसे बलभद्र पृथक् थे।[३] असुरवध-लीला में भी बलराम कृष्ण के सहगामी थे। उन्होंने खररूपधारी धेनुक और प्रलम्ब का वध किया था। कंस की मथुरा की सभा में भी इन्होंने मल्लयुद्ध में मुष्टिक को पछार-पछार कर प्राणों से वियुक्त कर दिया था।[४]

मथुरा की व्यवस्था बना देने के बाद बलराम भी, कृष्ण के साथ, सान्दीपनि मुनि के पास, विद्याध्ययन करने उज्जयिनी गये थे। मथुरा पर बार-बार आक्रमण करने वाले जरासन्ध को पराजित करने में बलराम का अविस्मरणीय योगदान रहा।[५] जरासन्ध के बार-बार आक्रमण से सन्त्रस्त प्रजा-जन की रक्षा के लिये कृष्ण ने समुद्र में द्वारका नगरी बसाई। दोनों बन्धु वहीं आकर निवास करने लगे। उसी समय आनर्तदेश के राजा रैवत जी ने अपनी रेवती नाम की कन्या का विवाह बलराम के साथ कर दिया था। इस विवाह के प्रेरणादायक थे स्वयं भगवान् ब्रह्मा जी।[६]

रुक्मिणी के सन्देश को पाकर श्रीकृष्ण उनके हरणहेतु कुण्डिन पुर के लिये अकेले ही चल पड़े। बलराम को जब इसका पता चला तो वे यादवों की

---

१. गर्भसङ्कर्षणात् तं वै प्राहुः सङ्कर्षणं भुवि ।
रामेति लोकरमणाद् बलं बलवदुच्छ्रयात् ।। *श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/१/२/१३*

२. सन्दिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ।
प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत् तथाकरोत् ।। *श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/१/२/१४*

३. अघासुरवध, कालीयदमन और रासलीला आदि ऐसी ही लीलाएँ हैं। देखिये श्रीमद्भागवत, दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध।

४. श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/१/४४/२४-२६

५. श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/२/५०/३१-३३

६. आनर्ताधिपतिः श्रीमान् रैवतो रेवतीं सुताम् ।
ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद् बलायेति पुरोदितम् ।। *श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/२/५२/१५*

विशाल वाहिनी लकर लघुबन्धु की सहायता के लिये कुण्डिनपुर जा पहुँचे।[१] उन्हें यह ज्ञात था कि शिशुपाल के पक्ष में वहाँ उनके जरासन्ध आदि प्राचीन सभी शत्रु समवेत हैं। उनकी यह आशंका उस समय सत्य सिद्ध हुई जब कृष्ण रुक्मिणी का हरण कर द्वारका के लिये प्रस्थान किये। उस समय शत्रुओं की सागरसदृश सेना ने कृष्ण पर आक्रमण कर दिया। किन्तु बलशाली अग्रज बलराम के रहते कृष्ण का बाल भी बाँका न हुआ। सभी शत्रु पराजित हुए। कृष्ण रुक्मिणी को लेकर सुरक्षित द्वारका पधारे।

यदि कृष्ण की भगवत्ता को छोड़ दें तो निःसङ्कोच यह कहा जा सकता है कि यदि बलराम न होते तो कृष्ण द्वारा सफल सुरक्षित रुक्मिणी-हरण न हो पाता। धन्य है बलराम का बन्धुस्नेह! ऐसा स्नेह आज के संसार में दुर्लभ है, अति कठिन है।

रुक्मिणी के बड़े भाई रुक्मी का भगवान् कृष्ण के साथ प्राचीन वैर-भाव था। फिर भी उसने अपनी अनुजा रुक्मिणी को प्रसन्न करने के लिये अपनी पौत्री रोचना का विवाह रुक्मिणी के पौत्र, अपने नाती (दौहित्र) अनिरुद्ध के साथ कर दिया।[२] इस विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम जी, रुक्मिणी जी, प्रद्युम्न और साम्ब आदि सभी द्वारिकावासी भोजकट में पधारे थे। विवाह की सारी क्रिया सकुशल समाप्त हो गई। कुछ राजाओं के बहकावे में आकर रुक्मी ने बलराम जी को द्यूत-क्रीडा के लिये आमन्त्रित किया। खेल-ही-खेल में लोगों ने बलराम को क्रुद्ध कर दिया। फिर क्या था? बलशाली बलराम ने मुद्गर उठाया और उस माङ्गलिक सभा में ही रुक्मी को मार डाला। उन्होंने अन्य शत्रुओं का भी अङ्ग-भङ्ग कर दिया। भयभीत सभी शत्रु भाग खड़े हुए।[३] अन्त में दुलहन रोचना के साथ सारी बारात द्वारका लौट आई।

बलराम जी कभी-कभी द्वारका से व्रज जाते थे। गोपियों के साथ यमुना में विहार भी किया करते थे। वहाँ एक बार बलराम जी ने जल-क्रीडा करने के लिये

१. श्रुत्वैतद् भगवान् रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् ।
कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशङ्कितः ।
बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ।
त्वरितः कुण्डिनं प्रागाद् गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ *श्रीमद्भागवत, १०/२/५३/२०-२१*

२. दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः ।
रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ *श्रीमद्भागवत, १०/२/६१/२५*

३. अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ।
राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥ *वही, १०/२/६१/३८*

यमुना जी को पुकारा। यमुना ने बलराम की अवज्ञा कर दी । वे नहीं आईं । तब बलराम जी ने क्रोधपूर्वक अपने हल के अग्रभाग से उन्हें खींचा। उनके खींचने से यमुना जी का मार्ग वक्र हो गया।[१]

भगवान् श्रीकृष्ण ने भौमासुर का वध किया। भौमासुर को नरकासुर भी कहते हैं। इसपर उसका मित्र द्विविद नाम का वानर क्रुद्ध हो उठा। उसने भूतल पर विप्लव मचा देने की ठान ली। उससे लोग सन्त्रस्त हो उठे।

एक बार बलराम जी रैवतक पर्वत पर सुन्दरियों के मध्य विराजमान थे। वहाँ सङ्गीत की सुललित परम्परा चल रही थी । द्विविद ने इस दृश्य को देखा। उसने उत्पात मचाना प्रारम्भ किया। इस पर बलराम जी क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने साधारण-सा युद्ध कर उसे सर्वदा के लिये भूतल पर सुला दिया।

कौरवाधिपति दुर्योधन की एक बेटी थी। उसका नाम था—'लक्ष्मणा'। दुर्योधन ने बेटी के विवाह के लिये स्वयंवर का आयोजन किया। उसमें जाम्बवतीनन्दन साम्ब सम्मिलित हुए थे। उन्होंने स्वयंवर-स्थल से लक्ष्मणा का हरण कर लिया। आये हुए बड़े-बड़े वीर भी उनका कुछ न बिगाड़ सके। इस पर कौरव क्रुद्ध हुए। उन लोगों ने मिलकर युद्ध में साम्ब को पकड़ लिया। इसके बाद वे उन्हें तथा अपनी कन्या लक्ष्मणा को लेकर हस्तिनापुर लौट आये।

द्वारका में यदुवंशियों ने जब इस समाचार को सुना तो वे क्रुद्ध हो उठे। उन लोगोंने कौरवों पर आक्रमण करने की योजना बनाई। किन्तु बलराम जी इस बात से सहमत न थे। उन्होंने कुरुवंशियों और यदुवंशियों के युद्ध को उचित न समझा। अत: वे सबको शान्त कर एकाकी ही रथारूढ होकर हस्तिनापुर गये। वहाँ नगर में प्रवेश न कर वे बाहर ही उद्यान में रुक गये। कौरवों को बुलवाया और लक्ष्मणा सहित साम्ब को सादर विदा करने की बात कही। किन्तु मदमत्त कौरवों ने उनकी बात तिरस्कृत कर दी। उनसे अमर्यादित वचन कहा। उनके इस व्यवहार से बलराम कुपित हो उठे। उन्होंने अपना विश्वविजयी हल उठाया। उसके अग्रभाग के बार-बार प्रहार से हस्तिनापुर को हलचल कर उसे डुबोने के लिये गङ्गाजी की ओर खींचना प्रारम्भ किया।[२] नगर को हिलता देखकर कौरव घबड़ा उठे। वे सारा

---

१. अद्यापि दृश्यते राजन् यमुनाऽऽकृष्टवर्त्मना ।
बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥ *श्रीमद्भागवत, १०/२/६५/३१*

२. लाङ्गलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् ।
विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षित: ॥ *श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/२/६८/४१*

अभिमान छोड़कर बलराम की शरण में गये। अपराध के लिये क्षमा-प्रार्थना की। बलराम जी का कोप शान्त हो गया। उन्होंने अभय का वर दिया। फिर दुर्योधन ने प्रभूत पारिबर्ह (दहेज) प्रदान कर लक्ष्मणा और साम्ब की विदाई की। इस प्रकार बलराम जी वर-वधू को लेकर वापस द्वारका आये। सबके मन में प्रसन्नता हुई।

महाभारत का युद्ध सन्निकट था। बलरामजी न तो इस युद्ध में किसी का पक्ष लेना चाहते थे और न इसके साक्षी ही बनना चाहते थे। अत: वे तीर्थयात्रा के व्याज से भारत-भ्रमण के लिये निकल पड़े।[१] मार्ग में उनके हाथों उग्रश्रवा सूत का वध हो गया। ऋषियों की प्रार्थना पर वहीं उन्होंने महान् उत्पाती दानव इल्वल-पुत्र वल्वल का वध कर विपुल लोक-कल्याण किया। फिर वे तीर्थ-यात्रा पर आगे निकल गये।

महाभारत की समाप्ति पर जिस समय भीम-दुर्योधन का गदा-युद्ध चल रहा था। उस समय बलराम कुरुक्षेत्र में पधारे। वे चाहते थे कि गदा-विद्या के इन दोनों बेजोड़ महारथियों का युद्ध बन्द हो जाय ।[२] किन्तु जब बद्धवैर भीम और दुर्योधन ने उनकी बात न मानी तो अदृष्ट को ही बलवान् मानते हुये वे द्वारकापुरी चले गये।[३]

यदुकुमारों की उच्छृङ्खलता से कुपित ऋषियों ने यदुकुल के संहार का शाप दिया।[४] कृष्ण की आज्ञा से सभी यदुवंशी द्वारका छोड़कर प्रभास तीर्थ में गये। भावी बलवती होती है। वहाँ पहुँचकर यादवों ने जमकर मैरेयनामक मदिरा का पान किया। वे उन्मत्त हो उठे। उनकी बुद्धि हर ली गई। उनमें परस्पर भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। बलराम-कृष्ण ने भी उसमें भाग लिया। यदुकुल का संहार हो जाने पर बलराम जी ने सागर के तीर पर बैठकर एकाग्र चित्त से परात्मचिन्तन करते हुए अपनी आत्मा को आत्मस्वरूप में स्थिर कर लिया और माया-मानव-शरीर का परित्याग कर दिया ।[५]

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

मथुराधिपति कंस ने देवकी के छः पुत्रों का वध कर दिया। उसके सप्तम

---

१. श्रुत्वा युद्धोद्यमं राम: कुरूणां सह पाण्डवै: ।
तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थ: प्रययौ किल ।। *श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/२/७८/१७*

२. तस्मादेकतरस्येह युवयो: समवीर्ययो: ।
न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रण: ।। *श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०/२/७९/२७*

३. दिष्टं तदनुमन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ ।। *वही, १०/२/७९/२९*

४. श्रीमद्भागवत, ११/१/१२-१७

५. श्रीमद्भागवत, ११/३०/२६

गर्भ के आगमन पर भयाक्रान्त कंस अधिक सतर्क था। अत: उसने उसकी रक्षा का विशेष प्रबन्ध कर रक्खा था। किन्तु योगमाया ने उस गर्भ को खींचकर रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया। रोहिणी वसुदेव जी की प्रेयसी भार्या थीं। वे वसुदेव की आज्ञा से संकर्षण की रक्षा के लिये नन्द के गोकुल में चली गईं। कंस के भय के कारण उन्हें वहाँ से पलायन करना पड़ा था। रक्षकों ने राजा को यह सूचना दी कि देवकी का सातवाँ गर्भ गिर गया। उसी गर्भ से भगवान् अनन्त प्रकट हुए थे । उन्हें ही 'सङ्कर्षण' कहा जाता है।[१]

कुछ काल के व्यतीत होने के बाद रोहिणी ने नियत समय पर नन्द के भवन में श्रीकृष्ण के अंशस्वरूप पुत्र का प्रसव किया। बालक के अङ्गो की कान्ति तप्त सुवर्ण की भाँति गौर थी। नन्द और यशोदा ने बड़े उत्साह के साथ बालक का जन्मोत्सव मनाया। चतुर्दिक् प्रसन्नता का ही वातावरण था। नन्द के प्राङ्गण में क्रीडा करके उस शिशु ने सबका मनोरञ्जन प्रारम्भ किया। इसके अनन्तर श्री कृष्ण का आविर्भाव होता है।

फिर समय आने पर वसुदेव की प्रेरणा से यदुकुल के पुरोहित आचार्य गर्ग जी बालकों का नामकरण करने के लिये नन्द के भवन में पधारे। वहाँ उन्होंने कृष्ण के साथ ही बलराम का भी नाम-करण किया और उन नामों की व्याख्या प्रस्तुत की।[२]

कालान्तर में कृष्ण और ग्वालबालों के साथ बलराम जी भी वत्सपाल और गोपाल बने। आगे चलकर यह भी श्रीकृष्ण के साथ मथुरा पधारे। बलराम जी श्रीकृष्ण की सारी मथुरा की लीलाओं में सहभागी रहे, साथ रहे। गर्गाचार्य ने श्रीकृष्ण के साथ बलराम का भी यज्ञोपवीत-संस्कार करवाया था। फिर वे दोनों बन्धु उज्जयिनी-निवासी गुरु सान्दीपनि के यहाँ विद्या का अध्ययन किये। गुरुदक्षिणा में इन बन्धुओं ने गुरु के मृत पुत्र को लाकर समर्पित किय।। गुरु के हार्दिक आशीष को प्राप्त कर बलराम और कृष्ण पुन: वापस मथुरा आ गये। मथुरा आगमन के अनन्तर श्रीकृष्ण ने पश्चिम सागर में द्वारका पुरी का, देवशिल्पी विश्वकर्मा के द्वारा, निर्माण करवाया। वहीं रेवती के साथ बलराम का विवाह हुआ। रेवती ककुद्मी की बेटी थी। रुक्मिणी-कृष्ण के विवाह के अवसर पर बलराम ने अपने पौरुष का प्रदर्शन करते हुए जो अलौकिक दृश्य प्रस्तुत किया,

---

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, श्रीकृष्णजन्म खण्ड, अध्याय -७-९

२. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, श्रीकृष्णजन्म खण्ड, अध्याय-१३१.

वह सर्वदा अविस्मरणीय रहेगा। बलराम के विक्रम के सामने कुण्डिनपुर में शत्रुओं की एक भी न चली। वे भाग खड़े हुए। फलतः कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह सकुशल सम्पन्न हो गया और कृष्ण अपनी प्राणप्रिया को लेकर वापस द्वारका आये। उषा-अनिरुद्ध के विवाह के प्रसङ्ग में यादवों के साथ बाणासुर के युद्ध में भी बलराम का बल-विक्रम अवर्णनीय रहा।

भगवान् कृष्ण के साथ बलराम ने भी भूतल का परित्याग किया था।[१]

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्म खण्ड में बलराम की कथा यत्र-तत्र विकीर्ण है। उसे एकत्रित करके ही देखना होगा।

ब्रह्मा की कथा

शिवमहापुराण

महाप्रलय की बेला समाप्त होने वाली थी। नारायण जल में शयन कर रहे थे। इश्वरेच्छावश उस समय उनकी नाभि से एक महान् कमल की उत्पत्ति हुई। उसमें असंख्य नाल-दण्ड थे। सामान्य कमलों से यह उसकी एक विशेषता थी। उसकी कान्ति कर्णिकार (कनेर) पुष्प की भाँति थीं। वह अनन्त योजन लम्बा था। तत्पश्चात् परमेश्वर साम्ब सदाशिव ने अपने दक्षिण भाग के दशवें अङ्ग पर अमृत मल दिया। उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुए।[1] महेश्वर ने उन्हें माया से मोहित करके नारायण के नाभिकमल पर स्थापित कर दिया। ब्रह्मा ने नाभिकमल को ही अपना जनक माना। उनका श्रीविग्रह सुवर्णवर्ण था। वे चतुर्मुख थे। उनके विशाल भाल पर त्रिपुण्ड्र अङ्कित था।[2]

अपने वास्तविक जनक का पता लगाने के लिये ब्रह्मा ने बारह वर्षों तक कठोर तप किया। फलतः चतुर्भुज कमल-नयन नारायण का उन्हें दर्शन हुआ। बातों-ही-बातों में ब्रह्मा-विष्णु में विवाद छिड़ गया। इसी समय उन दोनों के मध्य एक महान् अग्निस्तम्भ (ज्योतिर्मय लिङ्ग) आविर्भूत हो गया।[3] ब्रह्मा और विष्णु ने क्रमशः ऊपर और नीचे जाकर उसके आदि-अन्त का पता लगाने के लिये बड़ा प्रयत्न किया। किन्तु उन लोगों को सफलता न मिल सकी। दोनों वापस अपने पूर्व स्थान पर आये। फिर ज्योतिर्लिङ्ग में लिङ्गरहित तत्त्व का ध्यान कर दोनों ने स्तुति की। तदनन्तर ब्रह्मा और विष्णु को शिव के शब्दमय शरीर का दर्शन हुआ। इस प्रकार वे शिव के कृपापात्र बने।[4]

श्रीमद्भागवत महापुराण

सृष्टि के पूर्व यह सम्पूर्ण विश्व जल में निमग्न था। उस समय श्रीनारायणदेव शेष-शय्या पर विराजमान थे। सकल प्राणियों के सूक्ष्म शरीर उनकी कुक्षि में

---

१. कृत्वा यत्नं पूर्ववत् स शङ्करः परमेश्वरः ।
दक्षिणाङ्गान्निजान्मां वै साम्बशम्भुरजीजनत् ॥ शिवमहापुराण, २/१/७/४

२. एवं पद्मात्ततो जज्ञे पुत्रोऽहं हेमगर्भकः ।
चतुर्मुखो रक्तवर्णस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः ॥ वही, २/१/७/६

३. एतस्मिन्नन्तरे लिङ्गमभवच्चावयोः पुरः ।
विवादशमनार्थं हि प्रबोधार्थं तथाऽऽवयोः वही, २/१/७/४७

४. विस्तार के लिये देखिये शिवमहापुराण की रुद्रसंहिता के सृष्टिखण्ड का सप्तम अध्याय।

स्थित थे। एक सहस्र चतुर्युगी व्यतीत होने पर पुन: उनमें सिसृक्षा प्रकट हुई। यह इच्छा ही उनकी चिच्छक्ति है। जिस समय भगवान् की दृष्टि अपनी कुक्षि में निहित लिङ्ग शरीरादि सूक्ष्मतत्त्व पर पड़ी, तब वह कालाश्रित रजोगुण से क्षुभित होकर, सृष्टि-रचना के निमित्त, उनके नाभि-देश के बाहर निकला । कर्म-शक्ति को जाग्रत् करने वाले काल के द्वारा नारायण की नाभि से प्रकट हुआ वह सूक्ष्म तत्त्व कमलकोश के रूप में सहसा ऊपर उठा और उसने सूर्य के समान अपने तेज से अपार जल-राशि को प्रकाशित कर दिया। सम्पूर्ण गुणों को प्रकाशित करने वाले उस सर्वलोकमय कमल में नारायण ही अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हो गये। तब उसमें से बिना पढ़ाये ही सम्पूर्ण वेदों को जानने वाले साक्षात् वेदमूर्ति श्रीब्रह्मा जी प्रकट हुए। इन्हें लोग स्वयंभू की संज्ञा से अभिहित करते हैं।

उस कमल की कर्णिका (गद्दी) पर बैठे हुए ब्रह्माजी को जब कोई लोक दिखाई नहीं दिया, तब वे विस्फारित नेत्रों से चतुर्दिक् ग्रीवा घुमा-घुमा कर देखने लगे। इससे उनके, चारों दिशाओं में, चार मुख हो गये। उस समय ब्रह्मा जी को अपना तथा लोकतत्त्वरूप कमल का कुछ भी रहस्य न जान पड़ा। वे सोचने लगे, 'इस कमल की कर्णिका पर बैठा हुआ मैं कौन हूँ ? यह कमल भी बिना किसी अन्य आधार के जल में कहाँ से उत्पन्न हो गया? इसके नीचे अवश्य कोई ऐसी वस्तु होनी चाहिये, जिसके आधार पर यह स्थित है ।' किन्तु प्रयास करने पर भी ब्रह्माजी को अपने आधारभूत तत्त्व का पता न चल सका। अन्ततः उन्होंने समाधि का सहारा लिया। उसी में उन्होंने शेष-शय्या पर विराजमान नारायण को अपने अन्त:करण में देखा। फिर तो विश्वरचना की इच्छावाले लोकविधाता ब्रह्मा भगवान् के नाभि-सरोवर से प्रकट हुआ वह कमल, जल, आकाश, वायु और अपना शरीर-केवल ये पाँच ही पदार्थ देखे। इनके अतिरिक्त उन्हें और कुछ भी दिखाई न पड़ा। रजोगुण से व्याप्त ब्रह्मा जी प्रजा की रचना करना चाहते थे। जब उन्होंने सृष्टि के कारण रूप केवल ये पाँच ही पदार्थ देखें, तब लोकरचना के लिये उत्सुक होने के कारण वे अचिन्त्यगति श्रीहरि में चित्त लगाकर उन परमपूज्य प्रभु की स्तुति किये ।

भगवान् ने उन्हें दर्शन दिया और सृष्टि करने का आदेश एवम् उपदेश भी दिया। तदनन्तर ब्रह्मा सृष्टि कार्य में प्रवृत्त हुए। सर्वप्रथम उन्होंने दशविध प्राकृत-वैकृत सृष्टि की। और पुन: क्रमशः सृष्टि की ओर अग्रसर होते गये।[१]

---

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण, ३/९-१०

मार्कण्डेयमहापुराण

सारा जगत् जल-मग्न था। भगवान् विष्णु योगनिद्रा का आश्रय लेकर जल के भीतर शयन कर रहे थे।[1] उनकी नाभि से एक विशाल कमल निकला। यह जल का भेदन करता हुआ ऊपर तक जा पहुँचा। नारायण की इच्छा से उस कमल पर ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हो गया। ब्रह्मा उसपर विराजमान थे। उसी समय विष्णु के कर्ण की मैल से दो असुर उत्पन्न हुए—मधु और कैटभ। वे ब्रह्मा को मारने के लिये दौड़े।[2] भयभीत ब्रह्मा कमलनाल के सहारे विष्णु के पास पहुँचे। योगनिद्रा की उन्होंने स्तुति की। वह देवी विष्णु पर से अपना प्रभाव समेट कर अलग खड़ी हो गई। विष्णु सर्प-शय्या छोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने फिर युद्ध करके मधु-कैटभ का संहार कर ब्रह्मा की रक्षा की। बस, इतनी-सी ही ब्रह्मा की कथा मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है।

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

जगत् शून्य था। अन्धकार चतुर्दिक् व्याप्त था। ब्रह्म श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कहीं कोई सत्ता न थी। जगत् को इस शून्य अवस्था में देख, मन-ही-मन सब बातों की आलोचना करके, अन्य किसी सहायक से रहित, एकमात्र स्वेच्छामय प्रभु ने स्वेच्छा से ही सृष्टिरचना आरम्भ की। सर्वप्रथम उन परम पुरुष श्रीकृष्ण के दक्षिण पार्श्व से जगत् के कारणभूत तीन मूर्तिमान् गुण प्रकट हुए। गुणों से महत्तत्त्वादि तत्त्वों का प्रादुर्भाव हुआ। तदन्तर श्रीकृष्ण से साक्षात् नारायण का प्राकट्य हुआ। उनका वर्ण श्याम था। वे नित्य तरुण थे। उनके शरीर पर पीताम्बर शोभा पा रहा था। वे चतुर्भुज थे। उनके चारों भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित थे।

तदनन्तर परमात्मा श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व से भगवान् शिव प्रकट हुए। उनकी अङ्गकान्ति निर्मल एवम् उज्ज्वल थी। वे पञ्चमुख थे। दिशाएँ ही उनके वसन थीं। वे त्रिनेत्र तथा चन्द्रमुकुट थे। त्रिशूल आदि उनके आयुध थे।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण के नाभिकमल से बड़े-बूढ़े महातपस्वी ब्रह्माजी प्रकट हुए। उन्होंने अपने हाथ में कमण्डलु ले रक्खा था। उनके वस्त्र, दन्त और केश सब धवल थे। वे चतुर्मुख थे। ब्रह्मा जी योगियों के ईश्वर, शिल्पियों के स्वामी

१. योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ।
आस्तीर्य शेषमभजत् कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ॥ *मार्कण्डेयमहापुराण, ८१/४९*

२. तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ।
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः । *वही, ८१-५०-५१*

तथा सबके जन्मदाता गुरु हैं। वे ही तपस्या के फलदाता और समग्र सम्पत्तियों के जन्मदाता हैं। वे ही स्रष्टा और विधाता हैं। वे ही चारों वेदों को धारण करते हैं। वे वेदज्ञ, वेदप्रकाशक और उनके पति (पालक) हैं। उनका शील-स्वभाव सुन्दर है। वे सरस्वती के कान्त, शान्तचित्त और कृपा की निधि है। श्रीकृष्ण ने उन्हें पत्नी के रूप में सावित्री को प्रदान किया है।

श्रीकृष्ण की आज्ञा से ब्रह्माजी ने सृष्टि का कार्य सम्भाला। उन्होंने सर्वप्रथम मेदिनी, पर्वत, समुद्र, द्वीप, मर्यादापर्वत, पाताल और स्वर्ग आदि का निर्माण किया। ब्रह्मा के द्वारा रचित सृष्टि अनित्य है।

संसार की सृष्टि की वृद्धि के लिये ब्रह्मा जी ने प्रयास प्रारम्भ किया। उसी क्रम में उनके पृष्ठ देश से अधर्म उत्पन्न हुआ। अधर्म के वाम पार्श्व से अलक्ष्मी उत्पन्न हुई। यह अलक्ष्मी ही अधर्म की पत्नी बनी। ब्रह्माजी के नाभिदेश से शिल्पियों के गुरु विश्वकर्मा हुए। तदनन्तर विधाता के मन से सनक, सनन्दन आदि चार कुमार आविर्भूत हुए। इसके बाद ब्रह्माजी के मुख से एक कान्तिमान् कुमार उत्पन्न हुआ। उसके साथ उसकी पत्नी भी थी। वह क्षत्रियों का बीज स्वरूप था। उसका नाम था—स्वायम्भुव मनु। उसके साथ जो सुन्दरी स्त्री थी उसका नाम शतरूपा था। वह अतिशय रूपवती और लक्ष्मी की कलास्वरूपा थी। पत्नी-सहित मनु सर्वदा विधाता की आज्ञा का पालन करने के लिये तत्पर रहते थे।

ब्रह्मा ने अपने सनक आदि मानस पुत्रों से सृष्टि करने की आज्ञा दी। किन्तु भगवत्परायण होने के कारण वे सभी तपस्यार्थ वन में चले गये। इससे जगत्पति विधाता को बड़ा क्रोध हुआ। कोपासक्त ब्रह्मा ब्रह्मतेज से जलने लगे। इसी समय उनके ललाट से ग्यारह रुद्र प्रकट हुए। उन्हीं में से एक को संहारकारी 'कालाग्नि रुद्र' कहा गया है। समस्त लोकों में केवल वे ही तामस या तमोगुणी माने गये हैं। स्वयं ब्रह्मा राजस हैं और शिव तथा विष्णु सात्त्विक कहे गये हैं। एकादश रुद्रों के नाम इस प्रकार हैं—महान्, महात्मा, मतिमान्, भीषण, भयङ्कर, ऋतुध्वज, उर्ध्वकेश, पिङ्गलाक्ष, रुचि, शुचि तथा कालाग्नि रुद्र।

ब्रह्मा जी सृष्टि के लिये सतत प्रयास करते रहे। उनके दायें कान से पुलस्त्य, बायें कान से पुलह, दक्षिण नेत्र से अत्रि, वाम नेत्र से क्रतु, नासिका छिद्र से अरणि, मुख से अङ्गिरा एवं रुचि, वाम पार्श्व से भृगु, दक्षिण पार्श्व से दक्ष, छाया से कर्दम, नाभि से पञ्चशिख, वक्षःस्थल से बोढु, कण्ठप्रदेश से नारद, स्कन्ध देश से मरीचि, रसना से वसिष्ठ, अधरोष्ठ से प्रचेता, वाम कुक्षि से हंस और दक्षिण कुक्षि से यति प्रकट हुए।

विधाता ने अपने इन पुत्रों को भी सृष्टि करने का आदेश दिया। पिता के

आदेश को सुनकर नारद ने कहा—'पिताजी, सनक आदि ज्येष्ठ पुत्रों को तो आपने तपस्यारूपी अमृतपान करने की आज्ञा दे दी और हमें अब विषय रूप विष पीने की आज्ञा दे रहे हैं, विवाहरूपी बन्धन में बाँधने का प्रयास कर रहे हैं। यह कहाँ का औचित्य है ? वस्तुत: कृष्णसेवा ही प्राणियों को भवसागर से तारने वाला प्रधान कर्तव्य है।'

नारद की बात सुनकर ब्रह्मा जी क्रोध से आरक्त हो उठे। अपने ही पुत्र को शाप देते हुए वे बोले—'नारद, मेरे शाप से तुम्हारे ज्ञान का लोप हो जायेगा। तुम कामिनियों के क्रीडामृग बन जाओगे। उनके वशीभूत हो जाओगे। तुम पचास कामिनियों के पति बनो। तुम गन्धर्वों में जन्म लेकर उनके श्रेष्ठ पुरुष होओगे। वीणा-वादन की कला एवं गायन-विद्या में सर्वश्रेष्ठ बनोगे। तुम्हारा यौवन सुस्थिर होगा। उस समय 'उपबर्हण' नाम से तुम्हारी ख्याति होगी। चिरकाल तक उन कामिनियों से विहार कर फिर दासीपुत्र बनोगे। तदनन्तर वैष्णवों के संसर्ग और उनकी जूठन खाने से तुम पुन: श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करके मेरे पुत्ररूप में प्रतिष्ठित होओगे। उस समय मैं पुन: तुम्हें दिव्य एवं पुरातन ज्ञान प्रदान करूँगा। इस समय मेरी आँख से अदृश्य हो जाओ और अवश्य ही नीचे गिरो।'[१]

पिता सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के शाप को सुनकर नारद ने कहा—'पिताजी, आपने मुझ निरपराध को शाप दिया है। अत: मैं भी आप को शाप दे रहा हूँ—'चतुरानन, मेरे शाप से सम्पूर्ण लोकों में कवच, स्तोत्र और पूजासहित आपके मन्त्र का निश्चय ही लोप हो जाय। पिताजी, जब तक तीन कल्प न बीत जाँय, तब तक तीनों लोकों में आप अपूज्य बनें रहें। तीन कल्पों के व्यतीत हो जाने पर आप पूजनीयों के भी पूजनीय होंगे। सुव्रत, इस समय आपका यज्ञ-भाग बन्द हो जाय। व्रत आदि में भी आपका पूजन न हो। केवल एक ही बात रहे—आप देवता आदि के वन्दनीय बने रहें।'

पुत्र के शाप को सुनकर ब्रह्मा शान्त भाव से बैठे रहे। उसके बाद उन्होंने कुछ नहीं कहा। हंस, यति, अरणि, बोढु, पञ्चशिख, अपान्तरतमा, तथा सनकादि इन सबको छोड़कर अन्य सभी ब्रह्मकुमार, जिनकी संख्या बहुत अधिक थी, सदा सांसारिक कार्यों में संलग्न हो प्रजा की सृष्टि करके गुरु ब्रह्मा की आज्ञा का पालन करने लगे। इस प्रकार ब्रह्मा की सृष्टि का क्रम आगे बढ़ा और निरन्तर बढ़ता ही गया।

इस प्रकार स्वयं प्रजापति ब्रह्मा अपने पुत्र नारद के शाप से अपूज्य हो गये। यही कारण है कि विद्वान् व्यक्ति ब्रह्मा जी के मन्त्र की उपासना नहीं करते।[२]

---

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, ब्रह्मखण्ड, ८/४७-४८

२. वही, अध्याय ८/६२-६५

मत्स्यमहापुराण

त्रिगुणात्मक प्रकृति के तीनों गुणों में (ईश्वर की सिसृक्षा से) क्षोभ उत्पन्न होने पर तीन देवता उत्पन्न होते हैं। इन देवों की मूल मूर्ति तो एक ही है, किन्तु वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीन देवताओं के रूप में विभक्त हो जाती है।[१] तदनन्तर प्रकृति से प्रादुर्भूत चतुर्विंशति तत्त्वों तथा पुरुष को लेकर ब्रह्मा ने जगत् की रचना की है।

जब ब्रह्मा ने जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से, हृदय में सावित्री का ध्यान करके, तपश्चरण प्रारम्भ किया तब जप करते हुए उनका निष्पाप शरीर दो भागों में विभक्त हो गया। उनमें आधा भाग स्त्री-रूप और आधा पुरुषरूप हो गया। वह स्त्री सरस्वती, 'शतरूपा' नाम से प्रसिद्ध हुई। वही सावित्री, गायत्री, और ब्रह्माणी भी कही जाती है। इस प्रकार ब्रह्मा ने अपने शरीर से उत्पन्न होने वाली सावित्री को अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार किया। किन्तु वे उसके सौन्दर्य पर विमुग्ध भी हो उठे। उसके सौन्दर्य की वे बारम्बार प्रशंसा भी करने लगे। इसी समय सावित्री ने विनम्र हो उन्हें प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करने लगी। उस काल में सावित्री के सौन्दर्य के अवलोकन करने की इच्छा होने के कारण ब्रह्मा के आनन के दक्षिण पार्श्व में पीले गण्डस्थलों वाला एक दूसरा नवीन आनन प्रादुर्भूत हो गया। पुनः विस्मययुक्त एवं फड़कते हुए होठों वाला दूसरा (तीसरा) मुख पीछे की ओर उद्भूत हो गया तथा उसके वाम भाग में काम-बाणों से व्यथित से प्रतीत होने वाले एक अन्य (चतुर्थ) आनन का आविर्भाव हुआ। सावित्री की ओर बार-बार अवलोकन करने के कारण ब्रह्मा द्वारा सृष्टि रचना के लिये जो अत्यन्त उग्र तप किया गया था, उसका सारा फल विनष्ट हो गया तथा उसी पाप के परिणाम स्वरूप बुद्धिमान् ब्रह्मा के मुख के ऊपर एक पञ्चम मुख आविर्भूत हुआ। वह जटाओं से व्याप्त था। ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा ने उस मुख को स्वीकार कर लिया।

यहाँ यह बतला देना अप्रासंगिक न होगा कि सावित्री की उत्पत्ति के पूर्व ब्रह्मा ने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु तथा नारद को अपने मन से उत्पन्न किया था। अतः ये ब्रह्मा के मानसपुत्र कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त ब्रह्मा के दाहिने अँगूठे से दक्ष प्रजापति प्रकट हुए। उनके स्तनान्त भाग से धर्म और हृदय से कुसुमायुध का जन्म हुआ। भ्रूमध्य से क्रोध और ओष्ठ से लोभ की उत्पत्ति हुई। बुद्धि से मोह का तथा अङ्कार से मद का

---

१. सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम्।
साम्यावस्थितिरेतेषां प्रकृतिः परिकीर्तिता।
गुणेभ्यः क्षोभमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे।
एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ *मत्स्यमहापुराण अ० ३/१४, १६*

जन्म हुआ। कण्ठ से प्रमोद और नेत्रों से मृत्यु की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् हथेली से ब्रह्मपुत्र भरत प्रकट हुए ।[१] ये नौ पुत्र ब्रह्मा के शरीर से प्रकट हुए हैं । ब्रह्मा की दसवीं सन्तान एक कन्या है, जिसे अङ्गजा कहते हैं।

पद्म-कल्प की कथा है। नारायण जल में शयन कर रहे थे। उनके मन में जगत् के निर्माण की इच्छा हुई। उनकी नाभि से एक सुवर्ण-सदृश सुन्दर कमल उत्पन्न हुआ। नारायण ने उस पर ब्रह्मा की रचना कर दी।[२] ब्रह्मा तप पूर्वक अपने कार्य में संलग्न हो गये।

इसी बीच मधु-कैटभ नामक दो महा असुर ब्रह्मा के पास पहुँचे और उनसे पूछे—'तुम कौन हो ? आओ हम दोनों के साथ युद्ध करो। तुम्हें किसने उत्पन्न किया है और इस कार्य में लगाया है ?'

ब्रह्मा ने उन्हें उत्तर दिया—'जिसके द्वारा हम कार्य में नियोजित किये गये हैं वह अविचिन्त्य तत्त्व संसार में एक ही है। उसी के द्वारा आप लोग भी कार्य करने में समर्थ हैं।'[३]

मधु-कैटभ ने ब्रह्मा की बात को सुनकर कहा—'हम लोग ही सबकुछ हैं। हमसे परे कुछ भी नहीं है। समग्र संसार हमसे ही सञ्चालित होता है।'

ब्रह्मा के द्वारा नारायण की महिमा गाने पर दोनों असुरों ने जल में शयन करते हुए नारायण से कहा—'आप पुरुषोत्तम हैं, आप विश्वयोनि हैं। हम चाहते हैं कि जिस स्थान पर आज तक किसी की मृत्यु न हुई हो, उस स्थान पर आप हम लोगों का वध करें।'[४]

उन असुरों की प्रार्थना सुनकर नारायण ने कहा—'ठीक है, ऐसा ही होगा।' फिर उन्होंने अपनी जाँघ पर वध कर उनका मनोरथ पूर्ण किया ।[५]

मधु-कैटभ के वध के बाद ब्रह्मा ने घोर तप किया। तप में सिद्ध होकर उन्होंने सृष्टि के कार्य में अपने आप को संलग्न कर दिया।[६]

---

१. ये भरतमुनि वे हैं, जो 'भरतनाट्यम्' के प्रवर्तक माने जाते हैं।

२. अथ योगवतां श्रेष्ठमसृजत् भूरितेजसम् ।
स्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥ *मत्स्यमहापुराण, १६८/१*

३. एक इत्युच्यते लोकैरविचिन्त्यः सहस्रदृक् ।
तत्संयोगेन भवतोः कर्म नामावगच्छताम् ॥ *मत्स्यमहापुराण, १६९/१३*

४. यस्मिन्न कश्चिन् मृतवान् देव तस्मिन् प्रभो वधम् ।
तमिच्छामो वधं चैव त्वत्तो नोऽस्तु महाव्रत ॥ *वही, १७०-२८*

५. वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां सनातनो विश्ववरः सुरोत्तमः ।
रजस्तमोवर्गभवायनौ यमौ ममन्थ तावूरुतलेन वै प्रभुः ॥ *मत्स्यमहापुराण १६९/३०*

६. देखिये-मत्स्यमहापुराण, *अध्याय १७०*

मत्स्यावतार-कथा

पद्ममहापुराण

ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम भृगु, मरीचि, अत्रि, दक्ष, कर्दम, पुलस्त्य, पुलह, अङ्गिरा तथा क्रतु—इन नौ प्रजापतियों को उत्पन्न किया। इनमें मरीचि ने कश्यप को जन्म दिया। कश्यप के चार स्त्रियाँ थीं—अदिति, दिति, कद्रू और विनता। अदिति से देवताओं का जन्म हुआ। दिति ने तमोगुणी पुत्रों को उत्पन्न किया, जो महान् असुर हुए। उन असुरों में एक था—मकर। मकर बड़ा बलवान् था। उसने ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्मा को मोहित करके उनसे सम्पूर्ण वेद ले लिया । इस प्रकार श्रुतियों का अपहरण करके वह महासागर में घुस गया। फिर तो सारा संसार धर्म से शून्य हो गया। यह देखकर देव-मण्डली को साथ लेकर ब्रह्मा जी क्षीरशायी नारायण की शरण में गये। उनकी स्तुति की और वेदों के उद्धार की प्रार्थना की।

नारायण ने ब्रह्मा की प्रार्थना स्वीकार कर ली और मत्स्य का रूप धारण कर महासागर में प्रवेश किया। उन्होंने अत्यन्त भयङ्कर उस मकर नामक दैत्य को थूथुन के अग्रभाग से विदीर्ण करके मार डाला और अङ्ग-उपाङ्गो सहित सम्पूर्ण वेद लाकर ब्रह्मा जी को समर्पित कर दिया।

इस प्रकार मस्त्यावतार लेकर नारायण ने सम्पूर्ण देवताओं की रक्षा की। वेदों को लाकर श्रीहरि ने तीनों लोकों का भय दूर किया। धर्म की रक्षा की। नारायण के इस महान् उपकार से देवमण्डली ने उनकी हार्दिक स्तुति की। फिर तो सबके देखते-ही-देखते वे वहाँ से अन्तर्हित हो गये।[१]

श्रीमद्भागवतमहापुराण

माया का अवलम्बन लेकर अवतार धारण करने वाले अद्भुतकर्मा हरि का प्रथम अवतार था मत्स्यावतार। अतीत कल्प में ब्रह्मा से सम्बन्ध रखने वाली नैमित्तिक लय की बेला थी। काल के कारण ब्रह्मा जी को निद्रा आ गई। उस समय ब्रह्मा के मुख से निकले हुए वेदों को बलशाली दानवाधिराज हयग्रीव ने चुरा लिया, हरण कर लिया। उसके इस कृत्य को जानकर भगवान् नारायण ने शफरी (मछली) का रूप धारण कर लिया। यही है हरि का मत्स्यावतार।

उसी समय की बात है। सत्यव्रत नाम के राजर्षि राजा थे। वे नारायण के

१. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - २६०

महान् भक्त थे। उस समय वे जल पीकर तपस्या कर रहे थे। उन्हें श्राद्धदेव मनु भी कहा जाता है। एक समय वे कृतमाला नदी में जलतर्पण कर रहे थे। उसी समय उनकी अञ्जलि में एक छोटा-सा मत्स्य आ गया। द्रविडदेशाधिपति सत्यव्रत ने जल के साथ उसे नदी के जल में विसर्जित कर दिया। उस मत्स्य ने अत्यन्त कारुणिक वाणी में राजा से कहा—'राजन्, ये जलचर जानवर अपनी जाति के अन्य जलचरों को मार डालते हैं। अतः मैं इनसे भयभीत हूँ। आप मुझे जल में क्यों छोड़ रहे हैं ? राजा ने उस मत्स्य-शिशु की रक्षा का मन बनाया। उन्होने उसे उठाकर अपने कमण्डलु में डाल दिया। फिर वे उसे आश्रम में लाये। रात्रि भर में ही वह मत्स्य इतना बढ़ गया कि उसका उस कमण्डलु में रहना कठिन हो गया। उसने पुनः राजा से कहा—'मुझे कमण्डलु में कठिनाई हो रही है। इसमें मैं नहीं रह सकता। मेरे लिये एक विस्तृत स्थान का निर्माण करवाइये। जिसमें मैं सुखपूर्वक निवास कर सकूँ।' उसके वचन को सुनकर राजा ने उसे नैया के जल में रख दिया। वहाँ वह थोड़ी ही देर में तीन हाथ बड़ा हो गया। फिर उसने राजा से कहा—'महाराज, यह स्थान भी मेरे लिये पर्याप्त नहीं है। मेरे लिये कोई बड़ा स्थान दीजिये। मैं आपका शरणागत हूँ।' राजा ने उस मत्स्य को वहाँ से निकाल कर सरोवर के जल में डाल दिया। किन्तु वह स्थान भी उसे छोटा पड़ा। राजा ने उसे क्रमशः दीर्घ, दीर्घतर तथा दीर्घतम स्थान में डालते हुए अन्त में सागर में डाल दिया।

जिस समय राजा उसे सागर में डाल रहे थे। उस समय मत्स्य ने कहा—'राजन्, यहाँ मुझे अतिबलशाली मकर आदि खा जायेंगे। अतः आप मुझे सागर के जल में मत डालिये।' मत्स्य के मनोहर वचन को सुनकर राजा विमोहित हो उठे। उन्होंने कहा—'आप कौन हैं, जो मत्स्य के रूप को धारण कर मुझे विमोहित कर रहे हैं ? इसके पहले इतना प्रभावशाली जलचर मैंने न तो कभी देखा ही था और न सुना ही था। सौ योजन विस्तीर्ण सरोवर को आपने एक ही दिन में व्याप्त कर लिया। निश्चय ही आप भगवान् नारायण हैं। प्राणियों पर अनुग्रह प्रदर्शित करने के लिये ही आपने इस मत्स्य-शरीर को धारण किया है। आपको प्रणाम है। किस प्रयोजन से आपने इस शरीर को धारण किया है ? कृपया यह बतलाने का कष्ट करें।'

सत्यव्रत के वचन को सुनकर मत्स्य-शरीरधारी भगवान् ने कहा—'शत्रुनिषूदन, आज से सातवें दिन त्रिलोकी प्रलयङ्कर सागर के जल में निमग्न हो जायेगी। उस समय मेरी प्रेरणा से एक विशाल नैया आपके पास उपस्थित होगी।

तब समग्र औषधियों को, सब प्रकार के बीजों को लेकर, सप्तर्षियों के साथ, उस विशाल जलयान पर आरूढ होकर आप उस एकार्णव जल में निर्भय होकर विचरण करोगे। जब वह जलयान विशाल झंझावात से डगमगाने लगेगा तब मैं वहाँ उपस्थित होऊँगा। उस समय आप महान् सर्प (वासुकिनाग) से उस यान को मेरी सींग में कस कर बाँध देना। मैं जलयान को खींचता हुआ चतुर्दिक् भ्रमण करूँगा। आप ऋषियों के साथ उस विशाल यान पर आरूढ रहना। यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक ब्रह्मा की वह रात्रि व्यतीत नहीं हो जाती। उस समय आप यथेच्छ अभीप्सित प्रश्न करोगे और मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूँगा। इससे आप मेरे यथार्थ माहात्म्य को जान सकोगे।' ऐसा आदेश देकर भगवान् श्रीहरि अन्तर्हित हो गये। राजा उस समय की प्रतीक्षा कर रहे थे जिसके लिये श्रीहरि ने आदेश दिया था। वे कुशासन पर विराजमान होकर मत्स्यरूपी हरि के चरणों का चिन्तन कर रहे थे। तदनन्तर समय आने पर सागर ने अपनी मर्यादा छोड़कर सारी पृथिवी को जल में निमग्न कर दिया। उस समय, जैसा भगवान् ने कहा था, राजाने अपने समीप समागत एक नैया को देखा। वे ओषधि-वृक्षों आदि को लेकर ऋषियों के साथ उस पर आरूढ हो गये। ऋषियों ने राजा से कहा—'राजन्, केशव का ध्यान करो। वे ही उपस्थित इस संकट से उबार कर हम लोगों का कल्याण करेंगे।' राजा ने भगवान् का ध्यानपूर्वक चिन्तन किया। फलस्वरूप विशालकाय एक मत्स्य राजा के पास उपस्थित हुआ। उसका शरीर सुवर्णवर्ण था। उसे एक सींग भी थीं। राजा ने, जैसा श्रीहरि ने पहले आदेश दिया था, अपनी नैया को मत्स्य-शृंग में बाँध कर मधुसूदन की दिव्य स्तुति की ।

राजा की स्तुति से सुप्रसन्न मत्स्य भगवान् ने उस समय गुह्यातिगुह्य तत्त्वों का उपदेश उन्हें दिया। ऋषियों ने भी उस सनातन उपदेश का श्रवण किया। प्रलय-काल के समाप्त हो जाने पर ब्रह्मा निद्रा का परित्याग करके उठे। उस समय हयग्रीव नामक असुर का वध करके श्रीहरि ने वेदों का उद्धार किया।[१]

अग्निमहापुराण

अतीत कल्प की घटना है। ब्रह्मा के शयन करने से नैमित्तिक प्रलय की बेला उपस्थित होने वाली थी। उसी काल में एक समय सत्यव्रत, जो आगे वैवस्वत मनु होने वाले थे,[२] कृतमाला नदी में जलतर्पण कर रहे थे। उसी समय स्वल्पकाय मत्स्य उनकी अञ्जलि में आ गया। वे उसे जल में फेंकना ही चाहते

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण, अष्टम स्कन्ध, अध्याय-२४

२. अग्निपुराण में राजा का नाम न लिखकर केवल वैवस्वत मनु लिखा हुआ है।। देखिये-२/४

थे कि उसने कहा—'राजन्, मुझे जल में मत फेंकिये। वहाँ मुझे ग्राह आदि खा जायेंगे।' मत्स्य की इस बात को सुनकर राजा ने उसे अपने कमण्डलु में रख लिया। मत्स्य का कलेवर कलश में बड़ा हो गया। अत: वह उसे छोटा पड़ने लगा। फिर उसने राजा से कहा—'मुझे कोई बड़ा स्थान दीजिये।' मनु ने उसे उदञ्चन (काष्ठ की नैया) में रख दिया। वहाँ भी मत्स्य का विग्रह विशाल हो गया तो राजा ने उसे सरोवर और फिर सागर में डाल दिया। सागर में भी मत्स्य का शरीर सागरव्यापी विशाल बन गया। इस स्थिति को देखकर राजा समझ गये कि यह मत्स्यरूपी साक्षात् नारायण ही हैं। उन्होंने उनसे प्रार्थना की—'जनार्दन, आप मुझे माया से क्यों मोहित कर रहे हैं ?[१]

राजा की बात सुनकर मत्स्य ने कहा—'आज से सातवे दिन सकल भू-मण्डल सागर के जल में डूब जायेगा। उस समय एक नैया आपके पास उपस्थित हो जायेगी। सप्तर्षियों के साथ, बीजों को लेकर, आप उसमें बैठकर ब्राह्मी निशा को व्यतीत कीजियेगा । उस स्थति में मैं आपके पास उपस्थित होऊँगा । आप अपनी नैया को, विशाल सर्प के द्वारा, मेरी सींग में बाँध दीजियेगा।' ऐसा कहकर वह महामत्स्य अन्तर्हित हो गया ।

मनु महाराज काल की प्रतीक्षा कर रहे थे । समुद्र के उद्वेलित होने पर वे नैया पर आरूढ हुए । फिर महामत्स्य के शृंग में अपनी नैया को बाँध कर उन्होंने उनसे (मत्स्य से) मत्स्यपुराण का श्रवण किया । इन्हीं मत्स्यावतार हरि ने वेद के हर्ता हयग्रीव दानव का वध कर वेदों का उद्धार किया था ।[२]

मत्स्यमहापुराण

प्राचीनकाल की बात है। सूर्यपुत्र महाराज (वैवस्वत) मनु मलयाचल पर्वत पर घोर तप में रत थे ।[३] तप से प्रसन्न हुए ब्रह्मा ने उनसे वर माँगने के लिये कहा। मनु ने वर माँगा—'भगवन्, प्रलयकाल की बेला में मैं सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमरूप जीव-समूह की रक्षा करने में समर्थ हो सकूँ।'[४] उनकी प्रार्थना को सुनकर सृष्टिकर्ता ने कहा—'एवमस्तु' ऐसा ही होगा।

---

१. मायया मोहयसि मां किमर्थं त्वं जनार्दन ॥ *अग्निमहापुराण, २/१०*

२. शुश्राव मत्स्यात् पापघ्नं संस्तुवन् स्तुतिभिश्च तम् ।
ब्रह्मवेदप्रहर्तारं हयग्रीवञ्च दानवम् ।
अवधीत् वेदमन्त्राद्यान् पालयामास केशवः । *वही, २/१६-१७*

३. श्रीमद्भागवत आदि के अनुसार यह सत्यव्रत राजा हैं, जो आगे वैवस्वत मनु हुए हैं।

४. एकमेवाहमिच्छामि त्वत्तो वरमनुत्तमम् ।
भवेयं रक्षणायालं प्रलये समुपस्थिते ॥ *मत्स्यमहापुराण, अ० १/१६*

एक समय मनु महाराज आश्रम में पितृतर्पण कर रहे थे। उसी समय उनकी हथेली पर जल के साथ एक मत्स्य आ गिरा।[१] मत्स्य की रूप-माधुरी पर मनु का मन मुग्ध हो उठा। उन्होंने दयार्द्र होकर उसे अपने कमण्डलु में रख लिया। एक ही दिन-रात में वह वहाँ सोलह अङ्गुल बड़ा हो गया और कहने लगा—'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तब राजा ने उस जलचर जीव को क्रमशः मृत्तिका के घट में, कूप में, सरोवर में, गङ्गा में और अन्त में सागर के जल में डाल दिया। किन्तु वह सर्वत्र आश्चर्यजनक ढंग से बढ़ता रहा और अपनी रक्षा की प्रार्थना मनु से करता ही रहा। इस स्थिति को देखकर मनु ने भयभीत होकर पूछा—'आप कोई असुरराज तो नहीं हैं ? अथवा वासुदेव भगवान् हैं ?' भला, इस प्रकार कई करोड़ योजनों के समान विस्तार वाला विशाल वपु किसका हो सकता है ? केशव, मुझे ज्ञात हो गया है कि आप मत्स्य का रूप धारण कर मुझे खिन्न कर रहे हैं, आश्चर्यचकित कर रहे हैं। हृषीकेश, आप जगदीश्वर एवं जगत् के निवास स्थान हैं।' राजा की बात सुनकर मत्स्यरूपी जगदीश्वर ने कहा—'निष्पाप राजन्, आप ने ठीक समझा। शीघ्र ही पर्वत, वन और काननों के सहित यह पृथिवी जल में निमग्न हो जायेगी। अतः राजन् समग्र जीव-समूहों की रक्षा करने के लिये, समस्त देव-गणों के द्वारा इस नैया का निर्माण किया गया है। सुव्रत, उस समय समस्त जीवों को इस नैया पर चढ़ा कर आप उन सबकी रक्षा करना। राजन्, जब युगान्त की वायु से आहत होकर यह नैया डगमगाने लगेगी, उस समय आप इसे इस सींग में बाँध देना। तदनन्तर पृथिवीपते, प्रलय की समाप्ति पर आप जगत् के समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणियों के प्रजापति बनोगे। इस प्रकार कृतयुग के प्रारम्भ में सर्वज्ञ एवं धैर्यशाली नरेश के रूप में आप मन्वन्तराधिपति बनोगे। उस समय देवमण्डली आप की पूजा करेगी।'

ऊपर वर्णित कथा मत्स्य पुराण के प्रथम अध्याय की है। द्वितीय अध्याय में मनु को मत्स्य भगवान् के युगान्तविषयक प्रश्न, मत्स्य का प्रलय के स्वरूप का वर्णन करके अन्तर्धान हो जाना, प्रलय की बेला में मनु का जीवों को नैया पर चढ़ा कर उसे महामत्स्य के सींग में, शेषनाग की डोर से, बाँधना आदि वर्णित है।

●

---

१. कदाचिताश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम्।
पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता॥ *मत्स्यमहापुराण, १/१८*

राधा-कथा

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

गोलोक में श्रीकृष्ण विरजा गोपी के साथ विहार कर रहे थे। इससे श्रीराधा को क्षोभ हुआ। इस कारण विरजा वहाँ नदीरूप होकर प्रवाहित हो गई। विरजा की सखियाँ भी छोटी-छोटी नदियाँ बनी। पृथ्वी की बहुत-सी नदियाँ और सातों समुद्र विरजा से ही उत्पन्न हैं।[१] इस दृश्य को देखकर राधा को प्रणय कोप हुआ। उन्होंने श्रीकृष्ण के लिये कुछ कठोर शब्दों का प्रयोग किया। सुदामा ने इसका विरोध किया। इस पर लीलाविनोदिनी राधा ने उसे असुर होने का शाप दे दिया। सुदामा ने भी राधा को शाप देते हुए कहा—'आप भी भूतल पर मानवीरूप में प्रकट हों। वहाँ श्रीकृष्ण से आपका सौ वर्ष का वियोग हो।' राधा के शाप-प्रभाव से सुदामा ही तुलसी का स्वामी शङ्खचूड नामक असुर हुआ था। जिसे शङ्कर ने अपने शूल से विदीर्ण करके गोलोक धाम भेज दिया था।

सती राधा इसी वाराह कल्प में गोकुल में अवतीर्ण हुई थीं। वे व्रज में वृषभानु वैश्य की कन्या हुईं। वे देवी अयोनिजा थीं। माता की कुक्षि से नहीं उत्पन्न हुई थीं। उनकी माता कलावती (कीर्तिदा) ने अपने गर्भ में 'वायु' को धारण कर रक्खा था। उसने योगमाया की प्रेरणा से वायु को ही जन्म दिया। परन्तु वहाँ स्वेच्छा से श्री राधा प्रकट हो गईं। बारह वसन्त व्यतीत हो जाने पर उन्होंने नूतन यौवन में प्रवेश किया। यह देखकर उनके माता-पिता ने 'रायाण' वैश्य के साथ उनका सम्बन्ध निश्चित कर दिया। 'रायाण' कृष्ण की माता यशोदा का सहोदर भाई था। गोलोक में तो वह श्रीकृष्ण का अंशभूत गोप था। किन्तु इस अवतार के समय भूतल पर वह श्रीकृष्ण का मातुल लगता था।

'रायाण' के साथ अपने सम्बन्ध की बात जानकर श्रीराधा अपनी छाया को स्थापित करके स्वयं अन्तर्हित हो गईं। उस छाया के साथ ही उक्त 'रायाण' का विवाह हुआ था।[२]

जगत्पति श्रीकृष्ण कंस के भय से, रक्षा के बहाने, शैशवावस्था में ही,

---

१. विरजा से सप्त सागरों की उत्पत्ति एक नवीन कथा है।

२. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, प्रकृति खण्ड, अध्याय-४९

गोकुल पहुँचा दिये गये थे । जगत्स्रष्टा विधाता ने पुण्यमय वृन्दावन में श्रीकृष्ण के साथ साक्षात् श्रीराधा का विधिपूर्वक विवाह कर्म सम्पन्न कराया था । इस प्रकार साक्षात् राधा श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में वास करती थीं और छाया राधा रायाण के घर में ।

गोकुलनाथ श्रीकृष्ण कुछ काल तक वृन्दावन में श्रीराधा के साथ आमोद-प्रमोद करते रहे । तदनन्तर सुदामा के शाप से उनका श्रीराधा के साथ वियोग हो गया । इसी बीच श्रीकृष्ण ने पृथ्वी का भार उतारा । सौ वर्ष पूर्ण होने पर तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से श्रीराधा ने श्रीकृष्ण का और श्रीकृष्ण ने श्रीराधा का दर्शन प्राप्त किया। तदनन्तर तत्त्वज्ञ श्रीकृष्ण श्रीराधा के साथ गोलोक धाम पधारे ।[१]

●

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, प्रकृति खण्ड, अध्याय–४९

राम-कथा

ब्रह्ममहापुराण

चौबीसवें युग में अपने आपको चार रूपों में विभक्त कर ईश्वर ने दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म लिया था। वहाँ उनका नाम था—राम। राम के अवतार का प्रधान प्रयोजन था—लोक की आराधना, राक्षसों का वध और धर्म की वृद्धि। सम्पूर्ण प्राणियों के कल्याण में रत रहने वाले राम को मानवशिरोमणि कहा गया है।

राम ने चौदह वर्ष तक वन में तपस्वी का जीवन व्यतीत किया था। वनवास की बेला में लक्ष्मण उनकी सेवा में थे और सीता उनके साथ थीं। उस समय जनस्थान में निवास करते हुए राम ने देवों के महान् कार्य की सिद्धि की थी। सीता का अन्वेषण करते हुए उन्होंने देव-दानव और मानव के लिये दुर्जेय रावण का वध किया था।[१]

राम ने युद्ध में बाली का वध करके सुग्रीव को उसके स्थान पर अभिषिक्त किया था। उन्होंने मधुवन में मधु-पुत्र अभिमानी लवण दानव का भी बध कर प्रजावर्ग की रक्षा की थी।[२] उन्होंने मुनियों के यज्ञ में विघ्न करने वाले महान् बलशाली मारीच और सुबाहु नामक राक्षसों को मारा और निराश किया था।[३]

पूर्व जन्म के गन्धर्व और शापवश राक्षस बने भयङ्कर विराध और कबन्ध को राम ने अपने अमोघ बाणों का लक्ष्य बनाया था, उनका वध किया था।

मुनि विश्वामित्र ने देवों के लिये भी दुर्धर्ष देवशत्रु राक्षसों का वध करने के लिये ही राम को शस्त्र प्रदान किया था। राम ने ही पहले जनक के यज्ञ में शङ्कर के धनुष को अनायास ही तोड़ डाला था।

धार्मिकों के शिरोमुकुट भगवान् राम ने इन सभी कार्यों को सम्पन्न कर कई

---

१. दुर्जयं दुर्धरं दृप्तं शार्दूलसमविक्रमम् ।
रावणं निजघानाशु रामो भूतपतिः परः ।। *ब्रह्ममहापुराण, १०४/१२६-१२८*

२. मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानवः ।
हतो मधुवने वीरो वरमत्तो महासुरः ।। *वही, १०४/१३०*

३. मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिनां वरौ ।
निहतौ च निराशौ च कृतौ तेन महात्मना ।। *वही, १०४/१३१-१३२*

निर्विरोध अश्वमेध यज्ञों का आयोजन किया था।[१] उनके राज्य में प्रजाजनों को सब प्रकार का सुख सुलभ था। प्रकृति भी प्रजा का अनुरञ्जन करती थी। इसीलिये राम का राज्य उदाहरण बन गया है।[२]

पद्ममहापुराण

पद्ममहापुराण पुराण-वाङ्मय का हीरक है, नग है। यदि इसे अद्भुत कथाओं का भण्डार कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। इसमें राम-कथा तीन स्थानों पर वर्णित है। सृष्टि खण्ड में खण्ड रूप से, पाताल खण्ड में लङ्का से अयोध्या के लिये प्रस्थान करने से लेकर रामाश्वमेध पर्यन्त तथा उत्तर खण्ड में राम के जन्म से लेकर उनके परमधाम-गमन तक की कथा वर्णित है। पातालखण्ड तथा उत्तर खण्ड की राम-कथा के अन्तिम भाग में महान् अन्तर है। यह अन्तर इतना विषम है कि इन भागों को एक ही व्यक्ति की कृति मानना सम्भव नहीं प्रतीत होता। वैषम्यवाले अंश को छोड़कर शेष समग्र कथा को तारतम्य-विधि से यहाँ प्रस्तुत किया जाएगा। सर्वप्रथम उत्तर खण्ड की कथा से प्रारम्भ किया जा रहा है—

उत्तर-खण्ड—रावण के अत्याचार से त्रिलोकी संत्रस्त थी। ब्रह्मा आदि देव नारायण की शरण में गये। नारायण ने कहा—'देवों, भय का परित्याग करो। देव-कण्टक रावण का विनाश मैं अवश्य करूँगा। तुम लोग भी गन्धर्वों और अप्सराओं के साथ वानर-योनि में उत्पन्न हो मेरी सहायता करना।'

श्रीविष्णु की आज्ञा से सम्पूर्ण देवता इस भूतल पर वानर रूप से प्रकट हुए। उधर सूर्य वंश में महान् प्रतापी एक राजा हुए। उनका नाम था—इक्ष्वाकु। उन्हीं की कुल-परम्परा में अज के पुत्र दशरथ हुए। दशरथ की तीन प्रधान रानियाँ थीं—कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। उनकी राजधानी थी—अयोध्या। अयोध्या को ही साकेत भी कहते हैं।

राजा दशरथ ने पुत्र की कामना से वैष्णवयाग किया। भगवान् विष्णु अग्नि-कुण्ड से प्रकट हुए। उन्होंने दशरथ से कहा—'राजन्, वर माँगिये।' दशरथ ने कहा—'भगवन्, आप मेरे पुत्रभाव को प्राप्त हों।' उनकी प्रार्थना को सुनकर भगवान् श्रीहरि ने 'तथास्तु' कहकर उन्हें सुवर्ण पात्र में खीर प्रदान की।

---

१. एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृतां वरः।
दशाश्वमेधाञ्जारूथ्यानाजहार निरर्गलान् ॥ *ब्रह्ममहापुराण, १०४/१३७*

२. यहाँ राम की कथा में शूर्पणखा, खर, दूषण और त्रिशिरा की चर्चा नहीं की गई है और न राम के द्वारा सीता के परित्याग की कथा ही उल्लिखित है।

उस समय नरेश के समक्ष दो ही महारानियाँ उपस्थित थीं—कौसल्या और कैकेयी। अत: राजा ने खीर को उन्हीं दोनों में आधा-आधा बाँट कर दे दिया। इसी बीच मध्यम रानी सुमित्रा भी पुत्र की कामना से राजा के समीप आईं। उदारता का प्रदर्शन करती हुई कौसल्या और कैकेयी ने अपनी-अपनी खीर में से आधा-आधा भाग निकाल कर देवी सुमित्रा को प्रदान किया। उस दिव्य खीर को खाकर तीनों ही रानियाँ गर्भवती हुईं। समय आने पर जब चैत्र का मनोरम मधुमास आया तो शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में दोपहर के समय रानी कौसल्या ने पुत्र को जन्म दिया। तदनन्तर कैकेयी के गर्भ से भरत का जन्म हुआ। वे पाञ्चजन्य के अंश से प्रकट हुए थे। इसके बाद महाभागा सुमित्रा नें उत्तम लक्षणों वाले लक्ष्मण को तथा देवशत्रुओं को सन्तप्त करने वाले शत्रुघ्न को जन्म दिया। लक्ष्मण भगवान् अनन्त के अंश और शत्रुघ्न सुदर्शन के अंश से प्रकट हुए थे।

भगवान् के अवतार के अनन्तर भगवती लक्ष्मी मिथिलाधिपति राजा जनक के भवन में अवतीर्ण हुईं। जिस समय राजा जनक किसी शुभ क्षेत्र में, यज्ञ के लिये, हल से भूमि जोत रहे थे, उसी समय सीता (हल के अग्रभाग) से एक सुन्दरी कन्या प्रकट हुई, जो साक्षात् लक्ष्मी थी। सीता (हलाग्र) से उत्पन्न होने के कारण जनक ने उसका नाम रक्खा—सीता। भूमि से उत्पन्न इस कन्या को राजा ने अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार कर उसका लालन-पालन किया ।

इसी समय अत्यन्त तेजस्वी विश्वविख्यात महामुनि विश्वामित्र ने गङ्गा के पावन तट पर सिद्धाश्रम में एक उत्तम यज्ञ का आयोजन किया। राक्षस उसमें विघ्न डालने लगे। विश्वामित्र ने, यज्ञ की रक्षा के लिये, महाराज दशरथ से राम को माँगा। मुनि की याचना सुनकर दशरथ ने लक्ष्मण-सहित राम को उनकी सेवा में अर्पित कर दिया। मुनिवर युगल बन्धुओं को लेकर अपने आश्रम पर पहुँचे। उसी समय महाबली गरुड, सब प्राणियों से अदृश्य होकर वहाँ आये और उन दोनों बन्धुओं को दो दिव्य धनुष तथा अक्षय बाणों वाले दो तूणीर आदि दिव्य अस्त्र-शस्त्र देकर चले गये।

तपोवन में पहुँचने पर महात्मा कौशिक ने विशाल वन के भीतर श्रीराम को एक भयङ्कर राक्षसी दिखलाया । उसका नाम था—ताडका। ताडका सुन्द नामक राक्षस की स्त्री थी। मुनि की प्रेरणा से उन दोनों ने दिव्य धनुष से छूटे हुए बाणों द्वारा ताडका को मार डाला । वस्तुत: ताडका की मृत्यु राम के बाण से ही हुई थी। आश्रम में पहुँचकर विश्वामित्र ने यज्ञानुष्ठान प्रारम्भ किया। भाई के साथ श्रीराम यज्ञ की रक्षा कर रहे थे। उसी समय भाई सुबाहु के साथ महाबली मारीच

ने यज्ञ-स्थल पर आक्रमण किया। उन भयङ्कर राक्षसों को देखकर विपक्षी वीरों का संहार करने वाले श्रीरामचन्द्र जी ने राक्षसराज सुबाहु को एक ही बाण से मृत्यु के मुख में पहुँचा दिया और महान् पवनास्त्र का प्रयोग करके मारीच नामक निशाचर को सागर के उस तट पर फेंक दिया। राम के इस अद्भुत पराक्रम को देखकर राक्षस-श्रेष्ठ मारीच ने हथियार फेंक दिया और फिर एक महान् आश्रम में वह तपस्या करने के लिये चला गया।

मुनि का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। इसी समय मिथिलाधिपति जनक वाजपेय यज्ञ तथा धनुष-यज्ञ का समायोजन किये। विश्वामित्र अपनी शिष्य-मण्डली के साथ उस यज्ञ को देखने के लिये गये। मार्ग में महात्मा श्रीराम के चरणों का स्पर्श हो जाने से विशाल शिला के रूप में पड़ी हुई गौतम-पत्नी अहिल्या का उद्धार हो गया। कभी वह अपने पति गौतम के शाप से पत्थर बन गई थी। किन्तु श्रीरघुनाथजी के चरणों का स्पर्श होने से निष्कलुष हो वह शुभ गति को प्राप्त हुई।

जनक का यज्ञ समाप्त हुआ। श्रीराम ने शङ्कर जी के दिव्य धनुष को तोड़कर जनक किशोरी जानकी को जीत लिया। उस पराक्रमरूपी महान् शुल्क से प्रसन्न हो मिथिला-नरेश ने सीता को रामचन्द्र की सेवा में देने का सङ्कल्प लिया। फलतः अयोध्याधिपति महाराज दशरथ बारात लेकर मिथिला पधारे। मिथिलाधिपति ने बड़ी प्रसन्नता से सबका सम्मान किया। फिर शुभ बेला के उपस्थित होने पर जनक ने जानकी का राम के साथ और लक्ष्मण का उर्मिला के साथ विवाह कर दिया। जनक सीरध्वज के भाई कुशध्वज की दो सुन्दरी कन्याएँ थीं। एक का नाम था—माण्डवी और दूसरी का श्रुतकीर्ति । माण्डवी का भरत से और श्रुतकीर्ति का शत्रुघ्न से विवाह कर दिया गया। विवाह की विधि के समापन पर जनक से सुपूजित होकर महाराज दशरथ अपने पुत्रों और पुत्रवधुओं के साथ अपनी नगरी के लिये प्रस्थित हुए ।

महाराज दशरथ अपने पुत्रों और पुत्र-वधुओं के साथ अयोध्या की ओर जा रहे थे। मार्ग में महापराक्रमी तथा परम प्रतापी परशुराम जी मिले। वे हाथ में परशु लेकर क्रोध से भरे हुए सिंह की भाँति खड़े थे। वे क्षत्रियों के लिये कालस्वरूप थे और रामचन्द्र जी के साथ युद्ध की इच्छा से आ रहे थे। उन्होंने श्रीराम से कहा—'महाबाहु श्रीराम, मैं युद्ध में बहुत-से महापराक्रमी राजाओं का वध करके ब्राह्मणों को भूमिदान दे तपस्या करने के लिये चला गया था। किन्तु तुम्हारी वीर्य और बल की ख्याति सुनकर यहाँ तुमसे युद्ध करने के लिये आया हूँ। यद्यपि

इक्ष्वाकुवंश के वे क्षत्रिय जो मेरे नाना के कुल में उत्पन्न हुए हैं, मेरे वध्य नहीं हैं। तथापि किसी भी क्षत्रिय का बल और पराक्रम सुनकर मेरे लिये उसका सहन करना असम्भव है। अत: उदार रघुवंशी वीर, तुम मुझे युद्ध का अवसर दो। सुना है, तुमने शङ्कर जी के दुर्धर्ष धनुष को तोड़ डाला है। यह वैष्णव धनुष भी उसी के समान शत्रुओं का संहार करने वाला है । तुम अपने पराक्रम से इसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दो तो मैं तुमसे हार मान लूँगा अथवा यदि मुझे देखकर तुम्हारे मन में भय समा गया हो तो मुझ बलवान् के आगे अपने अस्त्र-शस्त्र नीचे डाल दो और मेरी शरण में आ जाओ।'

परशुराम जी की बात सुनकर परम प्रतापी रामचन्द्र जी ने वह धनुष ले लिया। साथ ही उनसे अपनी वैष्णवी शक्ति को भी खींच लिया। शक्ति से वियोग होते ही पराक्रमी परशुराम, कर्म-भ्रष्ट ब्राह्मण की भाँति, तेज से विहीन हो गये। श्रीराम ने उस महान् धनुष को हाथ में लेकर अनायास ही उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। उस पर बाण का सन्धान करके विस्मयाविष्ट परशुराम जी से पूछा—'ब्रह्मन्,इस श्रेष्ठ बाण से आपका कौन-सा कार्य करूँ? आपके दोनों लोकों का नाश कर दूँ अथवा आपके पुण्यों द्वारा उपार्जित स्वर्गलोक का ही अन्त कर डालूँ?'

उक्त कृत्य को देखकर परशुराम को यह प्रतीत हो गया कि यह साक्षात् नारायण हैं। फिर तो परशुराम ने उन्हें श्रद्धावनत हो प्रणाम किया। श्रीराम ने भी अर्घ्य आदि दान से परशुराम का सम्मान किया। इस प्रकार श्रीरामचन्द्र के द्वारा पूजित होकर महातपस्वी परशुराम जी 'भगवान् नर-नारायण' के रमणीय आश्रम में तपस्या करने के लिये चले गये।'

भगवान् परशुराम के चले जाने पर दशरथ जी पुत्र और पुत्र-वधुओं के साथ, शुभ मुहूर्त में, अपनी नगरी अयोध्या में प्रवेश किये। चारो बन्धु अपनी-अपनी पत्नियों के साथ प्रसन्नचित्त होकर वहाँ रहने लगे। धर्मात्मा श्री रघुनाथ जी ने सीता के साथ बारह वर्षों तक विहार किया।

सब का समय एक जैसा नहीं बीतता। कुछ समय बीतने पर महाराज दशरथ ने राम को युवराज के पद पर अभिषिक्त करना चाहा। किन्तु उनकी छोटी रानी कैकेयी ने, जिसे पहले वरदान दिया जा चुका था, महाराज से दो वर माँगे—भरत का राज्याभिषेक और राम को चौदह वर्ष के लिये वन-वास। सत्यवचन से आबद्ध होने के कारण राजा दशरथ ने अपने पुत्र श्रीराम को राज्य से निर्वासित कर दिया। राम ने धर्म समझ कर पिता की आज्ञा का पालन करते

हुए राज्य को त्याग दिया। वे लक्ष्मण और प्रिया सीता के साथ वन को चले गये। वहाँ उनके जाने का उद्देश्य था राक्षसराज रावण का वध। इधर राजा दशरथ ने पुत्रवियोग से शोकग्रस्त हो अपने प्राणों का परित्याग कर दिया।

दशरथ के दिवङ्गत हो जाने पर मन्त्रियों ने भरत को राज्य पर बैठाने की चेष्टा की। किन्तु धर्मात्मा भरत ने राज्य लेने से अस्वीकार कर दिया। उन्होंने उत्तम भातृ-भाव का परिचय प्रस्तुत करते हुए वन में जाकर श्रीराम से राज्य-ग्रहण करने की प्रार्थना की। किन्तु पिताजी के आदेश-पाश में आबद्ध होने के कारण श्रीरघुनाथ जी ने राज्य लेने की इच्छा नहीं की। उन्होंने भरत के अनुरोध करने पर उन्हें अपनी चरण-पादुकाएँ दे दीं। भरत ने उन्हें सादर ग्रहण किया और राज्य-सिंहासन पर स्थापित करके गन्ध-पुष्पादि से प्रतिदिन उनका पूजन करने लगे ।

श्रीराम चित्रकूट में, मन्दाकिनी के पावन तट पर सीता के साथ निवास करने लगे। एक दिन राम जानकी की गोद में शिर रखकर शयन कर रहे थे। उसी समय इन्द्रसुत जयन्त वायस का स्वरूप धारण कर जानकी पर झपटा और अपने तीखे पञ्जों से आघात किया। काक के इस अभद्र व्यवहार को देखकर श्रीराम ने एक कुश ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित कर उसकी ओर फेंका। वह तृण प्रज्वलित अग्नि के समान अत्यन्त भयङ्कर हो गया। कौआ भागा। वह भाग कर त्रिलोकी में जहाँ-जहाँ जाता वहाँ-वहाँ वह अस्त्र उसका पीछा करता । किसी ने उसकी रक्षा नहीं की। अन्त में ब्रह्मा जी ने उससे कहा—'कौआ, तू भगवान् श्रीराम की ही शरण में जा। करुणा के सागर वे ही तेरी रक्षा करेंगे।' उनके आदेश को शिरोधार्य कर काक श्रीराम के शरणागत हुआ। श्रीराम ने उसे अभयदान दिया। अनुगृहीत काक ने राम-सीता को बारम्बार प्रणाम करके स्वर्ग के लिये प्रस्थान किया।

मुनिवर अत्रि और अनसूया से विदा लेकर श्रीराम ने, पत्नी सीता और बन्धु लक्ष्मण के साथ, चित्रकूट से प्रस्थान कर, दण्डकारण्य में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने विराध राक्षस का वध किया। फिर उन्होंने क्रमशः शरभङ्ग मुनि, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि महर्षियों के आश्रम में पधार कर उनका दर्शन किया। इसके बाद वे गोदावरी के पावन तट पर जाकर पञ्चवटी में रहने लगे। वहाँ उन्होंने दीर्घकाल तक बड़े सुख से निवास किया। पञ्चवटी में रहते हुए श्रीराम को तेरह वर्ष व्यतीत हो गये।

पञ्चवटी के निवास-काल में ही एक दिन वहाँ रावण की बहन शूर्पणखा आई । श्रीराम की रूपसम्पदा को देखकर वह काम से उन्मत्त हो उठी। उसने राम को अपना परिचय देते हुए कहा—'नृपश्रेष्ठ, तुम मेरे पति बन जाओ। सीता की

चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारी इस सती सीता को अभी खा जाऊँगी।' ऐसा कहकर वह सीता को खाने के लिये झपटी। यह देखकर श्रीरामचन्द्र जी ने तलवार उठाकर उसके नाक-कान काट लिये।[१] विकल राक्षसी खर, दूषण और त्रिशिरा के पास गई। उन लोगों ने श्रीराम पर आक्रमण किया। राम ने पूरी राक्षसी-सेना के साथ उनका वध कर दिया। निराश शूर्पणखा रावण की शरण में गई। बहन के द्वारा राक्षसों के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण क्रोध से मूर्च्छित हो उठा। उस दुरात्मा ने मारीच को साथ लेकर जनस्थान के लिये प्रस्थान किया। पञ्चवटी में पहुँचकर दशकन्धर रावण ने मारीच को मायामय मृग के रूप में राम के आश्रम पर भेजा। वह राक्षस अपने पीछे आते हुए दोनों दशरथ कुमारों को आश्रम से दूर हटा ले गया। इसी बीच अवसर पाकर रावण ने, अपने वध की इच्छा से, श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी सीताजी का हरण कर लिया।

सीता की रक्षा के लिये, मार्ग में, गृध्रराज जटायु ने रावण से युद्ध किया। किन्तु महाबली रावण ने अपने बाहु-बल से जटायु को मार गिराया। फिर राक्षसों से आवेष्टित लंका में प्रवेश करके रावण ने सीता को अशोक वाटिका में रख दिया और रामचन्द्र के बाणों से अपनी मृत्यु की अभिलाषा करता हुआ अपने भवन में चला गया।

जब मारीच का वध कर लक्ष्मण के साथ श्रीराम आश्रम में लौटे तो उन्होंने आश्रम को शून्य देखा। सीता वहाँ नहीं मिलीं। राम विलाप करके उन्हें चतुर्दिक् खोजने लगे। मार्ग में उन्होंने घायल अवस्था में पड़े हुए गीध जटायु को देखा। जटायु ने सीता-हरण का और अपनी दुर्दशा का यथावत् वर्णन श्रीराम से किया। फिर उसने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। श्रीराम ने उसका दाह-संस्कार किया। गीध को परमपद की प्राप्ति हुई। उसे श्रीहरि का सारूप्य मोक्ष मिला।

गीध का उद्धार कर श्रीराम माल्यवान् पर्वत पर गये। वहाँ वे मतङ्ग ऋषि के आश्रम में महाभागा शबरी से मिले। शबरी ने उत्तम फल-फूलों से राम-लक्ष्मण का स्वागत-सम्मान किया। शबरी के फलों को भोग लगाकर भगवान् ने उसे मोक्ष प्रदान किया। वहाँ से वे पम्पासरोवर की ओर बढ़े। उन्होंने मार्ग में जाते समय भयानक रूपधारी कबन्ध नामक राक्षस का वध किया। इसके अनन्तर श्रीरघुनाथ जी ने शबरी-तीर्थ को अपने शार्ङ्गधनुष की कोटि से गङ्गा और गया के समान पवित्र बना दिया।

उसके बाद श्रीरामचन्द्र जी ऋष्यमूक पर्वत पर गये। वहाँ पम्पा सरोवर के

---

१. इत्युक्त्वा राक्षसीं सीतां ग्रसितुं वीक्ष्य चोद्यताम् ।
श्रीरामः खड्गमुद्यम्य नासाकर्णौ प्रचिच्छिदे ॥ *पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, २४२/२४६*

तट पर हनुमान् वानर से उनकी भेंट हुई । हनुमान् के कहने से उन्होंने सुग्रीव के साथ मैत्री की। राम ने सुग्रीव के अनुरोध से वानरराज बालि को मार कर सुग्रीव को ही उसके राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। सुग्रीव ने सीता जी का अन्वेषण करने के लिये चतुर्दिक् वानरों को प्रेषित किया। इसी क्रम में हनुमान् जी सागर को लाँघकर लंका नगरी में प्रवेश किये। वहाँ उन्होंने श्रीसीता जी को देखा और राम के द्वारा प्रदत्त अभिज्ञान (पहचान) उन्हें देकर राम का समाचार निवेदित किया। विदेहराज कुमारी से मिलने के अनन्तर हनुमान् जी ने रावण के उद्यान को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उन्होंने राक्षसों, सेनापतियों और मन्त्रिकुमारों के साथ रावण के पुत्र का भी वध कर डाला। फिर रावण के दूसरे पुत्र मेघनाद के द्वारा वे स्वेच्छा से बँध गये। उसके बाद राक्षसराज रावण से मिलकर हनुमान् जी ने उससे वार्तालाप किया। रावण ने उनकी पूँछ में आग लगवा दी। हनुमान् जी ने उसी आग से समग्र लंकापुरी को दग्ध कर डाला। फिर सीताजी के द्वारा प्रदत्त चिह्न लेकर वे राम के पास वापस चले आये।

माता सीता का समाचार पाकर श्रीराम बहुत से वानरों के साथ सागर के तट पर गये। वहाँ शरण में आये हुए विभीषण को उन्होंने, हनुमान् जी के कहने से, स्वीकार किया। श्रीराम ने शरण में आये हुए विभीषण को अभयदान देकर राक्षसों के राज्य पर अभिषिक्त किया। तत्पश्चात् समुद्र को पार करने की इच्छा से श्रीरामचन्द्र जी उसकी शरण में गये। उन्होंने सागर से मार्ग माँगा। किन्तु सागर की गतिविधि में कुछ भी अन्तर न आया। अतः राम ने अपने शार्ङ्ग धनुष से बाणों की वर्षा कर सागर को सुखा दिया। फलतः व्याकुल सागर राम के शरणागत हुआ। पुनः राम ने वारुणास्त्र का प्रयोग कर सागर को जल से भर दिया। फिर सागर के कहने से ही उन्होंने वानर-भालुओं के द्वारा लाये गये पर्वतों से उस पर सेतु का निर्माण करवाया। उसी से श्रीराम अपनी विशाल वाहिनी के साथ लंका में प्रवेश किये। उसके बाद वानरों और राक्षसों का भीषण युद्ध हुआ।

राम-रावण का युद्ध चल रहा था। इसी समय रावण के पुत्र महाबली इन्द्रजित् नामक राक्षस ने नागपाश में श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाइयों को बाँध लिया। उस समय गरुड ने आकर उन्हें उन अस्त्रों के बन्धन से विमुक्त किया। तदनन्तर रावणानुज कुम्भकर्ण लड़ने के लिये आया। राम ने अपने तेजस्वी बाणों से उसे मृत्यु के मुख में पहुँचा दिया। अपने वीर चाचा को मृत्यु का ग्रास होते देखकर इन्द्रजित् क्रुद्ध हो उठा। उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर वानर-वीरों को मार गिराया। उसी समय हनुमान् जी श्रेष्ठ औषधियों से भरे हुए पर्वत को उठा लाये।

उसको छूकर बहने वाली वायु के स्पर्श से सभी वानर जीवित हो उठे। इन्द्रजित् के कृत्य को देखकर लक्ष्मण के कोप की सीमा न रही। उन्होंने अपने सुतीक्ष्ण बाणों के प्रहार से इन्द्रजित् की इहलीला समाप्त कर दी। वह काल का ग्रास बन गया।

इन्द्रजयी पुत्र की मृत्यु से रावण आगबबूला हो उठा। उसने श्रीराम और लक्ष्मण पर प्रबल प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। रावण के शक्ति-प्रहार से लक्ष्मण मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े। फिर तो हनुमान् जी श्रेष्ठ औषधियों से भरे पर्वत को उठा लाये। इससे लक्ष्मण जी की चेतना वापस आ गई। राम से पराजित रावण ने लंका में अभिचारात्मक यज्ञ प्रारम्भ किया। किन्तु वानर-वीरों ने उसे भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इसके बाद रावण रथारूढ हो राम से युद्ध के लिये बाहर आया। इन्द्र ने राम के लिये अपना रथ भेजा। राम भी रथपर आरूढ हुए। फिर क्या था ? राम-रावण में ऐसा युद्ध हुआ जो अभूतपूर्व था, कभी देखा न गया था। दोनों योद्धाओं का यह घोर संग्राम सात दिन और सात रातों तक अनवरत चलता रहा। देव-मण्डली विमान पर आरूढ हो इस भयानक युद्ध को देख रही थी। अन्त में राम ने रावण पर ब्रह्मास्त्र से प्रहार किया। वह बाण रावण के वक्ष-स्थल को विदीर्ण कर रसातल को चला गया। फल यह हुआ कि त्रिलोकी को रुलाने वाले रावण ने भूमिसात् हो अपने प्राणों का परित्याग कर दिया।

रावण के परलोकगामी बन जाने पर श्रीरघुनाथ जी ने लंका के राज्य पर विभीषण को अभिषिक्त करके अपने को कृतार्थ-सा माना और इस प्रकार कहा— 'विभीषण, जब तक सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी रहेगी तथा जब तक यहाँ मेरी कथा का प्रचार रहेगा तब तक तुम्हारा राज्य प्रचलित रहेगा। अन्त में तुम पुत्र-पौत्रादि के साथ मेरे सनातन धाम को प्राप्त होओगे।'

विभीषण के ऊपर इस प्रकार अनुग्रह की वृष्टि कर भगवान् श्रीराम ने जनकलली जानकी को अपने पास बुलाया। यद्यपि श्रीसीता की पवित्रता में किसी को किसी प्रकार का सन्देह नहीं था। फिर भी श्रीराम ने उन्हें बहुत-से निन्दित वचन कहे। अपने ही प्राण-प्रिय पति के द्वारा निन्दित होने पर सती साध्वी सीता अग्नि प्रज्वलित करके उसमें प्रविष्ट होने लगीं। इस दृश्य को देखकर भयाक्रान्त ब्रह्मादि देवोंने जानकी की प्रशंसा कर उनकी पवित्रता की साक्षी दी। उस समय अग्निदेव ने प्रकट होकर, देव-मण्डली के समक्ष ही, सीता की निष्कलुषता की साक्षी देते हुए श्रीराम से कहा—'प्रभो, सीता निष्कलङ्क हैं। आप इन्हें सद्यः ग्रहण करें।' अग्निदेव की बात को प्रमाण मानकर प्रभु श्रीराम ने सहर्ष जानकी को ग्रहण किया।

इसके बाद समर-भूमि में जो-जो श्रेष्ठ वानर राक्षसों के हाथों मारे गये थे, ब्रह्माजी ने उन्हें अपने वर के प्रभाव से जीवित कर दिया।

श्रीराम ने रावण को सपरिवार मारकर भक्त शिरोमणि विभीषण को लंका के राजसिंहासन पर बैठा कर अपने आप को कृतार्थ माना। इसके बाद विभीषण ने प्रभु श्रीराम का वस्त्राभूषणों से सम्मान कर उन्हें रावण का पुष्पक विमान भेंट किया। उस पर समग्र सैन्य-समेत समारूढ हो, जानकी और लक्ष्मण के साथ, श्रीराम अयोध्या के लिये प्रस्थान किये। जब वे भरद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुँचे तब उन्होंने हनुमान् जी को भरत के पास भेजा। हनुमान् सर्वप्रथम निषादों के गाँव (शृङ्गवेरपुर) गये। वहाँ उन्होंने विष्णु-भक्त गुह से भेंट की। उनसे श्रीराम के आने का समाचार कहा और फिर नन्दिग्राम को चले गये। नन्दिग्राम में भरत जी को श्रीराम का आगमन का समाचार देकर वे पुनः श्रीराम के पास वापस चले गये।

श्रीराम के आगमन का समाचार प्राप्त कर श्रीभरत जी की प्रसन्नता का ठिकाना न था। वे श्रीराम की अगवानी के लिये सन्नद्ध हो गये। उधर भरद्वाज मुनि को प्रणाम कर श्रीराम नन्दिग्राम पहुँचे। वहाँ से वे अयोध्या गये और सुग्रीव, हनुमान् तथा विभीषण आदि भगवद्भक्तो के पावन चरणों के पड़ने से पवित्र हुए राज-प्रसाद में प्रवेश किये ।

अयोध्या में बड़े उल्लास के साथ राम का राज्याभिषेक किया गया। राज्याभिषेक हो जाने के पश्चात् सम्पूर्ण दिशाओं का पालन करते हुए श्रीरामचन्द्र जी ने विदेह-नन्दिनी सीता के साथ एक सहस्त्र वर्षों तक मनोरम राजभोगों का उपभोग किया। इस बीच में अन्तःपुर की स्त्रियाँ, नगर-निवासी तथा प्रान्त के लोग प्रच्छन्न रूप से सीता जी की निन्दा करने लगे। निन्दा का विषय यही था कि वे कुछ काल तक राक्षस के घर में निवास कर चुकी थीं। लोकापवाद के कारण मानव-भाव का प्रदर्शन करते हुए श्रीरामजी ने राजकुमारी सीता को, गर्भवती की अवस्था में, वाल्मीकि मुनि के आश्रम के पास गङ्गा तट पर, महान् वन के भीतर छुड़वा दिया। जानकी गर्भ का कष्ट सहन करती हुई मुनि के आश्रम में रहने लगीं। वहाँ उन्होंने दो पुत्र उत्पन्न किये, जो कुश और लव के नाम से प्रसिद्ध हुए।

राम अयोध्या में निवास करते हुए धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते थे। धर्मात्मा शत्रुघ्न लवणासुर को मारकर, अपने दो पुत्रों के साथ, देवनिर्मित मथुरापुरी के राज्य का पालन करने लगे। भरत ने सिन्धु नदी के दोनों तटों को जीतकर अपने दोनों पुत्रों को वहाँ स्थापित कर दिया। इसी प्रकार लक्ष्मण ने

मद्रदेश में, मद्रों का वध कर, वहाँ के राज्य पर अपने दोनों पुत्रों को अभिषिक्त कर दिया।

भगवान् श्रीराम जब प्रजा का पालन कर रहे थे तब उन्होंने एक तपस्वी शूद्र को मारकर मरे हुए एक ब्राह्मण बालक को जीवन प्रदान किया था। तदनन्तर नैमिषारण्य में, गोमती के तट पर श्रीरघुनाथ जी ने सुवर्णमयी जानकी की प्रतिमा के साथ बैठकर अश्वमेध यज्ञ किया।

राम के यज्ञ में महर्षि वाल्मीकि सीता को साथ लेकर आये और उनसे कहे कि—'श्रीराम, मिथिलेश-कुमारी सर्वथा निष्पाप हैं। आपने इनका परित्याग क्यों किया ?' उत्तर में श्रीराम ने कहा—'महर्षिप्रवर, आपका कथन सर्वदा सत्य है। यद्यपि सती-शिरोमणि सीता ने अपनी विशुद्धता का प्रमाण अग्नि में प्रवेश करके समाज के समक्ष प्रस्तुत किया था। फिर भी यहाँ आने पर इनके प्रति नगर-निवासियों में महान् अपवाद फैला। अत: मैंने उन्हें आपके निकट छोड़ दिया था। अब इन्हें लोगों के सन्तोष के लिये, राजाओं और महर्षियों के सामने, अपनी शुद्धता का प्रमाण प्रस्तुत करना पड़ेगा।'

श्रीराम के इस प्रकार कहने पर श्रीसीता जी ने सब लोगों को आश्चर्य में डालने वाला प्रमाण प्रस्तुत किया। सबके सामने उस भरी सभा में उन्होंने कहा—'यदि मैं रघुनाथ जी के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष का मन से भी चिन्तन न करती होऊँ तो हे पृथ्वीदेवी, तुम मुझे अङ्क में स्थान दो।'

सीताजी के उक्त प्रकार से प्रार्थना करने पर पक्षिराज गरुड अपनी पीठ पर रत्नमय सिंहासन लिये रसातल से प्रकट हुए। पृथ्वी माता भी इसी समय वहाँ सबके सामने उपस्थित हुईं। उन्होंने मिथिलेश कुमारी-जानकी को दोनों हाथों से उठा लिया और स्वागतपूर्वक उनका अभिनन्दन करके उन्हें सिंहासन पर बैठाया। सीता जी पृथिवी के मार्ग से ही परमधाम को चली गईं। सबके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

सीताजी के अन्तर्हित हो जाने के अनन्तर शोकाकुल श्रीराम अपने दोनों बेटों के साथ अयोध्या नगरी में पधारे। वहाँ उन्होंने ग्यारह हजार वर्षों तक धर्मपूर्वक राज्य का पालन किया। इसी बीच श्रीरामचन्द्र जी की माताएँ कालधर्म को प्राप्त हो पति के पास स्वर्ग में चली गईं।

रामचन्द्र स्नेहपूर्वक प्रजा का पालन कर ही रहे थे। इसी समय एक दिन काल तपस्वी का वेष धारण करके श्रीरामचन्द्र जी के भवन में आया। उसने श्रीराम से इस प्रकार कहा—'महाभाग, ब्रह्मा जी ने मुझे भेजा है। उनका गोपनीय

सन्देश आप सुनें। हम दोनों के वार्तालाप के समय यहाँ कोई न आवे। उस अवधि में यदि कोई यहाँ आ जाय तो वह वध के योग्य होगा।' राम ने कहा—'ठीक है। ऐसा ही होगा।' फिर उन्होंने लक्ष्मण जी को दरवाजे पर पहरा देने के लिये बैठा दिया और स्वयं काल के साथ वार्ता करने लगे। काल ने कहा—'ब्रह्माजी के साथ देवों की प्रार्थना है कि भूतल पर रहने का आपका समय समाप्त हो गया है। रावण और कुम्भकर्ण का वध करके आपने देवकार्य को सम्पन्न कर दिया है। अतः अब आप परमधाम को पधारें।' श्रीराम ने 'एवमस्तु' कहकर काल का अनुरोध स्वीकार किया।

अभी श्रीराम और काल-मुनि की बात चल ही रही थी कि इसी समय दुर्वासामुनि राजद्वार पर आ पहुँचे। उन्होंने लक्ष्मण से कहा—'राजकुमार, तुम अभी जाकर श्रीराम को मेरे आगमन की सूचना दो।' लक्ष्मण ने आज्ञा न होने से भीतर जाने में असमर्थता व्यक्त की। इस पर क्रुद्ध होकर महामुनि शाप देने के लिये तैयार हो गये। लक्ष्मण जी ने शाप के भय से श्रीरामचन्द्र जी को महर्षि दुर्वासा के आगमन की सूचना दे दी। इसके बाद कालदेव वहीं अन्तर्धान हो गये। दुर्वासा के आने पर राम ने उनका सविधि सत्कार किया। उधर लक्ष्मण ने अपने बड़े भाई की प्रतिज्ञा को याद करके सरयू के जल में स्थित हो अपने सहस्रफणावली से मण्डित शेष रूप में प्रवेश किया।

श्रीराम के परमधाम-गमन के अभिप्राय को जानकर उनकी वानर-भालुओं की सारी सेना अयोध्या पहुँच गई। वे सभी श्रीराम-धाम को, श्रीराम के ही साथ, जाने को उद्यत थे। श्रीराम ने विभीषण को यह कह कर जाने से मना कर दिया कि—'तुम राज्य का पालन करो। मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ न होने दो। यावच्चन्द्रदिवाकरौ राज्य करके तुम फिर मेरे लोक में आओगे।' इसके बाद रामचन्द्र जी ने हनुमान् जी से कहा—'वानरराज, संसार में जब तक मेरी कथा का प्रचार रहे, तब तक तुम इस भूतल पर निवास करो। फिर समयानुसार मुझे पाओगे।' हनुमान् जी से ऐसा कहकर वे जाम्बवान् से बोले—'पुरुषश्रेष्ठ, द्वापर युग आने पर मैं पुनः पृथ्वी का भार उतारने के लिये यदुकुल में अवतार लूँगा और तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा। अतः तुम यहीं रहो।'

अपने भक्तों को उपर्युक्त आदेश देकर भगवान् श्रीराम ने सबके साथ परमधाम के लिये प्रस्थान किया। उस समय उन्होंने अपने परम स्वरूप में प्रवेश किया।[१]

१. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय २४२-२४४

पाताल-खण्ड—पातालखण्ड में वर्णित राम-कथा शेष-वात्स्यायन के सम्वाद के रूप में वर्णित है। वात्स्यायन ने शेष से प्रार्थना की थी कि वे अब रामाश्वमेध की कथा विस्तार के साथ सुनावें। अत: इस खण्ड की कथा में राम के उत्तर चरित का विशद विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसलिये उसे ही यहाँ लिखा जा रहा है—

अयोध्या पहुँचने पर श्रीरामचन्द्र सर्वप्रथम माता कैकेयी के घर में गये। कैकेयी लज्जा के भार से दबी हुई थीं। अत: श्रीराम को अपने समक्ष देखकर भी वे कुछ न बोलीं । बारम्बार महती चिन्ता उन्हें आक्रान्त कर रही थी। राम ने उनसे कुछ बातें की और फिर ममता की मूर्ति माता सुमित्रा के महल में गये । वहाँ उन्हें सादर प्रणाम किया। फिर वहाँ से वे जननी कौसल्या से जाकर मिले ।

राम का राज्याभिषेक हुआ। लोगों के हर्ष का पारावार न रहा। राम ने जिस पटुता एवं स्नेह के साथ प्रजा का पालन किया वह इतिहास की मिशाल बन गई। चतुर्दिक् प्रसन्नता का साम्राज्य था।

इसी बीच सीता ने गर्भ धारण किया। शनै: शनै: पाँच मास व्यतीत हो गये। एक दिन प्रभु श्रीराम ने सीता जी से उनके गर्भ-दोहद की बात पूछी। सीता ने जङ्गल में जाकर लोपामुद्रा आदि मुनि-पत्नियों के दर्शन और सम्मान की इच्छा व्यक्त की । श्रीराम ने उनकी इच्छा-पूर्ति के लिये कहा—'प्रियतमे, तुम धन्य हो। कल प्रात:काल जाना और उन तपस्विनी स्त्रियों का दर्शन करके कृतार्थ हो जाना।' प्रियतम के मनोनुकूल वचनों से सीता को परम प्रसन्नता हुई । वे उत्सुकता के साथ आगत कल की प्रतीक्षा करने लगीं।

उसी रात राजा राम के द्वारा प्रेषित गुप्तचर अयोध्या-नगरी में समाचार संकलन के लिये गये। उनमें से एक ने एक धोबी को देखा। वह अपनी पत्नी को पीट रहा था। जब उसकी माँ ने रोका तो उसने उत्तर दिया—'मैं राम जैसा नहीं हूँ, जो दूसरे के घर में रही हुई प्यारी पत्नी को फिर से ग्रहण कर लूँ। वे राजा हैं, जो कुछ भी करेंगे, सब न्याय-संगत ही माना जायेगा। मैं दूसरे के घर में निवास करने वाली भार्या को कथमपि नहीं ग्रहण कर सकता।'

सबेरा हुआ। रघुनाथ जी ने गुप्तचरों से रात की बात पूछी। धोबी वाली घटना को गुप्तचर ने साफ-साफ कह दिया। राम ने गुप्तचरों को विदा कर दिया। फिर उन्होंने भरत जी को बुला भेजा। भरत श्रीराम की सेवा में झटिति उपस्थित हुए। राम ने उनसे सीता के निर्वासन की बात कहीं और यह भी कहा कि 'लोकापवाद के कारण आज सीता का परित्याग करता हूँ। इसलिये तुम जनककिशोरी को वन में ले जाकर छोड़ आओ।' श्रीराम का यह आदेश सुनते ही भरत जी

मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। भरतजी की यह दशा देखकर श्रीराम ने शत्रुघ्न जी को बुलाकर सीता के परित्याग की बात कही। उसे सुनते ही शत्रुघ्न जी भी, भरत की भाँति, मूर्च्छित होकर भूतल पर गिर पड़े। शत्रुघ्न की यह दशा देखकर राम को महान् कष्ट हुआ। फिर उन्होंने अपने प्रिय बन्धु लक्ष्मण जी को बुलाकर सीता जी को लेजाकर जंगल में छोड़ने की बात कही। लक्ष्मण जी ने सीता को निर्दोष बतलाकर उनको जंगल में छोड़ने से मना किया। किन्तु राम ने निर्बन्धपूर्वक उनसे कहा—'इस समय मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन न करो। पतिव्रता सीता को जंगल में छोड़ आओ।' यह आदेश सुनकर लक्ष्मण एक क्षण तक शोकाकुल हो दुःख में डूबे रहे, फिर मन-ही-मन विचार किया—'परशुराम जी ने पिता की आज्ञा से अपनी माता का भी वध कर डाला था, इससे जान पड़ता है, गुरुजनों की आज्ञा उचित हो या अनुचित, उसका कभी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। अत: श्रीरामचन्द्र जी का प्रिय करने के लिये मुझे सीता को ले जाकर जंगल में छोड़ना ही पड़ेगा।'[१]

यह सोचकर लक्ष्मण जी ने अपने आदरणीय अग्रज रघुनाथ जी से कहा—'सुव्रत, गुरुजनों के कहने से अकरणीय कार्य भी कर डालना चाहिये। क्योंकि उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन कथमपि उचित नहीं है। अत: आप जो कुछ कह रहे हैं, उस आदेश का मैं पालन अवश्य करूँगा।' लक्ष्मण की बात सुनकर राम प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कहा—'महामते, तुमने मेरे चित्त को सन्तुष्ट कर दिया। अभी-अभी रात्रि में जानकी जी ने तापसी स्त्रियों के दर्शन की अभिलाषा अभिव्यक्त की थी। इसलिये उन्हें रथ पर बैठाकर जंगल में छोड़ आओ।'

बड़े भैया का आदेश मिल जाने पर लक्ष्मण जी, जंगल दिखाने के व्याज से, जानकी को रथ पर बैठाकर वन की ओर चले। सुमन्त्र रथ हाँक रहे थे। रह-रह कर अपशकुन घटित हो रहे थे। लक्ष्मण के नयन अश्रुपूरित थे। उनकी मति-गति विलक्षण थी। वे मौन थे, विषाद के सागर में निमग्न थे। रथ भागीरथी के तट पर पहुँचा। लक्ष्मण ने जानकी की आकृति की ओर देखा और कहा—'भाभी जी, रथ छोड़ो। चलो लहरियों से भरी हुई गङ्गा को पार करो। सीता जी ने देवर की बात का अनुसरण किया। नैया से गङ्गा पार कर सीता के साथ लक्ष्मण वन में, जन-शून्य वन में, प्रविष्ट हुए। ऋषिविरहित उस जंगल को देखकर सीता ने लक्ष्मण से कहा—'यहाँ तो वन-ही-वन दृष्टिगोचर हो रहा है। ऋषि-मुनियों के

---

१. **तुलना कीजिये**—स शुश्रुवान् मातरि भार्गवेण पितुर्नियोगात् प्रहृतं द्विषद्वत् ।
प्रत्यग्रहीदग्रजशासनं तदाज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया ॥

रघुवंश १४/४६

कहीं दर्शन नहीं हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त, मैं तुम्हें किसी भारी दुःख से आक्रान्त देख रही हूँ। तुम्हारी आँखे आँसुओं से भरी हुई हैं। तुम व्याकुल से दीख रहे हो। बहुत-से अपशकुन भी घटित हो रहे हैं। सत्य-सत्य बोलो, क्या बात है ?'

लक्ष्मण का हृदय विकल था। सीता बार-बार आग्रह करती जा रही थीं। अतः उन्होंने किसी-किसी प्रकार अपने आपको सम्भाल कर सीता जी को महाराज के द्वारा उनके परित्याग की बात बताई। सुनते ही सीता जी जड़ से कटी हुई लता की भाँति भूतल पर गिर पड़ीं।[१] चेतना के आने पर उन्होंने कहा—'लक्ष्मण, मुनि वसिष्ठ के समक्ष ही राजा रामचन्द्र से मेरी एक बात पूछना—'नाथ, यह ज़ानते हुए भी कि सीता निष्पाप है, जो आपने मुझे त्याग दिया है, यह व्यवहार आपके कुल के अनुरूप है ? क्या आपके शास्त्रज्ञान के अनुकूल है? मैं सबके समक्ष अग्नि में विशुद्ध सिद्ध हुई थी। फिर भी आपने लोकापवाद के कारण मेरा परित्याग कर दिया है।'[२]

उपर्युक्त वचन कहकर सीता मूर्च्छित हो गईं। लक्ष्मण जी किसी-किसी प्रकार उन्हें चेतना में लाये और प्रणाम पूर्वक कहा—'देवि, अब मैं श्रीराम के पास जा रहा हूँ। वहाँ पहुँचकर मैं आपका सन्देश कहूँगा। आपके पास ही महर्षि वाल्मीकि का बहुत बड़ा आश्रम है।' इतना कहकर लक्ष्मण जी ने सीता की परिक्रमा की और दुःखमग्न हो आँसू बहाते हुए वे अयोध्या के लिये चल दिये।

सीता जी दुःख-निमग्न हो विलाप करने लगीं। उस समय महर्षि वाल्मीकि शिष्यों के साथ वन में गये थे। वहाँ उन्हें करुणोत्पादक स्वर में विलाप और रोदन सुनाई पड़ा। वे सीता के पास पहुँचे। सीता ने महर्षि का वन्दन किया। वाल्मीकि ने आशीष दिया—'बेटी, तुम पति के साथ चिरकाल तक जीवित रहो। तुम्हें दो सुन्दर सुत प्राप्त हों। सीता का परिचय प्राप्त कर लेने पर महर्षि ने पुनः कहा—'विदेहकुमारी, मुझे अपने पिता का गुरु समझो। मेरा नाम वाल्मीकि है। अब तुम दुःख मत करो। मेरे आश्रम पर चलो। पतिव्रते, तुम यही समझो कि दूसरे स्थान पर बना हुआ मेरे पिता जी का यह घर है।' महर्षि की वाणी सुनकर सतीशिरोमणि सीता को कुछ सान्त्वना हुई। उन्होंने महर्षि का अनुगमन किया। तापसियों ने

---

१. **तुलना कीजिये**-ततोऽभिषङ्गानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना ।
स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम ॥ *रघुवंश १४/५४*

२. **तुलना कीजिये**-वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत् समक्षम् ।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य तत् किं सदृशं कुलस्य ॥
रघुवंश १४/६१

सीता का अभिनन्दन किया। गुरु का आदेश मिलते ही शिष्यों ने सीता के लिये सुन्दर पर्णशाला तैयार कर दी। कृतज्ञ सीता ने उसमें निवास किया। वे शरीर से महर्षि की शुश्रूषा और चित्त से श्रीराम का चिन्तन करती थीं ।

समय पूरा हुआ। सीता ने दो सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया। मन्त्रवेत्ताशिरोमणि महर्षि ने बालकों के जातकर्मादि संस्कारों को सम्पन्न किया। यत: वाल्मीकि ने उन बालकों के संस्कार-सम्बन्धी सारे कर्म कुशों और उनके लवों (टुकड़ों) द्वारा ही किये थे, अत: उन्हीं के नाम पर उन दोनों का नाम क्रमश: कुश और लव रक्खा गया । महर्षि के द्वारा अपने पुत्रों का संस्कार देखकर सीता की प्रसन्नता की सीमा न रही। उनका मन-मयूर नाच उठा।

यह दैव-संयोग ही था कि उसी दिन लवणासुर को मारकर शत्रुघ्न जी भी अपने स्वल्प सैनिकों के साथ वाल्मीकि मुनि के सुन्दर आश्रम पर रात्रि में आये थे। उस समय वाल्मीकि जी ने उन्हें आदेश दिया था कि 'तुम श्रीरघुनाथ जी को जानकी के पुत्र होने की बात मत बतलाना। समय आने पर मैं ही उनके सामने सारा वृत्तान्त कहूँगा।'

जानकी के वे दोनो पुत्र महर्षि के पावन आश्रम में पलने और बढ़ने लगे। वाल्मीकि ने उनके उपवीतादि संस्कार सम्पन्न किये। उन्हें वेदों और धनुर्वेद की अनुपम शिक्षा दी। उसके साथ ही उन्होंने बालकों को स्वरचित सर्वथा नवीन रामायण-काव्य भी पढ़ाया। उन्हें सुवर्णभूषित ऐसे दो धनुष प्रदान किये जो अभेद्य और श्रेष्ठ थे। मुनि ने उन्हें जो दो तूणीर प्रदान किये थे वे अक्षय्य थे। इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि के कृपा-भाजन वे दोनो बालक शास्त्र और शस्त्र-द्विविध विद्या-में पारगामी विद्वान् बन गये।

सीता के परित्याग के अनन्तर रामचन्द्र पुत्रनिर्विशेष दृष्टि से प्रजा का पालन करते थे। उसी समय महर्षि अगस्त्य की प्रेरणा से राम ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। तदर्थ शुभ लक्षणों से सम्पन्न घोड़ा छोड़ा गया। विशाल सेना के साथ शत्रुघ्न अश्व की रक्षा में नियुक्त किये गये। अश्व चतुर्दिक् भ्रमण करने लगा। किसी राजा ने अश्व पकड़ कर युद्ध किया। किसी ने शत्रुघ्न के समक्ष आत्मसमर्पण किया। भ्रमण के क्रम में एक दिन प्रात:काल वह अश्व गङ्गा नदी के किनारे महर्षि वाल्मीकि के पावन आश्रम पर जा पहुँचा। वहाँ ब्राह्मणकुमारों के साथ सीता के लघु सुत लव क्रीडा कर रहे थे। अश्व के भाल पर लगी पट्टी पढ़ते ही लव का क्रोध नि:सीम हो उठा। उन्होंने अश्व को पकड़ लिया ।

पहले तो शत्रुघ्न की सेना ने लव के कार्य को केवल बाल-चापल्य ही

समझा। किन्तु जब लव ने दृढता एवं निर्भयता के साथ युद्ध के लिए ललकारा तो सेना ने उस बालक पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में लव ने शत्रुघ्न की सेना का भयङ्कर संहार करना प्रारम्भ किया । इसी क्रम में वीरवर लव ने कालजित् का वध किया और फिर पुष्कल तथा हनुमान् जी को अपने तीव्र बाण-प्रहारों से मूर्च्छित कर दिया। हनुमान् जी को मूर्च्छित देखकर शत्रुघ्न क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने घोर युद्ध करके लव को मूर्च्छित कर दिया। इसी समय कुश युद्ध-स्थल में पहुँचते हैं। उन्होंने अपने बाहुबल और बाण-चातुरी से शत्रुघ्न की चतुरङ्गिणी को चतुर्दिक् विदलित हो भाग खड़ी होने के लिये विवश कर दिया। फिर तो दोनों भाई बड़े हर्ष में भर कर एक-दूसरे से गले लगे ।

लव ने कुश से कहा—'भैया, आपकी कृपा से मैं युद्धरूपी सागर से पार हुआ। हम लोगों को इस युद्ध में स्मृति के रूप में कुछ चिह्न ले चलना चाहिये।' कुश ने लघु-बन्धु से सहमति व्यक्त की। फिर दोनों भाई सर्वप्रथम प्रधान सेनापति शत्रुघ्न के पास गये। वहाँ कुश ने उनकी सुवर्ण-मण्डित मनोहर मुकुटमणि ले ली। तदनन्तर लव ने हनुमान् और सुग्रीव को बाँध कर कुश से कहा—'भैया मैं इन दोनों को अपने आश्रम में ले चलूँगा। वहाँ मुनि-बालक इनसे खेलेंगे और मेरा भी मनोरञ्जन होगा।'

मदारी जैसे बन्दरों को बाँध कर चलता है, वैसे ही लव भी हनुमान् और सुग्रीव को बाँधे हुए सीता के पास पहुँचे। दोनों पुत्रों को सकुशल आया हुआ देखकर जानकी की प्रसन्नता की सीमा न रही। उन्होंने उन्हें छाती से लगा लिया। किन्तु जानकी ने जब दोनों बन्दरों को देखा तो उन्हें पहचानते देर न लगी। उन्होंने बालकों से कहा—'पुत्रों, ये दोनों वानर बड़े वीर और महाबलवान् हैं। उन्हें छोड़ दो। ये वीर हनुमान् हैं। इन्होंने रावण की स्वर्णमयी लंका को जलाकर भस्म कर डाला था। और ये वानर तथा भालुओं के राजा सुगीव हैं। इनका अनादर करना समीचीन नहीं है।

ममतामयी माँ की बात सुनकर पुत्रों ने कहा—'माँ, राम नाम के एक राजा हैं। उन्होंने एक घोड़ा छोड़ा है। उसके भाल पर एक पट्टी लगी हुई है। उसमें लिखा है—'जो सच्चे वीर क्षत्रिय हों, वे इस अश्व को पकड़ें। अन्यथा मेरे समक्ष मस्तक झुकावें।' उस राजा की धृष्टता देखकर मैंने अश्व को पकड़ लिया। सारी सेना को हम लोगों ने युद्ध में मार गिराया है। देखों, यह राजा शत्रुघ्न का मुकुट है और यह वीरवर पुष्कल का किरीट है।'

बच्चों की बात सुनकर सीता को कष्ट की अनुभूति हुई। उन्होंने कहा—

'मेरे लालों, तुम लोगों ने यह ठीक नहीं किया।' उन्होंने बन्दरों को बन्धन से मुक्त करवा दिया, अश्व को छोड़वा दिया और अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से समर-भूमि में नष्ट हुई सारी सेना को जीवित कर दिया। फिर तो अश्व लेकर शत्रुघ्न, सारी सेना के साथ, अयोध्यापुरी लौट आये। भगवान् श्रीराम ने अश्व-भ्रमण की बात पूछी। सुमति ने अश्व-यात्रा की सारी कहानी कह सुनाई। लव और कुश के द्वारा सेना तथा शत्रुघ्न की पराजय एवं सुग्रीव-हनुमान् का बाँधा जाना भी बतला दिया।

राम ने सुमति की बात ध्यान से सुनी। फिर उन्होंने यज्ञ में पधारे हुए महर्षि वाल्मीकि से उन बालकों के विषय में पूछा। महर्षि ने सीता-परित्याग से लेकर लव, कुश के संस्कारों और शिक्षा की सारी बातें श्रीराम को बतला दी। उन्होंने यह भी कहा कि—'मैंने अपने भावी-ज्ञान की महिमा से आपके चरित्र से संवलित रामायण की रचना की है। उन बालकों के द्वारा इस मनोहर रामायण-काव्य का पाठ प्रतिदिन करवाता हूँ। उनके रामायण-गान को सुनकर सारे चेतन-अचेतन प्राणी प्रभावित हुए बिना नहीं रहते । श्रीराम, सीता सर्वथा पवित्र हैं । अत: शील एवं सद्गुणों से विभूषित अपने दोनों पुत्रों को, सीता-सहित, ग्रहण कीजिये।

सीता ने ही आपकी मरी हुई सेना को जीवित कर उसे प्राण-दान दिया है। इससे सब लोगों को उनकी शुद्धि का विश्वास हो गया है।'

वाल्मीकि के वचनों को सुनकर श्रीराम ने लक्ष्मण जी से कहा—'तात, तुम शीघ्र ही महर्षि वाल्मीकि के आश्रम पर जाओ। सीता को समझा-बुझाकर, पुत्रों के साथ उन्हें लिवाकर शीघ्र वापस आओ।' लक्ष्मण ने महाराज के आदेश को शिरोधार्य किया। सुमन्त्र रथ लाये। लक्ष्मण उस पर आरूढ होकर वाल्मीकि के आश्रम में सीता के समीप पहुँचें । लक्ष्मण ने सीता को, दीप-शिखा की भाँति, देखा। उनके चरणों पर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। सीता ने आशीष देकर लक्ष्मण को अपने चरणों पर से उठाया। लक्ष्मण ने वापस चलने के श्रीराम के संदेश को यथावत् कह सुनाया। राम के सन्देश को सुनकर सीता तो नहीं गईं किन्तु उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को लक्ष्मण के साथ श्रीराम के पास प्रेषित कर दिया। यद्यपि लव और कुश अपनी ममतामयी माँ के स्नेहाञ्चल को छोड़कर नहीं जाना चाहते थे, तो भी माँ की आज्ञा पाकर वे लक्ष्मण के साथ गये। बालकों को देख सबको महान् हर्ष की अनुभूति हुई। किन्तु सीता के न आने की बात को ज्ञात कर राम ने एक बार सन्देश देकर पुन: लक्ष्मण को सीता के समीप बुलाने के लिए भेजा। लक्ष्मण ने जाकर सीता जी को पति के आदेश की महत्ता को समझाते हुए अयोध्या चलने की प्रार्थना की। दैव-संयोग से सीता ने लक्ष्मण की बात स्वीकार

कर ली। वे आश्रम-वासिनी तपस्विनियों तथा वेदवेत्ता मुनियों को सादर प्रणाम कर रथारूढ होकर अध्योध्या की ओर चलीं। श्रीराम के पास पहुँच कर प्रेम-विह्वल सीता ने श्रीराम के चरणों में सादर प्रणाम किया। राम ने कहा—'साध्वि, इस समय मैं तुम्हारे साथ यज्ञ की समाप्ति करूँगा।'

श्रीराम की बात सुनकर सीताजी ने महर्षि वाल्मीकि के साथ सब मुनियों को प्रणाम करके माताओं के चरणों में माथा टेका। माताओं ने उन्हें सदा सुहागिन रहने का आशीष दिया। श्रीरघुनाथ जी की धर्मपत्नी को उपस्थित देखकर महर्षि कुम्भज ने सीता की स्वर्ण-प्रतिमा हटा दी और उसके स्थान पर उन्हीं को बैठा दिया। इस घटना से सीता के मन में वर्तमान परित्यागजन्य सन्ताप समाप्त हो गया। राम ने श्रद्धापूर्वक अर्द्धाङ्गिनी सीता के साथ यज्ञ समाप्त किया। उन्होंने ऋषियों, मुनियों और ब्राह्मणों को ससम्मान प्रभूत दक्षिणा दी। अन्त में उन्होंने सरयू के पावन जल में अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान किया। उससे श्रीराम की शोभा अवर्णनीय हो गई। सभी राजे-महाराजे उनकी स्तुति करने लगे।

इस प्रकार भगवान् श्रीराम ने जनकनन्दिनी सीता के साथ तीन अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया तथा त्रिलोकी में अत्यन्त दुर्लभ और अनुपम कीर्ति प्राप्त की। पाताल खण्ड की राम-कथा यहीं आकर समाप्त होती है ।[१]

विष्णुमहापुराण

अयोध्या के अधिपति थे महाराज दशरथ। दशरथ के चार पुत्र थे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। राम कमलनाभ विष्णु के अवतार थे। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न श्रीराम के ही अंश थे।[२]

रामजी ने बाल्यावस्था में ही विश्वामित्र की यज्ञरक्षा के लिये जाते हुए मार्ग में ही ताडका राक्षसी का वध किया। फिर मुनि की यज्ञ-शाला में पहुँचकर मारीच को बाण की वायु से उड़ा कर सागर में फेंक दिया। सुबाहु आदि राक्षसों का वध किया। पुनः गुरु विश्वामित्र के साथ जनकपुरी की यात्रा के प्रसङ्ग में उन्होंने अपने दर्शनमात्र से[३] अहल्या को निष्पाप किया। जनकजी के राजभवन में बिना श्रम ही महादेव जी का धनुष तोड़ा और फिर पुरुषार्थ से ही प्राप्त होने वाली अयोनिजा जनकराजदुलारी सीता जी को पत्नीरूप में प्राप्त किया। उसके बाद उन्होंने सम्पूर्ण क्षत्रियों को नष्ट करने वाले, समस्त हैहयकुल के लिये अग्निस्वरूप परशुराम जी के बल-वीर्य का गर्व नष्ट किया।

---

१. पद्ममहापुराण, पातालखण्ड, अध्याय-५४-८६
२. विष्णुमहापुराण-अंश ४, अध्याय ४, श्लोक ८७
३. दर्शनमात्रेणाहल्यामपापां चकार । *वही, ४/४/९१*

आगे चलकर पिता के वचन से, राज्यलक्ष्मी को कुछ भी न समझ कर, भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीता के सहित श्रीराम वन में चले गये। वहाँ उन्होंने विराध, खर और दूषण आदि राक्षस तथा कबन्ध और बाली का वध किया। फिर समुद्र पर पुल बाँधकर सम्पूर्ण राक्षसकुल का संहार किया। पुन: रावण के द्वारा हरण की गई और उसके वध के बाद कलंकहीना होने पर भी, अग्नि-प्रवेश से शुद्ध हुई, समस्त देवगणों से प्रशंसित स्वभाववाली अपनी भार्या जनकराजकन्या सीता को वे अयोध्या में ले आये।

अयोध्या में राम का भव्य राज्याभिषेक किया गया। तदनन्तर सबके प्रिय श्रीरामचन्द्र जी ने सिंहासनारूढ होकर ग्यारह सहस्रवर्ष पर्यन्त राज्यशासन किया। जगत् की यथोचित व्यवस्था करने के अनन्तर भगवान् श्रीराम स्वलोक चले गये। उनके साथ ही, जो अयोध्या-निवासी उन भगवदंशस्वरूपों के अतिशय अनुरागी थे उन्होंने भी, तन्मय होने के कारण सालोक्य मुक्ति प्राप्त की।

दुष्ट-दलन भगवान् श्रीराम के लव और कुश नामक दो पुत्र हुए। इसी प्रकार लक्ष्मण जी के अङ्गद और चन्द्रकेतु, भरतजी के तक्ष और पुष्कल तथा शत्रुघ्न जी के सुबाहु और शूरसेन नामक पुत्र हुए। भरतजी ने गन्धर्वलोक को जीतकर अपने वश में किया था। शत्रुघ्न जी ने अतुलित बलशाली महान् पराक्रमी मधुपुत्र लवण राक्षस का संहार कर मथुरा नामक नगरी की स्थापना की थी।[1]

श्रीमद्भागवतमहापुराण

देवताओं की प्रार्थना से ब्रह्ममय साक्षात् हरि ही सूर्यवंशी महाराज दशरथ के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए। उनका नाम रक्खा गया—राम। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न उनके तीन अनुज थे। ये तीनों उनके अंशांश थे। राम ने विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हुए निशाचरों का वध किया था। उन्होंने जनक के द्वारा समायोजित स्वयंवर में शङ्कर के धनुष को तोड़कर सीता से विवाह किया था। शङ्कर का वह धनुष इतना भारी और विशाल था कि उसे तीन सौ वीर मिलकर स्वयंवर-स्थल में लाये थे।

राम सीता से विवाह कर जब अयोध्या के लिये लौट रहे थे तो उन्हें मार्ग में परशुराम मिले। यह वही परशुराम थे जिन्होंने तीन बार पृथिवी को राजाओं से रहित बना दिया था। अत: उनकी वीरता का दर्प आकाश का स्पर्श कर रहा था। राम ने उनके इस दर्प को दूर किया। स्त्री के वशीभूत पिता दशरथ की आज्ञा को शिरोधार्य कर राम, पत्नी के साथ, वन गये। वनगमन की बेला में लघुबन्धु लक्ष्मण ने उनका अनुगमन किया। वन में उन्होंने अधर्म की भावना से पास में

१. विष्णुमहापुराण, चतुर्थ अंश, अध्याय-४

आई रावण की बहन सूर्पणखा के रूप को विकृत कर डाला। उसके बन्धु खर, त्रिशिरा और दूषण को, उनकी चौदह सहस्र सेनाओं के साथ, युद्ध भूमि में अकेले ही परलोक की राह दिखला दी।[१] सीता के सौन्दर्य की कथा को सुनकर दशानन रावण कामातुर हो उठा था। अत: उसने सीता के हरण की योजना बनाई। उसने मारीच को अद्भुत मृग बनाकर राम के आश्रम के पास भेजा। राम ने मृग का पीछा कर उसका वध किया। उसी समय अवसर पाकर अधम राक्षस ने सीता का हरण कर लिया।[२] राम सीता के लिये साधारण मानव की भाँति, विलाप करते हुए भाई लक्ष्मण के साथ, वन में भ्रमण कर रहे थे। उसी समय उन्होंने कबन्ध का वध किया था। सुग्रींव से मित्रता कर राम ने बाली को भी मारा। वानरों के द्वारा प्रियतमा का समाचार पाकर राम सागर के तट पर गये। मार्ग न मिलने पर उन्होंने सागर पर कोप किया। सागर राम के क्रोध को देखकर घबड़ा उठा। उसने रूप धारण कर पूजा की सामग्री ली और राम के समक्ष उपस्थित हुआ। राम की पूजा कर उसने कहा—'प्रभो, आप मेरे ऊपर सेतु का निर्माण कर रावण पर आक्रमण करें । यह सेतु चिरकाल तक आपकी कीर्ति को प्रसारित करता रहेगा।' राम ने सागर की बात मानीं । उन्होंने बन्दरों से सागर पर सेतु का निर्माण करवाया और फिर सेना के साथ लंका में प्रवेश किया। यह वही लंका थी जो पहले जला दी गई थी। राम और उनकी सेना के द्वारा प्रमुख योद्धाओं के साथ सारी सेना के मारे जाने पर रावण स्वयं युद्ध करने के लिये आगे आया। रावण रथ पर आरूढ था। अत: राम भी मातलि के द्वारा स्वर्ग से लाये गये रथ पर सवार हुए। फिर तो राम-रावण में भीषण युद्ध हुआ जिसमें राम के द्वारा रावण मारा गया। लंका की सुन्दरियाँ, लक्ष्मण के बाणों से समर में मारे गये, अपने-अपने पतियों के निर्जीव शरीर को लेकर विलाप करने लगीं।

भगवान् श्रीराम के आदेश से विभीषण ने स्वजनों की और्ध्वदैहिक क्रिया की। तदनन्तर श्रीराम ने अशोक वाटिका में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने शिंशपा वृक्ष के नीचे अपने विरह से व्यथित कृशकाय सीता को देखा। राम को देखकर दु:खी सीता का मुख-मण्डल विकसित हो उठा। राम ने लंका के राज्य पर विभीषण को बैठाकर उसे एक कल्प की आयु प्रदान की। अब तक राम के वनवास की अवधि समाप्त हो चुकी थी। अत: वे सीता, लक्ष्मण और हनुमान् आदि के साथ, विमान पर आरूढ होकर, अयोध्या पुरी के लिये प्रस्थान किये। अयोध्या के पूर्व नन्दिग्राम में भरत ने राम की अगवानी की। उन्हें सादर ससम्मान अयोध्या लाया गया। वहाँ बड़े ही महोत्सव के साथ राम को राजगद्दी पर

१. श्रीमद्भागवत महापुराण में चित्रकूट और पञ्चवटी की चर्चा नहीं है।

२. उस अवसर पर लक्ष्मण कहाँ थे इसकी चर्चा नहीं की गई है ।

अभिषिक्त कर लोग आनन्द विभोर हो उठे। राम ने पिता की भाँति प्रजा का पालन किया। प्रजा उन्हें पिता की भाँति पूजती थी । राम के शासन-काल में त्रेता भी सतयुग के समान हो गई थी। चतुर्दिक् सुख का ही साम्राज्य था। राम ने यज्ञों का आयोजन कर अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को दान में दे डाला। निर्लोभी ब्राह्मणों ने भी सारी पृथिवी, सारा राज्य और सबकुछ भगवान् राम को ही वापस कर उनकी बड़ी प्रशंसा की।

एक बार लोक वृत्तान्त ज्ञात करने की इच्छा से राम रात्रि में गुप्तरूप से भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने एक स्थान पर सुना कोई अपनी पत्नी से कह रहा था– 'तुम असती हो, कुलटा हो और दूसरे के घर में जाकर निवास करने वाली हो। अत: तुम्हारी जैसी दुष्टा को मैं अपने घर में नहीं रख सकता। स्त्री-लोभी राम परगृह में निवास करने वाली सीता को भले ही रख लें। किन्तु मैं तो तुम्हें कथमपि फिर से नहीं रख सकता।' इसे सुनकर लोकापवाद से भयभीत राम ने जंगल में, वाल्मीकि मुनि के आश्रम के पास, ले जाकर, सीता को छोड़ दिया। उस समय सीता गर्भवती थीं । समय आने पर उन्होंने दो बेटों को जन्म दिया। उनमें बड़े का नाम था कुश और छोटे का नाम था लव। मुनि वाल्मीकि ने दोनों बालकों के जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न किये। सीता राम के परित्याग से दु:खी थीं । अत: उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को वाल्मीकि को समर्पित कर दिया। फिर वे राम के चरणों का ध्यान करती हुई, भूतल के विवर में प्रवेश कर गईं । इस घटना को सुनकर राम के भी शोक का पारावार न रहा। सीता के एक-एक गुणों का स्मरण कर वे भावविह्वल हो उठते थे। इसके बाद त्रयोदश सहस्त्र वर्ष पर्यन्त राम ने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, अखण्डित अग्निहोत्र करके, इस धरामण्डल का परित्याग किया।[१]

नारदमहापुराण

राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा कृष्ण, प्रद्युम्न, बलराम और अनिरुद्ध ये चतुर्व्यूहावतार कहे जाते हैं।[२] ब्रह्मा आदि देवों की प्रार्थना से साक्षात्

---

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण, नवम स्कन्ध, अध्याय- १०-११

२. चतुर्व्यूहावतारे यो देव: सङ्कर्षण: स्वयम् ।
सर्वभूमण्डलं ह्येतत्सहस्रवदन: स्वराट् ।
एकस्मिन् शिरसि न्यस्तं नावैत्सिद्धार्थकोपमम् ।
देवो नारायण: साक्षात् रामो ब्रह्मादिवेदित: ।
पद्युम्नो भरतो भद्रे शत्रुघ्नो ह्यनिरुद्धक: ।
लक्ष्मणस्तु महाभागे स्वयं सङ्कर्षण: शिव: ॥ *नारदमहापुराण, उ०ख०, ७४/३-५*

रमापति नारायण ही अयोध्यापति दशरथ के यहाँ चार रूपों में अवतीर्ण हुए थे।

पुत्रों के कुछ बड़े हो जाने पर एक दिन मुनिवर विश्वामित्र दशरथ के घर पधारे। उन्होंने अपने यज्ञ की रक्षा के लिये महाराज से राम और लक्ष्मण को माँगा। ये दोनों पुत्र दशरथ को प्राणाधिक प्रिय थे। अतः इच्छा के न होते हुए भी, शाप के भय से,उन्होंने अपने बेटों को मुनि के साथ भेज दिया। आश्रम पर जाकर विश्वामित्र ने अपने यज्ञ की प्रकिया आगे बढ़ाया। राम-लक्ष्मण तत्परता से उसकी रक्षा करने लगे। इसी क्रम में राम ने ताटका और सुबाहु को मारकर मारीच को बहुत दूर फेंक दिया। यज्ञ के सकुशल पूर्ण हो जाने पर प्रसन्न मुनिवर ने राम-लक्ष्मण दोनों बन्धुओं को समस्त अस्त्र-ग्राम की शिक्षा दी। फिर उन्हें लेकर विश्वामित्र विदेहराज की नगरी जनकपुरी पहुँचे। जब जनक को यह बात विदित हुई कि राम-लक्ष्मण दशरथ-पुत्र हैं, तब उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्होंने मन-ही-मन अपनी बेटियों—सीता और उर्मिला का विवाह उनसे करने का संकल्प कर लिया। यह रहस्य विश्वामित्र को विदित हो गया। प्रसन्नमन से उन्होंने विदेहराज से कहा—'सीता के स्वयंवर के लिये रक्खा गया धनुष दिखलाइये।' विश्वामित्र की बात सुनते ही तीस सेवकों ने लाकर उस धनुष को मुनिवर के समक्ष रख दिया।[१] राम ने उसे बायें हाथ से उठाकर दक्षिण हस्त से उसकी प्रत्यञ्चा खींच दी। प्रत्यञ्चा चढ़ाते ही धनुष, इक्षु की भाँति, टूट कर दो टूक हो गया।

इस दृश्य को देखकर मिथिलाधिपति सुप्रसन्न हो उठे। उन्होंने अपनी दोनों कन्याओं का विवाह विधिपूर्वक राम-लक्ष्मण के साथ कर दिया। उसी समय जब जनक को दशरथ के अन्य दो पुत्रों की बात भी विदित हुई तो उन्होंने राजा के साथ भरत-शत्रुघ्न को बुलवा कर अपने भाई की दो कन्याओं का विवाह उनके साथ कर दिया।[२]

महाराज दशरथ ने बेटों और बहुओं के साथ विदा लेकर अयोध्या के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में भृगुपति मिले। राम ने उनके भी दर्प का दमन किया।[३] फिर सभी सानन्द अयोध्या पहुँचे। बहुत वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद महाराज दशरथ ने यौवराज्य पद पर राम का अभिषेक करना चाहा। यह समाचार जब राजा की प्राणप्रिया छोटी रानी कैकेयी को विदित हुई तो वह अप्रसन्न हो उठी। उसने राजा

१. राजा श्रुत्वा तु तद्वाक्यं विश्वामित्रस्य सत्वरम् ।
भृत्यत्रिंशत्यानाय्यास्मै दर्शयामास सादरम् ॥ *नारदमहापुराण, उ०ख० ७४/१६-१७*

२. ताभ्यां सह तमाहूय भ्रातृकन्ये अदापयत् । *नारदमहापुराण, उ०ख० ७४/२०*

३. मार्गे भृगुपतेर्दर्पं शमयित्वा स राघवः ॥ *वही, ७४/२१*

को हठात् राम के राज्याभिषेक से रोका। उसकी इच्छा थी कि मेरे पुत्र भरत को युवराजपद पर प्रतिष्ठित किया जाय।[१]

राम को जब अपनी सौतेली माँ के विचार का पता चला तो वे उसकी प्रसन्नता के लिये, पिता की आज्ञा न मिलने पर भी, भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ, चित्रकूट पर्वत पर चले गये। वहाँ उन्होंने मुनिवेष धारण कर कुछ काल तक निवास किया।

राम के वन-गमन की बेला में भरत अपने नाना के घर थे। उन्हें वहीं राम के वन-गमन और दशरथ के स्वर्ग-प्रयाण की बाद विदित हुई। उन्होंने राम के लिये विलाप करते हुए अपनी जननी कैकेयी को खूब धिक्कारा। फिर वे राम को लौटा लाने के लिये चित्रकूट गये। राम ने भरत को अपनी चरण-पादुका देकर अयोध्या वापस कर दिया।

भरत के अयोध्या प्रत्यागमन के अनन्तर राम मुनियों के आश्रमों में बारह वर्ष व्यतीत कर पत्नी और भाई के साथ पञ्चवटी पहुँचे।[२] वहाँ उन्होंने जनस्थान में विकृत शूर्पणखा के द्वारा प्रेरित कर प्रेषित किये गये त्रिशिरा, खर और दूषण का युद्ध में वध कर डाला। इन त्रिराक्षसों के साथ उनकी चतुर्दश सहस्र सेना भी कराल काल के गाल में चली गई।

रावण को जब इस घटना का समाचार मिला तो उसने मारीच को काञ्चन का मृग बनाकर राम के आश्रम में भेजा। जब राम-लक्ष्मण उस हरिण के पीछे चले गये तो उसने सीता का हरण कर लिया। मार्ग में जटायु ने अवरोध उत्पन्न किया। किन्तु रावण ने उसे भी मारकर सीता को लंका में पहुँचा दिया।

राम और लक्ष्मण मृग का वध कर आश्रम पर वापस आये। उन्हें ज्ञात हो गया कि सीता का हरण कर लिया गया है। फिर वे दोनों बन्धु सीता का अन्वेषण करते हुए आगे बढ़े। कुछ दूर जाने पर उन्हें निश्चेष्ट जटायु मिला। उन लोगों ने उसका अग्नि-संस्कार किया। पुनः कुछ दूर जाने पर उन्हें कबन्ध मिला। राम ने उसका वध किया और शबरी पर कृपा कर वे ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे। वहाँ हनुमान् के कहने से उन्होंने सुग्रीव के साथ मित्रता की। फिर उसके विद्वेषी बन्धु का वध कर उसे वहाँ का राजा बना दिया। सुग्रीव के आदेश से कपि-गण चतुर्दिक् सीता का अन्वेषण करने के लिये निकले। हनुमान् आदि प्रमुख कपि-

---

१. यज्ज्ञात्वा कैकेयी देवी राज्ञः प्रेष्ठा कनीयसी ।
सन्निवार्य हठात्तस्य पुत्रस्य तदरोचत् ॥ *नारदमहापुराण, उ०ख० ७५/२४-२५*

२. तेषु द्वादश वर्षाणि गमयित्वा रघूद्वहः ।
भार्यानुजान्वितः श्रीमांस्ततः पञ्चवटीमगात् ॥ *वही, ७५/२९-३०*

गण दक्षिण दिशा में प्रस्थान किये। दक्षिण सागर के तट पर सम्पाति के वचन से बन्दरों को यह निश्चय हो गया कि सीता जी लंका में हैं।

हनुमान् जी अकेले समुद्र का लङ्घन कर लंका में प्रविष्ट हुए। उन्होंने सीता को राम की रत्नखचित अँगूठी प्रदान की। इससे सीता को हनुमान् पर पूर्ण विश्वास हो गया कि यह राम के ही सेवक हैं। हनुमान् ने सीता को राम-लक्ष्मण का कुशल-समाचार बतलाया और उनसे राम को प्रदान करने हेतु चूडामणि ग्रहण की। फिर उन्होंने अशोक वाटिका को विध्वस्त कर अक्षय कुमार का वध कर दिया। युद्ध में मेघनाद ने उन्हें बाँध कर रावण के सम्मुख उपस्थित किया। हनुमान् ने रावण से सम्वाद किया और पूरी लंका को उलट-पुलट कर जला डाला। फिर सीता से भेंट की। उनकी आज्ञा ली और पुनः सागर को पारकर राम के पास वापस आये। उन्हें सीता का सारा समाचार सुनाया।

सीता का समाचार अधिगत हो जाने के बाद राम ने सैन्य-समेत लंका के लिये प्रस्थान किया। वे सागर के तट पर पहुँचे। उसकी अनुमति से उन्होंने उस (सागर) पर सेतु का निर्माण करवाकर अपनी सारी सेना सागर के उस पार लंका पहुँचा दी। इस स्थिति को देखकर रावण के सबसे छोटे बन्धु विभीषण ने रावण को समझाया। राम को सीता प्रदान करने की बात कही। किन्तु लघुबन्धु की यह समुचित सलांह रावण को अच्छी न लगी। उसने विभीषण पर पैर से प्रहार किया। अपमानित विभीषण ने राम की शरण ग्रहण की। राम ने लंका को चारों ओर से घेर लिया। फिर क्या था ? राम और रावण में भीषण संग्राम प्रारम्भ हो गया। लक्ष्मण ने मेघनाद और राम ने कुम्भकर्ण तथा रावण का वध कर दिया। राम की प्रेरणा से विभीषण ने अपने परिवार की मरणोपरान्त की सारी क्रिया सम्पन्न की। राम ने सीता की अग्नि-परीक्षा ली और विभीषण को लंका का साम्राज्य तथा कल्पान्त तक की आयु प्रदान की। इस प्रकार राम ने अपने संकल्प को पूरा कर पुष्पक विमान से वापस अयोध्या के लिये प्रस्थान किया। उनके साथ सुग्रीव और विभीषण आदि भी थे।

राम सर्वप्रथम नन्दिग्राम गये। वहाँ भरत तपरत थे। उन्हें लेकर ही राम ने अयोध्या में प्रवेश किया। पुरी में पहुँचकर उन्होंने माताओं को श्रद्धासहित प्रणाम किया। भरतादि बन्धुओं ने कुलपुरोहित वसिष्ठ की आज्ञा लेकर राम का राज्याभिषेक कर अभिनन्दन किया। राज्य-सिंहासन पर आरूढ होने के अनन्तर राम ने प्रजा का पुत्र की भाँति पालन किया।

राम राज्य कर रहे थे। उन पर लोक-लाञ्छन की बात सुनाई पड़ी। इससे

सन्त्रस्त होकर उन्होंने सीता को ऋषि वाल्मीकि के आश्रम के समीप घोर जंगल में छोड़ दिया। सीता मुनि के आश्रम में सुखपूर्वक निवास करने लगीं। वहीं उन्होंने कुश और लव–दो पुत्रों को जन्म दिया। वाल्मीकि ने उनकी सारी धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न की। फिर रामायण की रचना कर बालकों को उसे पढ़ाया।[१] वे मुनियों के सत्रों में रामायण का गान करते थे। इससे उनकी सर्वत्र ख्याति फैल गई।

एक समय राम ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। कुश-लव ने उस यज्ञ में रामायण का गान किया। बालकों के गीत और अपने चरित्र को सुनकर राम प्रसन्न हो उठे। उन्होंने सीता के सहित वाल्मीकि मुनि को अपने यज्ञ में बुलाया। धरती की बेटी सीता ने दोनों पुत्रों को राम को समर्पित कर दिया और स्वयं भूमि के विवर में प्रवेश कर गईं। यह अद्भुत घटना सबकी आँखों के सामने घटी।

इसके बाद ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए राम ने यज्ञ को पूर्ण किया। वे तेरह सहस्र वर्ष तक भूमण्डल पर शासन करते हुए विराजमान रहे।

संसार में राम की अवधि पूर्ण हो जाने पर काल उनके पास उपस्थित हुआ। उसने राम से एकान्त में बात करने की इच्छा व्यक्त की और कहा कि—'हम लोगों की वार्ता के मध्य यदि कोई आ जाय तो आपको उसका वध करना होगा।' राम ने एवमस्तु कहकर लक्ष्मण को द्वार पर नियुक्त कर दिया। उसी समय 'राम को अब वैकुण्ठ प्रस्थान करना चाहिये' ब्रह्मा के इस सन्देश को लेकर मुनि दुर्वासा राम के द्वार पर उपस्थित हुए। पहले तो लक्ष्मण भीतर नहीं जा रहे थे। किन्तु जब दुर्वासा उन्हें भस्म करने के लिये उद्यत हुए तो वे भीतर राम के पास चले गये। काल अपना काम कर चला गया। राम ने मुनि का स्वागत-सम्मान किया। उनकी बातें सुनीं और उन्हें विदा किया।

दुर्वासा के चले जाने पर धर्मसङ्कट में पड़े राम लक्ष्मण के पास गये और कहा—'लक्ष्मण अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मुझे तुम्हारा वध कर देना चाहिये। किन्तु मैं तुम्हारा त्याग कर रहा हूँ। अपनी इच्छा के अनुसार तुम मेरे पास से चले जाओ।' लक्ष्मण राम को प्रणाम कर दक्षिण दिशा में पर्वत पर तप करने के लिये चले गये। बाद में वह पर्वत लक्ष्मणांचल के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

---

१. लोकापवादसन्त्रस्तः सीतां तत्याज धर्मवित्।
सा तु संप्राप्य वाल्मीकेराश्रमं न्यवसत् सुखम्।
पुत्रौ च सुषुवे तत्र नाम्ना ख्यातौ कुशीलवौ।
वल्मीकिस्तु तयोः कृत्वा यथासमुदिताः क्रियाः।
रामायणं विरच्यैतावध्यापयदुदारधीः॥ *ना०म०पु०, उ०ख०, ७५/५२-५४*

ब्रह्मा की प्रार्थना पर राम भी साकेत और कौसल-वासियों के साथ अपने धाम में चले गये।[१] उसके बाद ही राम का अनुगमन करते हुए लक्ष्मण भी अपने अव्यय धाम के लिये प्रस्थान किये।

अग्निमहापुराण

रावण आदि के वध के लिये हरि ने स्वयं चार रूपों में अवतार ग्रहण किया था। सूर्यवंशी राजा दशरथ की तीन प्रसिद्ध रानियाँ थीं—कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा। कौसल्या के राम, कैकेयी के भरत और सुमित्रा के लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न पुत्र थे। प्रथमत: ये तीनों रानियाँ नि:सन्तान थीं। ऋष्यशृङ्ग के द्वारा तैयार किये गये यज्ञसंसिद्ध पायस के प्राशन से कौसल्या आदि तीनों रानियाँ गर्भवती हुईं और पुत्रों का प्रसव किया।[२]

एक बार मुनि विश्वामित्र महाराज दशरथ के राजप्रासाद में पधारे। उन्होंने अपने यज्ञ की रक्षा के लिये दशरथ से राम को माँगा। राजा ने राम और लक्ष्मण को मुनि के साथ भेज दिया। गुरु के यज्ञ की रक्षा करते हुए राम ने यज्ञ के विघातक ताडका और सुबाहु का वध कर दिया। मारीच को मानवास्त्र से मोहित कर बहुत दूर प्रक्षिप्त कर दिया। दोनों बन्धुओं ने विश्वामित्र से विविध अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा ग्रहण की। उस समय राम-लक्ष्मण गुरु विश्वामित्र के साथ उनके सिद्धाश्रम में ही निवास करते थे।

यज्ञ की पूर्ति पर दोनों राजकुमार जनक की नगरी जनकपुरी में धनुष-यज्ञ देखने गये। वहाँ राम ने धनुष को अनायास ही उठा कर तोड़ दिया। राजा जनक ने प्रतिज्ञा की थी कि जो धनुष को उठाएगा उसी को वे जानकी का हाथ पकड़ायेंगे।[३] धनुष-भङ्ग के अनन्तर अयोध्या से दशरथ बारात लेकर जनकपुरी पहुँचे। राम-सीता का विवाह सोल्लास सम्पन्न हुआ। सीता की अनुजा थी उर्मिला। उसका विवाह रामानुज लक्ष्मण के साथ कर दिया गया। जानकी के चाचा थे कुशध्वज। उनकी दो बेटियाँ थीं—माण्डवी और श्रुतकीर्ति। इनका विवाह क्रमश: भरत और शत्रुघ्न के साथ कर दिया गया। बहुओं के साथ जब राम अयोध्या की यात्रा कर रहे थे तो मार्ग में उन्हें परशुराम के दर्शन हुए। उनके ऊपर भी विजय

---

१. नारदमहापुराण, उ०ख०, ७५ अध्याय।

२. शत्रुघ्न ऋष्यशृङ्गेण तासु सन्दत्तपायसात्।
प्राशिताद्यज्ञसंसिद्धाद्रामाद्याश्च समा: पितु: ॥ *अग्निमहापुराण,* ५/५-६

३. धनुरापूरयामास लीलया स बभञ्ज तत्।
वीर्यशुल्काश्च जनक: सीतां कन्यान्त्वयोनिजाम् ॥ *वही,* ५/११

की पताका की स्थापना करते हुए राम राजधानी अयोध्या में पहुँचे।[१]

विवाह करने के अनन्तर भरत अयोध्या से बाहर चले गये। इसी अन्तराल में दशरथ ने राम का राज्याभिषेक करना चाहा। उत्सव की सारी तैयारी पूरी कर ली गई। कैकेयी की एक सखी थी–मन्थरा। उसने अयोध्या को सजी हुई देखा। जिज्ञासा होने पर उसे ज्ञात हुआ कि कल राम का राज्याभिषेक है। इस बात से वह जल-भुन गई। राम ने कभी दोनों पैर पकड़ कर उसे घसीट दिया था। उसी से क्रुद्ध होकर वह राम का वनवास चाहती थी।[२] अतः उसने कैकेयी को बहकाया भड़काया। फलतः कैकेयी कोपभवन में प्रविष्ट हुई। दशरथ ने उसके कोप का कारण पूछा। कैकेयी ने उनसे अपना दो वर माँगा—१. प्रथम तो यह कि चौदह वर्ष तक संयत होकर राम वन में बसें और २. दूसरा यह कि राम के राज्याभिषेक की इसी सामग्री से आज (कल) भरत का राज्याभिषेक किया जाय।[३] इतना ही नहीं कैकेयी ने यह भी कहा कि यदि मेरी बात न मानी गई तो विषपान कर मैं प्राणों का परित्याग कर दूँगी।

कैकेयी के वचनों को सुनकर दशरथ के दुःख का अगाध सागर उमड़ पड़ा। शोकाकुल दशरथ सत्य के पाश से आबद्ध थे। अतः वे कैकेयी को अस्वीकार नहीं कर सकते थे। उन्होंने राम को बुलाकर कहा—'राम, कैकेयी ने मुझे ठग लिया है। अतः आप मुझे बन्दी बनाकर राज्य पर आरूढ हो जाइये।'

किन्तु शोकाकुल अवस्था में कहे गये पितृ-वचन को प्रमाण न मानकर राम, लक्ष्मण और सीता के साथ प्रमुदित मन से वन में चले गये। राम के पीछे-पीछे अयोध्या की बहुत-सी जनता भी वन के लिये प्रस्थित हुई। रात्रि में तमसा नदी के तट पर डेरा डाला गया। सबके शयन करते रहने पर ही राम, अपने भाई लक्ष्मण और सीता के साथ, धीरे से वहाँ से चले गये। हताश निराश जनता रोती हुई अयोध्या वापस चली आई। राम रथ से ही आगे गये थे। शृङ्गवेरपुर पहुँचने पर वहाँ के अधिपति गुह ने राम का सम्मान किया। राम ने वहाँ इङ्गुदी की छाया में रात्रि का विश्राम किया। लक्ष्मण और गुह रात्रि भर जागरण करते रहे।

१. कन्ये द्वे उपयेमाते जनकेन स पूजितः ।
रामोऽगात् सवसिष्ठाद्यैर्जामदग्न्यं विजित्य च ॥ *अग्निमहापुराण,* ५/१४

२. पादौ गृहीत्वा रामेण कर्षिता सापराधतः ।
तेन वैरेण सा रामवनवासञ्च कांक्षति ॥ *वही,* ६/८

३. चतुर्दशसमा रामो वने वसतु संयतः ।
सम्भारैरेभिरद्यैव भरतोऽत्राभिषेच्यताम् ॥ *वही,* ६/२१

प्रातःकाल राम ने रथ के साथ सुमन्त्र को वापस अयोध्या भेज दिया। उधर राम के वन-गमन करने पर रोते हुए दशरथ कौशल्या के पास चले आये। उस समय सारा राज-भवन रो रहा था राम के वियोग में।

सुमन्त्र को प्रेषित कर राम, भाई और पत्नी के साथ, गङ्गा को पारकर प्रयाग पहुँचे। वहाँ उन्होंने भरद्वाज को प्रणाम किया और फिर आगे चित्रकूट के लिये बढ़ गये।

चित्रकूट में राम को कुछ काल निवास करना था। अतः वहाँ उन्होंने वास्तुपूजा की, आश्रम बनाया, उनका यह आश्रम मन्दाकिनी के तट पर था। वहीं पर काक ने सीता पर नख-चञ्चु से प्रहार किया था। अतः राम ने सरपत (इषिका) के एक बाण से उस पर प्रहार किया। जब कहीं भी उसे शरण न मिली तो वह राम के ही शरणागत हुआ। उन्होंने उसे एक नयन से विहीन करके छोड़ दिया।[१]

राम-वन-गमन के छठे दिन रात्रि में राजा दशरथ ने कौसल्या से यह प्राचीन कथा कही जिसमें उन्होंने अपनी कुमारावस्था में अज्ञानवश यज्ञदत्त के पुत्र (श्रवण कुमार) को शब्द-भेदी बाण मारकर मार डाला था। उस समय विलाप करते हुए उसके माता-पिता ने राजा को शाप दिया था—'हम दोनों तो पुत्र के वियोग में मरेंगे ही। किन्तु एक दिन तुम भी पुत्र के शोक में अपने प्राणों का परित्याग करोगे।' आज वही बेला उपस्थित हो गई है। पुत्र के बिना उसका स्मरण करते हुए मेरा मरण निश्चित है।[२] इस कथा को कहकर राम-राम कहते हुए दशरथ ने अपने प्राणों को छोड़ दिया। वे स्वर्ग सिधार गये।

यह रात्रि की बेला थी। दशरथ ने प्राणों को छोड़ दिया। कौशल्या ने सोचा राजा सो गये। अतः वह भी शोकाकुल मन से सो गई। प्रातःकाल जब यह विदित हुआ कि राजा इस संसार में नहीं हैं तो चारों ओर शोक की लहर व्याप्त हो गई। राजमहल विलाप से व्याप्त हो उठा। भरत को राजगृह (ननिहाल) से बुलाया गया। अयोध्या की दशा को देखकर भरत दुःखी हो उठे। उन्होंने कौसल्या की प्रशंसा करते हुए कैकेयी की निन्दा की। तैल की द्रोणी में रक्खे पिता के पार्थिव शरीर का सरयू के पावन तट पर अन्तिम संस्कार कर, राजगद्दी पर बैठाने हेतु राम को बुलाने के लिये भरत, वसिष्ठ आदि के साथ चित्रकूट पहुँचे। अयोध्या से चित्रकूट तक उनका जाने का मार्ग वहीं था जिससे राम ने यात्रा की थी।

---

१. नखैर्विदारयन्तं तां काकं तच्चक्षुराक्षिपत्।
ऐषिकास्त्रेण शरणं प्राप्तो देवान् विहाय सः ॥ *अग्निमहापुराण,* ६/३६

२. पुत्रं विना स्मरन् शोकात् कौसल्ये मरणं मम।
कथामुक्त्वाऽथ हा राममुक्त्वा राजा दिवङ्गतः ॥ *वही,* ६/४०

चित्रकूट में पहुँचकर भरत ने राम से प्रार्थना की कि वे अयोध्या वापस चलकर राजसिंहासन पर आरूढ हो प्रजा का पालन करें। किन्तु राम ने अपनी चरण-पादुका देकर भरत को समझा-बुझा कर अयोध्या वापस कर दिया। राम के कहने पर भरत वापस चले आये। वे अयोध्या में न जाकर नन्दिग्राम में निवास करने लगे। राम की चरण-पादुकाओं की आराधना करते हुए भरत ने राज्य का पालन-सञ्चालन किया।[१]

चित्रकूट-निवास की अवधि पूर्ण हो चुकी थी। राम ने अत्रि आदि ऋषियों-मुनियों को प्रणाम कर दण्डकारण्य में प्रवेश करने की तैयारी की। अगस्त्य ने उन्हें धनुष और खड्ग प्रदान किया।[२] वहाँ पहुँचकर राम ने जनस्थान नामक प्रदेश में गोदावरी के तट पर स्थित पञ्चवटी में अपना आश्रम स्थापित किया। वहीं भयङ्करी सूर्पणखा भी रहा करती थी। एक बार वह इन तीनों व्यक्तियों को खाने के लिये आई। किन्तु राम के अनुपम सौन्दर्य पर वह मुग्ध हो उठी। उसने राम के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रक्खा। उसका कहना था कि सीता और लक्ष्मण को मैं खा जाऊँगी। फिर तो मेरा और तेरा विहार निर्बाध गति से चलता रहेगा। ऐसा कहकर वह दोनों को खाने के लिये दौड़ी। राम ने लक्ष्मण से कहा। भैया का आदेश प्राप्त होते ही लक्ष्मण ने उसकी नासिका और दोनों कानों को काट लिया।[३]

सूर्पणखा रक्त बहाती हुई भाई खर के पास पहुँची। अपनी दुर्दशा का वर्णन उससे किया। खर ने दूषण और त्रिशिरा के साथ चतुर्दश सहस्र सैनिकों को लेकर राम पर आक्रमण कर दिया। राम ने समग्र राक्षस-समूह का संहार कर डाला। विलाप करती हुई सूर्पणखा लंका पहुँची। वह रोती हुई रावण के सामने भूमि पर गिर पड़ी। फिर उसने कहा—'रावण, तुम न राजा हो और न रक्षक ही। खर आदि के निहन्ता राम की भार्या का तुम हरण करो।[४] राम और लक्ष्मण के रुधिर का पान करके ही मैं जीवित रहूँगी, अन्यथा नहीं।'

रावण ने सूपर्णखा को सान्त्वना दी और फिर वह पहुँचा मारीच के पास

---

१. रामोक्तो भरतश्चायान्नन्दिग्रामे स्थितो बली।
त्यक्त्वाऽयोध्यां पादुके ते पूज्य राज्यमपालयत् ॥ *अग्निमहापुराण,* ६/४९

२. अगस्त्यभ्रातरं नत्वा अगस्त्यं तत्प्रसादतः।
धनुः खड्गञ्च सम्प्राप्य दण्डकारण्यमागतः ॥ *वही,* ७/२

३. एतौ च भक्षयिष्यामि इत्युक्त्वा तं समुद्यता।
तस्य नासाञ्च कर्णौ च रामोक्तो लक्ष्मणोऽच्छिनत् ॥ *वही,* ७/५

४. खरादिहन्तू रामस्य सीतां भार्यां हरस्व च। *वही,* ७/११

तथा उससे कहा—'सुवर्ण का मृग बनकर सीता के समक्ष जाओ। वहाँ राम-लक्ष्मण को आकृष्ट करके दूर ले जाओ। मैं सीता का हरण करूँगा। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो मैं तुम्हारा वध कर दूँगा।'[१] मारीच ने उभय भाँति अपना मरना देखा। उसने सोचा यदि मरना ही है तो राम के हाथों ही मृत्यु श्रेयस्कर है। ऐसा विचार कर वह सीता के सामने मृग बनकर विचरण करने लगा। सीता ने उसे देखा। वह उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो उठीं। उन्होंने राम को प्रेरित किया। वे उसके पीछे दौड़े। कुछ दूर जाकर उन्होंने उसे बाण से बींध दिया। मरने की बेला में उसने हाय सीता! हाय लक्ष्मण! कहकर अपने प्राणों का परित्याग किया। सीता ने प्रेरित कर लक्ष्मण को राम के पास प्रेषित कर दिया। इसी अन्तराल में अवकाश पाकर रावण ने सीता का हरण कर लिया। मार्ग में जटायु ने युद्ध करके उसे रोका। उसने रावण को क्षत-विक्षत कर दिया। किन्तु रावण प्रबल था। उसने गृद्धराज को मारा और जानकी को गोदी में लेकर लंका जा पहुँचा। उसने अशोक वाटिका में सीता को रखकर कहा—'तुम मेरी पत्नी बनो। मैं तुम्हें अपनी पत्नियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान दूँगा।'[२] फिर उसने राक्षसियों से कहा—'सावधानी से इसकी रक्षा करना।'

मारीच का वध करके राम लौट रहे थे। उन्होंने आते हुए लक्ष्मण को देख कर कहा—'लक्ष्मण, यह माया का मृग था। तुम यहाँ चले आये। मेरा मन कह रहा है कि अवश्यं ही सीता का हरण हो गया है।' जब दोनों बन्धु आश्रम में पहुँचे तो उन लोगों ने वहाँ सीता को नहीं देखा। प्रिया के लिये राम विलाप करने लगे। लक्ष्मण ने राम को धैर्य-धारण कराया। अब दोनों बन्धु सीता का अन्वेषण करने निकले। मार्ग में उन्हें जटायु मिला। उसने रावण के द्वारा सीता-हरण का वृत्तान्त राम को बतलाया और फिर वह मर गया। राम ने उसका अग्नि-संस्कार किया। आगे जाने पर उन्हें कबन्ध मिला। राम ने उसका वध कर दिया। शाप-मुक्त होकर उसने राम से कहा—'आप सुग्रीव के पास जाइये।'[३]

शोकाकुल राम पम्पासरोवर पहुँचे। वहाँ उन्हें मिले हनुमान् । उन्होंने राम की मित्रता सुग्रीव से करवा दी। राम ने अपने बलके प्रति सुग्रीव को आश्वस्त-

१. स्वर्णचित्रमृगो भूत्वा रामलक्ष्मणकर्षक: ।
सीताग्रे तां हरिष्यामि अन्यथा मरणं तव ।। *अग्निमहापुराण, ७/१३*

२. गतो लङ्कामशोकाख्ये धारयामास चाब्रवीत् ।
भव भार्या समाग्र्या त्वं......................।। *वही, ७/१८-१९*

३. मृतोऽथ संस्कृतस्तेन कबन्धश्चावधीत्तत: ।
शापमुक्तोऽब्रवीत् रामं स त्वं सुग्रीवमाव्रज ।। *वही, ७/२२*

विश्वस्त करने के लिये एक ही बाण से सात ताल-वृक्षों का भेदन कर दिया। सुग्रीव के देखते ही उन्होंने दुन्दुभि की शरीरास्थि को पैर से ठोकर मारकर दश योजन दूर फेंक दिया। फिर उन्होंने उससे वैर करने वाले उसके भाई बाली का वधकर किष्किन्धा का कपिसाम्राज्य और पत्नी तारा सुग्रीव को समर्पित कर दी। ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव ने राम से दृढतापूर्वक कहा—'राम, मैं पूर्ण प्रयास करूँगा। सीता आपको शीघ्र ही प्राप्त होंगी।'

अब तक वर्षा ऋतु आ चुकी थी। अतः राम ने माल्यवान् पर्वत पर चातुर्मास्य किया। वर्षा के विगत हो जाने पर भी जब सुग्रीव राम के पास नहीं आया तो उन्होंने लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजा। लक्ष्मण ने जाकर सुग्रीव को कसकर डराया-धमकाया और कहा कि सुग्रीव यदि तुम अपने वचन के अनुसार राम की सेवा में नहीं चलते, उनकी सहायता नहीं करते, तो तुम्हें भी बाली के पथ का पथिक बनना पड़ेगा। सुग्रीव ने अपनी त्रुटि स्वीकार की और कहा कि—'प्रभों, मैं विषय में इस प्रकार विलीन हो गया था कि व्यतीत हुए काल पर मेरी दृष्टि ही नहीं गई। विषय ने मेरे ज्ञान का हरण कर लिया था।'

इसके बाद बन्दरों की विशाल वाहिनी लेकर सुग्रीव राम के पास पहुँचे। उसने कहा—'प्रभो, बन्दरों का समूह लाया हूँ। ये चारों ओर जाकर जानकी का अन्वेषण करेंगे। यदि ये एकमास के भीतर माता जानकी का समाचार लेकर नहीं आते तो मैं इनका वध कर दूँगा।'

चारों दिशाओं में बन्दर भेजे गये। राम की अँगूठी लेकर हनुमान् जी दक्षिण दिशा में गये। अन्वेषण करते हुए एक मास व्यतीत हो गया। सीता का कहीं पता न चला। तब वानरों ने आपस में कहा—'अब हम लोग व्यर्थ में ही मरेंगे। जटायु धन्य हैं, जिन्होंने सीता के लिये, रावण से लड़ते हुए अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। इस बात को सुनकर, वानरों को खा जाने के लिये उद्यत, जटायु का लघु बन्धु सम्पाति रुक गया। उसने कहा—'जटायु मेरा भाई था। अपनी भरी जवानी में एक बार हम दोनों सूर्य-मण्डल की ओर उड़े। सूर्य के ताप से सन्तप्त होकर जटायु वापस आ गया। किन्तु मैं आगे बढ़ता ही गया। अन्ततः मेरे पंख जल गये और मैं गिर पड़ा। आज राम की वार्ता सुनकर मेरे दोनों पक्ष पुनः निकल आये हैं। मैं यहीं से जानकी को देख रहा हूँ। वे त्रिकूट पर्वत के ऊपर स्थित लंका की अशोक वाटिका में बैठी हुई हैं। शत-योजन विस्तीर्ण क्षार-सागर को पारकर सीता को देखकर, फिर आप लोग जाकर राम और सुग्रीव से सीता का समाचार कहना।'

सम्पाति के वचन पर विश्वास कर हनुमान् ने, कपियों के जीवन की रक्षा के लिये एवं राम के कार्य की सिद्धि के लिये, शतयोजन विस्तीर्ण सागर को एक छलांग लगाकर पार किया। आकाश-मार्ग से जाते हुए वे मैनाक का सम्मान और सिंहिका का विनाश कर लंका पहुँचे। यह रात्रि की बेला थी। उन्होंने लंका की इञ्च-इञ्च भूमि खोज डाली। किन्तु कहीं भी जानकी का पता न चला। अन्त में उन्होंने अशोक वाटिका में एक शीशम के वृक्ष के नीचे जानकी को देखा। राक्षसियाँ उनकी रखवाली कर रही थीं। उस समय रावण उनसे कह रहा था-'मेरी पत्नी बनो।' सीता उसकी प्रार्थना को पूर्ण अस्वीकार कर रही थीं।[1] राक्षसियाँ भी सीता से यही कह रही थीं कि तुम रावण की प्रिया भार्या बनो।

जानकी के अस्वीकार करने पर रावण वहाँ से चला गया। अब अवसर मिला हनुमान् को। शिंशपा के वृक्ष से उन्होंने राम की संक्षिप्त कथा सुनाई। फिर वे नीचे आये। उन्होंने राम की अँगूठी, पहचान के लिये सीता को दी, और कहा—'माँ, अब ज्ञात हो गया आप यहाँ हैं। अत: शीघ्र ही राम रावण का सपरिवार संहार कर आपको ले चलेंगे। अत: शोक मत करो। पहचान (अभिज्ञान) के लिये आप भी मणि दीजिये।[2] सीता ने कपि को मणि प्रदान की और कहा कि चित्रकूट में घटित काक की कथा का स्मरण राम को दिलाना । मणि और काक-कथा आदि को लेकर कपि ने कहा—'माँ, यदि आप को राम-मिलन की अति उत्कण्ठा हो तो मेरी पीठ पर बैठिये। मैं आज ही आपको सुग्रीव-सहित राम का दर्शन करवा दूँगा।' सीता ने शालीनता से कहा—'मुझे राम ही यहाँ से ले चलें।'[3]

सीता से मिल लेने के बाद हनुमान् ने रावण से मिलने का उपाय सोचा। उन्होंने रावण के उपवन को उजाड़ डाला। प्रतिरोध में आने वाले वनरक्षकों, सात मन्त्रि-पुत्रों और रावण के पुत्र अक्षकुमार को मार डाला। अन्त में इन्द्रजित ने नागपाश में बाँध कर कपि-प्रवर को रावण के सामने उपस्थित किया। रावण ने पूछा—'बन्दर, तुम कौन हो?' हनुमान् ने उत्तर दिया—'मैं राम का दूत हूँ। रावण, तुम शीघ्र ही सीता राम को प्रदान कर दो। अन्यथा मारे जाओगे। लंका

१. राक्षसीरक्षितां सीतां भव भार्येति वादिनम् ।
रावणं शिंशपास्थोऽथ नेति सीतान्तु वादिनीम् ॥ *अग्निमहापुराण, ९/६*

२. रावणं राक्षसं हत्वा सबलं देवि मा शुच ।
साभिज्ञानं देहि मे त्वं मणिं सीताऽददत् कपौ ॥ *वही, ९/१२*

३. अथवा ते त्वरा काचित् पृष्ठमारुह मे शुभे ।
अद्य त्वां दर्शयिष्यामि ससुग्रीवञ्च राघवम् ।
सीताऽब्रवीद्धनूमन्तं नयतां मां हि राघव: ॥ *वही, अध्याय- ९/१४-१५*

की तुम्हारी सारी सेना भी विनाश के गर्त में विलीन हो जायेगी।' कपिपुङ्गव की निर्भय वाणी सुनकर रावण उन्हें मारने के लिये उद्यत हो गया। किन्तु विभीषण ने उसे रोक दिया। फिर उसने हनुमान् की पूँछ में आग लगवा दी।[१]

आग लगते ही प्रभञ्जनसुत प्रभञ्जन बन बैठे। उन्होंने कूद-कूद कर सारी लंका में चतुर्दिक् आग लगा दी। फिर सीता माता को प्रणाम कर सागर के इस पार आ गये और बन्दरों से कहा—'मैंने सीता का पता लगा लिया।' समाचार की प्रसन्नता में सारे बन्दरों ने, दधिमुख आदि रक्षकों को जीतकर, मधुवन में छक कर मधुपान किया। फिर वे राम से मिले। उन्होंने सीता-प्रदत्त मणि राम को प्रदान कर उनका सारा समाचार उनसे कहा। मणि देखकर राम रोने लगे। सुग्रीव आदि ने उन्हें धैर्य धराया। तदनन्तर सभी सागर के तट पर पहुँचे।

उधर लंका में विभषण ने रावण को समझाने का प्रयास किया। उसने सीता को वापस कर देने की सलाह दी। किन्तु दुरात्मा रावण ने उसका अपमान किया। निर्बल विभीषण ने राम की शरण ग्रहण की। राम ने शरणागत होते ही लंका के राज्य पर विभीषण का अग्रिम अभिषेक कर दिया। फिर उन्होंने सागर से पथ की याचना की। जब उसने मार्ग नहीं प्रदान किया तो राम ने बाणों से उसका भेदन किया। भयभीत सागर राम के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसने राम से कहा—'नल के द्वारा सागर पर सेतु का निर्माण कराकर आप लंका पर आक्रमण करें।' राम ने सागर की बात स्वीकार कर ली। पर्वत-वृक्ष आदि से पुल बँधवा कर उन्होंने सागर पार किया। सुवेल पर्वत पर डेरा डाला। वहीं से उन्होंने लंका को सर्वप्रथम देखा।[२]

राम ने सर्वप्रथम अङ्गद को रावण की सभा में भेजा। अङ्गद ने रावण को बहुत समझाया। किन्तु रावण ने सीता को प्रत्यर्पित करने की अपेक्षा युद्ध का ही वरण किया। फिर क्या था, राम रावण का अनुपम युद्ध प्रारम्भ हुआ। कुम्भकर्ण को राम ने और इन्द्रजित को लक्ष्मण ने युद्ध के मैदान में मार गिराया। भाई और पुत्र के मारे जाने पर शोक-सन्तप्त रावण सीता का वध करने के लिये तैयार हो गया। इस कुकृत्य से अविन्ध्य ने उसे वारित किया।

अन्त में राम-रावण का अनुपम युद्ध प्रारम्भ हुआ।[३] इन्द्रप्रेषित सारथि

---

१. रावणो हन्तुमुद्युक्तो विभीषणनिवारितः ।
दीपयामास लाङ्गूलं दीप्तपुच्छः स मारुतिः ॥ *अग्निमहापुराण, ९/२०*

२. कृतेन तरुशैलाद्यैर्गतः पारं महोदधेः ।
वानरैः स सुबेलस्थः सह लङ्कां ददर्श वै ॥ *वही, ९/३१*

३. रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ।
रावणो वानरान् हन्ति मारुत्याद्याश्च रावणम् ॥ *वही, १०/२३*

मातलि के द्वारा लाये गये रथ पर राम आरूढ हुये। युद्ध-भूमि में राम बार-बार रावण के शिर को काट रहे थे। किन्तु वे पुनः निकल आते थे। इस स्थिति को देखकर राम ने ब्रह्मास्त्र से रावण के हृदय में वार कर उसे सर्वदा के लिये भूमि पर सुला दिया । राक्षसियों में शोक की लहर दौड़ गई। सर्वत्र हाहाकार मच गया। राम के कहने पर विभीषण ने भाई का अन्तिम संस्कार सम्पन्न किया। राम की आज्ञा से हनुमान् जी सीता को अशोक वाटिका से लाये। सबके समक्ष सीता की अग्नि-परीक्षा की गई। उसमें वे विशुद्ध सिद्ध हुईं।

राम की आज्ञा से इन्द्र ने अमृत की वृष्टि कर वानरों को पुनरुज्जीवित कर दिया। राम ने विभीषण को लंका के सिंहासन पर अभिषिक्त कराकर वानरों का सम्मान किया। फिर वे पुष्पक विमान पर, सीता और लक्ष्मण के साथ, आरूढ होकर उसी मार्ग से अयोध्या के लिये लौटे जिससे कि वे गये थे। सर्वप्रथम भारद्वाज का वन्दन कर राम नन्दिग्राम आये। भरत ने वहाँ उनकी अगवानी की। सभी अयोध्या पहुँचे। वहाँ राम का सविधि राज्याभिषेक किया गया। राम ने यथासमय कई अश्वमेध-यज्ञ किया। वे प्रजा का पुत्र की भाँति पालन करते थे। राम के राज्य-शासन काल में किसी का अकाल मरण नहीं होता था।

राम के राज्याधिरूढ होने पर अगस्त्य आदि ऋषि उनके समीप आये। उनकी प्रशंसा की और उनसे ग्रहण की पूजा भी। मुनियों ने रावण से भी अधिक बलशाली इन्द्रजित के वध की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन लोगों ने रावण के वंश का वर्णन करते हुए कहा—'ब्रह्मा के पुत्र थे पुलस्त्य। उनके आत्मज थे विश्रवा। उनकी दो पत्नियाँ थीं—पुष्पोत्कटा और कैकसी। प्रथम के बेटे थे धनेश्वर कुबेर और दूसरे के थे बीसबाहु दशानन रावण। ब्रह्मा के वर के प्रभाव से रावण ने देवताओं को अपने वश में कर लिया था। निंद्रा के वश में रहने वाला कुम्भकर्ण और परम धार्मिक विभीषण रावण के अनुज थे। सूर्पणखा उनकी बहन थी । रावण का पुत्र था इन्द्रजित, वह रावण से भी अधिक बलशाली था। आप लोगों ने उसका वध कर देवताओं का महान् कल्याण किया है। इस प्रकार राम की प्रशंसा और रावण की वंशावली गाकर अगत्स्य आदि चले गये।

उन्हीं दिनों लवणासुर मथुरा का अधिपति था। देवों की प्रार्थना से राम ने शत्रुघ्न को भेजकर उसका वध करवा दिया। भरत सिन्धु-तीर निवासी शैलूषों को पराजित कर वहाँ के दो प्रदेशों पर अपने पुत्र तक्षक और पुष्कर को स्थापित कर, राम की सेवा में अयोध्या वापस लौट आये।

राम के दो पुत्र थे—कुश और लव। इनका जन्म वाल्मीकि के आश्रम में हुआ था। उन दिनों लोकापवाद के कारण राम के द्वारा परित्यक्त सीता ऋषि के

ही पावन आश्रम में निवास करती थीं। राम ने भूतल पर ग्यारह सहस्र वर्ष राज्य किया था।[१] अन्त में उन्होंने अपने पुत्रों के स्कन्ध पर राज्य का भार स्थापित कर भाइयों, पुरवासियों एवं जनपद-निवासियों के साथ, देवताओं की पूजा ग्रहण करते हुए, स्वधाम की यात्रा की थी।

इस राम-कथा को सर्वप्रथम नारद से वाल्मीकि ने सुना था। उसके बाद उन्होंने रामायण की विस्तार के साथ रचना की थी। इस कथा का श्रोता स्वर्ग का भागी बनता है।[२]

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृति-खण्ड के १४वें अध्याय और श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड के ६२ वें अध्याय में राम-कथा का अंशतः वर्णन किया गया है। इस पुराण में राम-कथा की जो उपलब्धि होती है वह वाल्मीकि रामायण, हिन्दी के रामचरितमानस और लोक-प्रसिद्धि से प्रायः साम्य रखती है। दोनों स्थानों में उपलब्ध राम-कथा का सम्मिलित संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है —

अयोध्याधिपति महाराज दशरथ की तीन रानियाँ थीं—कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा। त्रेतायुग में, ब्रह्मा जी की प्रार्थना से, साक्षात् भगवान् विष्णु ने कौसल्या के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। उस समय उनका नाम था राम। कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न का जन्म हुआ। तरुण होने पर पिता द्वारा विश्वामित्र के साथ भेजे गये लक्ष्मण सहित श्रीराम सीता को प्राप्त करने के उद्देश्य से मिथिलापुरी में गये। उसी मार्ग में पाषाणमयी गौतम-पत्नी अहल्या का, चरण की एक अंगुलि से स्पर्श कर, उद्धार किया। तदनन्तर श्रीराम ने मिथिला ...में जाकर शिव का धनुष तोड़ा और सीता का पाणिग्रहण किया। सीता से विवाह ...के राजेन्द्र श्रीराम ने परशुराम जी का दर्पदलन किया। कुछ समय व्यतीत होने

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
...ज्यं कृत्वा क्रतून् कृत्वा स्वर्गं देवार्चितो ययौ ॥ *अग्निमहापुराण, ११/१२*

... अग्निपुराण में राम-कथा ७ अध्यायों—(५ से ११ अध्यायों) में वर्णित है। प्रत्येक ...ा का क्रमशः नाम है–बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, ...ण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड। प्रत्येक काण्ड की पुष्पिका में लिखा हुआ है- ...ापुराणे आग्नेये रामायणे उत्तरकाण्डवर्णनं नाम....अध्यायः, इन काण्डों में अथ ...संक्षिप्त रूप से राम-कथा वर्णित है।'

...ास के मानस का प्रधान आधार अग्निपुराण प्रतीत होता है। उन्होंने 'नानापुराण' ...हापुराण और अग्निमहापुराण की ओर प्रधानता के साथ निर्देश किया है। ...व-कथा शिवमहापुराण और राम-कथा अग्निमहापुराण से, उन्होंने ग्रहण ...अपना विचार है।

पर दशरथ ने श्रीराम को राजा बनाने की इच्छा की । श्रीराम सम्पूर्ण मङ्गलाचार से सम्पन्न हो जब अधिवास कर्म पूर्ण कर चुके, तब भरत की माता कैकेयी ईर्ष्या से जनित शोक से विह्वल हो गई। उसने राजा दशरथ से दो वर माँगे, जिन्हें देने के लिये वे पहले प्रतिज्ञा कर चुके थे। उसने एक वर से राम का वनवास माँगा और दूसरे के द्वारा भरत का राज्याभिषेक। महाराज दशरथ प्रेम से मोहित होने के कारण वर देना नहीं चाहते थे। किन्तु राम ने सत्य की महत्ता का प्रतिपादन कर उन्हें समझाया तथा वल्कल और जटा धारण करके सीता और लक्ष्मण के साथ विशाल वन में चले गये। इधर महाराज दशरथ ने पुत्रशोक में अपने प्राणों का परित्याग कर दिया।

जब राम वन में भ्रमण कर रहे थे उसी समय एक दिन रावण की बहन शूर्पणखा उधर आ निकली। उसने अपना स्वरूप आकर्षक बना रक्खा था। वह यौवन से युक्त और काम से उन्मत्त थी। राम को देखते ही उनके घनश्याम रूप पर वह मोहित हो गई। उसने राम से रति-याचना की। फिर तो श्रीराम तथा लक्ष्मण से शूर्पणखा की बातचीत हुई। अन्त में लक्ष्मण ने तीक्ष्ण धारवाले अर्धचन्द्राकार बाण से उसकी नाक काट ली। उसके भाई खर-दूषण महान् बलशाली थे । उन्होंने आकर युद्ध किया और लक्ष्मण के अस्त्र से मारे गये ।

चतुर्दश सहस्र सैन्य के साथ खर-दूषण के मारे जाने पर शूर्पणखा ने जाकर रावण को फटकारा और युद्ध के लिए उकसाया। इसी बीच एक दिन ब्राह्मणरूपधारी अग्नि ने श्रीराम से कहा—'श्रीराम, सीता के हरण का समय उपस्थित है। यह मेरी माँ हैं। इन्हें मेरे संरक्षण में रखकर आप छायामयी सीता को अपने साथ रखिये। फिर अग्नि-परीक्षा के काल में इन्हें मैं आप को लौटा दूँगा।' राम ने अग्नि के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उन्होंने सीता को अग्नि को समर्पित कर दिया। तब अग्नि ने योगबल से मायामयी सीता प्रकट की। उसे राम को प्रदान कर दिया। यह रहस्य अति गुप्त रक्खा गया। यहाँ तक कि इसे लक्ष्मण भी न जान सके।

इसी बीच भगवान् राम ने एक सुवर्णमय मृग देखा। सीता ने उस मृग को लाने के लिये श्रीराम से आग्रह किया। राम जानकी की रक्षा में लक्ष्मण को नियुक्त कर स्वयं मृग को मारने के लिये उसके पीछे चले। उन्होंने बाण से उसे मार गिराया। मरते समय उस मायामृग के मुख से 'हा लक्ष्मण' यह शब्द निकला। फिर अपने समक्ष श्रीराम को देखकर उनका स्मरण करते हुए उसने सहसा अपने प्राण का परित्याग कर दिया।

मारीच ही मायामय मृग बना था। यह पूर्व जन्म में वैकुण्ठ धाम के द्वार पर, वहाँ के द्वारपाल जय-और विजय का किंकर था। वह वहीं रहता था। उसका बल विशाल था। उसका नाम था 'जित'। सनकादिकों के शाप से जय-विजय के साथ वह भी राक्षस-योनि में आ गय़ा था। उस दिन उसका उद्धार हो गया। वह उन द्वारपालों के पहले ही वैकुण्ठ के द्वार पर पहुँच गया।

तदनन्तर 'हा लक्ष्मण' इस दर्दभरे शब्द का श्रवण कर सीता ने लक्ष्मण को राम के पास जाने के लिये प्रेरित किया। लक्ष्मण के चले जाने पर, रावण सीता का हरण कर खेल-ही-खेल में लंका की ओर चल दिया। उधर लक्ष्मण को वन में देखकर राम विषादमग्न हो गये। वे तत्काल अपने आश्रम पर पहुँचे। उन्हें वहाँ सीता नहीं मिलीं । वे विलाप करते हुए सीता का अन्वेषण करने लगे। कुछ काल के अनन्तर गोदावरी के तट पर उन्हें जटायु के द्वारा सीता का समाचार मिला। इसके बाद उन्होंने स्वयं ही जाकर वानरराज सुग्रीव के साथ मैत्री की और बालि को बाणों से मारकर उसका राज्य सुग्रीव को दे दिया। वानरराज ने सीता का पता लागने के लिये चतुर्दिक् दूतों को प्रेषित किया। उस समय राम लक्ष्मण के साथ सुग्रीव के यहाँ रहने लगे। राम ने अपनी रत्नजटित मुद्रिका देकर हनुमान् को साशीष सीता का पता लगाने के लिये प्रेषित किया। उन्होंने सीता के लिये सन्देश भी कहलाया। यह सन्देश ही सीता के जीवन का कारण बना। हनुमान् जी श्रीराम का सन्देश लेकर सीता के अन्वेषण के लिये लंका गये। वहाँ उन्होंने अशोकवाटिका में सीता को देखा। वे शोक से अति कृश हो गई थीं। वे 'राम राम' कहकर रुदन कर रही थीं। उसी समय हनुमान् ने उनके हाथ मे मुद्रिका प्रदान की और राम का वह सन्देश भी सुनाया जो सीत जी के जीवन की रक्षा करने वाला था। हनुमान् जी ने सीता को धैर्य बँधा कर लंका को जलाकर राख कर दिया। पुनः वे श्रीराम के पास वापस आ गये। सीता का समाचार सुनकर सभी दुःख के सागर में डूबने लगे। तदनन्तर समुद्र पर सेतु बाँधकर छोटे भाई और वानर-सेनासहित श्रीराम ने शीघ्र ही लंका पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में श्रीराम ने बन्धु-बान्धवों सहित रावण को मार डाला और सीता का वहाँ से उद्धार किया। फिर पुष्पकविमान पर सीता को बैठाकर अयोध्या के लिये प्रस्थान किया। वहाँ वे सप्तद्वीपा वसुमती के स्वामी बने । उनके शासनकाल में सारी पृथ्वी आधि-व्याधि-विहीन हो गई थी। चतुर्दिक् सुख और समृद्धि का साम्राज्य था। श्रीराम के दो धर्मात्मा पुत्र हुए—'कुश और लव'।[१]

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, प्रकृतिखण्ड, अध्याय १४ और श्रीकृष्ण जन्मखण्ड, अध्याय-६२

कूर्ममहापुराण

इक्ष्वाकु वंश के महान् प्रतापी राजा थे रघु। उनके पुत्र का नाम था अज। अज के बेटे थे दशरथ। महाराज दशरथ के चार पुत्र थे—राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। विष्णु की शक्ति से सम्पन्न होने के कारण ये सभी महान् प्रतापी थे। रावण के विनाश के लिये साक्षात् विष्णु ही अंशावतार धारण कर राम के रूप में पधारे थे।[१]

जनक ने अपनी तपस्या से शैलाधिराज-पुत्री पार्वती की आराधना की। प्रसन्न हुई पार्वती ने उन्हें एक बेटी प्रदान की। उसका नाम था सीता। जनक की तनया होने के कारण उसे जानकी भी कहा जाता था। जनक भगवान् शङ्कर के भक्त थे, आराधक थे। अत: उन्होंने प्रसन्न हो जनक को एक धनुष प्रदान किया था, जो शत्रुओं के नाश के लिये था।[२]

जानकी के किशोरी हो जाने पर जनक ने घोषणा की—'त्रिलोकी का जो भी कोई व्यक्ति, चाहे वह देव हो अथवा दानव, इस धनुष को उठा लेगा, उसके साथ अपनी प्यारी बेटी सीता का विवाह कर दूँगा।' यह घोषणा राम के भी कानों तक पहुँची। वे भी पहुँचे मिथिला। वहाँ उन्होंने शङ्कर के धनुष को अनायास ही उठाकर तोड़ दिया। फिर क्या था ? जनक ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार राम के साथ सीता का विवाह कर दिया।

राम बड़े धर्मात्मा थे। कुछ समय बीत ज़ाने पर दशरथ ने राम को राजा बनाना चाहा। दशरथ की अति सुन्दरी एक पत्नी थी कैकेयी। उसने राम के राज्याभिषेक को रोक कर दशरथ से कहा—'आप मेरे वीर पुत्र भरत को राजा बनाइये। आपने मुझे पहले ही दो वर दिये थे। उसके फलस्वरूप यह बात मैं आपसे कह रही हूँ। दूसरा वर यह है कि राम चौदह वर्ष के लिये वन में जायें ।'

कैकेयी के वचन को सुनकर महाराज दशरथ को महान् कष्ट हुआ। दु:खित मन से उन्होंने उसकी बात स्वीकार कर ली। राम को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने पिता के चरणों में प्रणाम कर जंगल के लिये प्रस्थान किया। उनके साथ पत्नी जानकी और अनुज लक्ष्मण भी अयोध्या का परित्याग कर चले गये।

पत्नी और लघु बन्धु के साथ राम अरण्य में निवास कर रहे थे। एक समय की घटना है । परिव्राजक वेषधारी रावण ने सीता का हरण कर, उन्हें लेकर, अपनी पुरी में चला गया। सीता को अपने आश्रम में न देखकर राम-लक्ष्मण परम दु:खी हुए।

---

१. जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वभुक् । *कूर्ममहापुराण, १/२१/१८*

२. प्रददौ शत्रुनाशार्थं जनकायाद्भुतं धनु:। *वही, १/२१/२१*

कुछ समय व्यतीत होने पर राम की कपि-पति सुग्रीव से मित्रता हो गई। सुग्रीव के एक अनुचर थे वीर वानर हनुमान् । वे वायु के पुत्र थे। उनमें तेज की उत्ताल तरङ्गें हिलोरे ले रही थीं । प्रथम मिलन में ही वे राम के सर्वदा के लिये प्रिय-पात्र बन गये। उन्होंने राम को धैर्य देते हुए कहा—'आप चिन्ता न करें। सीता कहीं भी होगीं मैं उन्हें लाकर ही दम लूँगा।' इस प्रकार कहकर हनुमान् ने जानकी का सर्वत्र अन्वेषण प्रारम्भ कर दिया। इसी क्रम में वे पहुँचे रावण-पालित लंका में। वहाँ विचरण करते हुए उन्होंने देखा—एक वृक्ष के नीचे सीता जी बैठी थीं । उनकी आँखे अश्रु-पूरित थीं। वे राम और लक्ष्मण के ध्यान में निमग्न थीं। राक्षसियाँ उन्हें चतुर्दिक् घेरे हुई थीं। अवसर प्राप्त होते ही एकान्त में हनुमान् जी सीता जी से मिले। उन्हें अपना परिचय दिया और विश्वास की दृढता के लिये उन्होंने राम की अँगूठी उन्हें प्रदान की। राम की अँगूठी को देखकर सीता परम हर्षित हो उठीं। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो राम ही मिल गये हों। हनुमान् जी ने उन्हें आश्वासन दिया—'माता जी, आप को शीघ्र ही राम के पास ले चलूँगा।' सीता को धैर्य धारण कराकर हनुमान् जी राम के पास वापस लौट आये। सीता का सारा समाचार उन्होंने राम से कहा। इस पर राम और लक्ष्मण ने उनका बड़ा सम्मान किया।

तदनन्तर राम ने लक्ष्मण और वीरवर हनुमान् को साथ लेकर रावण से युद्ध करने का निश्चय किया। वानर-वीर एकत्र किये गये। उनकी सहायता से राम ने सागर पर सेतु बनाकर लंका पर आक्रमण कर दिया। भयंकर युद्ध हुआ। उस संग्राम में सपरिवार रावण मारा गया। फिर तो हनुमान् जी की सहायता से सीता जी राम के पास लाई गईं।

राम लौटने लगे अयोध्या को। उस समय उन्होंने सेतु के मध्य पार्वती सहित शङ्कर की स्थापना की। राम स्थापित उस लिङ्ग की अपार महिमा है।

राम के अयोध्या पहुँचने पर भरत ने राजगद्दी पर उनका अभिषेक किया। राम ने धर्मपूर्वक प्रजा का पालन प्रारम्भ किया। राम के दो पुत्र थे—कुश और लव। दोनों ही वीर और विद्वान् थे।[१]

देवीभागवत

यद्यपि देवीभागवत में राम-कथा संक्षिप्त रूप में प्राय: वैसी ही वर्णित है, जैसी कि वाल्मीकि रामायण और अन्य पुराणों में निर्दिष्ट है। फिर भी सुगमता के लिये उसका सार-स्वरूप यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. देखिये-कूर्ममहापुराण, ब्राह्मीसंहिता, अध्याय-२१

सूर्य-वंश के प्रतापी राजा थे महाराज दशरथ। उनकी तीन प्रधान पटरानियाँ थीं—कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। दशरथ के चार श्रेष्ठ पुत्र थे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। राम की माता कौसल्या थीं। कैकेयी से भरत का जन्म हुआ था। सुमित्रा लक्ष्मण और शत्रुघ्न की जननी थीं। ये दोनों सुन्दर बालक एक साथ उत्पन्न हुए थे। समय पर महाराज ने बालकों का संस्कार किया। इसी समय विश्वामित्र जी दशरथ के पास आये। उन्होंने अपने यज्ञ की रक्षा के लिये महाराज दशरथ से उनके पुत्रों को माँगा। उस समय राम की अवस्था सोलह वर्ष की थी। राजा ने लक्ष्मण-सहित श्रीराम को मुनि के साथ जाने की आज्ञा प्रदान कर दी। प्रियदर्शन राम और लक्ष्मण मुनि के साथ चले गये। उन्होंने मार्ग में ही ताडका नामक राक्षसी का एक ही बाण से वध कर दिया। यह राक्षसी मुनियों के लिये महान् त्रास-दायक थी। यज्ञ की रक्षा की बेला में श्रीराम ने पापी सुबाहु को मार डाला और मारीच को भी मृतप्राय करके बाण के सहारे दूर फेंक दिया। इस प्रकार मुनि-यज्ञ की रक्षा के इस गुरुतर कार्य को उन्होंने सहजता से ही सम्पन्न कर दिया।

यज्ञ की पूर्णता के अनन्तर श्रीराम, लक्ष्मण और विश्वामित्र—ये तीनों मिथिला के लिये प्रस्थित हुए। राम ने मार्ग में ऋषिपत्नी अहल्या का शाप से उद्धार किया। भगवान् राम की कृपा से वह परम पावन बन गई। फिर श्रीराम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ जनक की नगरी में पधारे। वहाँ राम ने जनक की प्रतिज्ञा पूरी करते हुए शङ्कर के धनुष को तोड़कर लक्ष्मी की अंशभूता जानकी के साथ विवाह किया। महाराज जनक की एक अन्य बेटी थी उर्मिला। उन्होंने उसका विवाह लक्ष्मण के साथ कर दिया। उत्तम लक्षणों से सम्पन्न, सुशील भरत एवं शत्रुघ्न—ये दोनों भाई कुशध्वज की कन्याओं के स्वामी बने। इस प्रकार इन चारों भाइयों का विवाह-संस्कार पारम्परिक रीति से जनकपुर में सम्पन्न हुआ।

महाराज दशरथ ने देखा राम राज्य का भार उठाने के योग्य हो गये हैं। अतः उन्होनें राम के राज्याभिषेक के लिये तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी। इसे देखकर कैकेयी ने महाराज दशरथ से अपने पूर्व प्रदत्त दो वर माँगे। एक के अनुसार उसने अपने पुत्र भरत को राजा बनाना और दूसरे के अनुसार राम को चौदह वर्ष का वन-वास माँगा। तदनन्तर कैकेयी के कथनानुसार सीता और लक्ष्मण के सहित श्रीराम दण्डकारण्य में पधारे। राम के वियोग में दशरथ ने प्राणों का परित्याग कर दिया। सम्पूर्ण बातों का परिज्ञान होने पर भरत ने राज्य करना अस्वीकृत कर दिया।

भगवान् श्रीराम पञ्चवटी में निवास कर रहे थे। एक दिन वहाँ रावण की

छोटी बहन सूर्पणखा आई। यह काम के प्रभाव से पीडित थी। राम ने उसे विरूप बना दिया। नाक-कान कटी हुई उस राक्षसी सूर्पणखा को देखकर खर-दूषण आदि दैत्यों ने राम के साथ घोर संग्राम किया। फलत: उन्हें श्रीराम के हाथों अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।

शूर्पणखा बड़ी दुष्टा थी। वह लंका गई। वहाँ उसने राम के द्वारा खर-दूषण के मारे जाने का समाचार रावण को दिया। रावण भी बड़ा नीच था। खर-दूषण के समाचार से उसके क्रोध की सीमा न रही। वह तुरन्त रथ पर आरूढ हुआ और मारीच के स्थान पर जा पहुँचा। मारीच बड़ा मायावी था। सीता को प्रलोभित करने के लिये सुवर्ण का मृग बनकर जाने के लिये रावण ने उसे आज्ञा दी। मारीच ने सद्य: रावण के आदेश का पालन किया। सुवर्ण का मृग बनकर वह राम की कुटी के पास जाकर तृण चरने लगा। दैव ने सीता को प्रेरित किया। उसनें राम से कहा—'प्रभो, इस मृग का चर्म लाने की कृपा करें।' भगवान् श्रीराम ने भी बिना विचारे, आश्रम की रक्षा लक्ष्मण को सौंप कर, धनुष-बाण उठाया और मृग का पीछा किया। मृग अपरिमित मायाओं का ज्ञाता था। राम को देखकर वह कभी दीख पड़ता और कभी अदृश्य हो जाता था। इस प्रकार वह एक वनसे दूसरे वन में होता हुआ राम को दूर ले गया। जब राम ने देखा कि मृग बहुत पास में आ गया है तो एक ही बाण से उन्होंने उसका संहार कर डाला। मरते समय मायावी मृग नें जोर से चिल्ला कर कहा—'हा लक्ष्मण, अब मैं मारा गया।' सीता ने इस शब्द को सुना। यह राघवेन्द्र की करुणाभरी पुकार है—यह मानकर वह व्याकुल हो उठीं। उन्होंने लक्ष्मण को राम के सहायतार्थ जाने की आज्ञा दी। किन्तु राम के आदेश और आश्रम की रक्षा की बात कह कर लक्ष्मण ने जाने में असमर्थता व्यक्त की। इस पर सीता ने लक्ष्मण के प्रति अनेक कठोर वचनों को कह डाला। भगवती जानकी का वचन सुनकर लक्ष्मण का मन क्षुब्ध हो उठा। कुछ समय तक वे मौन रहे। फिर जानकी से कहा—'क्षितिजे, आपने मेरे प्रति कितने कठोर वचन कह डाले। इतनी अहितकर बात आपके मुख से क्यों निकल रही है ? इसकी परिणति मेरी समझ में आ गई।' ऐसा कहकर लक्ष्मण राम का अन्वेषण करते हुए वहाँ से चल पड़े। उस समय उनकी आँखों से अश्रु की अजस्र धार बह रही थी। वे बड़े दुःखी थे।

आश्रम से लक्ष्मण के जाते ही वहाँ रावण आ धमका। उसने मायापूर्वक अपना वेश भिक्षुक का बना रक्खा था। अत: जानकी रावण को न जान सकीं। उन्होंने उसका आतिथ्य-सत्कार किया और उसके समक्ष भोजन सामग्री सुलभ

की। तब उस नीच रावण ने विनम्र हो मधुर वचनों में सीता से उनका पूरा वृत्तान्त पूछा। सीता ने आद्यन्त अपनी सारी गाथा यति को कह सुनाई और अन्त में उन्होंने यति से उनका परिचय जानना चाहा । यति ने अपना पूर्ण परिचय देते हुए कहा—'मैं लंका का अधिपति रावण हूँ। मेरी स्त्री का नाम मन्दोदरी है। सूर्पणखा मेरी बहन है। अत: अब तुम उस मानव पति का परित्याग कर मुझ लंकाधिपति को अपना पति बनाओ। राम राज्य-विहीन है। उसके आनन पर उदासी का साम्राज्य है। शक्तिहीन होकर वह वन में निवास करता है। सुन्दरी, तुम मेरी पटरानी बनो। मन्दोदरी तुमसे नीचे होकर रहेगी। मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम मेरी स्वामिनी बनने की कृपा करो। समस्त लोकपाल मेरे वश में हैं। फिर भी मेरा मस्तक तेरे चरणों का चुम्बन कर रहा है। जानकी, अब तुम मेरा हाथ पकड़कर मुझे सनाथ बनाने की कृपा करो। अबले, तुम्हारे लिये पहले भी मैंने तुम्हारे पिता से याचना की थी। उस समय जनक ने कहा था कि—'मैंने धनुष तोड़ने की शर्त रक्खी है।' 'भगवान् शङ्कर का धनुष मेरे हाथ टूट जायेगा।' इस भय से मैं स्वयंवर में गया ही नहीं । किन्तु तभी से मेरा मन तुम्हारे सौन्दर्य का दास बना हुआ है। तुम्हें पाने के लिये वह व्यग्र है, वेचैन है। तुम इस वन में रहती हो—यह सुनकर मैं यहाँ आया हूँ। अब तुम मेरे परिश्रम को सफल बनाने की कृपा करो।'[१]

रावण के उक्त कुत्सित विचारों को सुनकर जानकी व्याकुल हो उठीं। उनका समग्र शरीर कम्पित हो उठा। उन्होंने रावण की भर्त्सना की और फिर 'दूर हो, दूर हो'—यह कहती हुई पर्णशाला में स्थापित अग्निशाला में चली गईं। उस समय रावण अपने असली स्वरूप में आ चुका था। वह पर्णशाला के पास पहुँचा और बलात् सीता को पकड़ लिया। भयभीत सीता रोने लगीं। 'हा राम, हा राम, हा लक्ष्मण'—यह करुण ध्वनि निरन्तर उनके मुख से निकल रही थी। रावण उन्हें पकड़ते ही रथ पर बैठा कर वहाँ से तुरन्त चल पड़ा। मार्ग में अरुण-नन्दन जटायु ने रावण को घेर लिया। दोनों में भयङ्कर युद्ध हुआ। जब रावण के हाथों जटायु की सत्ता शिथिल हो गई तब वह राक्षस सीता को लेकर लंका चला गया। उसने अशोक वाटिका में सीता के रहने की व्यवस्था बना दी। उनके पास राक्षसियों का पहरा लगा दिया। साम, दान, दण्ड और भेद—सभी नीतियाँ व्यवहृत करने पर भी रावण सीता को सदाचार से विचलित न कर सका।

उधर सुवर्णमय मृग को मार कर राम उसे लेकर आश्रम की ओर बढ़े।

१. श्रीमद्देवीभागवत, स्कन्ध ३, अध्याय-२८

उनकी दृष्टि सामने आते हुए लक्ष्मण पर पड़ी। उन्होंने कहा—'लक्ष्मण, सीता को अकेली छोड़कर तुम यहाँ चले आये—यह बड़ा विषम कार्य किया। क्या तुम इस नीच की पुकार सुनकर चले आये ?'

उस समय सीता के मर्मवेधी वचनों से लक्ष्मण अत्यन्त दुःखी थे। उन्होंने कहा—'प्रभो, समय बलवान् है। उसी की प्रेरणा से मैं यहाँ आ गया।' फिर दोनों बन्धु आश्रम पर पहुँचे। पर्णशाला सीता-विहीन थी। वहाँ की स्थिति देखकर दोनों अत्यन्त दुःखी हुए। फिर तो जानकी के अन्वेषण में दोनों बन्धु तत्पर हो गये। मार्ग में उन्हें घायल जटायु मिले। उन्होंने सारी घटना का वर्णन राम से किया। अन्त में जटायु के प्राण प्रयाण कर गये। राम और लक्ष्मण ने अपने हाथों उनकी परलौकिक क्रिया सम्पन्न की। तदनन्तर वे आगे बढ़े। फिर उन्होंने कबन्ध को मारकर उसका शाप से उद्धार किया। कबन्ध के प्रस्ताव पर ही सुग्रीव से राघवेन्द्र की मैत्री हुई। वीरवर बाली भगवान् के हाथों से मरकर स्वर्ग सिधार गया। किष्किन्धा की राजगद्दी पर सुग्रीव का अभिषेक किया गया। वहीं राम-लक्ष्मण कुछ दिनों तक ठहरे रहे। वे सीता के लिये सर्वदा चिन्तित रहा करते थे। लक्ष्मण ने इतिहास के कतिपय उद्धरणों से राम के शोक को दूर करने का प्रयास किया। उन्हें इसमें सफलता भी प्राप्त हुई। राम निश्चिन्त हो गये ।

उसी समय मुनिवर नारद वहाँ पधारे। शोकसंविग्न राम को समझाते हुए उन्होंने जानकी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त उन्हें बतलाया। नारद ने कहा—'जानकी पूर्व जन्म में मुनि की पुत्री थीं। तप में रत रहना उनका स्वभाव था। यह साध्वी वन में तपोलीन थीं। उसी समय रावण की दृष्टि उन पर पड़ी। उसने मुनि-कन्या से प्रार्थना की—'तुम मेरी भार्या बन जाओ।' मुनिकन्या के द्वारा घोर अपमानित होने पर दुरात्मा रावण ने उस तापसी का जूड़ा बलपूर्वक पकड़ लिया। इस पर तपस्विनी की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसके मन में आया, इसके स्पर्श किये हुए शरीर को त्याग देना ही उत्तम है। राम, उसी समय उस तापसी ने रावण को शाप दिया—'दुरात्मन्, तेरा संहार करने के लिये मैं भूतल पर एक उत्तम स्त्री के रूप में प्रकट होऊँगी। मेरे अवतार में माता के गर्भ से कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।' ऐसा कहकर उस तपस्विनी ने अपने शरीर का परित्याग कर दिया। वही यह सीता है, जो लक्ष्मी के अंश से प्रकट हुई हैं। अपने वंश का विनाश कराने के लिये रावण ने इनका हरण किया है। सीता के पीने के लिये स्वयं इन्द्र एक पात्र में रखकर कामधेनु का दूध भेजते हैं । अमृत के समान मधुर, उसी दुग्ध को वे पीती हैं । इसी से वे बुभुक्षा और पिपासा से स्वल्प भी प्रभावित नहीं होतीं ।'

आगे नारद ने, अभीप्सित की सिद्धि के लिये, भगवान् राम को आश्विन

के नवरात्र में सविधि दुर्गा के आराधन की विधि बतलाई। श्रीराम ने नारद की सलाह को शिरोधार्य कर किष्किन्धा पर्वत पर देवी की आराधना की। नारद जी के द्वारा उपदिष्ट इस व्रत को राम और लक्ष्मण—दोनों भाई प्रेमपूर्वक करते रहे। अष्टमी तिथि की अर्धरात्रि की बेला में भगवती आविर्भूत हुईं। वे राम की आराधना से सन्तुष्ट थीं। उन्होंने राम से कहा—'राम, तुम पापी रावण का वध करके सुखपूर्वक राज्य भोगोगे। ग्यारह सहस्र वर्षों तक धरातल पर तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा। फिर आप अपने लोक की यात्रा करोगे।'

उक्त वरदान देने के अनन्तर भगवती अन्तर्धान हो गईं। नवरात्र-व्रत की पूर्ति कर दशमी के दिन भगवान् राम ने यात्रा कर दी। प्रस्थान के पूर्व विजय दशमी की पूजा का कार्य पूरा किया। फिर सुग्रीव के साथ श्रीराम समुद्र के तट पर गये। साथ में लक्ष्मण जी भी थे। फिर समुद्र पर पुल बाँधने की व्यवस्था करके उन्होंने देवशत्रु रावण का वध किया।[१]

●

१. देवीभागवत, ३/२९-३०।

लिङ्ग-कथा
शिवमहापुराण

एक समय ब्रह्मा और विष्णु में बड़प्पन को लेकर विवाद छिड़ गया। दोनों अपने को दूसरे से बड़ा बतला रहे थे। विवाद ने विकराल युद्ध का रूप धारण कर लिया। महाविनाशक अस्त्रों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। त्रिलोकी काँप उठी। देवता शङ्कर की शरण में गये।[१] प्राणियों की प्राणरक्षा के लिये शङ्कर पहुँचे समराङ्गण में। वहाँ वे ब्रह्मा और विष्णु के मध्य में आदि-अन्त-विहीन, ज्वाला-माला से परिवेष्टित स्तम्भ के रूप में प्रकट हो गये। युद्ध बन्द हो गया। अस्त्र उपसंहत हो गये। परस्पर सलाह कर सूकर का स्वरूप धारण कर विष्णु स्तम्भ की तलहटी का और हंस के रूप को धारण कर ब्रह्मा उसके अन्त का पता लगाने के लिये प्रस्थित हुए। अनन्त काल की यात्रा के बाद भी दोनों अपने लक्ष्य में जब सफल नहीं हुए तो लौट आये अपने पूर्व स्थान पर। विष्णु ने अपनी असफलता सहजरूप से स्वीकार कर ली। किन्तु ब्रह्मा ने मिथ्या भाषण किया। उन्होंने कहा मैं स्तम्भ के ऊर्ध्व भाग तक पहुँच गया था। विष्णु ने ब्रह्मा की श्रेष्ठता स्वीकार कर ली। यह अनीति शङ्कर को सह्य नहीं हुई। फलतः उन्होंने कालभैरव को प्रकट कर ब्रह्मा के मिथ्यांवादी पञ्चम मुख को, शिर को, कटवा दिया। विष्णु की प्रार्थना से उन्होंने ब्रह्मा को जीवित छोड़ दिया। शङ्कर श्रीहरि के आचरण से प्रसन्न और ब्रह्मा के कैतव से अप्रसन्न थे। अतः उन्होंने विष्णु को अपने समान पूज्य बना दिया और ब्रह्मा की अर्चना को लोकबहिष्कृत कर दिया। यही कारण है कि ब्रह्मा की लोक में पूजा नहीं होती।[२]

तदनन्तर ब्रह्मा और विष्णु ने शङ्कर की सविधि अर्चना की। अर्चना की वह तिथि ही लोक में शिवरात्रि के रूप में प्रसिद्ध हुई।[३]

अन्त में अनन्त वह स्तम्भ ही स्वल्प आकार में परिणत हो गया। यह

---

१. माहेश्वरास्त्रं मतिमान् संदधे ब्रह्मणोपरि ।
ततो ब्रह्मा भृशं क्रुद्धः कम्पयन् विश्वमेव हि ॥
अस्त्रं पाशुपतं घोरं संदधे विष्णुवक्षसि ।
ततो देवगणाः सर्वे विषण्णा भृशमाकुलाः ।
जग्मुः कैलासशिखरं यत्रास्ते चन्द्रशेखरः ॥ *शिवमहापुराण, १/६/१६, १७, १९, २२*

२. अथाह देवः कितवं विधिं विगतकन्धरम् ।
ब्रह्मंस्त्वमर्हणाकांक्षी शठेशत्वं समास्थितः ॥
नातस्ते सत्कृतिर्लोके भूयात्स्थानोत्सवादिकम् ॥ *वही, १/८/९-१०*

३. दिनमेतत् ततः पुण्यं भविष्यति महत्तरम् ।
शिवरात्रिरिति ख्याता तिथिरेषा मम प्रिया ॥ *शिवमहापुराण, १/९/१०*

संसार का प्रथम शिव-लिङ्ग था। लोक में सर्वप्रथम इसी की पूजा प्रारम्भ हुई।[१] फिर तो बहुमूल्य मणि से लेकर पार्थिव लिङ्गों तक कीं बाढ़-सी आ गई पूरी दुनियाँ में।[२] सभी लोग शिव-लिङ्ग के अर्चन को अपने कल्याण का कारण मानने लगे।

वामनमहापुराण

शङ्कर सती के वियोग में सन्तप्त थे। वे विन्ध्य पर्वत पर परिभ्रमण कर रहे थे। कामदेव ने उन्हें वहाँ भी पीडित करने के लिये पीछा किया। शङ्कर भागकर घोर दारुवन में प्रवेश किये। काम ने वहाँ भी उनका पीछा न छोड़ा। दारुवन में सपत्नीक ऋषियों के व्यवस्थित आश्रम थे। ऋषियों ने शङ्कर को देखकर शिर नीचा कर लिया। शङ्कर ने उनसे भिक्षा की याचना की। किन्तु ऋषि-जन मौन ही धारण किये रहे। उन्होंने कुछ दिया नहीं। यह देखकर शङ्कर ने उनके आश्रमों की श्रेणियों में प्रवेश किया। अरुन्धती और अनसूया को छोड़ कर आश्रम की सारी स्त्रियाँ शङ्कर पर विमुग्ध हो उठीं। वे कामार्त होकर उनके पीछे-पीछे घूमने लगीं। आश्रम सूने हो गये। यह देखकर भृगु-वंशी और अङ्गिरागोत्रीय मुनियों ने क्रोधवश शङ्कर को शाप दे दिया—'आप का लिङ्ग भूतल पर गिर जाय।'

शाप को सुनते ही शङ्कर का लिङ्ग भूमि पर गिर पड़ा। शङ्कर अन्तर्हित हो गये। लिङ्ग वसुधातल का भेदन कर रसातल तक जा पहुँचा। ऊपर की ओर वह ब्रह्माण्ड को फोड़कर आगे निकल गया।[३] सकल त्रिलोकी कम्पित हो उठी। ब्रह्मा सशङ्कित होकर विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने कहा—'महर्षियों ने शाप देकर शङ्कर के लिङ्ग को गिरा दिया है। उसी के भार से सारी पृथिवी चलायमान हो गई है।[४]

विष्णु के वचन को सुनकर ब्रह्मा ने उसे देखने के लिये उस स्थान पर जाने की बार-बार प्रार्थना की। दोनों देव वहाँ पहुँचे जहाँ शङ्कर का लिङ्ग गिरा था। वहाँ आदि अन्त-विहीन शिव-लिङ्ग को देखकर वे आश्चर्यचकित हो उठे। फिर विष्णु गरुड पर और ब्रह्मा हंस पर आरूढ होकर क्रमशः नीचे तथा ऊँचे की ओर ओर-छोर का पता लगाने के लिये प्रस्थित हुए। चिरकाल तक अनवरत यात्रा करने पर

---

१. अनाद्यन्तमिदं स्तम्भमणुमात्रं भविष्यति।
दर्शनार्थं हि जगतां पूजनार्थं हि पुत्रकौ॥ *शिवमहापुराण, १/९/१९*

२. तदाप्रभृति लोकेऽस्मिंल्लिङ्गपूजाविधिः स्मृतः॥ *वही, २/१/१०/३३*

३. ततस्तत्पतितं लिङ्गं विभेद्य वसुधातलम्।
रसातलं विवेशाथ ब्रह्माण्डं चोर्ध्वतोऽभिनत्॥ *वामनमहापुराण, ६/६७*

४. अथोवाच हरिर्ब्रह्मञ्छार्वो लिङ्गो महर्षिभिः।
पातितस्तस्य भारार्ता संचचाल वसुन्धरा॥ *वही, ६/७१*

भी जब वे लोग पता लगाने में समर्थ नहीं हुए तो दोनों ही लौटकर वहाँ आये जहाँ से प्रस्थित हुए थे । वहाँ उन लोगों ने हाथ जोड़कर शङ्कर की दिव्य स्तुति प्रारम्भ की। शङ्कर प्रसन्न हुए। वे प्रकट हुए उन देवताओं के समक्ष और उनसे स्तुति का कारण पूछा। देवों ने कहा—'प्रभो, आपने भूतल पर जो अपना लिंग गिराया है उसे ग्रहण कर लीजिये। इसीलिये हम आपकी स्तुति कर रह हैं।' शङ्कर ने पुन: कहा—'देवशिरोमणियों, यदि देवता मेरे लिङ्ग का अर्चन करें तो मैं इसका प्रतिसंहार कर सकता हूँ, अन्यथा नहीं।' इस वचन को सुनकर भगवान् विष्णु ने सद्य: स्वीकृति दे दी। कहा ऐसा ही होगा। सर्वप्रथम स्वयं ब्रह्मा ने सुवर्ण-वर्ण लिंग को पूजन के लिये ग्रहण किया। इसके अनन्तर उन्होंने शिवलिंग के पूजन में चारों वर्णों का अधिकार निरूपित किया। पुन: शैव, पाशुपत, कालवदन और कापालिक-शैव-शास्त्रों की रचनाएँ हुईं। इनका प्रचार-प्रसार भी काल-क्रम से विपुल हुआ।

ब्रह्मा-विष्णु के वहाँ से चले जाने पर भगवान् शङ्कर ने अपने लिङ्ग को समेट लिया, उपसंहृत कर लिया और चित्रवन में अपने सूक्ष्म लिंग की स्थापना करके भूतल पर विचरण करने चले गये ।[१]

कूर्ममहापुराण

शङ्ख-चक्र-गदाधारी नारायण सागर में शयन कर रहे थे। उन्होंने कुछ दूर पर तेज से मण्डित चतुर्भुज ब्रह्मा को देखा। कुतूहलवश वे उनके पास पहुँचे। उन्हें अपने पास देखकर मुस्कराते हुए ब्रह्मा ने पूछा—'आप कौन हैं ? कहाँ से आ रहे हैं ? यहाँ क्यों रुक गये ? मैं सारे लोकों का निर्माता स्वयम्भू ब्रह्मा हूँ।' ब्रह्मा की बात सुनकर नारायण ने प्रतिवाद किया—'सारे संसार का बारम्बार कर्ता और संहर्ता एकमात्र मैं हूँ।' इस प्रकार दोनों देवों में विवाद छिड़ गया। इसी समय उन लोगों के मध्य आदि-अन्त-विहीन ज्वाला-माला में परिवेष्टित एक लिङ्ग प्रादुर्भूत हो गया।

उस अनन्त लिंग को देखकर ब्रह्मा ने कहा—'इस लिंग के तल-भाग का पता लगाने के लिये आप नीचे की ओर जाँये और मैं शिरोभाग का साक्षात्कार करने ऊपर की ओर जाऊँगा' इस प्रकार शर्त (समय) लगाकर वे दोनों क्रमश: नीचे और ऊपर की ओर प्रस्थित हुए।[२] किन्तु सुदीर्घ काल तक यात्रा करने पर

---

१. गते ब्रह्मणि सर्वोऽपि उपसंहृत्य तत्तदा ।
लिङ्गं चित्रवने सूक्ष्मं प्रतिष्ठाप्य चचार हि ॥ *वामनपुराण,* ६/९३

२. शर्त शायद यही लगी थी कि जो पता लगा कर पहले यहाँ पहुँचेगा वह बड़ा माना जायेगा। वही प्रथम पूज्य और प्रणम्य होगा। किन्तु प्रस्तुत स्थल में इसकी चर्चा नहीं है।

भी जब वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुए तो वापस होकर उसी स्थान पर आ गये जहाँ से पहले प्रस्थित हुए थे। फिर दोनों भयभीत होकर ओंकार का उच्चारण करते हुए अञ्जलि बाँधकर शिव की स्तुति करने लगे।

उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर शङ्कर प्रकट हो गये। उन्होंने संसार के सर्ग का भार ब्रह्मा को और उसके साथ ही ब्रह्मा के पालन का कार्य विष्णु को समर्पित किया । फिर अन्त में वे अन्तर्हित हो गये।

ब्रह्माण्डमहापुराण

प्रलयकालीन घना अन्धकार संसार को आच्छादित किये हुए था। भगवान् नारायण विश्व को अपनी कुक्षि में समेट कर शयन कर रहे थे। उसी समय ब्रह्मा विष्णु के समीप पहुँचे। दोनों यह कहकर परस्पर विवाद करने लगे कि—'मैं ही विश्व का कर्ता धर्ता संहर्ता और ईश्वर हूँ।' वे एक दूसरे को जीत लेना चाहते थे। उसी समय उन लोगों ने उत्तर दिशा में आदि-अन्त-विहीन ज्वालामाला को देखा। वे उस अद्भुत दृश्य को देखकर उसी की ओर दौड़कर चले गये। वहाँ उन लोगोंने ज्वाला के मध्य में एक तेजः पुञ्ज शिव-लिंग को देखा। अन्ततः उसने भी आदि-अन्त-विहीन स्वरूप धारण कर लिया उसी अग्नि-पुञ्ज के मध्य में। ब्रह्मा और विष्णु ने शर्त लगाकर उस ज्योतिर्लिङ्ग के आदि-अन्त का पता लगाने का प्रयास किया । ब्रह्मा ऊपर की ओर गये और विष्णु नीचे की ओर मूल का पता लागने के लिये प्रस्थान किये। चिरकाल तक दोनों देवता प्रयास करते रहे। किन्तु उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता न मिली। अन्ततः हार मानकर दोनों देव भयभीत हो वापस पूर्व स्थान पर आये। उस समय दोनों ही शङ्कर की माया से किंकर्तव्यविमूढ थे।

ब्रह्मा और विष्णु को जब कुछ न सूझा तो उन लोगों ने परमेश्वर शङ्कर की दीनतापूर्वक स्तुति प्रारम्भ कर दी। वे शङ्कर की महिमा से पूर्वपरिचित थे, क्योंकि वे दोनों शङ्कर के शरीर से ही उत्पन्न हुए थे कभी। ब्रह्मा शङ्कर की दक्षिण भुजा से और विष्णु उनके वाम बाहु से प्रकट हुए थे।[१]

शङ्कर प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी अविरल भक्ति का वरदान देक उन लोगों को प्रजा की सृष्टि का आदेश दिया और अन्तर्धान हो गये ।[२]

●

१. युवां प्रसूतौ गात्रेभ्यो मम पूर्वं सनातनौ ।
अयं मे दक्षिणो बाहुर्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥
वामो बाहुश्च मे विष्णुर्नित्यं युद्धेष्वनिर्जितः ॥ २/२६/५७-५८

२. ब्रह्माण्डमहापुराण, २/२६

वामन-कथा

ब्रह्ममहापुराण

बलि ने त्रिलोकी पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। सकल भू-मण्डल भी उसके अधिकार में था। भगवान् विष्णु वामनरूप धारण कर बलि की यज्ञ शाला में पहुँचे। वहाँ उन्होंने तीन पद-विन्यासों से सारे असुरों को क्षुभित कर दिया।[1] प्रह्लाद, संह्लाद, अनुह्लाद, वृत्र, चन्द्रमा, राहु, विरोचन आदि दैत्यों ने, त्रिलोकी को नाप लेने में संलग्न वामन को चारों ओर से घेर लिया। वे विविध अयुधों से सुसज्जित थे। भगवान् वामन ने अपने पाद एवं हस्त प्रहरों से समस्त दैत्यों का मन्थन कर पृथिवी को अपने अधिकार में कर लिया। फिर उन्होंने उसे इन्द्र को प्रदान कर दिया।[2]

टिप्पणी—जिन दैत्यों ने क्षुभित होकर वामन को घेरा था, उसमें विरोचन का भी नाम है। अन्य पुराणों के अनुसार विरोचन ने ब्राह्मण-वेषधारी इन्द्र को अपना शिर और आयुष्य दान में दे दिया था। विरोचन के बाद ही बलि दैत्यों का अधिपति बना था।

इस कथा को देखने से यह प्रतीत होता है कि यह कथानक का आदिम स्वरूप है। बाद के महापुराणों ने इसी का विस्तार किया है।

पद्ममहापुराण

प्रह्लाद-पौत्र बलि धर्मज्ञशिरोमणि, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, धर्मपरायण पवित्र और श्रीहरि के प्रियतम भक्त थे। वे महान् बलवान् थे। त्रिलोकी पर उनका आधिपत्य था। शास्त्रों में जैसा वर्णन रामराज्य का मिलता है, ठीक वैसी ही स्थिति महात्मा बलि के शासन-काल में संसार की थी। बलि को अपने बल का अभिमान था। इन्द्र आदि देवता दासभाव से उनकी सेवा में खड़े रहते थे।

---

१. यत्र वामनमास्थाय रूपं दैत्यविनाशनम् ।
बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा ॥
विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः ॥ *ब्रह्ममहापुराण,* १०४/७३-७४

२. स्वान्यायुधानि सङ्गृह्य प्रदीप्तानि च तेजसा ।
क्रममाणं हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः ॥
प्रमथ्य सर्वान् दैतेयान् पादहस्ततलैर्विभुः ।
रूपं कृत्वा महाभीमं जहाराशु स मेदिनीम् ॥ *वही,* ९३-९४
हृत्वा स मेदिनीं कृत्स्नां हत्वा चासुरपुंगवान् ।
ददौ शक्राय वसुधां विष्णुर्बलवतां वरः ॥ *वही,* ९३-९७

इन्द्र की दुर्दशा देखकर पिता कश्यप और माता अदिति ने पयोव्रत का अनुष्ठान करके श्रीहरि की उपासना की। श्रीहरि प्रसन्न हुए। कश्यप ने वरदान माँगा—'आप मेरे पुत्र होकर देवताओं का हित कीजिये। जिस किसी उपास से भी मायापूर्वक बलि को पराजित करके मेरे पुत्र इन्द्र को त्रिलोकी का राज्य प्रदान कीजिये।' भगवान् ने 'तथास्तु' कहा। समय आने पर अदिति ने वामनरूपधारी भगवान् विष्णु को जन्म दिया। वे ब्रह्मचारी का वेष धारण किये हुए थे। उन्होंने देवताओं से पूछा—'देवगण, बतलाइये, आपका कौन-सा कार्य इस समय करूँ?'

वामन की बात सुनकर हर्षगद्गद देवों ने विनीत भाव से कहा—'मधुसूदन, सम्प्रति राजा बलि यज्ञ-निरत हैं । अत: इस स्थिति में वे कुछ भी देने से अस्वीकार नहीं कर सकते। प्रभो, आप दैत्यराज से तीनों लोक माँगकर इन्द्र को देने की कृपा करें।'

देवों की प्रार्थना भगवान ने स्वीकार की। वे शीघ्र ही बलि की यज्ञ-शाला में पहुँचे। बलि कृतार्थ हो गया। उसने वामन का चरण धोकर स्वागत किया और विनम्र होकर पूछा—'द्विजश्रेष्ठ, आप किस वस्तु को पाने के उद्देश्य से मेरे पास पधारे हैं ? उसे शीघ्र कहें। मैं अवश्य दूँगा।'

वामन ने बलि की बात सुनी। उन्होंने बलि से कहा—'महाराज, मुझे तीन पग पृथिवी दान में दीजिये। दानों में भूमिदान सर्वश्रेष्ठ हैं। भूमि के दाता और आदाता—दोनों ही स्वर्ग के भागी बनते हैं।' बलि ने प्रसन्नतापूर्वक वामन की याचना स्वीकार करली। याचक को साक्षात् विष्णु बतलाते हुए शुक्राचार्य ने बलि को दान में भूमि देने से मना किया। किन्तु बलि ने शुक्राचार्य की बात अस्वीकृत कर दी। उसने वामन वटुको तीन पग पृथ्वी का सँङ्कल्प कर डाला।

बलि के सङ्कल्प करते ही वामन का वह लघु रूप अद्भुत रूप से बढ़ गया। उन्होंने एक पग से सकल पृथिवी को नाप लिया। द्वितीय पग में भूतल के ऊपर ब्रह्मलोक तक का अंश समाहित हो गया। उस समय सनातन भगवान् ने दैत्यराज बलि को दिव्यनेत्र प्रदान किया। जिससे वे उनके विराट् स्वरूप का दर्शन कर सकें। वामन के उस अलौकिक रूप का दर्शन कर बलि के हर्ष की सीमा न थी। उन्होंने भगवान् की स्तुति की और कहा—'परमेश्वर, आपके दर्शन से मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया। आप इन तीनों ही लोकों को ग्रहण कीजिये।'

बलि के कृत्य से प्रसन्न भगवान् नारायण ने दैत्यराज बलि को कल्पभर के लिये रसातल का उत्तम लोक प्रदान किया। इस प्रकार कश्यपनन्दन वामन का

वेश धारण करके भगवान् विष्णु ने बलि से त्रिलोकी लेकर उसे प्रसन्नतापूर्वक इन्द्र को प्रदान कर दिया। देवों और ऋषियों ने भगवान् की दिव्य स्तुति की। तत्पश्चात् अपना विराट् रूप समेट कर भगवान् अच्युत वहीं अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार भगवान् विष्णु की कृपा से इन्द्र को तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त हुआ।[१]

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दैत्याधिराज बलि ने देवों को पराजित कर दिया। वे स्वर्ग छोड़कर भाग खड़े हुए। बलि ने स्वर्ग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इससे देवमाता अदिति सन्तप्त हो उठीं। एक दिन कश्यप अदिति के आश्रम पर पधारे। उन्होंने अपनी पत्नी अदिति से उनके दु:ख का कारण पूछा। अदिति ने शत्रुओं के द्वारा अपने पुत्रों के राज्य छिन जाने से उनके साथ अपने स्थानभ्रष्ट होने की बात बतलाई। उन्होंने कश्यप से यह भी प्रार्थना की—'प्रभो, जिस प्रकार मेरे बेटे देवगण पुन: स्वर्ग को प्राप्त करलें उस उपाय को बतलाइये।'

अदिति की दैन्यभरी प्रार्थना को सुनकर कश्यप ने पयोव्रत द्वारा भगवान् श्रीहरि की उपासना करने का उपदेश दिया। अदिति ने पूरी तन्मयता से, कश्यप द्वारा उपदिष्ट साधना का सहारा लेकर, भगवान् की आराधना की। भगवान् अदिति के समक्ष प्रकट होकर बोले—'देवमात:, मैं तुम्हारे मनोरथ को जानता हूँ। तुम चाहती हो कि तुम्हारे बेटे शत्रुओं को जीतकर पुन: स्वर्ग के साम्राज्य को प्राप्त करें। किन्तु मात:, इस समय असुरों को जीतना असंभव है। फिर भी मैं अपने अंश से तुम्हारा पुत्र बनकर तुम्हारे बेटे देवों का कार्य सिद्ध करूँगा।' तुम मेरी भावना करती हुई अपने पतिदेव कश्यप की सेवा आराधना करो।'

अदिति ने भगवान् के आदेश का अक्षरश: पालन किया। अन्तत: उसके गर्भ से भगवान् के प्रादुर्भाव का समय आ गया। भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन, दिन के १२बजे, हरि ने अदिति की कुक्षि से जन्म ग्रहण किया। वे वामन थे। अत: उनका नाम वामन रख दिया गया। यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हो जाने के बाद वटु वामन बलि की यज्ञशाला में पधारे। बलि नर्मदा नदी के उत्तर तट पर, भृगुकच्छ नामक स्थान में, यज्ञ कर रहा था। बलि ने अपने यज्ञस्थल में वामन का हार्दिक स्वागत कर उनसे मनचाही वस्तु माँगने की प्रार्थना की। वामन ने बलि से अपने पग से नापकर तीन पग पृथिवी की याचना की। गुरु शुक्राचार्य ने उसे दान देने से रोका। उन्होंने उसे सावधान करते हुए कहा—'यह साक्षात् विष्णु हैं। तुम्हारा सर्वस्व हरण कर लेंगे।' किन्तु बलि ने गुरु शुक्र की बात न मानी। उसने तीन पग पृथिवी का दान कर दिया। शुक्राचार्य ने उसे लक्ष्मी-भ्रष्ट

---

१. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय- २३९

होने का शाप दे डाला। सङ्कल्प हो जाते ही वामन का रूप अति विशाल बन गया। उन्होंने दो पग में सारी त्रिलोकी नाप ली। तीसरे पग को देने के लिये अब बलि के पास कुछ न रहा। भगवान् की इच्छा को जानकर वरुण ने वरुणपाश से बलि को बाँध लिया। भगवान् ने कहा—'बलि, तुमने तीन पग पृथ्वी का दान किया था। दो पग में ही मैंने तेरा सबकुछ नाप लिया। अब तीसरे पग के लिये प्रबन्ध करो।' भगवान् की बात सुनकर बलि ने कहा—'प्रभो, यदि आप मेरे वचन को असत्य मान रहे हैं तो मैं उसे सत्य बना रहा हूँ। आप तीसरे पग को मेरे मस्तक पर रखकर इस शरीर को ही तृतीय पग की भूमि के रूप में ग्रहण कर लें। मृत्यु के वशवर्ती इस जीवन के लिये मैं असत्य का आचरण नहीं करना चाहता।'

अभी बलि और वामन की यह बात चल ही रही थी कि भक्त शिरोमणि प्रह्लाद वहाँ पधारे। उन्होंने भगवान् वामन की अंत्युत्तम स्तुति की और दैत्यकुल के ऊपर उनके महान् अनुग्रह के लिये महती कृतज्ञता व्यक्त की। बलि की पत्नी विन्ध्यावली ने भी वामन की कृपा के लिये प्रशंसा की। भगवान् ने स्नेहभरी वाणी में बलि से कहा—'महाराज बलि, आपका कल्याण हो। आप सावर्णि मन्वन्तर के अनन्तर स्वर्ग में इन्द्र के पद को प्राप्त करेंगे। सम्प्रति आप अपने परिवार और परिजनों के साथ, देवताओं के लिये भी स्पृहणीय सुतल लोक में चले जाँय। मेरा सुदर्शन चक्र वहाँ आपकी सहायता करेगा। मुझे भी आप अपने पास सर्वदा उपस्थित पाओगे। मैं पुरजन, परिजन और परिवार के सहित आपकी सर्वदा रक्षा करूँगा।' भगवान् ने आगे प्रह्लाद से भी कहा—'वत्स प्रह्लाद, आपका मंगल हो। आप भी अपने पौत्र बलि को सुख पहुँचाने के लिये सुतल लोक में चले जाँय। वहाँ आप, हाथ में गदा लेकर बलि की रक्षा करते हुए नित्य मेरा दर्शन कीजियेगा।' भगवान् की आज्ञा को सहर्ष शिर से स्वीकार करते हुए बलि और प्रह्लाद सुतल लोक में चले गये।

तदनन्तर भगवान् वामन की आज्ञा से शुक्राचार्य ने यज्ञ को पूरा करवाया। स्वर्ग का शासन वामन ने इन्द्र को सौंप दिया। इन्द्र भगवान् वामन को सादर आगे करके स्वर्ग ले गये।[1]

नारदीयमहापुराण

इन्द्र आदि देवताओं के जनक थे मुनि कश्यप। दक्षपुत्री दिति और अदिति उनकी पत्नियाँ थीं। अदिति देवताओं की माता थीं और दिति दैत्यों की। इनमें

---

१. श्रीमद्भागवत-महापुराण, स्कन्ध अष्टम, अध्याय- १७-२३

सदा परस्पर स्पर्धा की भावना कार्य किया करती थी। दिति का पुत्र आदि दैत्य हिरण्यकशिपु था। इसका पुत्र दैत्यशिरोमणि प्रह्लाद था। प्रह्लाद का पुत्र ब्राह्मणों का महान् भक्त विरोचन हुआ। विरोचन का पुत्र अत्यन्त तेजस्वी एवं महान् प्रतापी बलि था। बलि के सौ पुत्र थे। इनमें बाण सबसे बड़ा था। यह शौर्य और पराक्रम में अपने पिता बलि के समकक्ष था।

बलि ने सकल अवनितल पर आधिपत्य स्थापित कर स्वर्ग पर आक्रमण किया। भयंकर संग्राम में देवमण्डली पराजित हो स्वर्ग से च्युत हो गई। वहाँ बलि का आधिपत्य स्थापित हो गया। वह नारायण का महान् भक्त था। भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिये उसने अनेक अश्वमेध यज्ञों का आयोजन किया।[१] उसने देवों के सारे अधिकारों का स्वयं भोग करना प्रारम्भ किया।

देवमाता अदिति देवों की इस दशा से दुःखी थी। उसने भी स्वर्ग का परित्याग कर हिमालय पर तपस्या प्रारम्भ की। देवों की विजय और दैत्यों की पराजय ही उसके तप का लक्ष्य था। दैत्यों ने देवमाता को तप से विचलित करने का प्रयास किया। किन्तु उन्हें सफलता न मिली। उल्टे उन्हीं का अपकार हुआ।

अदिति के सुदीर्घ तप से प्रसन्न हो नारायण उसके समक्ष प्रकट हुए और वर माँगने को कहा।[२] देव-माता ने सविनय भगवान् से कहा—'प्रभो, यदि आप की कृपा मेरे ऊपर है तो मेरे पुत्रों को अकण्टक श्री प्रदान करें। यद्यपि दैत्यों ने मेरे पुत्रों को पीडित किया है। मुझे भी दुःख दिया है, फिर भी मैं उन्हें मारना नहीं चाहती, क्योंकि वे भी मेरे ही पुत्र हैं। उन्हें बिना मारे मेरे पुत्रों को लक्ष्मी प्रदान करें—यह मेरी प्रार्थना है।'[३] अदिति को बात को सुनकर भगवान् प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कहा—'देवि, सपत्नी (सौत) के पुत्रों पर जिस वात्सल्य का प्रदर्शन आपने किया है, वह संसार में दुर्लभ है। मैं आप पर प्रसन्न हूँ। आपका कल्याण होगा। मैं आपका पुत्र बनकर आपके मनोरथ को पूर्ण करूँगा।'[४] ऐसा कहकर

१. बुभुजेऽव्याहतैश्वर्यप्रवृद्धश्रीर्महाबलः ।
इयाज चाश्वमेधैः स विष्णुप्रीणनतत्परः ॥
नारदमहापुराण, पू०भा०, प्र०पाद, १०/३१

२. वरं वरय दास्यामि यत्ते मनसि रोचते ।
मा भैर्भद्रे महाभागे ध्रुवं श्रेयो भविष्यति ॥ *वही, ११/१७*

३. वृथापुत्रास्मि देवेश दैतेयैः परिपीडिता ।
तान्न हिंसितुमिच्छामि यतस्तेऽपि सुता मम ॥
तानहत्वा श्रियं देहि मत्सुतेभ्यः सुरेश्वर ॥ *वही, ११/४३-४४*

४. प्रीतोऽस्मि देवि भद्रं ते भविष्यामि सुतो ह्यहम् ।
यतः सपत्निपुत्रेषु वात्सल्यं देवि दुर्लभम् ॥
सम्प्राप्य पुत्रभावं ते साधयिष्ये मनोरथम् ॥ *वही, ११/४६,६५*

भगवान् ने अपने कण्ठ की माला उतार कर माता अदिति को पहना दी और उसे निर्भय रहने का आश्वासन देकर अन्तर्हित हो गये।

अभीप्सित वर प्राप्त कर अदिति प्रसन्न हो उठी। उसने कमलाकान्त को प्रणाम किया और प्रमुदित मन से अपने घर चली आई। समय आने पर उसने भगवान् श्रीहरि को वामन के रूप में जन्म दिया। भगवान् को अपने पुत्र के रूप में पाकर कश्यप के हर्ष की सीमा न रही । उन्होंने उनकी दिव्यातिदिव्य स्तुति की।

उसी समय बलि ने महान् यज्ञ का आयोजन किया था। उस यज्ञ के आचार्य थे भृगुवंशी शुक्र। वहाँ हविष्य-भोग के लिये लक्ष्मी के साथ नारायण को भी समाहूत किया गया था। ब्रह्मचारी वामन माता-पिता की आज्ञा लेकर बलि के यज्ञ में पधारे। उनके मुख-मण्डल पर स्मित की अपूर्व छटा छिटक रही थी। सबने उठकर उनका अभिवन्दन और अभिनन्दन किया। अन्य ऋषियों के साथ शुक्राचार्य को भी यह विदित हो गया कि यह वामन वटु साक्षात् नारायण हैं। अतः उन्होंने बलि को एकान्त में बुलाकर कहा—'बले, यह जो ब्राह्मण-वटु तुम्हारे यज्ञ में सम्प्रति पधार रहे हैं, ये साक्षात् नारायण हैं। इन्होंने प्रयोजनवश वामन का रूप धारण कर रक्खा है। यदि तुम मेरी बात मानों तो इन्हें कुछ भी मत देना। विष्णु ही वामन के रूप में अदिति के पुत्र बने हैं। यह तुम्हारे ऐश्वर्य का अपहरण करने के लिये ही यहाँ आ रहे हैं।'[१]

बलि ने आचार्य के वचन को अस्वीकृत कर दिया। उसका कहना था कि जिस नारायण की संतुष्टि के लिये मैंने इस महान् याग का आयोजन किया है, यदि साक्षात् वही यहाँ आ रहे हैं तो इससे अधिक सौभाग्य की बात मेरे लिये और क्या हो सकती है ? वस्तुतः आज मैं कृतार्थ हो गया।[२] बलि अभी ऐसा कह ही रहे थे कि वामन यज्ञशाला में प्रवेश किये। बलि ने सोत्साह स्वागत किया वामन का। आसन दिया। सादर पैर पखारा। चरणोदक को पूरे परिवार ने शिर पर धारण किया। बलि के सारे शरीर में रोमाञ्च और आँखों में अश्रुधारा उमड़ पड़ी। हाथ जोड़कर विनम्र बन बलि ने कहा—'प्रभो, आपके आ जाने से हमारा यज्ञ सफल हो गया। आज हमारा जन्म भी सार्थक हो गया। आपको बार-बार प्रणाम है। मेरा मन आपकी आज्ञा को पूर्ण करने के लिये अत्युत्साहित है। अतः कृपापूर्वक मुझे आदेश दें। बलि के विनययुक्त वचन को सुनकर हँसते हुए वामन

१. भो भो दैत्यपते सौम्य ह्यपहर्ता तव श्रियम् ।
विष्णुर्वामनरूपेण ह्यदितेः पुत्रतां गतः ॥
तवाध्वरं स आयाति त्वया तस्यासुरेश्वर ।
न किञ्चिदपि दातव्यं मन्मतं शृणु पण्डित ॥ *नारदीयमहापुराण, पू०भा०, प्र०पाद ११/९२-९३*

२. अहं तु हरितुष्ट्यर्थं करोम्यध्वरमुत्तमम् ।
स्वयमायाति चेद्विष्णुः कृतार्थोऽस्मि न संशयः ॥ *वही, ११/१०४*

ने कहा—'तपस्या में बैठने के लिये मुझे तीन पग पृथिवी दीजिये।'[१] इसी सन्दर्भ में वामन ने भूमि-दान की भूरि-भूरि प्रशंसा की। बलि ने वामन को भूमि दान में देने के लिये कमण्डलु उठाया। शुक्राचार्य ने जलधारा रोकने के लिये कमण्डलु की नली में प्रवेश किया। सर्वव्यापी भगवान् को यह बात ज्ञात हो गई। उन्होंने अपने हाथ में स्थित कुश के अग्र भाग से नली में खोद दिया। फलतः शुक्राचार्य की एक आँख फूट गई। वे एकाक्ष बन गये।'[२]

बलि ने महाविष्णु को तीन-पग पृथिवी का संकल्प कर दिया। संकल्प के पूरा होते ही वामन का शरीर अति विशाल बन गया। उन्होनें दो पग में ही सारी पृथिवी नाप ली।[३] जब उन्होंने अपना पैर ऊपर की ओर उठाया तो ब्रह्मकटाह (अर्थात् ब्रह्माण्ड) का ऊपरी भाग पैर के अगुष्ठ के नखाग्र से टकराकर दो भागों में विभक्त हो गया, फट गया। फलतः ब्रह्माण्ड के बाहर स्थित जल अनेक धाराओं में प्रवाहित हो चला। वे धारायें भगवान् के पैर को धोती हुई आगे बढ़ीं। उन्हेंने ब्रह्मादि देवों को भी पावन बना दिया।[४] यही जल सप्तर्षियों के द्वारा सेवित मेरु के मस्तक पर गिरा।[५] इस अद्भुत कर्म को देखकर देवों, ऋषियों और मुनियों ने प्रेमविवश हो भगवान् की दिव्य स्तुति की।

भगवान् महाविराट् (वामन) के पाद-प्रक्षालन से पावन बना यही जल गङ्गा के नाम से विख्यात हुआ संसार में। इसके स्मरण मात्र से व्यक्ति सारे पातकों से मुक्त हो निष्पाप बन जाता है।[६]

वामन ने बलि के सकल साम्राज्य को दो पादविक्षेपों (पगों) से ही नाप लिया। तृतीय पग के लिये कुछ भी न बचा। फलतः एक पग के लिये उन्होंने बलि को बाँध लिया। बलि वामन के प्रपन्न (शरणागत) हो गया। यह देखकर

---

१. एवमुक्तो दीक्षितेन प्रहसन् वामनोऽब्रवीत् ।
देहि मे तपसि स्थातुं भूमिं त्रिपदसंमिताम् ॥ *नारदीयमहापुराण, पू० भा०, प्र० पाद ११/११४*
२. विष्णुः सर्वगतो ज्ञात्वा जलधारावरोधिनम् । काव्यं हस्तस्थदर्भाग्रं तच्छरे संन्यवेशयत् ॥
दर्भाग्रेऽभून्महाशस्त्रं कोटिसूर्यसमप्रभम् । अमोघं ब्राह्ममत्युग्रं काव्याक्षिग्राससलोलुपम् ॥
वही, ११/७४-७६
३. यहाँ पृथिवी का अर्थ पृथिवी से लेकर ऊपर के लोकों तक के भाग से है ।
४. पादाङ्गुष्ठाग्रनिर्भिन्नं ब्रह्माण्डं विभिदे द्विधा ।
तद्द्वारा बाह्यसलिलं बहुधारं समागतम् ।
धौतविष्णुपदं तोयं निर्मलं लोकपावनम् ।
तज्जलं पावनं श्रेष्ठं ब्रह्मादीन् पावयत्सुरान् ॥ *वही, ११/७९-८१*
५. सप्तर्षिसेवितं चैव न्यपतन्मेरुमूर्धनि ॥ *वही, ११/८२*
६. एवं प्रभावा सा देवी गङ्गा विष्णुपदोद्भवा ।
यस्याः स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥ *वही, ११/९६*

उन्होंने उसे रसातल में भेज दिया और भक्तिवश ही वे वहाँ उसके द्वारपाल बन गये।[१]

धर्मराज की प्रेरणा से भगीरथ ने कपिल के क्रोध से दग्ध अतः नरकवासी अपने पूर्वजों के उद्धार हेतु हिमालय के उत्तुङ्ग शृङ्ग पर, नारायण को लक्ष्य कर, सुदीर्घकाल तक तप किया। वे गङ्गा को भूतल पर लाना चाहते थे। नारायण उनके तप से सुप्रसन्न हुए। उन्होंने मनोरथ की सिद्धि के लिये शङ्कर को तप से सन्तुष्ट करने की बात बतलाई।[२]

महाराज भगीरथ ने शङ्कर को अपने स्तोत्र और तप से प्रसन्न किया। शङ्कर ने उन्हें गङ्गा-प्रदान करने का वचन दिया।[३] और अपने विशाल जटा-संसार से गङ्गा को मुक्त भी कर दिया। सारे संसार को पवित्र करती हुई गङ्गा भगीरथ के पीछे-पीछे चलीं। वे वहाँ पहुँचीं जहाँ सागर के तट पर सगर के पुत्र कपिल की क्रोधाग्नि में दग्ध हुए थे। गङ्गा के जगत्पावन जल से भस्म सगरपुत्रों के भस्म के स्पर्श होते ही उनका उद्धार हो गया। वे नरक से निकल कर विष्णुपुरी के लिये प्रस्थान कर गये।

अग्निमहापुराण

कथा अति प्राचीन है। बलि आदि असुरों ने युद्ध में देवों को जीतकर स्वर्ग पर अधिकार जमा लिया और उन्हें वहाँ से निष्कासित कर दिया। हार थककर देव हरि की शरण में गये। भगवान् ने उन्हें निर्भय हो जाने का आश्वासन दिया। पुत्रों के दुःख से दुःखी होकर कश्यप और अदिति ने भी भगवान् की स्तुति की।

फलस्वरूप भगवान् प्रसन्न हुए। उन्होंने अदिति के गर्भ से वामन के रूप में जन्म ग्रहण किया। उस समय बलि यज्ञ कर रहा था। वामन वेद-पाठ करते हुए बलि के राजद्वार पर पहुँचे। शुक्राचार्य महादानी बलि को दान देने से रोक रहे थे। फिर भी उसने कहा—'ब्राह्मण वटु, जो चाहे मुझसे माँग लो। मैं तुम्हें सबकुछ देने के लिए तैयार हूँ।' बलि की बात सुनकर ब्रह्मचारी वामन ने कहा—'गुरु को देने के लिये मुझे तीन पग पृथिवी चाहिये।'[४] बलि ने कहा दूँगा। हाथ पर संकल्प

---

१. ततः प्रपन्नं तु बलिं ज्ञात्वा चास्मै रसातलम् ।
ददौ तद्द्वारपालश्च भक्तवश्यो बभूव ह ॥
नारदीयमहापुराण, पू०भा०,प्र०पाद, ११/८८

२. भगीरथ महाभाग तवाभीष्टं भविष्यति ।
आगमिष्यन्ति मल्लोकं तव पूर्वपितामहाः ।
मम मूर्त्यन्तरं शम्भुं राजन् स्तोत्रैः स्वशक्तितः ।
स्तुहि ते सकलं कामं स वै सद्यः करिष्यति ॥ *वही, १६/७०-७१*

३. दत्ता गङ्गा मया तुभ्यं पितृणां ते गतिः परा ।
तुभ्यं मोक्षः परश्चेति तमुक्त्वाऽन्तर्दधे शिवः ॥ *वही, १६/१०५*

४. तत्तेऽहं सम्प्रदास्यामि वामनो बलिमब्रवीत् ।
पदत्रयं हि गुर्वर्थं देहि दास्ये तमब्रवीत् ॥ *अग्निमहापुराण, ४-९*

का जल पड़ते ही वामन अवामन बन गये, विशालकाय बन गये। उन्होंने तीन पग से भूलोक, भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) और स्वर्गलोक को नाप लिया।[१]

इसके बाद श्रीहरि ने बलि को सुतल का और इन्द्र को स्वर्ग का साम्राज्य प्रदान किया। देवों के साथ देवपति इन्द्र ने भगवान् की स्तुति की और सुखी हो गये।

स्कन्दमहापुराण

विरोचन-पुत्र बलि ने इन्द्र को वश में करने की कामना की। आचार्य शुक्र ने कामना की पूर्ति के लिये बलि से विश्वजित् नामक यज्ञ करवाया। यज्ञ में जब सविधि आहुति दी जा रही थी तभी अग्नि से बड़ा ही अद्भुत रथ प्रकट हुआ। उसमें चार अश्व सन्नद्ध थे। ध्वजावलियाँ उसकी सुषमा फैला रही थीं। अस्त्र-शस्त्रों से वह समलङ्कृत था। रथ का पूजन कर बलि गुरु को प्रणाम कर रथारूढ हुआ। विशाल दैत्य-वाहिनी के साथ जाकर उसने अमरावती को आक्रान्त कर दिया। देव-मण्डली पलायन कर कश्यप के आश्रम में शरण ली। देवमाता अदिति पुत्रों की दुर्दशा से दुःखी थीं। उन्होंने अपने पतिदेव कश्यप से पुत्रों के दुःख-निवारण का उपाय पूछा। कश्यप ने उन्हें एकादशी व्रत करने का आदेश दिया। पतिव्रता-शिरोमणि अदिति ने पुत्रों की कल्याण-कामना से, निष्ठा के साथ, एकादशी व्रत का पालन किया। एकाग्रता के साथ व्रत का पालन करते हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया। श्रीहरि अदिति के व्रत से सन्तुष्ट हो गये। उस समय श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशी तिथि थी। उसी समय भगवान् का 'वामन' रूप में प्रादुर्भाव हुआ। उनका रूप ब्राह्मण ब्रह्मचारी का था। उनका श्याम स्वरूप और सुन्दर अंगकान्ति आकर्षण का केन्द्र थी। भगवान् वामन ने पिता कश्यप के समक्ष अदिति से कहा—'देवि, मैं तुम्हारी उत्तम आराधना से सन्तुष्ट होकर इसी शरीर से देव-कार्य की सिद्धि के लिये प्रकट हुआ हूँ।' देवों के साथ कश्यप-अदिति ने उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया।

उसी समय स्वर्ग के स्वामी बलि अपने आचार्य शुक्र की आज्ञा से कर्मभूमि भारतवर्ष में, नर्मदा के तट पर, भृगुकच्छ में सौवा अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे। उस यज्ञ के निर्विघ्न पूर्ण हो जाने पर बलि का चिरकाल तक स्वर्ग पर आधिपत्य स्थापित हो जाता।

यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत होकर अति तेजस्वी वामन जी यज्ञनिरत

---

१. तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः ।
भूर्लोकं स भुवर्लोकं स्वर्लोकञ्च पदत्रयम् ॥ *अग्निमहापुराण, ४/१०*

बलि की यज्ञशाला में गये। उन्होंने वहाँ बलि के दान की भूरि-भूरि प्रशंसा की और तीन पग पृथिवी माँगा। बलि ने स्वीकृति दे दी। शुक्राचार्य ने बलि को दान देने से रोका। कहा यह साक्षात् नारायण हैं । इन्द्र के हित की साधना के लिये यहाँ आये हैं। यह तुम्हारा सर्वस्व हर लेंगे। बलि ने शुक्राचार्य की बात न मानी। उन्होंने कहा—'यदि यह साक्षात् विष्णु हैं, तो दान का इनसे उत्तम पात्र और कौन होगा ?'

शुक्रचार्य ने बलि के निश्चय को सुना। इस पर वे कुपित हो उठे और शाप दे दिया—'अरे मूर्ख, तू मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर दान देना चाहता है। अत: राज्यलक्ष्मी से वञ्चित हो जा।' शाप देकर शुक्राचार्य वहाँ से उठे और अपने आश्रम पर चले गये। तदनन्तर बलि वामन जी की पूजा कर दान देने के लिये उद्यत हुए। उस समय बलि की पत्नी महारानी विन्ध्यावलि वहाँ आकर पतिदेव के अर्धाङ्गरूप में सुशोभित हुई। पूजन के बाद बलि ने वामन को तीन पग पृथ्वी का संकल्प कर दिया। दान लेते ही वामन अद्भुत रूप से बढ़ने लगे। उन्होंने एक ही पग से सम्पूर्ण भू-मण्डल को नाप लिया। दूसरे पग से ऊपर के सभी लोकों को व्याप्त कर लिया। उनका वह द्वितीय पग सत्यलोक में जाकर स्थित हुआ। ब्रह्मा ने भगवान् के उस चरण को धोकर अपने कमण्डलु में रख लिया। उसी से त्रिलोक-पावनी गङ्गा का प्राकट्य हुआ।

इस प्रकार सम्पूर्ण चराचर जगत् को भगवान् ने दो ही पगों से नाप लिया। इतना कर लेने के बाद वे पुन: वामनरूप धारण कर आसन पर विराजमान हुए और हँस कर विन्ध्यावलि से पूछा—'देवि, तुम्हारे पति के द्वारा आज मुझे तीन पग पृथिवी मिलनी चाहिये। उसकी पूर्ति इस समय कहाँ से होगी ?' विन्ध्यावलि बड़ी साध्वी थी। उसने विनम्रता से कहा—'प्रभो, भला हम जैसे लोग आपको क्या दे सकते हैं ? फिर भी संकल्प के अनुसार मेरे पूज्य पतिदेव तीनों पगों के लिये स्थान इस प्रकार दे रहे हैं—स्वामिन्, आप अपना पहला पग मेरे मस्तक पर रखिये, जगत्पते, दूसरा पग मेरे इस बालक के मस्तक पर स्थापित कीजिये तथा जगन्नाथ, अपना तृतीय पग मेरे पति के मस्तक पर रख दीजिये। केशव, इस प्रकार ये तीन पग मैं आप को दूँगी।'

विन्ध्यावलि की विनयभरी वाणी को सुनकर वामन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बलि को बन्धन से मुक्त कर उन्हें छाती से लगा लिया और बोले, 'बलि, वरदान माँगों मैं तुम्हारी समग्र कामनाओं को पूर्ण कर दूँगा।' बलि ने कहा—'मुझे आपके चरणकमलों की अवरिल अविचल भक्ति चाहिये। मैं आपके ही पास सर्वदा रहना चाहता हूँ।' बलि की यह बात सुनकर वामन प्रसन्न हो उठे। फिर उन्होंने बलि से

कहा—'राजन्, मैं सदा तुम्हारे समीप रहूँगा। मैं सुतल लोक में तुम्हारा द्वारपाल रहूँगा।' भगवान् की यह बात सुनकर बलि, परिवार-परिजनों के साथ सुतल लोक में चले गये। भगवान् विष्णु उनके द्वारपाल बनकर याचकों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि मुँह माँगी वस्तुएँ प्रदान करते थे। याचक द्वारपाल से ही सन्तुष्ट होकर वापस हो जाते थे।[१]

वामनमहापुराण

प्रह्लाद का पुत्र विरोचन था। विरोचन का बेटा बलि था। इसके शासन-काल में धर्म की चतुर्दिक् अभूतपूर्व वृद्धि हुई। उस समय अधर्म का कहीं दर्शन नहीं होता था। बलि ने देवताओं को पराजित कर त्रिलोकी पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। लक्ष्मी बलि पर सुप्रसन्न हो स्वयं उसके शरीर में प्रवेश कर गईं।[२] बलि स्वयं महान् ब्रह्मवादी था।

देव बलि से पराजित एवम् अपमानित हुए। वे माता अदिति एवं पिता कश्यप की प्रेरणा से ब्रह्मलोक में गये। उनके साथ कश्यप भी थे। ब्रह्मा ने देवों के साथ कश्यप को श्वेत द्वीप में नारायण के पास प्रेषित किया और कहा कि वहाँ आप लोग नारायण को प्रसन्न करें। प्रसन्न नारायण वर देने के लिये जब प्रस्तुत हों तो अदिति और कश्यप उनसे वर माँगे—'आप ही हमारे पुत्र बनें।' देवता भी इसी का समर्थन करें।[३] इसपर वे भगवान् आपलोगों की प्रार्थना को स्वीकार कर तथास्तु कहेंगे।

देवों ने ब्रह्मा के आदेश को शिरोधार्य किया। वे श्वेत द्वीप पहुँचे। वहाँ कश्यप ने नारायण की दिव्य स्तुति की। नारायण प्रसन्न हुए और कहे—'वर माँग लो।' कश्यप-अदिति ने एकमति से कहा—'आप हमारे पुत्र, इन्द्र के लघु बन्धु बनें।' देवों ने भी भगवान् से शरण की याचना की। भगवान् ने उनके कार्य को सिद्ध करने का वचन देकर उन्हें वहाँ से विदा किया। सभी प्रमुदित मन से प्रस्थित हो कुरुक्षेत्र के वन में वहाँ गये जहाँ कश्यप का विशाल आश्रम था। वहाँ पहुँचकर देवों ने अदिति को प्रसन्न कर तपस्या में संलग्न किया। देवमाता ने दस सहस्र वर्ष तक वहाँ घोर तप किया। भगवान् ने अदिति को दर्शन देकर उनका पुत्र बनने तथा देव कार्यों को सम्पन्न करने का वचन दिया।[४]

---

१. स्कन्दमहापुराण, माहेश्वरखण्ड-केदारखण्ड, अध्याय १८-१९

२. एवमुक्त्वा तु सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यनृपं बलिम् ।
प्रविष्टा वरदा सेव्या सर्वदेवमनोरमा ॥ *वामनमहापुराण, २३/१८*

३. भवानेव नः पुत्रो भवत्विति प्रसीद नः ।
देवा ब्रुवन्तु ते सर्वे कश्यपोऽदितिरेव च ॥ *वही, २५/१२-१३*

४. तव गर्भसमुद्भूतस्ततस्ते ये सुरारयः ।
तानहं निहनिष्यामि निर्वृता भव नन्दिनि ॥ *वही, २९/११*

समय समुपस्थित होने पर अदिति ने गर्भ धारण किया। धरणी डगमगा उठी। दैत्य-मण्डली तेजोविहीन बन गई। यह देख बलि को चिन्ता हुई। उसने अपने पितामह प्रह्लाद से इसका कारण पूछा। प्रह्लाद ने प्रकृष्ट ध्यान किया। ध्यान में उन्हें सारा तथ्य अवगत हो गया। फिर उन्होंने बलि से कहा—'बलि, संसार के कारण परमात्मा अपने षोडशांश से अवतार लेने के लिये देवमाता अदिति के गर्भ में प्रविष्ट हुए हैं। उन्होंने ही तुम लोगो के बल और तेज का हरण किया है।' बलि ने प्रह्लाद की बात सुनी और कहा—'पितामह, वासुदेव की समता वाले बहुत से दैत्य-दानव हमारी सेना में विराजमान हैं । वासुदेव हमारा क्या बिगाड़ लेंगे ? अत: हमें उनकी चिन्ता नहीं है। वासुदेव कृष्ण प्रह्लाद के आराध्य थे, गुरु थे। इसलिये उनकी निन्दा सुनते ही वे क्रुद्ध होकर शाप देते हुए बोले—'बलि, तुमने वासुदेव पर आक्षेप करते हुए महान् अभद्र वचन कहा है। तुम्हारा यह कार्य मेरा शिर काटने से भी गुरुतर है। अत: शीघ्र ही तुम राज्य से भ्रष्ट होकर अधोगामी बनो।'[१]

बलि ने गुरुश्रेष्ठ पितामह का शाप सुना। उसे महान् पश्चात्ताप हुआ। इसके लिये उसने प्रह्लाद से क्षमायाचना की। प्रह्लाद ने बलि को उपदेश दिया—'तुम आज से ही भगवान् हरि के भक्त बनो। वही तुम्हारी रक्षा करेंगे।'[२] शाप को सुनकर तुमने देवाधिदेव श्रीहरि का स्मरण किया है। यह तुम्हारे कल्याण का सूचक है।

अदिति का गर्भ यथासमय बढ़ता गया। दशम मास के उपस्थित होने पर वामनाकार गोविन्द का प्रादुर्भाव हुआ। भगवान् वामन के अवतीर्ण होते ही जगती-मण्डल का सारा वातावरण सुखावह हो उठा। ब्रह्मा ने सारी जातकर्मादि क्रियाओं को सम्पन्न कराकर वामन भगवान् की दिव्य स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न होकर वामन ने कहा—'मैंने आप सब देवों और अदिति से प्रतिज्ञा पूर्वक कहा था कि—'मैं त्रिलोकी का निष्कण्टक साम्राज्य इन्द्र को प्रदान करूँगा।' उसी प्रतिज्ञा को सत्य सिद्ध करने के लिये मेरा यह आविर्भाव हुआ है।'

वामन के वचन से परम प्रसन्न ब्रह्मादिक देवों ने उनका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न कराकर उन्हें ब्रह्मचारी के अजिन, कमण्डलु, आसन आदि समस्त उपकरण प्रदान किये। उस समय वामन के शिर पर जटाएँ बढ़ी हुई थीं। उनके

---

१. यथा मे शिरसश्छेदादिदं गुरुतरं वचः ।
त्वयोक्तमच्युताक्षेपि राज्यभ्रष्टस्तथा पत ॥ *वामनमहापुराण, ३०/४७*

२. अद्य प्रभृति देवेशे भगवत्यच्युते हरौ ।
भवेस्त्वं भक्तिमानीशे स ते त्राता भविष्यति ॥ *वही, ३०/१०*

हाथों में दण्ड, छत्र और कमण्डलु सुशोभित थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वेद ही विग्रह धारण कर आ गया हो।'

यज्ञोपवीत संस्कार के पूर्ण होते ही वामन बलि के यज्ञ में पधारे। उनके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही शुक्राचार्य ने बलि को वामन की सारी गति-विधि बतला दी थी और उन्हें स्वल्प भी दान न देने की बात कही थी। किन्तु माँगने पर भगवान् को दान देना बलि अपना सर्वोत्कृष्ट सौभाग्य समझता था। अतः उसने शुक्राचार्य से प्रफुल्लित होकर कहा—'गुरुदेव, जब मैं साधारण जन को भी नहीं, नहीं कहता, तो फिर स्वयं जगन्नाथ के माँगने पर कैसे नहीं कहूँगा? मैं प्राणों का परित्याग कर सकता हूँ। किन्तु याचना करने वाले नारायण को नहीं, नहीं कह सकता। यदि वे माँगे तो मैं उन्हें विना विचारे अपना शिर भी दान कर सकता हूँ। अतः गुरुदेव, त्रिजगती के स्वामी गोविन्द के माँगने के लिये उपस्थित होने पर आप कृपया मेरे दान में विघ्न न करेंगे।'[१]

अभी आचार्य शुक्र और बलि की यह बात चल ही रही थी। उसी समय गुरु वृहस्पति और देवों के साथ वामन बलि के यज्ञ में पदार्पण किये। उनके तेज से सभी कम्पित हो उठे। बलि ने वामन को अर्घ्य-पाद्य आदि समर्पित कर उनका सम्मान किया और कहा —'ब्राह्मण-देवता, आप जो चाहें मुझसे माँग लें। मैं आपको सम्पूर्ण पृथिवी और त्रिलोकी भी दे सकता हूँ।'[२]

बलि की प्रीतिभरी वाणी सुनकर हँसते हुए वामन ने कहा—'राजन्, अग्नि-शाला के लिये मुझे तीन पग पृथ्वी दीजिये। सुवर्ण, ग्राम और रत्न आदि वस्तुएँ अन्य याचकों को दीजिये। मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है। बलि ने वामन की बात ध्यान से सुनी और फिर कहा—'ब्रह्मचारी जी, भला तीन पग से आप का कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा? यदि माँगना ही है, तो सौ अथवा एकसहस्र पग माँग लीजिये।' इसपर वामन ने अपनी दृढता दिखलाते हुए कहा कि—'दैत्याधिपति, दूसरे याचकों को उनकी इच्छा के अनुसार सम्पत्ति दान कीजिये। मैं तो केवल तीन पग पृथिवी से ही सन्तुष्ट हूँ, कृतकृत्य हूँ।'

बलि ने वामन की बात सुनी। उसने संकल्प का जल जैसे ही वामन के हाथ में छोड़ा, वैसे ही वे विराट् बन गये। उन्होंने तत्क्षण अपने सर्वदेवमय

---

१. प्राणत्यागं करिष्यामि न नास्तीति न मे क्वचित्।
निजमूर्धानमप्यस्मै दास्याम्येवाविचारितम्॥
एतज्ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ दानविघ्नपरेण न।
त्वया भाव्यं जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते॥ *वामनमहापुराण, ३१/२२, २४, ३५*

२. सर्वं च सकलां पृथ्वीं भवतो वा यदीप्सितम्।
तद्ददामि शृणु श्रेष्ठ ममार्थाः सन्ति ते प्रियाः॥ *वही, ३१/४७*

स्वरूप का प्रदर्शन किया। सारा संसार उनके शरीर में समाहित हो गया।[१] कुछ दैत्य-दानवों ने उनका प्रतिकार करना चाहा। वामन ने उन सबका मन्थन कर, उन्हें मारकर, त्रिलोकी को जीत लिया, तीन पग से नाप कर अपने वश में कर लिया और उसे इन्द्र को प्रदान कर दिया।[२] वामन ने बलि को पृथिवी के नीचे सुतल लोक में सादर प्रेषित कर दिया और कहा—'बलि, आगे सावर्णिक मन्वन्तर में आप इन्द्र बनेंगे।' भगवान् वामन ने बलि को और बहुत से वरदान दिये। इस प्रकार वामन शक्र को त्रिविष्टप और बलि को सुतल लोक समर्पित कर अपने उसी रूप से अन्तर्धान हो गये।[३]

कूर्ममहापुराण

कूर्मपुराण में महान् दैत्यों की एक परम्परा प्रदत्त है। त्रिलोकी के विशाल साम्राज्य पर जिन दैत्यों ने शासन किया उनके क्रमशः नाम इस प्रकार हैं—१. हिरण्यकशिपु, २. हिरण्याक्ष, ३. प्रह्लाद, अन्धक, विरोचन और बलि। अन्धक हिरण्याक्ष का पुत्र था और विरोचन प्रह्लाद का बेटा।

बलि बड़ा बहादुर और महान् धार्मिक था। उसने युद्ध में इन्द्र को जीत कर त्रिलोकी अपने वश में कर ली थी। देव-गण तिरस्कृत हो इतस्ततः विचरने लगे। इससे देव-माता अदिति को महान् कष्ट हुआ। उन्होंने अशरण-शरण भगवान् विष्णु की शरण ग्रहण की। उनकी तपस्या से सन्तुष्ट हो भगवान् उनके समक्ष प्रकट हुए और कहा—'देवमातः, मैं आपके तप से तुष्ट हूँ, प्रसन्न हूँ। वर माँगिये जो माँगना हो।' देवमाता ने कहा—'देवताओं के कल्याण के लिये आप मेरे पुत्र बनें।'[४] अदिति की बात स्वीकार कर भगवान् वहीं अन्तर्हित हो गये।

समय बीता। देवमाता गर्भवती हुईं। उनके गर्भ में स्वयं नारायण पधारे। इससे दैत्य-पति बलि की नगरी में अपशकुन और उत्पात होने लगे। इस स्थिति को देखकर बलि ने अपने वृद्ध पितामह से पूछा—'पितामह, हमारी नगरी में होने वाले इन उत्पातों का क्या कारण है ?' बलि के प्रश्न को सुनकर प्रह्लाद ने बहुत

१. पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः ।
सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात् ॥ *वामनमहापुराण, ३१/५३*

२. जित्वा लोकत्रयं कृत्स्नं हत्वा चासुरपुङ्गवान् ।
पुरन्दराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः ॥ *वही, ३१/७०*

३. बलयेऽमुं वरं दत्त्वा शक्रायापि त्रिविष्टपम् ।
व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः ॥ *वही, ३१/९१*

४. प्रणम्य शिरसा भूमौ सा वव्रे वरमुत्तमम् ।
त्वामेव पुत्रं देवानां हिताय वरये मम ॥ *कूर्ममहापुराण, १/१७/२५*

देर तक नारायण का स्मरण और ध्यान कर कहा—'बलि, देवमाता अदिति, असुरों के विनाश के लिये, सम्प्रति भगवान् विष्णु को अपने गर्भ में धारण कर रही हैं । अत: तुम उन्हीं भवगान् विष्णु की शरण में जाओ। इसी में तुम्हारा कल्याण निहित है। पितामह के प्रति असीम श्रद्धा के कारण बलि ने उनकी बात को सादर शिरोधार्य कर विष्णु की शरण ग्रहण की और धर्मपूर्वक विश्व का पालन प्रारम्भ किया ।'[१]

समय आया। देवमाता अदिति ने भगवान् विष्णु को जन्म दिया। वे चतुर्भुज थे। उनके नेत्र विशाल थे। उनके वक्ष:स्थल पर श्रीवत्स विभूषित था। उनकी अङ्गकान्ति नील मेघ के समान नीली थी। सभी देवों ने उपस्थित होकर उनकी स्तुति की। फिर उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया गया । लोकशिक्षा के लिये उन्होंने भरद्वाज मुनि से वेदों का अध्ययन किया, सदाचार की शिक्षा ली।[२]

इसके अनन्तर विरोचन-पुत्र बुद्धिमान् बलि ने यज्ञों से यज्ञपति विष्णु का अर्चन प्रारम्भ किया। उस यज्ञ में उसने ब्राह्मणों की पूजा की, उन्हें बहुत-सा धन प्रदान किया। अनेक महर्षि उसकी यज्ञ-स्थली में पधारे। बलि के यज्ञ का समाचार भगवान् विष्णु को भी विदित हुआ। गुरु भरद्वाज की प्रेरणा से वे भी वामन का रूप बनाकर यज्ञ-भूमि में पहुँचे।[३] उस समय वे ब्राह्मण-ब्रह्मचारी के वेष में थे। उनका शरीर कृष्ण मृग-चर्म से आच्छादित था। उनके हाथ में पलास का दण्ड विराजमान था। वे वेद-मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। उनकी अङ्ग-कान्ति चतुर्दिक् छिटक रही थी। इस प्रकार ब्राह्मण भिक्षुक का रूप धारण किये वे हरि बेरोकटोक बलि के बगल में पहुँच गये। उन्होंने उससे अपने पैर से नापकर तीन पग पृथिवी माँगी। 'दूँगा'—ऐसा कहकर, बलि ने बड़ी श्रद्धा से विष्णु के चरणों को धोया। उसका आचमन किया। फिर स्वर्ण के कमण्डलु से जल लिया 'भगवान् विष्णु मेरे इस दान से प्रसन्न हों'—ऐसा चिन्तन करते हुए उसने वामन के कर-पल्लव पर संकल्प का सुशीतल जल छोड़ दिया।[४]

---

१. तत: प्रह्लादवचनाद् बलिर्वैरोचनिर्हरिम् ।
जगाम शरणं विश्वं पालयामास धर्मवित् ॥ *कूर्ममहापुराण, १/१७/४०*

२. कृतोपनयनो वेदानध्यैष्ट भगवान् हरिः ।
सदाचारं भरद्वाजात् त्रिलोकाय प्रदर्शयन् ॥ *वही, १/१७/४४*

३. विज्ञाय विष्णुर्भगवान् भरद्वाजप्रचोदित: ।
आस्थाय वामनं रूपं यज्ञदेशमथागमत् ॥ *वही, १/१७/४८*

४. दास्ये तथेदम्भवते पदत्रयं प्रीणातु देवो हरिरव्ययाकृतिः ।
विचिन्त्य देवस्य कराग्रपल्लवे निपातयामास सुशीतलञ्जलम् ॥ *वही, १/१७/५२*

बलि से दान लेते ही वामन विशाल बन गये। वे प्रपन्न भक्त बलि को वीतराग बनाना चाहते थे। अतः अपने तीन पगों से उन्होंने पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग को नाप लिया। सत्त्वावलम्बी सभी उनकी स्तुति करने लगे। बलि ने भी भक्तिभाव के साथ एकचित्त हो, उनका स्तवन किया। फिर भगवान् वामन बन गये और कहा—'बले, तुम्हारे द्वारा श्रद्धासहित प्रदत्त इस त्रिलोकी पर अब मेरा अधिकार है।' वामन की बात सुनकर बलि ने उनके चरणों पर अपना मस्तक रक्खा और उनके हाथ पर पुनः संकल्प का जल छोड़ते हुए अपने आपको भी दान में प्रदान कर दिया।[१] यह बलि के द्वारा वामन के लिये प्रदत्त भूयसी दक्षिणा थी।

बलि के आत्मसमर्पण को स्वीकार कर वामन ने उससे कहा—'बलि जी, आप पाताल लोक में चले जाइये। वहाँ आप देव-दुर्लभ दिव्यातिदिव्य भोगों का भोगकर कल्प के अन्त में मुझमें ही समाहित हो जाइयेगा, कैवल्य मुक्ति के अधिकारी बनियेगा।'[२]

इस प्रकार वरदान, आश्वासन आदि देकर भगवान् विष्णु ने बलि को पाताल लोक में भेज दिया और स्वर्ग का साम्राज्य इन्द्र को प्रदान कर दिया। इस अद्भुत कर्म का सम्पादन कर सबके देखते ही देखते वामन विलीन हो गये अन्तरिक्ष में, अन्तर्हित हो गये।

बलि अपने पितामह प्रह्लाद के साथ पाताल लोक में चला गया। वहाँ वह उनके साथ नित्य सत्सङ्ग करता था। बलि विष्णु-विषयक प्रश्न करता और प्रह्लाद उसका उत्तर देते थे। इस प्रकार पाताल में निरन्तर विष्णु-भक्ति की भागीरथी प्रवाहित होने लगी। बलि का सारा कार्य भगवत्समर्पित था। इस प्रकार वह कर्म का कर्ता नहीं, कर्म-योग का कर्ता था।[३]

मत्स्यमहापुराण

मत्स्यमहापुराण में वामन-कथा द्विविध धाराओं में वर्णित है । यहाँ दोनों का उल्लेख किया जा रहा है—

(क) मत्स्यमहापुराण के ४८वें अध्याय में यदुवंश का बृहद् वर्णन है।

---

१. तमब्रवीद् भगवानादिकर्ता भूत्वा पुनर्वामनो वासुदेवः ।
ममैव दैत्याधिपतेऽधुनेदं लोकत्रयं भवता भावदत्तम् ॥
प्रणम्य मूर्ध्ना पुनरेव दैत्यो निपातयामास जलं कराग्रे ।
दास्ये तवाऽऽत्मानमनन्तधाम्ने त्रिविक्रमायाऽमितविक्रमाय ॥ *कूर्ममहापुराण,* १/१७/५९-६०

२. समास्यतां भवता तत्रं नित्यं भुक्त्वा भोगान् देवतानामलभ्यान् ।
ध्यायस्व मां सततं भक्तियोगात् प्रवेक्ष्यसे कल्पदाहे पुनर्माम् ॥ *वही,* १/१७/६२

३. शरणमुपययौ स भावयोगात् प्रणयगतिं प्रणिधाय कर्मयोगम् ॥ *वही,* १/१७/६८

इसी वंश में आगे चलकर एक राजा हुआ तितिक्षु। वह पूर्व दिशा का विख्यात राजा था। उसका पुत्र बृहद्रथ और बृहद्रथ का पुत्र सेन हुआ। सेन का बेटा था सुतपा और इसका पुत्र था बलि।

महायोगी बलि अपने वंश के नष्ट हो जाने पर सन्तान की कामना से मानव-योनि में उत्पन्न हुआ। इसे भगवान् विष्णु ने वामनरूप से बन्धनों से बाँध लिया था।[१] राजा बलि ने पाँच क्षेत्रज पुत्रों को जन्म दिया था। ये सभी आगे चलकर पृथिवीपति हुए। इनके नाम थे—अंग, बंग, सुह्म, पुण्ड्र और कलिङ्ग।

ये बलिपुत्र ब्राह्मण से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण थे और सामर्थ्य-सम्पन्न बलि के वंश-प्रवर्तक हुए। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने बलि को वरदान दिया था कि—'तुम महान् योगी होओगे। तुम्हारी आयु कल्पभर की होगी। तुम संग्राम में किसी के भी द्वारा पराजित नहीं होओगे। धर्म में तुम्हारी अवचिल श्रद्धा होगी। तुम त्रिकालदर्शी और असुर-वंश के प्रधान बनोगे। युद्ध में तुम्हें अनुपम विजय प्राप्त होगी। धर्म के तुम तत्त्वार्थदर्शी बनोगे।'

इसी के परिणामस्वरूप सामर्थ्यसम्पन्न बलि चारों नियत (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) वर्णों की स्थापना करने वाला हुआ। बलि के पाँचों क्षेत्रज पुत्रों के वंश भी उन्हीं के नाम पर अङ्ग, बङ्ग, सुह्मक, पुण्ड्र और कलिङ्ग नाम से विख्यात हुए।[२]

टिप्पणी—इस लघु कथा में वामन का अत्यल्प प्रसङ्ग आया है। किन्तु बलि की एक अद्भुत, अस्वच्छ, अपरिष्कृत कथा यहाँ वर्णित है। इसीलिये वामनकथा के सन्दर्भ में इसका उल्लेख यहाँ अभीप्सित है।

यह कथा भी मत्स्यपुराण की अन्य पुराणों की अपेक्षा, प्राचीनता सिद्ध करती है। आशा है, विवेचक स्वयं इसका विस्तार कर लेंगे।

(ख) शत्रुओं ने देवों को पराजित कर स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। इससे देवमाता अदिति को महान् कष्ट हुआ। उसने पुत्रों के कल्याण के लिये दुश्चर तप किया। उसके तप एवं स्तोत्र से जगद्गुरु भगवान् कृष्ण प्रसन्न हो उसे दर्शन दिये और कहे—'देवि, तुम्हारी तपस्या से तुष्ट हूँ। वर माँगो जो माँगना चाहती हो।'

---

१. सेनस्य सुतपा जज्ञे सुतपस्तनयो बलिः ।
जातो मानुषयोन्या तु क्षीणे वंशे प्रजेच्छया ॥
महायोगी तु स बलिर्बद्धो बन्धैर्महात्मना ॥ *मत्स्यमहापुराण, ४८/२३-२४*

२. इनके वंशजातिवालों के कारण ये जनपद भी इन्हीं के नामों से प्रसिद्ध हुए । इनमें अङ्ग-भागलपुर, बङ्ग-पश्चिम बङ्गाल, सुह्म-आसाम, पुण्ड्र-आज का बङ्गलादेश, तथा कलिङ्ग-उड़ीसा है।

अदिति ने अपने पुत्रों के राज्य और भोग की भगवान् से याचना की और देव-शत्रुओं के पराभव का मनोरथ व्यक्त किया।[१]

भगवान् ने देवमाता से कहा—'देवि, शीघ्र ही मैं कश्यप के अंश से तुम्हारे गर्भ द्वारा समुत्पन्न होऊँगा। फिर मैं तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण कर सुर-द्रोहियों का संहार करूँगा।'

समय आने पर अदिति गर्भवती हुई। उसके तेज से जगत् व्याप्त हो गया। सारे असुर निस्तेज हो गये। इस परिस्थिति को देखकर बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद से पूछा—'प्रभु, असुरों की निस्तेजष्कता का क्या कारण है ?' ध्यान कर प्रह्लाद ने सारी स्थिति को ज्ञात कर कहा—'वत्स, जगन्निवास भगवान् अपने अशं से अदिति के यहाँ अवतीर्ण होने वाले हैं।[२] इसी कारण से दैत्य निस्तेज और देव सतेज हुए हैं। प्रह्लाद कृष्ण का प्राणाधिक भक्त था। उसने उनकी प्रभूत प्रशंसा की। इस पर बलि ने पूछा—'पितामह, यह कृष्ण कौन हैं? यह दैत्यों का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। हमारे पास कृष्ण से भी अधिक बलशाली दैत्य हैं। अत: मुझे न उनकी चिन्ता है और न परवाह ही।' प्रह्लाद ने बलि की इस बात को सुना। अपने आराध्य पर किये गये आक्षेप को वह सहन न कर सका। उसने बलि को फटकारते हुए शाप दिया—'बलि, तुम हमारे कुल के कलंक हो। तुम जगद्रक्षक प्रभु की निन्दा कर रहे हो। अत: शीघ्र ही तुम राज्य और श्री से भ्रष्ट हो जाओगे।'[३]

पितामह के शाप को सुनकर बलि खिन्न हो उठा। उसने कहा—'देव, राज्य और श्री से भ्रष्ट होने की चिन्ता मुझे नहीं है। मैंने जो आपके समक्ष अविनय प्रदर्शित किया है, आपको खेद पहुँचाया है, उसी की मुझे चिन्ता है, उसी का मुझे कष्ट है। आप जैसे गुरु का इस संसार में मिलना दुर्लभ है। अत: आप मुझपर प्रसन्न हों और मेरी धृष्टता को क्षमा करें।[४]

---

१. मनोरथांस्त्वमदिते यानिच्छस्याभिवाञ्छितान् ।
तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे मत्प्रसादान्न संशय: ॥ *मत्स्यमहापुराण*, २४३/३६

२. देवो जगद्योनिरयं महात्मा स षोडशांशेन महासुरेन्द्र ।
स देवमातुर्जठरं प्रविष्टो हृतानि वस्ते बलाद्वपूंसि ॥ *वही*, २४४/२७

३. यथा मे शिरस: च्छेदादिदं गुरुतरं वच: ।
त्वयोक्तमच्युताक्षेपि राज्यभ्रष्टस्तथा पत ॥
यथा च कृष्णान्न परं परित्राणं भवार्णवे ।
तथाऽचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम् ॥ *वही*, २४४/४७-४८

४. त्रैलोक्यराज्यमैश्वर्यमन्यद्वा नातिदुर्लभम् । संसारे दुर्लभास्ते तु गुरवो ये भवद्विधा: ।
तत्प्रसीद न मे कोपं कर्तुमर्हसि दैत्यप । त्वत्कोपदृष्ट्या ताताहं परितप्ये न शापत: ॥
वही, २४४/५३-५४

बलि की विनम्रता को देखकर प्रह्लाद ने कहा—'वत्स, मैंने मोहवश तुझे जो शाप दिया है, इससे तुम्हारा कुछ भला ही होने वाला है। अतः तुम विषाद मत करो। आज से तुम भगवान् अच्युत के भक्त बन जाओ, वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे।'[१] समय-समय पर तुम मेरी भी याद करना। मैं उपस्थित होकर तुम्हें तुम्हारे कल्याण से संयुक्त करता रहूँगा।'

उक्त बातें कहकर प्रह्लाद चुप हो गये। उसी समय वामनाकृति गोविन्द का प्रादुर्भाव हुआ।[२] प्रकट होते ही ब्रह्मा जी ने उनका जातकर्म आदि संस्कार करवाया। फिर उन्होंने उनका पावन यज्ञोपवीत संस्कार भी सम्पन्न किया। संस्कृत हो जाने पर बटुरूपधारी वामन बलि की यज्ञशाला की ओर चले। उनके चलने से वन-पर्वत-सहित सकल, पृथिवी कम्पित होने लगी। इस दृश्य को देखकर बलि ने अपने आचार्य शुक्र से पूछा—'गुरो, क्या कारण है कि भू-मण्डल कम्पित हो रहा है। और अग्नियाँ असुरों के भाग को क्यों नहीं ग्रहण कर रही हैं ?'[३]

बलि के प्रश्न पर आचार्य ध्यानमग्न हो गये। फिर कारण को ज्ञात कर उन्होंने कहा—'असुरसत्तम, कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से वामनरूपधारी नारायण का प्राकट्य हुआ है। वे ही तुम्हारी यज्ञशाला में आ रहे हैं। उन्हीं के चलने से पृथिवी में कम्पन हो रहा है और उन्हीं के सन्निधान से अग्नियाँ असुरों के भाग को नहीं ग्रहण कर रही हैं ।'

आचार्य की बात सुनकर बलि की प्रसन्नता की सीमा न रही। वह झटिति बोल उठा—'ब्राह्मणदेवता, मैं आज बड़ा भाग्यशाली हूँ। आज मेरे पुण्य फलीभूत हो उठे जो कि यज्ञपति स्वयं मेरे यज्ञ में पधार रहे हैं। वस्तुतः सम्प्रति मुझसे बढ़कर दूसरा कोई व्यक्ति बड़भागी है ही नहीं।[४] सर्वेश्वर कृष्ण के आने पर मेरा जो कर्तव्य हो उसका उपदेश आप मुझे करें।'

शुक्राचार्य ने अपने शिष्य बलि को उपदेश देते हुए कहा—'कृष्ण देवों के

---

१. अद्य - प्रभृति देवेशे भगवत्यच्युते हरौ ।
भवेथा भक्तिमानीशे स ते त्राता भविष्यति ॥ *मत्स्यमहापुराण, २४४/५८*

२. एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रं विरराम महाद्युतिः ।
अजायत स गोविन्दो भगवान् वामनाकृतिः ॥ *वही, २४४/६०*

३. आचार्य क्षोभमायाता साब्धिभूभृद्वना मही ।
कस्माच्च नासुरान् भागान् प्रतिगृह्णन्ति वह्नयः ॥ *वही, २४५/२*

४. धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यन्मे यज्ञपतिः स्वयम् ।
यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन् मत्तः कोऽन्योधिकः पुमान् ॥ *वही, २४५/१०*

कल्याण के लिये आ रहे हैं। अतः तुम उनसे यह मत कहना कि 'मैं आपको यथेच्छ दान देने में समर्थ हूँ। अतः जो माँगना हो माँग लीजिये।'[१]

बलि ने आचार्य की बात सुनी तो अवश्य किन्तु उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'आचार्य-प्रवर, यदि यज्ञाधिपति भगवान् इस यज्ञ में मेरा शिर भी माँगेंगे तो मैं उसे भी विना विचारे प्रदान कर दूँगा। अन्य वस्तुओं की तो बात ही क्या है।'[२] यदि दान में सर्वाधिक सुयोग्य पात्र विष्णु को मैंने दान दे दिया तो मुझे सृष्टि का सब कुछ प्राप्त हो गया।[३] यदि वे मेरा वध करने के लिये आ रहे हैं तो इससे श्लाघ्यतर मृत्यु और क्या हो सकती है ? अतः गुरुदेव, मेरे इस दान में आपको विघ्न नहीं करना चाहिये।

अभी बलि और शुक्राचार्य की बात हो ही रही थी कि भगवान् वामन यज्ञस्थल पर पहुँच गये। बलि ने बड़ी प्रसन्नता से उनका पूजन कर कहा—'अपरिमित सुवर्ण, रत्नसमूह, हाथी, घोड़े, स्त्रियाँ, वस्त्र, आभूषण, बहुत से ग्राम अथवा सकल भू-मण्डल जो कुछ भी आप चाहें माँग लें। मैं सबकुछ देने के लिये तत्पर हूँ।'[४]

वामन ने बलि के प्रीतिपूर्ण वचन को सुनकर मुस्कराते हुए कहा—'राजन्, मुझे अपनी यज्ञशाला के लिये केवल तीन पग पृथिवी चाहिये। बस मुझे उतनी ही भूमि का दान दें। रत्न आदि अन्य वस्तुएँ अन्य याचकों को प्रदान करें।'[५]

वामन की बात को सुनकर बलि ने अधिक भूमि माँगने की प्रेरणा दी। किन्तु वामन अपनी तीन पगवाली बात पर अडिग रहे। हार मानकर बलि ने तीन पग भूमि का संकल्प कर दिया। संकल्प का जल हाथ में पड़ते ही पहाड़ जैसे

१. नालं दातुमहं देव दैत्य वाच्यं त्वया वचः ।
कृष्णस्य देवभूत्यर्थं प्रवृत्तस्य महासुर ॥ *मत्स्यमहापुराण,* २४५/१८

२. यज्ञेऽस्मिन् यदि यज्ञेशो याचते मां जनार्दनः ।
निजमूर्द्धानमप्यत्र तद्दास्याम्यविचारितम् ॥ *वही,* २४५/२४

३. एतद्विजानता दानबीजं पतति चेद् गुरो ।
जनार्दनमहापात्रे किन्न प्राप्तं ततो मया ॥ *वही,* २४५/३०

४. सुवर्णरत्नसंघातं गजाश्वममितं तथा ।
स्त्रियो वस्त्राण्यलङ्कारांस्तथा ग्रामांश्च पुष्कलान् ॥
सर्वस्वं सकलामुर्वीं भवतो वा यदीप्सितम् ।
तद्ददामि शृणुष्व त्वं येनार्थी वामनः प्रियः ॥ *वही,* २४५/४५-४६

५. ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन् पदत्रयम् ।
सुवर्णग्रामरत्नानि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम् ॥ *वही,* २४५/४८

विशाल बन गये वामन।[१] उन्होंने सकल त्रिलोकी को ही नाप लिया। फिर उन्होंने असुरों का मन्थन कर त्रैलोक्य का आधिपत्य इन्द्र को प्रदान कर दिया। बलि को सावर्णिक मन्वन्तर में इन्द्र बनने का वर देकर वामन ने उसे सुतल नामक पाताल में भेज दिया।

बलि को सुतल लोक का आधिपत्य प्रदान कर वामन ने कहा—'बले, हमारे हाथ पर तुमने जो दान का जल छोड़ा है, उसके फलस्वरूप तुम्हें कल्पभर की आयु प्राप्त होगी। भगवान् के आदेश को सुनकर बलि सपरिवार सुतल लोक को चला गया। इन्द्र बने त्रिलोकी के अधिपति। इसके अनन्तर अपने अद्भुत रूप को संहृत कर भगवान् अन्तर्हित हो गये।

यहाँ एक बात और उल्लिखित है, जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। जिस समय बलि सुतल लोक के लिये प्रस्थान कर रहा था उस समय उसने वामन से कहा—'भगवन् पाताल लोक के निवास-काल में मेरे भोग का साधन क्या होगा ?'[२] इस पर भगवान् ने उत्तर दिया—'बिना विधान के दिये गये दान, श्रोत्रियों से रहित श्राद्ध, श्रद्धा से रहित हवन, दक्षिणा-रहित यज्ञ और विधि-विहीन क्रिया-इन सबका फल आपको मिलेगा।'[३]

भगवान् के इस वरदान को सुनकर सन्तुष्ट हो बलि सुतल लोक को चला गया।

ब्रह्माण्डमहापुराण

विरोचनकुमार बलि यज्ञ कर रहे थे। अदिति पुत्र वामन उस यज्ञ में पधारे। उन्होंने बलि से कहा—'आप त्रिलोकी के अधिपति हैं। अतः मुझे तीन पग पृथिवी दान दे दीजिये।' यद्यपि बलि को यह विदित हो गया था कि यह भगवान् हैं। फिर भी उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कह दिया कि—'मैंने आपको अभिलषित भूमि प्रदान कर दी।' बलि के इतना कहते ही वामन ने अपने तीन पाद-विन्यासों से इस जगत् को ही नाप डाला। उन्होंने एक पग से समूची पृथ्वी, दूसरे से समग्र

---

१. पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः ।
सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात ॥ *मत्स्यमहापुराण, २४५/५२*

२. तत्रासतो मे पाताले भगवन् भवदाज्ञया ।
किं भविष्यत्युपादानमुपभोगोपपादकम् ॥ *वही, २४५/८३*

३. दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च ।
हुतान्यश्रद्धया यानि तानि दास्यन्ति ते फलम् ।
अदक्षिणास्तथा यज्ञाः क्रियाश्चाविधिना कृताः ।
फलानि तव दास्यन्ति अधीतान्यव्रतानि च ॥ *वही, २४५/८३-८५*

आकाश, और तीसरे से आकाश के ऊपर का समस्त भाग अर्थात् स्वर्ग नाप लिया ।[1]

वामन ने बलि को अपने शरीर में सकल ब्रह्माण्ड का दर्शन करवाया। फिर उन्होंने पाश से संयत कर सकुटुम्ब बलि को पाताल में प्रेषित कर दिया और स्वर्ग का साम्राज्य इन्द्र को प्रदान किया ।[2]

---

१. स वामनो दिवं खं च पृथिवीं च द्विजोत्तमाः ।
त्रिभिः क्रमैर्विश्वमिदं जगदाक्रामत प्रभुः ॥ *ब्रह्माण्डमहापुराण,* ३/७३/७८

२. ब्रह्माण्डमहापुराण, ३/७३/७५-८६

वाराह-कथा

ब्रह्ममहापुराण

शैल वन कानन सहित समूची पृथिवी एकार्णव जल में निमग्न थी। विष्णु ने वाराह का रूप धारण कर जल में प्रवेश किया। संसार के कल्याण की कामना से वे पृथिवी का उद्धार करना चाहते थे । उन्होंने अपने दाँत के अग्रभाग पर स्थापित कर पृथिवी का जल-तल से उद्धार किया।[1]

पद्ममहापुराण

नृसिंहावतार की कथा के प्रसङ्ग में श्वेतद्वीप के द्वारपाल जय-विजय को सनत्कुमार आदि के शाप की कथा का विवरण प्रस्तुत किया गया है । उसके अनुसार दिति ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया था। छोटे पुत्र का नाम था हिरण्याक्ष। हिरण्याक्ष मद से उन्मत्त रहता था । उसका शरीर अति विशाल था। उसके बल की सीमा न थी। एक बार उसने सप्तद्वीपा पृथ्वी को उखाड़ लिया और उसे शिर पर रखकर रंसातल में चला गया।

हिरण्याक्ष के द्वारा पृथिवी के अपहरण से देव-मण्डली में हाहाकार मच गया। वे अशरण-शरण नारायण की शरण में गये। देवों से इस अद्भुत वृत्तान्त को जानकर विश्वरूप धारी जनार्दन ने वाराह का रूप धारण किया। उस समय उनकी बड़ी-बड़ी दाढ़े और विशाल भुजाएँ थीं। उनपरमेश्वर ने अपनी एक दाढ़ से उस दैत्य पर आघात किया। इससे उसका विशाल शरीर कुचल गया। फलतः वह अधम दैत्य मृत्यु का ग्रास बन गया। पृथ्वी को रसातल में पड़ी देखकर भगवान् वाराह ने उसे अपनी दाढ़ पर उठा लिया और उसे पहले की भाँति शेष-नाग के ऊपर स्थापित कर स्वयं कच्छप रूप से उसके आधार बन गये।

पृथ्वी के उद्धार को देखकर सम्पूर्ण देव और मुनि-मण्डली प्रसन्न हो उठी। उसने वाराह भगवान् की दिव्य स्तुति की। इसके बाद वे महर्षियों के मुख से अपनी स्तुति सुनते हुए वही अन्तर्धान हो गये।[2]

---

१. ब्रह्ममहापुराण के १०४ अध्याय में विष्णु के दशावतारों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। यहाँ वाराह के द्वारा हिरण्याक्ष के वध की चर्चा नहीं की गई है।

२. पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड, अ० २३७

विष्णुमहापुराण

प्रलय की बेला में सम्पूर्ण जगत् जलमय हो गया था। इसलिये प्रजाओं के स्वामी नारायण ने, अनुमान से पृथिवी को जल के भीतर जानकर, उसे बाहर निकालने की इच्छा से वाराह का वपु धारण किया।[1] भगवान् का यह वपु वेद-यज्ञ-मय था। इसे धारण कर वाराहरूपधारी नारायण ने जल के भीतर प्रवेश किया। जब वे पाताल लोक में पहुँचे तो देवी वसुन्धरा ने उनकी भव्य स्तुति की।

पृथिवी की स्तुति को सुनकर महावाराह ने घर्घर-ध्वनि से उच्च गर्जन किया। उसके बाद वे अपनी दाढ़ों से (दंष्ट्रा से) पृथिवी को उठाकर जल से बाहर निकले। उस समय ऋषि-मुनि वाराह भगवान् की श्रद्धा के साथ स्तुति कर रहे थे।

जल से बाहर आने पर उन्होंने पृथिवी को जल के ऊपर स्थापित कर दिया।[2] उस जल-समूह के ऊपर वह एक बहुत बड़ी नैया के समान स्थित है और अति विस्तृत आकार की होने के कारण उसमें डूबती नहीं है।

शिवमहापुराण

भगवान् शङ्कर से अन्धकासुर को पुत्र के रूप में प्राप्त कर प्रसन्न हुआ हिरण्याक्ष । उसने समस्त देवताओं को जीता और इस पृथिवी को लेकर अपने देश रसातल चला गया।[3] पृथिवी के अभाव में यज्ञ-याग आदि क्रियाएँ विलुप्त होने लगीं। अत: देव, मुनि एवं सिद्ध आदि अनन्तवीर्य विष्णु की शरण में गये। भगवान् विष्णु ने, वाराह का शरीर धारण कर, अपने विविध घोणा-प्रहारों से पृथिवी को विदीर्ण करते हुए पाताल-तल में प्रवेश किया।[4] वहाँ दैत्यों के साथ उनका घोर संग्राम हुआ। उसमें उन्होंने अपने तुण्ड, द्रंष्ट्रा और पाद-प्रहारों से सैकड़ों दैत्यों का विनाश किया।

---

१. तोयान्त:स्थां महीं ज्ञात्वा जगत्येकार्णवीकृते ।
अनुमानात्तदुद्धारं कर्तुकाम: प्रजापति: ।
मत्स्यकूर्मादिकां तद्वद्वाराहं वपुरास्थित: ॥ *विष्णुमहापुराण, १/४/७-८*

२. एवं संस्तूयमानस्तु परमात्मा महीधर: ।
उज्जहार क्षितिं क्षिप्रं न्यस्तवांश्च महाम्भसि ॥ *वही, १/४/४५*

३. ततस्तु पुत्रं गिरिशादवाप्य रसातलं चण्डपराक्रमस्तु ।
इमां धरित्रीमनयत्स्वदेशं दैत्यो विजित्वा त्रिदशानशेषान् ॥ *शिवमहापुराण, २/५/४२/४२*

४. घोणाप्रहारैर्विविधैर्धरित्रीं विदार्य पातालतलं प्रविश्य । *शिवमहापुराण २/५/४२/४४*

टिप्पणी—इस स्थल को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि हिरण्याक्ष पृथिवी के मूल तत्त्व को ही लेकर चला गया था। उसके अभाव में भूतल का निस्तत्त्व, निर्जीव स्थूल रूप यहाँ पड़ा रहा । इसी तत्त्व-विहीन रूप को भगवान् वाराह ने विदीर्ण कर पाताल में प्रवेश किया था।

वाराह भगवान् विविधविधि से युद्ध कर रहे थे। किन्तु हिरण्याक्ष मरता नहीं था। अतः उन्होंने अपने सुदर्शन का स्मरण किया। सुदर्शन पहुँचा वाराह की सेवा में। फिर क्या था ? उन्होंने सुदर्शन के प्रहार से हिरण्याक्ष के शिर को काट डाला और तमाम दुष्ट दैत्यों को जला कर भस्म कर दिया। इतना कार्य कर लेने के अनन्तर वाराह ने पृथिवी पर दृष्टि डाली। उसे उठाकर अपने द्रंष्ट्रा के अग्रभाग पर धारण किया और लाकर उसे पूर्ववत् यथास्थान स्थापित कर दिय। उनके इस अद्भुत कार्य को देखकर ब्रह्मा-सहित समस्त देव और मुनि सुप्रसन्न होकर उनकी स्तुति किये। इस महान् कार्य को सम्पन्न कर भगवान् हरि अपने लोक को चले गये।

श्रीमद्भागवतमहापुराण

ब्रह्मा ने मनु को प्रजाओं की सृष्टि का आदेश दिया। मनु ने उनके आदेश को शिरोधार्य किया। किन्तु पृथ्वी जल में डूब कर रसातल को जा चुकी थी। अतः उन्होंने ब्रह्मा से नम्र निवेदन किया—'देव, पृथिवी जल में निमग्न है। इसके उद्धार का उपाय किया जाय।' ब्रह्मा को कोई उपाय नहीं सूझा। वे भगवान् का ध्यान करते हुए चिन्ता में मग्न थे। उसी समय उनकी नासिका के विवर से अँगूठे इतना बड़ा वाराह का एक शावक निकल पड़ा। देखते ही देखते वह हाथी जैसा विशालकाय बन गया। ब्रह्मा अपने ऋषिपुत्रों के साथ सोच रहे थे—'हम लोगों के मन को दोलायमान करने वाले यह यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु तो नहीं हैं ?' इतने में ही बड़े जोर का गर्जन करते हुए वाराह ने जल के भीतर प्रवेश किया। रसातल में जाकर उन्होंने पृथिवी को देखा और उसे उठाकर अपने दाँतो के अग्रभाग पर रख लिया। फिर वे ऊपर की ओर आने लगे। मार्ग में दैत्यराज हिरण्याक्ष ने उन्हें युद्ध के लिये ललकारा। देखते-ही-देखते दोनों में भीषण संग्राम छिड़ गया। अन्त में वाराह भगवान् ने अपने कर से हिरण्याक्ष के कान के पास प्रहार किया। फिर क्या था, संसार की आँखों के सामने ही वह दैत्य इस संसार से विदा हो गया जिसे उसने अपने बाहु-बल से आक्रान्त कर रक्खा था।[१]

अग्निमहापुराण

हिरण्याक्ष असुर अत्यन्त प्रतापी था। उसने देवों को जीत कर स्वर्ग पर अधिकार कर लिया था। निराश असहाय देवों ने भगवान् विष्णु की शरण ग्रहण

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण, तृतीयस्कन्ध, अध्याय १३-१९

की। स्तुति कर उन्हें अपना कष्ट सुनाया। भगवान् ने यज्ञरूप वाराह का अवतार धारण कर दैत्यों के साथ हिरण्याक्ष का वध कर डाला। इस प्रकार धर्म और देवताओं की रक्षा करके वे अन्तर्हित हो गये।[१]

लिंगमहापुराण

हिरण्यकशिपु का भाई था—हिरण्याक्ष। हिरण्याक्ष ही अन्धक का पिता था। पूर्व समय की कथा है। दैत्येन्द्र हिरण्याक्ष ने देवों को युद्ध में पराजित कर दिया। फिर उसने कमल-सी कान्ति वाली पृथिवी को बाँधकर ले जाकर रसातल में वन्दिनी बना दिया। उसने देवों को नाना प्रकार के कष्ट दिये। देवता दुःखी होकर विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने दैत्येन्द्र के द्वारा धरणी के बन्धन की बात सुनी। वे यज्ञमय वाराह का रूप धारण कर पाताल लोक पहुँचे। वहाँ युद्ध में दैत्यों के साथ हिरण्याक्ष का वध कर उन्होंने पृथिवी का उद्धार किया। वे उसे जल से ऊपर लाकर स्थापित किये। उनके इस कृत्य से उपकृत होकर ब्रह्मादि देवोंने उनकी भव्य स्तुति की।[२]

स्कन्दमहापुराण

पूर्वकाल की बात है। विष्णु के वैकुण्ठधाम में जय और विजय नामक दो द्वारपाल थे। हाथ में दण्ड धारण कर बैकुण्ठ के द्वार पर सदा खड़े रहना ही उनका काम था। एक समय ब्रह्माजी के मानस पुत्र सनकादि वैकुण्ठ धाम में पधारे। वे विष्णु के दर्शन की लालसा से लबालब भरे थे। वैकुण्ठ के द्वार पर पहुँचते ही द्वारपालों ने उन्हें सहसा रोक दिया। उनके धक्के खाकर वे चारों कुमार भूमि पर गिर पड़े। गिरने से उन्हें मूर्च्छा भी आ गई। द्वारपालों के इस व्यवहार से उन्हें महान् क्लेश हुआ। इसी समय कमलनयन भगवान् विष्णु भी वहाँ पहुँच गये। उन्होंने भूतल पर पड़े हुए दुःखी उन कुमारों को देखा। देखते ही आगे बढ़ कर उन्हें अपनी गोद में उठा लिया। फिर उन्होंने कुमारों से पूछा—'महात्माओं, आपको यह मूर्च्छा कैसे आई ? किसने आप लोगों को दुःख दिया है ?'

विष्णु के पूछने पर विनम्र होकर कुमारों ने कहा—'महाराज, हमें आपके दर्शन की लालसा थी। अतः हम लोग इस लोक में आ रहे थे। सहसा इन बलोन्मत्त द्वारपालों ने हमें रोक दिया। इसी से हमारी यह दशा हुइ है। अतः आज

१. देवैर्गत्वा स्तुतो विष्णुर्यज्ञरूपो वराहकः ।
अभूत् तं दानवं हत्वा दैत्यैः साकञ्च कण्टकम् ॥
धर्मदेवादिरक्षाकृत् ततः सोऽन्तर्दधे हरिः ॥ *अग्निमहापुराण, ४/२-३*

२. लिङ्गमहापुराण, १/९४

से इस स्थान पर इनकी सनातन स्थिति न हो। ये दोनों असुर-योनि को प्राप्त हो जायँ।'

कुमारों के मुख से उक्त वचन निर्गत होते ही वे दोनो जय और विजय सद्य: आसुरी योनि में चले गये। वे प्रथम जन्म में 'हिरण्यकशिपु' और 'हिरण्याक्ष', द्वितीय जन्म में 'कुम्भकर्ण' तथा 'रावण' और तृतीय जन्म में 'दन्तवक्र' एवं 'शिशुपाल' कहलाये।

हिरण्याक्ष दैत्य अतिशय बलशाली था। समस्त देव-मण्डली को जीतकर वह स्वयं ही उनके लोकों का अधिकारी बन बैठा। राज्य-भ्रष्ट देवता स्वर्ग से निष्कासित कर दिये गये। संसार में सर्वत्र अधर्म का साम्राज्य फैल गया।

संसार की ऐसी दुरवस्था देखकर भगवान् विष्णु ने विचार किया कि जब-जब धर्म की हानि और अधर्म का उत्थान होता है, तब-तब मैं अपने-आपको संसार में प्रकट करता हूँ। अत: अब मुझे अवतार ग्रहण करना चाहिये। ऐसा विचार कर उन्होंने लीला से ही श्वेतद्वीप के समान परम उज्ज्वल दिव्य वाराह-शरीर धारण किया। वह पूर्णत: यज्ञमय था। चारों वेद ही उसके चार चरण थे। साक्षात् आदि पुरुष परमेश्वर ही वाराहरूप में प्रकट हुए थे। उन्होंने भीषण संग्राम करके उस दुर्धर्ष दैत्य हिरण्याक्ष को मार डाला। उससे पीडित हुई यह पृथिवी रसातल को चली गई थी। उसे भगवान् वाराह अपनी दाढ़ से उठाकर ऊपर ले आये। हिरण्याक्ष के अनुगामी बहुत से दैत्य मारे गये। शेष सभी भागकर पाताल में चले गये।

भगवान् वाराह सम्पूर्ण कामनाओं और फलों को देने वाले हैं। उन्हीं के हृदय से सनातन नदी शिप्रा प्रकट हुई है । भगवान् वाराह ने समस्त दुष्ट दैत्यों का संहार करके देवों को निर्भय बना डाला।[१]

कूर्ममहापुराण

नारायण जल के अन्दर शयन कर रहे थे। चतुर्दिक् तमोमय एकार्णव व्याप्त था। समस्त वातावरण शान्त था। कुछ सुझाई नहीं पड़ रहा था। यह नैमित्तिक प्रलय की बेला थी। नारायण के स्वरूप ब्रह्मा शयन कर रहे थे। सहस्र युग के बराबर अन्धकार की परिसमाप्ति पर नारायण को सर्ग की कामना हुई। उन्होंने देखा कि पृथिवी का कहीं पता ही नहीं है। फिर अनुमान के द्वारा उन्हें ज्ञात हुआ कि पृथिवी जल के भीतर रसातल में समा गई है। अत: उन्होंने जल-क्रीडा में रुचि रखने वाले शूकर का स्वरूप धार किया। यही शूकरावतार है। फिर

---

१. स्कन्दमहापुराण, आव०, अव०मा०, अ०६३

उन्होंने डुबकी लगाई जल के भीतर और जा पहुँचे रसातल में।[१] वहाँ देखा निश्चेष्ट पड़ी हुई पृथिवी को और उठा लिया उसे अपनी दंष्ट्रा (दाढ़) पर।

जिस समय भगवान् वाराह पृथिवी को लेकर ऊपर की ओर आ रहे थे, उस समय जनलोक के निवासी सनकादि महर्षियों ने उनकी दिव्य स्तुति की। भगवान् ने भी उन पर महती कृपा की। प्रसन्न नेत्रों से उनकी ओर निहारा।

ऊपर पहुँचकर वाराह ने पृथिवी को उसी प्रकार जल के उपर स्थापित कर दिया जैसे कि पानी के ऊपर नैया रहती है। अत्यधिक चौड़ी होने के के कारण यह जल में नहीं डूबती है।[२] फिर तो प्रारम्भ हुआ भूतल पर सृष्टि का अविरत कार्य। कूर्ममहापुराण के पूवार्ध में ही आगे कथा आती है कि नृसिंह के द्वारा हिरण्यकशिपु के मार दिये जाने पर हिरण्याक्ष असुरों का अधिपति बना। उसने धरणी को तो रसातल में पहुँचाया ही, वेदों को भी निष्प्रभ बना दिया था। इससे ब्रह्मादिक देव प्रभाविहीन हो गये थे।[३] अतः वाराह वपु धारण कर भगवान् विष्णु ने भूतल का रसातल से उद्धार किया।[४]

मत्स्यमहापुराण

यह सृष्टि के प्रारम्भ का काल था। पृथिवी विशाल शैलों के भार से आक्रान्त हो जल में डूबकर, नीचे रसातल की ओर धँसने लगी।[५] भगवान् नारायण ने इस दृश्य को देखा। उन्होंने उसके उद्धार का सत्य संकल्प मन में लिया।[६] पृथिवी ने जब अपनी अधोगति देखी तो उसने नारायण का बड़ा ही

---

१. ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम् ।
अनुमानात्तदुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः ॥
जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमास्थितः ।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविश्य च रसातलम् ।
दंष्ट्रयाभ्युज्जहारैनामात्माधारो धराधरः ॥ *कूर्ममहापुराण, १/६/७-९*

२. तस्योपरि जलौघस्य महतो नौरिव स्थिता ।
विततत्वाच्च देहस्य न मही याति संप्लवम् ॥ *वही, १/६/२४*

३. देवान् जित्वा सदेवेन्द्रान् क्षुब्ध्वा च धरणीमिमाम् ॥
नीत्वा रसातलं चक्रे वेदान् वै निष्प्रभांस्तथा ॥ *वही, १/१६/७९-८०*

४. **टिप्पणी**—भागवतमहापुराण आदि में नारायण ने पहले वाराह का अवतार लेकर हिरण्याक्ष का वध किया था। बाद में उनका नृसिंहावतार हुआ था, जिसने हिरण्यकशिपु को मारा था।

५. अशक्ता वै धारयितुमधस्तात्प्राविशत्तदा ॥ *मत्स्यमहापुराण, २४७/८*

६. पृथिवीं विशन्तीं दृष्ट्वा तु तामधो मधुसूदनः ।
उद्धारार्थं मनश्चक्रे तस्या वै हितकाम्यया ॥ *मत्स्यमहापुराण, २४७/१०*

दिव्य स्तवन किया। नारायण उसकी स्तुति से प्रसन्न हो उठे। उन्होंने उसे आश्वस्त करते हुए कहा—'धरणि, भय मत करो। शान्ति धारण करो। अब मैं तुम्हें उचित स्थान पर स्थापित करूँगा।'[१]

पृथिवी को आश्वासन देकर भगवान् ने सोचा कि कौन-सा रूप धारण कर मैं इसका उद्धार करूँ? क्योंकि पृथ्वी जल में डूब रही है। अतः उन्होंने जल-क्रीडा में आनन्द लेने वाले वाराह के रूप को धारण कर रसा के उद्धार के लिये रसातल में प्रवेश किया।[२] वहाँ पहुँच कर यज्ञ-वाराह अपनी दंष्ट्रा के अग्र भाग पर पृथिवी को उठाकर जल के ऊपर लाये और उन्होंने उसे समुचित स्थान पर स्थापित किया। सूकरावतार भगवान् के द्वारा धारण करने के कारण पृथिवी धन्य-धन्य हो गई। उसका सारा दुःख दूर हो गया।

ब्रह्माण्डमहापुराण

ब्रह्माण्डमहापुराण के पूर्व भाग, प्रक्रियापाद के पञ्चम अध्याय में वाराहावतार की संक्षिप्त चर्चा आई है। उसके अनुसार—एकार्णव में सारा स्थावर-जंगम विलीन था। ब्रह्मा जल में विचरण कर रहे थे। नारायण जल में शयन कर रहे थे। भूमि जल में निमग्न थी। भूमि के उद्धार के लिये ब्रह्मा ने नारायण का स्मरण किया। नारायण ने वाराह का रूप धारण कर पृथिवी का उद्धार किया। फिर तो आधार मिल जाने पर ब्रह्मा ने अपने सृष्टिकार्य को आगे बढ़ाया

देवीभागवत

क—स्वायम्भुव मनु सृष्टि करने के लिये तत्पर थे। पृथिवी जल में मग्न थी। मनु ने ब्रह्मा से स्थान के लिये प्रार्थना की। ब्रह्मा इसके लिये चिन्तित थे। उसी समय ब्रह्मा की नासिका के अग्रभाग से एक छोटा-सा वाराह-शिशु सहसा प्रकट हो गया। उस समय उसका प्रमाण केवल एक अङ्गुल था। किन्तु सद्यः उसने गजराज-सा विशाल विग्रह धारण कर लिया। उसके इस स्वरूप को निहार कर ऋषि-मुनियों सहित ब्रह्मा जी आश्चर्य-चकित थे। इसी समय सूकर रूपधारी भगवान् श्रीहरि गरज उठे। उनके गर्जन को सुनकर सभी हर्ष से भर गये। तदनन्तर देवों ने वैदिक स्तोत्रों से भगवान् वाराह की स्तुति की। फिर वे जल में प्रविष्ट

---

१. मा भैर्धरणि कल्याणि शान्तिं व्रज ममाग्रतः।
एष त्वामुचिते स्थाने प्रापयामि मनीषितम्॥ मत्स्यमहापुराण, २४७/६१

२. रूपमास्थाय विपुलं वाराहमजितो हरिः।
पृथिव्युद्धरणायैव प्रविवेश रसातलम्॥ *वही*, २४७/६६-६७

हो गये। जब वे जल के अन्दर प्रविष्ट होने लगे उस समय उनकी भयंकर सटाके आघात से समुद्र के हृदय में खलबली मच गई। उसने भी वाराह भगवान् की प्रार्थना की। उसे सुनकर वे जलचर जन्तुओं को बचाते हुए अगाध जल में चले गये। पृथिवी का अन्वेषण करते हुए वहाँ उन्होंने चतुर्दिक् चक्कर लगाया। शनैः-शनैः सर्वत्र सूँघ कर वे पृथिवी का अन्वेषण कर रहे थे। उस समय सर्वाश्रया वह पृथिवी जल के अन्दर छिपी थी। वाराह रूपधारी देवाधिदेव भगवान् श्रीहरि ने उसे अपनी दाढ़ से उखाड़ा और उसे अपने दन्त के अग्र भाग पर रख लिया। उस समय वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो कोई दिग्गज कमलिनी को दाँत पर लिये हो।

वाराह ऊपर की ओर आ रहे थे। उसी समय महान् दैत्य हिरण्याक्ष मार्ग का अवरोध कर उनके सम्मुख खड़ा हो गया। भगवान् श्रीहरि ने गदा के प्रहार से उसकी जीवन-लीला समाप्त कर दी। उसके रक्त से उन आदि पुरुष का दिव्य विग्रह भींग गया। उन्होंने दाँत के सहारे ऊपर उठाई गई पृथिवी को खेल-खेल में आश्चर्यजनक रूप से जल के ऊपर टिका दिया। तत्पश्चात् जगत्प्रभु अपने परम धाम को चले गये।[१]

देवी भागवत के नवम स्कन्ध के नवम अध्याय में वर्णन किया गया है कि जिस समय वाराह रूपधारी विष्णु ने पृथिवी का जल से उद्धार किया था उस समय वह श्रीहरि (वाराह) को देखकर कामार्त हो उठी थी। फिर तो श्रीहरि ने पत्नी के रूप में स्वीकार कर बहुत काल तक पृथिवी-देवी के साथ रमण किया। इससे मंगल का जन्म हुआ और मंगल से घटेश की उत्पत्ति हुई—

विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसम्मता ।
तत्पुत्रो मंगलो ज्ञेयो घटेशो मंगलात्मजः ॥९/९/२२

ख—देवी भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में भी वाराह के अवतार की कथा अति संक्षिप्त रूप से वर्णित है। उसका प्रारूप इस प्रकार है —

एक समय कश्यपकुमार दुराचारी हिरण्याक्ष ने पृथिवी को चुराकर अगाध जल में डुबो दिया था। वह उसे ले जाकर पाताल लोक में रख दिया था। उस अवस्था में भगवान् विष्णु ने शूकर का रूप धारण करके उस दुष्ट दैत्य का वध

---

१. तद्रक्तपङ्कदिग्धाङ्गो भगवानादिपूरुषः ।
उद्धृत्य धरणीं देवो दंष्ट्रया लीलयाऽप्सु ताम् ॥
निवेश्य लोकनाथेशो जगाम स्थानमात्मनः । *देवीभागवत ८/२/३६-३७*

किया और पृथिवी को जल से बाहर निकाला। फिर उन्होंने पृथिवी को स्थिर रखने की व्यवस्था की ।[१]

देवी भागवत के तीनों स्थलों के कथानक को सम्मिलित करने पर ही वाराहावतार की कथा अपने समग्र रूप को धारण करती है। अत: उसे उसी रूप में देखना चाहिये ।

१. देवभागवत ४/१८

वीरभद्र-कथा

ब्रह्ममहापुराण

एक समय भगवान् शङ्कर मेरु के सुवर्ण-शृङ्ग पर विराजमान थे। जगदम्बा उमा उनके पार्श्वभाग की शोभा बढ़ा रही थीं। धनपति कुबेर आदि उनकी उपासना में निरत थे।

उसी समय गङ्गाद्वार (हरिद्वार, कनखल) में प्रजापति दक्ष ने यज्ञ का समायोजन किया। उस यज्ञ में विष्णु आदि सभी यज्ञभागी देवता आहूत एवम् उपस्थित थे।[1] दक्ष ने शङ्कर का आह्वान नहीं किया था। अत: उनकी उपस्थिति उस यज्ञ में नहीं थी।[2] इस पर शिव-भक्त दधीचि ने आपत्ति प्रकट की। किन्तु शिवद्रोही दक्ष ने उनकी एक भी बात न सुनी, न मानी।

देवमण्डली दक्ष के यज्ञ में भाग लेने के लिये आकाशमार्ग से गमन कर रही थी। उन्हें जाते देखकर पार्वती को जिज्ञासा हुई—ये लोग कहाँ जा रहे हैं? शङ्कर ने पार्वती से कहा—'प्रजापति दक्ष यज्ञ कर रहे हैं। उसी में भाग ग्रहण करने के लियं सकल देव-समूह जा रहा है।' पार्वती ने पूछा—'जब सभी लोग वहाँ जा रहे हैं तो फिर आप उसमें भाग ग्रहण करने क्यों नहीं जा रहे हैं?'[3] शङ्कर ने उत्तर दिया—'देवताओं ने ही यह सब किया है। सभी यज्ञों मे मेरा भाग प्रदान नहीं किया जाता है। ऐसा ही वे लोग धर्म मानते हैं।'[4]

शङ्कर के इस उत्तर को सुनकर सन्न रह गईं पार्वती । उन्हें महान् क्षोभ हुआ। उन्होंने कहा—'मैं कौन-सा दान, नियम, तप अथवा अनुष्ठान करूँ? जिससे मेरे पति को यज्ञ में भाग मिलने लगे। मेरे पति तो सब प्रकार से सर्वश्रेष्ठ देव हैं, महादेव हैं।'

---

१. विष्णुना सहिता: सर्व आगता यज्ञभागिन: ।। *ब्रह्ममहापुराण, ३७/२४*

२. रुद्रेण रहितं दृष्ट्वा ऋषीन् वाक्यमभाषत ।
ऋषयोऽस्मिन् महायज्ञे शङ्कर: सर्वनायक: ।
न दृश्यते विना तेन यज्ञोऽयं नैव शोभते ।। *वही, ३७/२७*

३. यज्ञमेतं महाभाग किमर्थं त्वं न गच्छसि ।
केन वा प्रतिषेधेन गमनं ते न विद्यते ।। *वही, ३७/३७*

४. सुरैरेव महाभागे सर्वमेतदनुष्ठितम् ।
यज्ञेषु मम सर्वेषु न भाग उपकल्पित: ।।
पूर्वभागोपपन्नेन मार्गेण वरवर्णिनि ।
न मे सुरा: प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धर्मत: ।। *वही, ३७/३८-३९*

शङ्कर ने पार्वती को समझाने का प्रयास किया। किन्तु उनको शान्ति न मिली, सन्तोष न हुआ। फिर तो उन्होंने क्रोधावेश में अपने मुख से एक अद्भुत प्राणी की सृष्टि की। यही 'वीरभद्र' हैं। वीरभद्र को उत्पन्न कर शङ्कर ने आदेश दिया—'शीघ्र दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करो। उसके नियम का नाश करो।' वीरभद्र ने शिवाज्ञा को शिरोधार्य किया। उन्होंने अपने शरीर के रोमकूपों से असंख्य रुद्रगणों की सृष्टि की। पार्वती के क्रोध से उत्पन्न महाकाली को भी अपने कर्म के साक्ष्य के लिये, उन्होंने साथ में ले लिया।[१]

वीरभद्र के सैनापत्य में रुद्रगणों की अगणित सेना वायुवेग से दक्ष की यज्ञस्थली में जा पहुँची। क्षण भर में ही उसने यज्ञ को उलट-पुलट कर रख दिया। मृग के रूप को धारण कर भागते हुए यज्ञ के शिर को बाण से काट डाला। इस भयंकर स्थिति को देखकर इन्द्र आदि देवों के साथ दक्ष प्रजापति ने हाथ जोड़कर पूछा—'आप कौन हैं?'[२] उत्तर में वीरभद्र ने कहा—'न तो मैं देव हूँ और न दैत्य ही। यहाँ मैं न खाने के लिये आया हूँ और न यज्ञ देखने के लिये ही। देवशिरोमणियों, मैं यज्ञ को विश्वस्त करने के लिये ही आया हूँ। मैं वीरभद्र के नाम से विख्यात हूँ। मेरा प्रादुर्भाव रुद्र के रौद्रकोप से हुआ है। यह भद्र काली हैं। इनका प्राकट्य देवी पार्वती के प्रचण्ड क्रोध से हुआ है।[३] देवाधिदेव महादेव के प्रेषित करने से ही यह यहाँ आई हैं। राजेन्द्र, तुम शङ्कर की शरण में जाओ। अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं है।

यज्ञ की दुर्दशा देखकर ब्रह्मा ने शङ्कर से विनती की—'सभी देवजन यज्ञ में आपके भाग को प्रदान करेंगे। आप अपने गणों को महाविनाश से रोकें। महादेव, आपके क्रोध से ऋषि, मुनि तथा देवों में किसी को भी शान्ति नहीं प्राप्त हो रही है।'[४] दक्ष भी मन-ही-मन शम्भु की शरण में गया। उसने उनकी बड़ी दिव्य और विस्तृत स्तुति की। आशुतोष शङ्कर उस पर प्रसन्न हो उठे। उन्होंने उसे पाशुपत व्रत का पालन करते हुए यज्ञ पूर्ण करने का आदेश दिया। यज्ञ में शङ्कर-पार्वती का भाग प्रदान किया गया।[५]

---

१. मन्युना च महाभीमा भद्रकाली महेश्वरी ।
आत्मनः कर्मसाक्षित्वे तेन सार्धं सहानुगा ॥ *ब्रह्ममहापुराण,* ३७/५१

२. ततः शक्रादयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः ।
ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा कथ्यतां को भवानिति ॥ *वही,* ३७/६९

३. भद्राकाली च विज्ञेया देव्याः क्रोधाद्विनिर्गता ।
प्रेषिता देवदेवेन यज्ञान्तिकमुपागता ॥ *वही,* ३७/७२

४. भवतेऽपि सुराः सर्वे भागं दास्यन्ति वै प्रभो ।
क्रियतां प्रतिसंहारः सर्वदेवेश्वर त्वया ॥ *वही,* ३७/८४-८५

५. अवाप्य च तथा भागं यथोक्तं चोमया भवः ॥ *वही,* ३७/११२

पद्ममहापुराण

दक्ष ने यज्ञ में शिव को आमन्त्रित नहीं किया। फलतः क्रुद्ध सती ने योगाग्नि में अपने शरीर को भस्म कर दिया। रुद्र ने जब इस समाचार को सुना तो उनके मन में दक्ष-यज्ञ को विनष्ट कर डालने का संकल्प उदित हुआ। फलस्वरूप उन्होंने दक्ष-यज्ञ का विनाश करने के लिये करोड़ों गणों को आज्ञा दी। यज्ञ-मण्डप में पहुँचकर उन्होंने सब देवताओं को पराजित किया और उन्हें भगाकर उस यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। यज्ञ नष्ट हो जाने से दक्ष का समस्त उत्साह समाप्त हो गया। वे उद्योगशून्य होकर देवाधिदेव पिनाकधारी भगवान् शिव के पास डरते-डरते गये, उनके शरणागत हुए और उनकी स्तुति की। प्रसन्न हुए शङ्कर ने कहा—'प्रजापते, मैंने तुम्हें यज्ञ का पूरा-पूरा फल दे दिया। तुम अपनी सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिये यज्ञ का उत्तम फल प्राप्त करोगे।' शिव की बात को सुनकर दक्ष प्रसन्न हो अपने आवास पर चले गये।

टिप्पणी—इस कथा में वीरभद्र की कोई चर्चा नहीं है । न तो उनके प्रादुर्भाव की कथा है और न उनके द्वारा यज्ञविध्वंस की बात । दक्ष-यज्ञ का विनाश सामान्य शिव-गणों ने ही किया था। यहाँ दक्ष के कबन्ध (धड़) से बकरे के शिर को जोड़ने की चर्चा भी नहीं की गई है।[१]

शिवमहापुराण

प्रजापति दक्ष ने कनखल में यज्ञ किया। यह यज्ञ शिव को अपमानित करने के उद्देश्य से समायोजित था । अतः उसमें भाग लेने के लिये न तो शिव को आमन्त्रित किया गया और न उनका भाग ही रक्खा गया। यह स्थिति देखकर शिव-प्रिया सती ने क्रुद्ध होकर आत्मोसर्ग कर दिया। सती के शरीर-त्याग की बात सुनकर शङ्कर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने शिर से एक जटा उखाड़ी और उसे भूतल पर पटक दिया। पटकने से उस जटा के दो टुकड़े हो गये। उसके पूर्व भाग से महाभयंकर महाबली वीरभद्र प्रकट हुए, जो समस्त शिवगणों के अग्रणी हैं। जटा के दूसरे भाग से महाकाली का प्राकट्य हुआ, जो देखने में बड़ी भीषण आकृतिवाली थीं।

वीरभद्र को भगवान् शङ्कर ने आदेश दिया—'वीरभद्र, दक्ष सम्प्रति एक यज्ञ करने के लिये समुद्यत है। तुम याग-परिवार सहित उस यज्ञ को भस्म करके फिर शीघ्र मेरे स्थान पर लौट आओ।' स्वामी की आज्ञा मिलते ही वीरभद्र दक्ष

---

१. पद्ममहापुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय- ५

की यज्ञ-भूमि में पधारे। उनके साथ गणों की विशाल सेना थी। वहाँ पहुँचकर वीरभद्र ने देवों को पराजित किया। यज्ञ को तहस-नहस कर डाला। दक्ष की गर्दन को तोड़कर यज्ञ-कुण्ड में डाल दिया । तत्पश्चात् वे अपने स्वामी शङ्कर के पास वापस लौट आये। इसके बाद वीरभद्र प्रमुख शिव-गणों में श्रेष्ठ माने जाने लगे।[१]

श्रीमद्भागवतमहापुराण

सती ने पिता के यज्ञ में शरीर का परित्याग कर दिया। इसकी सूचना नारद ने भगवान् शङ्कर को दी। शङ्कर क्रुद्ध हो गये। उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़कर जमीन पर पटक दी।उससे अत्यन्त भयंकर वीरभद्र का प्रादुर्भाव हुआ। वीरभद्र को शङ्कर ने आदेश दिया—'वीररुद्र, तू मेरा अंश है। अत: मेरे पार्षदों का अधिनायक बनकर तू तुरन्त ही जा और दक्ष तथा उसके यज्ञ को नष्ट कर दे।' स्वामी की आज्ञा मिलते ही वीरभद्र सदलबल दक्ष की यज्ञ-भूमि में पहुँचे। यज्ञ को तहस-नहस कर दिया। वीरभद्र ने प्रजापति दक्ष को पकड़ लिया। उन्होंने उसे भूमि पर पटक दिया और उसकी छाती पर चढ़ बैठे। फिर वीरभद्र एक तीक्ष्ण तलवार से उसका शिर काटने लगे। किन्तु अतिशय प्रयास करने पर भी वे उसका शिर न काट सके। जब किसी भी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से दक्ष की त्वचा कट न सकी तो वीरभद्र के आश्चर्य की सीमा न रही। तब उन्होंने यज्ञ-मण्डप में यज्ञ पशुओ को जिस प्रकार मारा जाता था, उसे देखकर उसी प्रकार दक्षरूप उस यजमान पशु का शिर धड़ से अलग कर दिया। शिर को वीरभद्र ने, अत्यन्त कुपित होकर, यज्ञ की दक्षिणाग्नि में डाल दिया और उस यज्ञशाला में आग लगाकर, यज्ञ को विध्वस्त करके, कैलास पर्वत को लौट गये।

टिप्पणी—दक्ष-वध के प्रसङ्ग से विदित होता है कि यज्ञ-पशुओं को बड़ी ही निर्दयता के साथ, उनका शिर मरोड़ कर, तोड़कर, मारा जाता था। पशुओं को जितनी पीडा होती थी, कदाचित् उतनी ही मात्रा में पुण्य-लाभ की बात लोगों के धर्मान्ध मस्तिष्क में विराजमान थी। जो भी कुछ हो, प्रसङ्ग इसी दिशा ही ओर निर्देश करता है।[२]

लिङ्गमहापुराण

दक्ष ने कनखल में यज्ञ का समायोजन किया। उसने वहाँ सती का अनादर किया। अपमानित क्रुद्ध सती ने योगाग्नि से अपने शरीर को पिता के यज्ञ-स्थल में ही दग्ध कर दिया।

---

१. शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, सतीखण्ड, अध्याय- ३२-४३

२. श्रीमद्भागवतमहापुराण, चतुर्थ स्कन्ध, अ० ५

सती के शरीर-त्याग की बात जब शङ्कर को विदित हुई तो उनके कोप का ठिकाना न रहा। फलतः उन्होंने अपने गण वीरभद्र को दक्ष-यज्ञ-विध्वंस के लिये प्रेषित किया। वीरभद्र ने अपने रोमों से अगणित गणों को उत्पन्न किया और उन्हें साथ ले कर दक्ष के यज्ञ-स्थली के लिये प्रस्थन किया। उस समय भगवान् ब्रह्मा वीरभद्र के रथ का सञ्चालन कर रहे थे। वीरभद्र के प्रस्थान करते ही चतुर्दिक् उत्पातों की शृङ्खला प्रारम्भ हो गई।

यज्ञ-स्थली में पहुँचकर वीरभद्र ने अपने गणों के साथ भयंकर और अवर्णनीय उत्पात मचाया। विष्णु, इन्द्र, मृगरूपधारी यज्ञ और दक्ष के शिर को भी वीरभद्र ने काटकर अलग कर दिया। शिवगणों ने दक्ष-यज्ञ में भाग ले रहे ऋषियों, मुनियों और स्त्रियों को भी नहीं छोड़ा। दक्ष के शिर को काटकर वीरभद्र ने उसे अग्नि-कुण्डल में डाल दिया। कालाग्नि रुद्र के समान क्रुद्ध वीरभद्र को ब्रह्मा ने प्रार्थना कर शान्त किया। उस समय भगवान् शङ्कर अपने गणों के साथ अन्तरिक्ष में खड़े होकर यज्ञ-विध्वंस की लीला देख रहे थे। देवों और ब्रह्मा ने यज्ञ में मारे गये व्यक्तियों को जीवित कर देने की प्रार्थना की। शङ्कर ने प्रसन्न हो उसे स्वीकार किया और सबके शरीर को अक्षत करके जीवित कर दिया।[१] उन्होंने दक्ष के स्कन्ध पर सर्वथा नवीन एक शिर की कल्पना कर जोड़ दिया।[२] जीवित हुए दक्ष ने शङ्कर की स्तुति की। प्रसन्न होकर शङ्कर ने उसे गणपति-पद प्रदान किया। फिर सभी से स्तुत एवं पूजित होकर भगवान् शङ्कर अन्तर्धान हो गये।

स्कन्दमहापुराण

दक्ष ने अपने यज्ञ में शिव को आमन्त्रित नहीं किया। सती ने यज्ञ में जाकर पिता को फटकारा। दक्ष ने सती का अपमान किया। सती ने शिव, रुद्र आदि नामों का उच्चारण करते हुए अग्नि में प्रवेश किया। इसी समय महात्मा नारद जी ने महादेव जी के पास जाकर दक्ष की सारी करतूतें कह सुनाई। सुनकर भयङ्कर पराक्रम प्रकट करने वाले परम क्रोधी जगदीश्वर भगवान् रुद्र अतिशय क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़ कर उसे पर्वत के शिखर पर पटक दिया। उससे काली के साथ वीरभद्र प्रकट हुए। साथ ही करोड़ों भूतों की भी उत्पत्ति हुई।

१. देवोऽपि तत्र भगवानन्तरिक्षे वृषध्वजः ।
सगणः सर्वदः सर्वः सर्वलोकमहेश्वरः ॥
प्रार्थितश्चैव देवेन ब्रह्मणा भगवान् भवः ।
हतानां च तदा तेषां प्रददौ पूर्ववत्तनुम् ॥ *१/१००/४२,४४*

२. कल्पयामास वै वक्त्रं लीलया च महान् भवः ॥ *१/१००/४७*

वीरभद्र के आज्ञा माँगने पर भगवान् शङ्कर ने कहा—'महाबाहु वीर, शीघ्र जाओ और दक्ष-यज्ञ का विनाश करो।'

शङ्कर की आज्ञा मिलते ही कालिका और गणों के साथ वीरभद्र दक्ष की यज्ञशाला में जा पहुँचे। वहाँ देवों के साथ शिव-गणों का भीषण संग्राम हुआ। वीरभद्र के असह्य तेज को न सह सकने पर देव-मण्डली ने युद्धाङ्गण से पलायन किया। दक्ष अत्यन्त भयभीत होकर अन्तर्वेदी में छिपे हुए थे। इस बात का पता लगने पर रोष से भरे हुए वीरभद्र उन्हें पकड़ लाये और उनका जबड़ा पकड़कर शिर के ऊपर तलवार से प्रहार किया। फिर दक्ष के कटे हुए शिर को उन्होंने तुरन्त ही यज्ञ-कुण्ड में डालकर जला दिया।

यज्ञ-विध्वस्त हो जाने के बाद वीरभद्र अपने गणों के साथ वहीं विराजमान रहे। ब्रह्मा ने स्तुति कर शङ्कर को प्रसन्न किया। शङ्कर कनखल के यज्ञ में पधारे। भगवान् शङ्कर को आया देखकर वीरभद्र ने, समस्त गणों के साथ उनके चरणों पर प्रणाम किया। शङ्कर ने वीरभद्र को आदेश दिया कि वह दक्ष को शीघ्र वहाँ ले आवें। स्वामी की आज्ञा मिलने पर वीरभद्र ने बड़ी उतावली के साथ दक्ष का धड़ लाकर उनके सामने डाल दिया। तब शङ्कर ने कहा—'वीर, इस दुरात्मा दक्ष का मस्तक कौन ले गया ?' यदि मिल जाय तो कुटिल होने पर भी इसे मैं जीवित कर दूँगा।' प्रभु की बात सुनकर वीरभद्र ने विनम्र होकर कहा—'भगवन् मैंने उसी समय इसके मस्तक को अग्नि में होम कर दिया था। अब तो केवल पशु का शिर बचा है। किन्तु उसका मुख बहुत विकृत हो गया है। '

इन बातों को सुनकर भगवान् शिव ने पशु के भयंकर मुख को, जिसमें दाढ़ी भी लगी थी, दक्ष के धड़ से जोड़ कर उसे जीवित कर दिया। फिर तो दक्ष ने शङ्कर की दिव्य स्तुति की।[१]

कूर्ममहापुराण

सती-देह-त्याग के अवसर पर शाप देकर शङ्कर कैलास पर्वत पर चले गये। ब्रह्मपुत्र दक्ष भी प्रचेता-पुत्र बना। उसे इस शरीर में भी शङ्कर से अपना पूर्व वैर विदित था। अतः शङ्कर को अपमानित करने के लिये उसने गङ्गाद्वार (हरद्वार) में एक विशाल यज्ञ का समायोजन किया। सारे देव, ऋषि-मुनि आहूत थे, किन्तु शङ्कर अनाहूत थे उस यज्ञ में। महर्षि दधीच ने इस स्थिति को देखा। वे शिव-भक्त थे। अतः दक्ष से इसका प्रतिकार किया उन्होंने। दक्ष शिव की निन्दा कर रहा

---

१. स्कन्दमहापुराण, माहेश्वर-केदारखण्ड, अध्याय- ३-५

था। आमन्त्रित देव और मुनि उसका समर्थन कर रहे थे। ब्रह्मा ने इस स्थिति को देखा। वे सबके देखते-देखते वहाँ से अदृश्य हो गये, चले गये।[१] ब्रह्मा के चले जाने पर दक्ष ने श्रीहरि की शरण ग्रहण की। यज्ञ निर्बाध गति से चल रहा था। दधीचि ने दक्षपक्षपाती ब्राह्मणों, मुनियों को शाप दिया कि वे आगे चलकर त्रयीबाह्य बनेंगे।

इधर कैलास पर्वत पर पार्वती शङ्कर के साथ बैठी थीं। उन्हें दक्ष-यज्ञ का समाचार मिला। उन्होंने भगवान् शङ्कर से कहा—'पूर्व जन्म के मेरे पिता दक्ष यज्ञ कर रहे हैं। उन्होंने आपकी निन्दा की है। आपको तिरस्कृत किया है। देव और महर्षि आदि उनकी सहायता कर रहे हैं। अतः आप शीघ्र उस यज्ञ का विध्वंस कीजिये। मैं आप से यही वरदान माँग रही हूँ।'[२]

शङ्कर ने अर्धाङ्गिनी पार्वती की बात को पूर्ण सम्मान दिया। दक्ष-यज्ञ-विध्वंस के लिये उन्होंने तत्काल एक रुद्र की रचना कर डाली । वह प्रलयाग्नि के समान दुर्धर्ष था। उसका नाम था—वीरभद्र।[३] इस कार्य में पार्वती ने शङ्कर का साथ दिया। उन्होंने भद्रकाली की सृष्टि की। सहस्र रुद्र-गणों के साथ वीरभद्र और भद्रकाली पहुँचे गङ्गाद्वार में जहाँ कि दक्ष का यज्ञ प्रचलित था। उन लोगों ने दक्ष के यज्ञ को विध्वस्त कर दिया। यज्ञ की सारी सामग्री उठाकर गङ्गा के प्रवाह में प्रक्षिप्त कर दी। देवों, ऋषियों और मुनियों को भी मर्दित किया। विष्णु भी वीरभद्र से पराजित हुए। उन दोनों के प्रलयंकर युद्ध को वारित किया था ब्रह्मा ने। उन्होंने ही स्तुति कर भगवान् शङ्कर को प्रसन्न किया। उन्हीं की प्रार्थना पर शङ्कर जगदम्बा पार्वती को साथ लेकर यज्ञ-भूमि में पधारे। वहाँ ब्रह्मा, दक्ष और देवों ने शङ्कर की विशिष्ट स्तुति की। जगदम्बा को विशेषरूप से उन लोगों ने प्रसन्न किया। प्रसन्न हुई देवी ने भगवान् शङ्कर से सब पर कृपा करने की प्रार्थना की।

भगवान् शङ्कर तो आशुतोष ठहरे ही। वे प्रसन्न हो उठे और कहे—'देवों,

---

१. हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मविदाम्वरः ।
पश्यतामेव सर्वेषां क्षणादन्तरधीयत ।। *कूर्ममहापुराण, १/१५/२२*

२. दक्षो यज्ञेन यजते पिता मे पूर्वजन्मनि ।
विनिन्द्य भवतो भावमात्मानं चापि शङ्कर ।।
देवा महर्षयश्चासंस्तत्र साहाय्यकारिणः ।।
विनाशयाशु तं यज्ञं वरमेतं वृणोम्यहम् ।। *वही, १/१५/३५-३६*

३. एवं विज्ञापितो देव्या देवदेवः परः प्रभुः ।
ससर्ज सहसा रुद्रं दक्षयज्ञजिघांसया ।।
वीरभद्र इति ख्यातं........................। *वही, १/१५/३७-४०*

ऋषियों और दक्ष आप लोग अपने अभीप्सित स्थानों को जाँय। मैं आप लोगों पर पूर्ण प्रसन्न हूँ। इतना स्मरण रखना कि मैं सम्पूर्ण यज्ञों में सम्पूज्य हूँ, निन्दा का पात्र नहीं। दक्ष, तुम मेरी भक्ति में निरत हो जाओ। कल्प के अन्त में तुम मेरे गण-पति बनोगे।[१] इस प्रकार सबपर अनुग्रह करके पशुपति शङ्कर, माताजी के साथ, कैलास चले गये।

उस समय ब्रह्मा वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने दक्ष के व्याज से सारे संसार को उपदेश दिया कि विष्णु और शङ्कर अभिन्न हैं। इनमें अभेद-बुद्धि रखने वाला व्यक्ति मुक्ति का पात्र होता है।[२] उन्होंने यह भी कहा कि शङ्कर की निन्दा आत्मविनाशिनी होती है।

•

---

१. संपूज्यः सर्वयज्ञेषु न निन्द्योऽहं विशेषतः ।
त्वञ्चापि शृणु में दक्ष वचनं सर्वरक्षणम् ॥
भविष्यसि गणेशानः कल्पान्तेऽनुग्रहान्मम ॥ *कूर्ममहापुराण, १/१५/७७-७८*

२. वेदानुवर्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा ।
एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजो भवन्ति ते ॥ *वही, १/१५/८९-९०*

शिव-कथा

शिवमहापुराण

क—शिवमहापुराण की रुद्रसंहिता के सृष्टि-खण्ड में कहा गया है कि महाप्रलय की बेला में स्थावर-जङ्गम सभी विनष्ट हो चुके थे। उस समय सर्वत्र अन्धकार का ही साम्राज्य था। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रमण्डल, दिन, रात्रि, अग्नि, अनिल, भू, जल आदि कुछ भी न थे। किसी भी शक्ति का पता न था। चतुर्दिक् रिक्तता का ही साम्राज्य था। उस समय किसी भी प्रकार की चेतना न थी। यह एक ऐसी अवस्था थी जिसमें चेतन-अचेतन कुछ भी न था। सर्वत्र अन्धतमस् व्याप्त था। किन्तु ऐसी भी अवस्था में एकमात्र सद्ब्रह्म ही अवशिष्ट था।[1] यह एक ऐसी सत्ता है जो वाणी और मन का विषय नहीं बन सकती। उसका न कोई नाम है और न रूप ही। वह न तो स्थूल है और न कृश ही । सत्य तो यह है कि उसकी कोई परिभाषा नहीं दी जा सकती। श्रुति भी चकित होकर उसकी सत्ता स्वीकार करती है। वह सत्य ज्ञान और आनन्दमय है।[2] शिवमहापुराण उसी को परंब्रह्म शिव की संज्ञा से अभिहित करता है।[3]

परं ब्रह्म शिव की शक्ति की सत्ता अस्फुटावस्था में रहती है। परं ब्रह्म शिव से प्रमात्म-शिव का प्रादुर्भाव होता है। इनमें शक्ति सुस्फुट एवं कार्योन्मुख होकर वर्तमान रहती है। परमात्म-शिव ही जगत् के कर्ता माने गये हैं। इनकी शक्ति को पराशक्ति कहते हैं। परमात्मशिव के पञ्चविध जागतिक कृत्य कहे गये हैं—सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव एवम् अनुग्रह। इस संसार का निर्माण परशिव की इच्छामात्र से होता है। संसार इन्हीं के स्वरूप का विस्तार है। संसार का प्रत्येक कार्य इनकी इच्छाशक्ति का विलास है। यही ब्रह्मा और विष्णु के उद्भावक हैं, रचयिता हैं । यह निर्गुण निराकार एवं सगुण साकार दोनों ही हैं ।[4] लिंग इनके

---

१. इत्थं सत्यन्धतमसे सूचीभेद्ये निरन्तरे ।
तत्सद्ब्रह्मेति यच्छ्रुत्वा सदेकं प्रतिपद्यते ॥ *शिवमहापुराण, २/१/६/७*

२. अभिधत्ते सचकितं यदस्तीति श्रुतिः पुनः ।
सत्यं ज्ञानमनन्तं च परानन्दं परं महः ॥ *वही, २/१/६/११*

३. तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञकम् ॥ *वही, ४/४१/१४*

४. तदेव शिवरूपं हि पठ्यते च मुनीश्वराः ।
सकलं निष्कलं चेति द्विविधं वेदवर्णितम् ॥ *शिवमहापुराण ४/४/१/९*

निर्गुण निराकार का बोधक है और प्रतिमा इनके सगुण आकार को बतलाती है।

ख—विष्णु के अवतारों की भाँति, शिवमहापुराण की शतरुद्र-संहिता एवं कोटिरुद्र-संहिता में शिव के विभिन्न अवतार की कथाओं का वर्णन किया गया है। इन अवतारों में १. अर्द्धनारीश्वरावतार, २. नन्दीश्वरावतार, ३. वीरभद्रावतार, ४. भैरवावतार, ५. गृहपत्यवतार, ६. एकादश रुद्रावतार, ७. दुर्वासावतार, ८. पिप्पलादावतार, ९. अश्वत्थामावतार, १०. दशावतार तथा ११. अष्टाविंशति योगावतार प्रसिद्ध है।[१]

टिप्पणी—शिव की नीलकण्ठ-कथा, त्रिपुरारि-कथा एवं ज्योतिर्लिङ्गों की कथाएँ वर्णानुक्रमणी के अनुसार तत्तस्थानों में लिखी गई हैं। अत: इन्हें भी वहीं देखें।

नारदमहापुराण

नारद-पुराण में शिव और काशी से सम्बद्ध एक ऐसी कथा वर्णित है, जो शिवमहापुराण में कालभैरव से सम्बन्ध रखती है। किन्तु यहाँ कालभैरव की चर्चा नहीं की गई है। इस पुराण में काशी को वस्तुत: मूल वैष्णव तीर्थ स्वीकार किया गया है। शैवतीर्थ की ख्याति तो इसे बाद में, यहाँ शिव के आने के अनन्तर, मिली। नारद पुराण का कथन है कि अवैष्णव तीर्थ में मुक्ति मिलती ही नहीं है। काशी के मुक्तिदायक होने में इसका मूल वैष्णव तीर्थ होना ही कारण है।[२] किन्तु इस पुराण का यह कथन साम्प्रदायिकता की भावना से ग्रस्त प्रतीत होता है। कथा संक्षिप्त है और उसका रूप इस प्रकार है—

एक समय शङ्कर पितामह ब्रह्मा से मिलने उनके लोक में गये। उस समय ब्रह्मा अपने चारों आननों से चारों वेदों का पाठ कर रहे थे। शङ्कर उन्हें प्रणाम कर उनके समक्ष बैठ गये। ब्रह्मा का वेद-पाठ उन्हें बहुत अच्छा लगा। अत: पूरी तन्मयता से वे उसे सुनने लगे।[३] ब्रह्मा का पञ्चम मुख खाली था। अत: वह प्रगल्भ प्रतीत हो रहा था। शङ्कर को यह बात अच्छी नहीं लगी। उसकी इस प्रगल्भता को

---

१. १-११ देखिये-शिवमहापुराण, १-३.३; २- ३.६; ३. २.२.३२; ४- ३.८; ५- ३.१३; ६- ३.१८; ७- ३.१९; ८- ३.२४; ९- ३.३६; १०- ३.१७; ११- ३.४-५; तथा ७-२.९

२. आद्यं हि वैष्णवं स्थानं पुराणाः संप्रचक्षते । नावैष्णवे स्थले मुक्तिः सर्वस्य तु कदाचन ॥
माधवस्य पुरी चेयं पूर्वमासीद्द्विजोत्तम । मुक्तिदा सर्वजन्तूनां सर्वपापप्रणाशिनी ॥
नारदपु०, उ०ख०, २९/४-५

३. चतुर्भिरद्भुतैर्वक्त्रैश्चतुरो निगमान् मुदा ।
उद्गिरन्तं जगन्नाथं दृष्ट्वा प्रीतोऽभवत्तदा ॥ *वही, २९/८*

देखकर शङ्कर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने उस पञ्चम मुख को अपने वाम करके नख के अग्र भाग से काट दिया।[१] ब्रह्मा का काटा गया वह पञ्चम शिर शङ्कर के कर-पल्लव में सट गया। शङ्कर रात-दिन अपने उस वाम हस्त को झटकते रहे। किन्तु वह पृथक् नहीं हुआ, गिरा नहीं।

ब्रह्मा दु:खी होकर शङ्कर को देखते ही रह गये। शङ्कर भी लज्जित होकर वहाँ से शीघ्र ही बाहर निकल गये। लाख प्रयास के बाद भी जब शिवशङ्कर के हाथ से ब्रह्मा का शिर पृथक् नहीं हुआ, तो चिन्ता से व्याकुल होकर, उन्होंने गरुध्वज का स्मरण किया। स्मरण करते ही भगवान् विष्णु शङ्कर के सम्मुख उपस्थित हो गये। निष्प्रभ शङ्कर ने श्रद्धा-सहित उन्हें प्रणाम किया। विष्णु ने उनसे कहा—'शम्भु, ब्रह्मा के शिर को काटकर आपने पाप किया है। अत: कुछ काल तक इस पाप के फल का भोग आपको करना ही होगा। क्योकि शुभ-अशुभ कर्मों के फल को अवश्य ही भोगना पड़ता है। सैकड़ों जन्म व्यतीत हो जाने पर भी बिना भोगा गया कर्म क्षीण नहीं होता।[२] उस पर ब्रह्महत्या बेजोड़ महापाप है। इसके बराबर दूसरा कोई पाप है ही नहीं। ब्रह्महत्या से अभिभूत आप एक भी क्षण कहीं रुक नहीं सकते। इधर देखिये शङ्कर, घोर रूपिणी यह ब्रह्म-हत्या आपको निगल जाने के लिये इस दिशा में ही दौड़ी चली आ रही है। अत: आपको बारह वर्ष तक एक स्थान पर नहीं रहना चाहिये। सकल तीर्थों में भ्रमण कीजिये। वहाँ के जल में अपने वाम कर का प्रक्षालन कीजिये। कपाल में भिक्षा ग्रहण कीजिये। तभी जाकर आप विशुद्ध हो सकते हैं।'

शङ्कर की तीर्थ यात्रा प्रारम्भ हुई। वे सर्वप्रथम बदरिकाश्रम गये। फिर कुरुक्षेत्र की यात्रा की। दोनों तीर्थों में तीन-तीन वर्ष व्यतीत किये। कुरुक्षेत्र में प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने शङ्कर को काशी जाने की प्रेरणा दी। तीर्थों में भ्रमण करते हुए शङ्कर काशी पहुँचे। काशी की सीमा में प्रवेश करके शङ्कर ने पीछे की ओर मुड़ कर देखा ब्रह्म-हत्या नहीं दिखलाई पड़ी। वह काशी की सीमा में प्रवेश करने का साहस न कर सकी।[३] अविमुक्त क्षेत्र की इस महत्ता को देखकर शङ्कर ने

---

१. स क्रोधजन्मा विप्रेन्द्र तस्य प्रागल्भ्यमक्षमन् ।
चकर्त तन्नखाग्रेण खस्थं वक्त्रं त्रिलोचन: ॥ *नारदपु०, उ०ख० २९/१०*

२. अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म ह्यपि जन्मशतै: प्रिय ॥ *वही, २९-१८*

३. गच्छ काशीमितो भ्रान्त्वा तीर्थानि बहुशो हर। ततो हरिं नमस्कृत्य परीत्य बहुधा तथा ।
क्रमात्तीर्थाटनं कुर्वन्नविमुक्तपुरीं गत: । अविमुक्तस्य सीमायां प्राविशद्वीक्ष्य धूर्जटि: ।
नापश्यत्तामनुप्राप्तां ब्रह्महत्यां बहि: स्थिताम् ॥ *नारदमहापुराण, उ०ख०, २९/३६-३८*

'भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने वाले विष्णु से कहा—'गदाधर, मैं आपके क्षेत्र में बसना चाहता हूँ। क्योंकि आपके इस क्षेत्र की सीमा के भीतर ब्रह्महत्या का प्रवेश नहीं है। आप क्षेत्रदान कर मेरे ऊपर करुणा कीजिये।[१] यदि मैं इस क्षेत्र से बाहर निकलूँगा तो ब्रह्महत्या मेरा पुनः पीछा करेगी। आपके क्षेत्र में निवास करने से त्रिलोकी में मेरी पूजा-आराधना होगी।'

शङ्कर की बात सुनकर रमापति ने कहा—ऐसा ही होगा। तभी से काशी को शैव-क्षेत्र कहा जाता है।[२] इसके पूर्व केशव-क्षेत्र के नाम से इसे जाना जाता था। किसी समय करुणा-परवश केशव के नेत्रों से अश्रु-बिन्दु भूतल पर टपक पड़े। उनसे बिन्दुसरोवर की रचना हो गई। माधव की आज्ञा से वृषध्वज शङ्कर ने उस सरोवर में स्नान किया। वहाँ स्नान करते ही शङ्कर के हाथ में संलग्न ब्रह्मा का शिर अपने आप ही गिर पड़ा। तभी से 'बिन्दुसरोवर' कपालमोचन तीर्थ के नाम से विख्यात हो गया।[३]

बिन्दुमाधव ने अपना धाम त्रिशूलधारी शङ्कर को प्रदान कर दिया और उनके भक्तिभाव से निबद्ध होकर वहीं स्थित भी हो गये। काशी करोड़ सूर्यों के समान प्रकाशित है। काशी के सेवन में शिव-प्रेरित बहुत से विघ्न भी आते हैं। किन्तु शिवार्चक विष्णु की स्तुति कर इन विघ्नों से पार हो जाते हैं। यहाँ स्नान, दान, देवार्चन और जप की उतनी प्रशंसा नहीं है जितनी की देह-त्याग की। यहाँ मरने मात्र से व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है।[४]

---

१. इच्छामि वसितुं क्षेत्रे तव चक्रगदाधर ।
त्वत्क्षेत्रसीमाबाह्यस्था ब्रह्महत्या यदीक्षते ॥
क्षेत्रदानेन कारुण्यं कुरु मे गरुडध्वज । *नारदमहापुराण, उ०ख० २९/५४/५५*

२. तथेति प्रतिपेदे च क्षीरसागरजाप्रियः ।
ततः प्रभृति विप्रेन्द्र शैवं क्षेत्रं निगद्यते ॥ *वही, उ०ख० २९/५७*

३. क्षेत्रं तु केशवस्येदं पुराणं कवयो विदुः
कृपया संपरीतस्य माधवस्य द्विजोत्तम ।
नेत्राभ्यां निर्गतं वारि तेन बिन्दुसरोऽभवत् ।
माधवस्याज्ञया तत्र सस्नौ देवो वृषध्वजः ।
स्नातमात्रे हरे तत्तु कपालं पाणितोऽपतत् ।
कपालमोचनं नाम तत्तीर्थं ख्यातिमागतम् ॥ *वही, ५८-६०*

४. नात्र स्नानं प्रशंसन्ति न जपं न सुरार्चनम् ।
नापि दानं द्विजश्रेष्ठ मुक्त्वैकं देहपातनम् ॥
मृत्युं प्राप्य नरः कामं कृतकृत्यो भवेद्ध्रुवम् ॥ *वही, २९/६६-६७*

सती-कथा

ब्रह्ममहापुराण

एक समय की घटना है। प्रजापति दक्ष ने अपनी आठ कन्याओं को अपने घर आहूत किया। उनके पति भी उनके साथ थे। दक्ष ने उनका पर्याप्त सम्मान किया। किन्तु शम्भु से द्वेष रखने के कारण उसने न तो अपनी सबसे बड़ी बेटी सती को आहूत किया और न शम्भु को ही। विद्वेष का कारण था, कभी शम्भु ने अपने श्वसुर को प्रणाम नहीं किया था।[१]

जब सती को पता चला कि उनकी बहनें पिता के घर गई हुई हैं, तो वे बिना बुलाये ही स्वयं वहाँ चली गईं। दक्ष ने अपनी अन्य बेटियों की भाँति सती का कुछ विशेष मान-सम्मान नहीं किया। इस पर सती को क्रोध आ गया। उन्होंने दक्ष से कहा—'पिताजी, मैं आपकी पुत्रियों में सर्वश्रेष्ठ हूँ। प्रतिष्ठा की भी दृष्टि से वरिष्ठ हूँ। ऐसी स्थिति में आपने मेरा समुचित सम्मान न करके निन्दनीय कार्य किया है।' सती की बात सुनकर दक्ष के नेत्र क्रोध से आरक्त हो उठे । उसने कहा—'सती, मेरी सारी पुत्रियाँ तुमसे अधिक श्रेष्ठ और वरिष्ठ हैं। उनके पति-जन भी त्र्यम्बक की अपेक्षा गुणों के कारण श्रेष्ठ हैं। यही कारण है कि वसिष्ठ, अत्रि, पुलस्त्य, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, भृगु तथा मरीचि आदि मेरे श्रेष्ठ जामाताओं से शंकर स्पर्धा करते हैं और वे लोग भी उनसे वैसा ही भाव रखते हैं। मुझसे प्रतिकूल शम्भु की अर्धाङ्गिनी होने के कारण मैं तुम्हारा सम्मान नहीं करता।' सती ने दक्ष की इस बात को सुना। वे क्रुद्ध हो उठीं। उन्होंने कहा—'आप सब प्रकार से निर्दोष शंकर से द्वेष रखते हैं, उनकी निन्दा करते हैं। अत: आपसे उत्पन्न इस शरीर को अब मैं धारण नहीं करूँगी।' ऐसा कह कर सती ने योगाग्नि के द्वरा वहीं अपने शरीर को परित्यक्त कर दिया, भस्म कर दिया। इस समग्र घटना को सुनकर शंकर के क्रोध का पारावार न रहा। उन्होंने दक्ष के विनाश का निश्चय कर लिया। वे दक्ष के पास पहुँच गये। वहाँ उन्होंने दक्ष को मनुष्य-योनि में जन्म लेने

---

१. दक्षस्यासन्नष्ट कन्या याश्चैव पतिसङ्गता: ।
स्वेभ्यो गृहेभ्यश्चानीय ता: पिताऽभ्यर्चयद् गृहे ॥
तासां ज्येष्ठां सती नाम पत्नी या त्र्यम्बकस्य वै ।
नाजुहावात्मजां तां वै दक्षो रुद्रमभिद्विषन् ॥
अकरोत्सन्नीतिं दक्षे न च कांचिन्महेश्वर: ॥ *ब्रह्ममहापुराण, ३२/९, ११*

का शाप दिया। दक्ष ने भी उन्हें यज्ञ से बहिष्कृत होने और भूलोक में ही निवास करने का प्रतिशाप दिया। शंकर के शाप के कारण ही दक्ष ने अपने स्वायम्भुव शरीर का परित्याग कर मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण किया । वे प्राचीनबर्ही के पुत्र प्रचेताओं की पत्नी मारिषा से उत्पन्न हुए। वहाँ भी उनका नाम दक्ष ही रक्खा गया।[1]

पद्ममहापुराण

अत्यन्त प्राचीनकाल की बात है । दक्ष ने गंगाद्वार (हरिद्वार) में यज्ञ किया। उसमें सभी लोकों के प्रधान लोग सादर उपस्थित थे। शुभ लक्षणा सती ने इन सारे आयोजनों को देखा। तदनन्तर उन्होंने अपने पिता दक्ष से सविनय कहा—'पिता जी, सभी माननीय जन आपके यज्ञ में आहूत हो पधारे हैं। केवल मेरे पति भगवान् शङ्कर ही इस यज्ञ-मण्डप में नहीं आये हैं। उनके बिना यह सारा आयोजन मुझे सूना-सा ही जान पड़ता है। मैं समझती हूँ कि आपने मेरे पति को आमन्त्रित नहीं किया है। अवश्य ही आप उन्हें भूल गये हैं। इसका कारण क्या है ?'

दक्ष ने सधैर्य सती के कथन को सुना। सती उन्हें प्राणों से भी बढ़कर प्रिय थी। बेटी को सस्नेह गोद में बैठाकर दक्ष ने कहा—'बेटी, तुम अपने पति को आमन्त्रित न करने का जो कारण है उसे सुनो—'यहाँ जो भी निमन्त्रित और उपस्थित हैं, वे बहुत ही शिष्ट, सभ्य, सुसंस्कृत और सुसज्जित हैं। तुम्हारे पति अपने शरीर में राख लपेटे रहते हैं। त्रिशूल और दण्ड लिये नङ्ग-धड़ङ्ग सदा श्मशान भूमि में ही विचरण किया करते हैं। वे नागराज वासुकि को यज्ञोपवीत के रूप में धारण करते हैं। इसी रूप में सकल वसुधा पर भ्रमण करते हैं। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से घृणित कार्य तुम्हारे पतिदेव करते रहते हैं। यह सब मेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात है। जैसा उनका वस्त्र है, उसे पहनकर वे इस यज्ञ-मण्डप में आने योग्य नहीं हैं । बेटी, इन्हीं दोषों के कारण तथा लोक-लज्जा के भय से मैंने उन्हें नही बुलाया। जब यज्ञ समाप्त हो जायेगा, तब मैं तुम्हारे पति को ले आऊँगा। फिर तो त्रिलोकी में सबसे बढ़-चढ़ कर उनकी पूजा करूँगा। अत: इसके लिये तुम्हें न तो खेद होना चाहिये और न क्रोध ही।'

पिता दक्ष के वचनों को सुनकर सती शोक-निमग्न हो उठीं। उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं। उन्होंने पिता को धिक्कारते हुए शंकर की अप्रतिम प्रशंसा

---

१. भविता मानुषो राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसः ॥
दक्ष इत्येव नाम्ना त्वं मारिषायां जनिष्यसि ॥ *ब्रह्ममहापुराण, ३२/३०-३१*

की। उनके सर्वातिशायी महत्त्व का प्रतिपादन किया। और कहा—'यदि रुद्र में देवत्व है, यदि वे सर्वत्र व्यापक और कल्याणस्वरूप हैं, तो इस सत्य के प्रभाव से शंकर जी आपके यज्ञ का विध्वंस कर डालें।'

इतना कहकर सती योगस्थ हो गईं—उन्होंने ध्यान लगाया और अपने ही शरीर से प्रकट हुई अग्नि के द्वारा अपने को भस्म कर दिया। सती ने अपना शरीर गंगा के पश्चिमी तट पर त्यागा था। वह स्थान आज भी 'सौनक तीर्थ' के नाम से प्रसिद्ध है। सती के समाचार को सुनकर रुद्र दुःखी हुए। उन्होंने दक्ष के यज्ञ को विध्वस्त करने का विचार किया। इसके लिये उन्होंने अगणित गणों को आज्ञा दी। उन लोगों ने देव-मण्डली को परास्त कर यज्ञ को तहस-नहस कर डाला। यज्ञ के नष्ट हो जाने पर दक्ष का सारा उत्साह जाता रहा। वे निरुद्योग हो शिव के शरणागत हुए। उनकी बड़ी दिव्य-भव स्तुति की। शंकर प्रसन्न हो उन्हें यज्ञ का उत्तम फल प्रदान किये। शिव की कृपा प्राप्त कर दक्ष ने अपने निवास-स्थान की यात्रा की।

उस समय भगवान् शिव अपनी पत्नी के वियोग से गंगाद्वार (हरिद्वार) में ही जाकर रहने लगे। वे सती के वियोग से सन्तप्त हो उसी के चिन्तन में ही लगे रहते थे। नारद ने शंकर को पार्वती के रूप में सती के आविर्भाव की सूचना दी। शंकर प्रसन्न हो उठे। कालान्तर में उन्होंने पार्वती से विवाह किया।[१]

टिप्पणी—पद्मपुराण वीरभद्र की उत्पत्ति तथा उनके द्वारा दक्ष-यज्ञ के विध्वंस की चर्चा नहीं करता। इसके अनुसार दक्ष के यज्ञ का विनाश तो उन्हीं के शिव-गणों ने किया था जो सती के साथ कनखल गये थे। दक्ष के शिर को काटने और उसके स्थान पर बकरे का शिर लगाने की बात भी यह पुराण नहीं करता है। इसमें सुधरी हुई सती-कथा का प्रसंग वर्णित है। अतः शिवमहापुराण और ब्रह्मवैवर्त की अपेक्षा इसे अर्वाचीन माना जा सकता है।

शिवमहापुराण

भगवान् विष्णु की शिक्षा पर ब्रह्मा और दक्ष ने शिव-शक्ति शिवा को लक्ष्य करके इस उद्देश्य से तपस्या की कि वह दक्ष की पुत्री के रूप में अवतार ग्रहण कर शिव का पति के रूप में वरण करें। शिवा दक्ष की प्रार्थना पर उनकी पुत्री के रूप में प्रकट होने के लिये तैयार हो गईं। किन्तु उन्होंने दक्ष के समक्ष एक शर्त रखते हुए कहा—'प्रजापते मेरा एक प्रण है। यदि कभी मेरे प्रति तुम्हारा आदर घट जायेगा, तब उसी समय मैं अपने शरीर का त्याग कर दूँगी। अपने

१. पद्ममहापुराण, सृष्टिखण्ड, अ० ५

स्वरूप में लीन हो जाऊँगी अथवा दूसरा शरीर धारण कर लूँगी। मेरा यह कथन कभी मिथ्या नहीं हो सकता। प्रजापते, प्रत्येक सर्ग या कल्प के लिये तुम्हें यह वर दे दिया गया—'मैं तुम्हारी बेटी होकर भगवान् शिव की पत्नी होऊँगी।'

समय आने पर शिवा दक्ष के घर पुत्री के रूप में प्रकट हुईं। दक्ष ने उनका नाम रक्खा—'उमा'। बड़ी होने पर उमा महेश्वर को पतिरूप में प्राप्त करने के लिये अपने घर पर ही उनकी आराधना करने लगीं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि सती की यह आराधना सदाशिव के पूर्णावतार रुद्र के लिये थी। देवों ने कैलास पर्वत पर रुद्ररूप शिव की स्तुति कर उनसे सती के साथ विवाह करने की प्रार्थना की। शंकर ने उनकी अभ्यर्थना स्वीकार करते हुए कहा—'देवों, यदि सती का मुझपर और मेरे वचन पर अविश्वास होगा तो उनका मैं त्याग कर दूंगा।' इसके बाद शिव ने सती को दर्शन देकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की और उनके साथ विवाह किया। शिव-सती का विवाह चैत्र मास की त्रयोदशी तिथि, रविवार, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में सम्पन्न हुआ था। सती श्याम थीं और शिव पूर्ण गौर थे। सती-शिव के विवाह की यह घटना स्वायम्भुव मन्वन्तर की है।

कैलाश और हिमालय के विशाल भू-भाग पर सती-शिव की विहार लीलाएँ चलती थीं। कभी-कभी सती प्रश्न करती थीं। शिव उनका समाधान करते थे। इसी क्रम में उन्होंने नवधा भक्ति का वर्णन किया।

एक समय रुद्र सती के साथ विचरण करते हुए दण्डकारण्य में पधारे। वहाँ उन्होंने सीता के वियोग में विलाप करते हुए राम को दूर से ही प्रणाम किया। यह देखकर सती के मन में सन्देह हुआ। शंकर ने कहा—'राम पूर्ण ब्रह्म हैं। अत: मैंने उन्हें प्रणाम किया है, किन्तु यदि तुम्हें मेरी बात पर सन्देह है तो तुम स्वयं जाकर परीक्षा कर सकती हो। सती ने सीता का रूप धारण कर राम की परीक्षा की। राम सती को पहचान गये और प्रणाम कर उनसे जंगल में एकाकी भ्रमण का कारण पूछा। सती के इस कृत्य पर कुपित हो शिव ने मन-ही-मन प्रतीज्ञा की—'ऐहि तन सती भेंट अब नाहीं।'

एक समय प्रयाग में शिव-ब्रह्मादिक सभी देवगण, विराट् सम्मेलन में, उपस्थित थे। अन्त में प्रजापति दक्ष वहाँ पधारे। ब्रह्मा को छोड़कर सबने अभ्युत्थान और प्रणाम किया। शिव भी प्रणामादि नहीं किये। दक्ष ने शिव को, क्रुद्ध होकर, बहुत-सा शाप दिया। कालान्तर में यज्ञ से शिव का बहिष्कार कर उनका अपमान करने के लिये दक्ष ने हरिद्वार के पास कनखल में एक महान् यज्ञ का आयोजन किया। शिव को छोड़कर सभी देवता उसमें बुलाये गये। यज्ञ में

सबको यथोचित भाग दिया गया। कपाली की पत्नी होने के कारण दक्ष ने अपनी बेटी सती को भी आमन्त्रित नहीं किया।

गन्धमादन पर्वत पर स्थित सती ने एक दिन रोहिणी के साथ दक्ष-यज्ञ में जाते हुए चन्द्रदेव को देखा। पूछने पर पता चला कि वे लोग पिता दक्ष के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये कनखल जा रहे हैं । दक्ष-यज्ञ का समाचार पाकर सती ने शिव से वहाँ चलने का अनुरोध किया। शिव ने अपने साथ दक्ष के द्रोह की बात आज सती को बतलाई और वहाँ न जाना ही उचित कहा। जब सती ने जाने का हठ किया तो शिव ने उन्हें अपने वृषभ पर आरूढ कर गणों के साथ कनखल भेज दिया। वहाँ यज्ञशाला में शिव का भाग न देखकर सती ने अपने पिता दक्ष को फटकारा। दक्ष ने शिव की निन्दा की। निन्दा को सुनकर दक्ष तथा अन्य देवताओं को धिक्कार-फटकार कर सती ने अपने प्राणों के परित्याग का निश्चय किया। फलतः उन्होंने योगाग्नि से अपने शरीर को भस्म कर दिया। यह देखकर दर्शकों में हाहाकार मच गया। शिव के पार्षदों में कुछ ने दुःखी होकर अपने प्राणों का परित्याग कर दिया और कुछ ने दक्ष पर आक्रमण कर दिया। भृगु के द्वारा यज्ञाग्नि से उत्पन्न किये गये ऋभुओं ने शिवगणों को वहाँ से मार भगाया। आकाशवाणी ने दक्ष की भर्त्सना की और उसके विनाश की सूचना देकर समस्त देवताओं को यज्ञमण्डप से निकल जाने की प्रेरणा दी।

इधर गणों के मुख से और नारद से भी सती के दग्ध होने की बात सुनकर दक्ष पर कुपित हुए शिव ने अपने शिर से एक जटा उखाड़ी और उसे रोषपूर्वक पर्वत के ऊपर पटक दिय। प्रलयङ्कर शब्द करती हुई उस जटा के दो टुकड़े हो गये। उसके एक भाग से वीरभद्र और दूसरे भाग से महाकाली का प्रादुर्भाव हुआ। दोनों प्रलयाग्नि के समान अति तेजस्वी थे। शंकर ने उन्हें यज्ञ-विध्वंस करने और विरोधियों को भस्म करने की आज्ञा दी। फलतः वीरभद्र एवं महाकाली के नेतृत्व में शिव-गणों का भीषण मण्डल दक्ष के यज्ञ में पहुँचा। वहाँ शिव-गणों ने यज्ञको छिन्नभिन्न कर दिया। वीरभद्र ने दक्ष की गर्दन मरोड कर तोड़ डाली और उसे अग्नि-कुण्ड में डाल दिया। फिर सभी शिव-गण कैलाश पर शिव के पास लौट आये।

दक्ष-यज्ञ के विध्वस्त हो जाने पर विष्णु के नेतृत्व में सकल देव-मण्डली शिव की शरण में कैलास पर्वत पर गई। वहाँ उसने दीन भाव से शंकर की स्तुति की। वे प्रसन्न हुए और देवता आदि के अङ्गों के ठीक होने तथा दक्ष के जीवित होने का वर दिये। फिर वे देवों के साथ दक्ष के यज्ञ-मण्डप में गये। वहाँ उन्होंने

देखा कि दक्ष का शिर अग्नि-कुण्ड में स्वाहा हो चुका है। अत: उन्होंने कहा—'दक्ष का मस्तक जल गया है। इसलिये इनके शिर के स्थान में बकरे का शिर जोड़ दिया जाय।' देवों ने शिव की आज्ञा शिरोधार्य की। यज्ञीय पशु बकरे का शिर दक्ष के धड़ से जोड़ दिया गया। उस शिर के जोड़े जाते ही, शम्भु की शुभ दृष्टि पड़ने से, प्रजापति के शरीर में प्राण आ गये और वे तत्काल सो कर जगे हुए पुरुष की भाँति उठकर खड़े हो गये। उन्होंने शंकर की दिव्य स्तुति की। शंकर के प्रति सारा वैरभाव उनके हृदय से जाता रहा। देवों की प्रार्थना के अनन्तर शंकर ने आज्ञा दी यज्ञ पूर्ण करने की। फिर तो ऋषियों ने दक्ष का यज्ञ पूर्ण करवाया। संक्षेप में यही है शिवमहापुराण की रुद्रसंहिता के सती खण्ड में वर्णित सतीकथा का सार।[१]

श्रीमद्भागवत महापुराण

श्रीमद्भागवत सती के जन्म, उनकी तपस्या तथा उनके विवाह की चर्चा नहीं करता। इसमें सती कथा का प्रारम्भ, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस की पृष्ठभूमि, दक्ष और शिव के कलह से होता है। यहाँ कथा का पूरा-का पूरा वही रूप है जो शिवमहापुराण में वर्णित है। अत: अत्यन्त संक्षिप्त रूप में श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित सती-कथा का सार प्रस्तुत किया जा रहा है—

प्रयाग में प्रजापतियों का महान् सत्र समायोजित था। वहाँ ब्रह्मादिक देवों और ऋषियों के साथ शिव भी विराजमान थे। उसी समय प्रजापतियों के शिरोमणि दक्ष वहाँ पधारे। ब्रह्मा और शिव को छोड़कर सबने उनका अभ्युत्थान और अभिवादन किया। ब्रह्मा दक्ष के जनक थे और शिव दामाद। शिव ने न तो अगवानी की और न प्रणाम ही किया। यह देखकर दक्ष क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने शिव को यज्ञ से बहिष्कृत होने का शाप दे दिया। शिव के गण नन्दी ने दक्ष और ब्राह्मणों को शाप दिया। कलह हो जाने पर दक्ष और शिव—दोनों ही वहाँ से निकल कर अपने-अपने स्थान को चले गये।

महान् काल के व्यतीत हो जाने पर, शिव को अपमानित करने की भावना से, दक्ष ने वृहस्पतिसव नामक यज्ञ का आयोजन किया। सभी ऋषि, मुनि और देव निमन्त्रित किये गये। शंकर और सती को आमन्त्रित नहीं किया गया। पता चलने पर सती ने शिव से दक्ष के यज्ञ में चलने का महान् आग्रह किया। शंकर ने बिना आमन्त्रण के किसी के भी घर न जाने का उपदेश दिया। सती को यह उपदेश अच्छा नहीं लगा। वे घर से निकल कर चल पड़ीं। यह देखकर शंकर ने

---

१. विस्तार के लिये देखिये—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, सती खण्ड

अपने वाहन नन्दी और गणों को सती के साथ भेज दिया। यज्ञ में शंकर का भाग न देखकर, सती ने पिता के साथ विवाद कर, गंगा के तट पर योगाग्नि के द्वारा अपने शरीर का परित्याग कर दिया। समाचार मिलने पर शंकर ने अपनी जटा से वीरभद्र को उत्पन्न कर दक्ष के यज्ञ को विध्वस्त करने की आज्ञा दी। वीरभद्र ने देवों को पराजित कर यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उन्होंने दक्ष के शिर को तोड़कर कुण्ड की आग मे हवन कर दिया। देवों की स्तुति से प्रसन्न हो कर शंकर यज्ञ-स्थल पर गये। वहाँ बकरे का शिर दक्ष के धड़ से जोड़ा गया। शिव ने कृपाकर अपनी अमृत-नि:स्यन्दिनी दृष्टि से देखकर दक्ष को जीवित कर दिया। यही सती आगे पार्वती के रूप में जन्मी और शंकर से उनका विवाह हुआ।[१]

नारदमहापुराण

प्राचीन काल की बात है। प्रजापति दक्ष गंगाद्वार (हरिद्वार) में यज्ञ के द्वारा यज्ञेश (भगवान् विष्णु) का यजन कर रहे थे। त्रिलोकी के समस्त देव, ऋषि तथा मुनि आदि उसमें आमन्त्रित थे। केवल शंकर को यज्ञ में आमन्त्रित नहीं किया गया था। आकाश-मार्ग से देवगण अपनी पत्नियों के साथ जा रहे थे। उनमें प्रसन्नतापूर्वक बातें हो रही थीं। सती ने उनकी बातों को सुना। उससे उन्हें अपने पिता के यज्ञ की बात विदित हुई। उनके मन में नैहर (पितृगृह) जाने की प्रबल उत्कण्ठा जागृत हुई। उन्होंने इसके लिये शंकर से निवेदन भी किया। शंकर ने सती से कहा—'देवि, वहाँ जाना कल्याणकर नहीं है।' किन्तु भावी की प्रबलता के कारण पतिदेव की बात का अनादर कर सती दक्ष के यज्ञ में हरिद्वार गईं ।[२] किन्तु वहाँ किसी ने उनका सम्मान नहीं किया। अत: उन्होंने वहीं अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। इससे वह क्षेत्र उत्तम बन गया।

नारद के द्वारा जब सती के देह-त्याग की बात शंकर को विदित हुई तो उन्होंने वीरभद्र की रचना की।[३] वीरभद्र ने अपने प्रमथ-गणों के साथ जाकर दक्ष के यज्ञ को विध्वस्त कर दिया। इस स्थिति को देखकर ब्रह्मा चिन्तित हो उठे । उन्होंने शंकर की प्रार्थना की। शम्भु प्रसन्न हो उठे। प्रसन्न होकर उन्हेंाने विकृत यज्ञ को पुन: प्रकृतिस्थ कर दिया।[४]

---

१. श्रीमद्भागवत-महापुराण, चतुर्थ स्कन्ध, अध्याय- २-७

२. तच्छ्रुत्वा भगवानाह न श्रेयो गमनं ततः ।
अथ देवमनादृत्य भाविनोऽर्थस्य गौरवात् ॥
जगामैकाकिनी भद्रे द्रष्टुं पितृमखोत्सवम् ।
ततः सा तत्र संप्राप्ता न केनापि सभाजिता ॥ *नारदमहापुराण, उ०ख०, ६६/११-१२*

३. मरणं स्वप्रियायास्तु वीरभद्रं विनिर्ममे ॥ *वही, ६६/१६*

४. पुनर्विधेः प्रार्थनया मीढ्वान् सद्यः प्रसादितः ।
संदधे च पुनर्यज्ञं विकृतं प्रकृतिस्थितम् ॥ *वही, ६६/१७*

तभी से वह तीर्थ अनुपम और सभी पातकों का नाशक बन गया। वहाँ स्नान करके चन्द्रमा यक्ष्मारोग से विमुक्त हो गये थे।[१]

टिप्पणी—शिवमहापुराण के अनुसार चन्द्रमा प्रभास क्षेत्र में सोमनाथ की स्थापना और आराधना से यक्ष्मा रोग से विमुक्त हुए थे।[२]

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

मूलप्रकृति ईश्वरी श्रीकृष्ण की आज्ञा से दक्षकन्या सती के रूप में आविर्भूत हुई। दक्ष ने उस देवी का विधि-विधान के साथ शूलपाणि शिव के साथ विवाह कर दिया। इसके बाद एक समय ब्रह्मसत्र में, जहाँ समस्त देव-मण्डली विराजमान थी, दक्ष का उन शूलपाणि महादेव जी के साथ महान् कलह हो गया। उस कलह से रुष्ट हो त्रिनेत्रधारी शिव ब्रह्मा को प्रणाम कर चले गये। दक्ष के भी मन में क्रोध था। अत: वे भी अपने गणों के साथ उसी क्षण अपने घर को चल दिये । घर जाकर दक्ष ने रोषपूर्वक सामग्री एकत्रित की और उसके द्वारा महान् यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में उन्होंने द्वेषवश शूलपाणि शंकर को भाग नहीं दिया। यह देख सती के मन में अपने पिता के प्रति बड़ा क्रोध हुआ। उसकी आँखें लाल हो गईं। उसने व्यथित हृदय से पिता को बहुत फटकारा। वह वहाँ से उठकर माता के पास चली गई। उस परात्परा देवी को तीनों कालों का ज्ञान था। अत: सारी भावी घटनाओं का वहाँ उसने वर्णन किया। फिर माता और बहनों के मना करने पर भी वह दु:खी हो घर से चली गई। वह सिद्धयोगिनी थी। अत: योगबल से सबकी दृष्टि से ओझल हो गई। गंगाजी के तट पर जाकर शंकर के चरणारविन्दों का चिन्तन करती हुई सुन्दरी सती ने शरीर को त्याग दिया और गन्धमादन पर्वत की गुफा में विद्यमान उस दिव्य विग्रह में प्रवेश किया, जिसके द्वारा उसने पूर्वकाल में दैत्यों का संहार किया था। यह घटना देखकर सब देवता आश्चर्य से चकित होकर हाहाकार कर उठे। शंकर के गण दक्ष-यज्ञ का विनाश तथा सबका पराभव करके शोकाकुल हो लौट गये। वहाँ उन्होंने सारा समाचार अपने स्वामी से कहा। समाचार सुनकर समस्त रुद्रगणों से घिरे हुए संहारकारी महेश्वर गंगा जी के उस तट पर गये, जहाँ देवी सती का शरीर पड़ा था।

शंकर सती के निष्प्राण शरीर को देखकर विरहाकुल हो उठे। वे उनके मृत देह को वक्ष:स्थल से लगाकर समग्र भूमण्डल पर भ्रमण करने लगे। पूरे एक वर्ष तक उनकी यही दशा रही। सती देवी के उस मृत देह के अङ्ग-प्रत्यङ्ग जिस-जिस

१. ततस्तत्तीर्थमतुलं सर्वपातकनाशनम् ।
जातं यत्राप्लुत: सोमो मुक्तो यक्ष्मग्रहादभूत् ॥ *नारदमहापुराण, उ०ख० ६६/१८*

२. शिवमहापुराण, कोटिरुद्रसंहिता, अ० ८-१४

स्थान पर गिरे, वे सभी स्थान कामना-प्रद सिद्धपीठ बन गये। तदनन्तर शंकर ने सती के अवशिष्ट अंगों का संस्कार किया। अस्थियों की माला गूँथ कर उसे अपना कण्ठाभूषण बना लिया और प्रतिदिन सती का शरीर-भस्म अपने शरीर पर लगाने लगे। बाद में शोकाकुल शंकर को विष्णु ने समझाया। विष्णु के कहने से शंकर ने प्रकृति (सती) की स्तुति की। उनकी स्तुति से प्रसन्न हो देवी ने उन्हें दर्शन देकर कहा—'योगीश्वर, मैं शैलराज हिमालय की बेटी पार्वती बनकर आपकी पत्नी बनूँगी। अत: आप इस विरहज्वर का परित्याग कर दीजिये।'[१]

विशेष—शिवमहापुराण में कहा गया है कि सती ने अपना शरीर योगाग्नि के द्वारा भस्म कर दिया था। पर यहाँ उससे भिन्न यह बात कही गई कि शिव सती के मृत शरीर को लेकर सर्वत्र भ्रमण करते रहे। यहाँ उनके गिरे हुए अङ्गों से शक्ति-पीठों की कल्पना की गई है। शिवमहापुराण शक्तिपीठों के बारे में मौन है।

इस पुराण के अनुसार दक्ष-यज्ञ का विध्वंस वीरभद्र ने नहीं, सती के साथ गये हुए शिव-गणों ने किया था। यह दोनों का अन्तर है।

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्म खण्ड में ही, इस कथा के पूर्व, सती की अतिसंक्षिप्त कथा प्राप्त होती है। कथा का सार-स्वरूप इस प्रकार है—

देवी जगदम्बा ने दक्षपत्नी के गर्भ से जन्म लिया। कालान्तर में उन्होंने पिनाकपाणि शिव को पति के रूप में ग्रहण किया। बड़ी भक्ति के साथ वे निरन्तर स्वामी की सेवा में लगी रहीं। दैवयोग से देवों की सभा में दक्ष के साथ शिव की अकारण शत्रुता हो गई। दक्ष ने घर आकर एक यज्ञ का आयोजन किया। उसमें उन्होंने सारे देवों को आमन्त्रित किया। किन्तु क्रोध के कारण शंकर को निमन्त्रित नहीं किया। सम्पूर्ण देवमण्डली, अपनी पत्नियों के साथ, दक्ष के घर पधारी। किन्तु अनामन्त्रित होने के कारण स्वाभिमानवश शंकर अपने गणों के साथ वहाँ नहीं गये। उनके मन में भी दक्ष के प्रति महान् रोष था। सती के मन में पिता आदि के प्रति महान् मोह था। अत: उन्होंने यत्नपूर्वक पतिदेव को उस यज्ञ में चलने के लिये समझाया। जब किसी प्रकार उन्हें वहाँ ले जाने में वे समर्थ न हो सकीं, तब स्वयं चञ्चल हो उठीं और पति की आज्ञा प्राप्त किये बिना ही दर्पवश पिता के घर चली आईं। पति के शाप से वहाँ उनका दर्प भङ्ग हुआ। पिता ने उनसे बात तक नहीं की। वाणीमात्र से भी पुत्री का सत्कार नहीं किया। इतना ही नहीं, उन्हें वहाँ पति की निन्दा भी सुननी पड़ी। उसे सुनकर स्वाभिमानवश सती ने अपने शरीर को त्याग दिया।[२]

---

१. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अ० ४२-४३

२. ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अ० ४२

लिङ्गमहापुराण

लिंगमूर्ति भगवान् शंकर की जगद्धात्री शक्ति का नाम है—भग। लिंग और भग से ही संसार की सृष्टि होती है। लिंगमूर्ति शंकर स्वयंप्रकाश और अज्ञानरूपी माया से परे हैं।[१] लिंग और वेदी के सम्मिलन के कारण ही शिव अर्द्धनारीश्वर कहे गये हैं। भगवान् शंकर से ब्रह्मा ने प्रार्थना की थी—'अर्द्धनारीश्वर प्रभो, आप अपने से स्त्रीरूप को पृथक् कीजिये।' ब्रह्मा की प्रार्थना को सुनकर शंकर ने अपने वामाङ्ग से, अपने ही समान, पत्नी की सृष्टि की। यह उनकी पुरातनी पत्नी श्रद्धा ही थी। इसे शंकर की शक्ति और आज्ञा भी कहते हैं। शंकर की आज्ञा से उनकी यह शक्ति ही ब्रह्मा के पुत्र दक्ष की बेटी बनीं । उस समय इनका नाम 'सती' था। सती ने रुद्र को ही पति के रूप में प्राप्त किया था। नारद के शाप के प्रभाव से दक्ष ने शिव की निन्दा की। अपने यज्ञ में शंकर को आमन्त्रित नहीं किया । इससे सती क्रुद्ध हुईं। वे योगाग्नि से अपने शरीर को भस्म करके हिमालय की पत्नी मेना की बेटी बनीं, क्योंकि हिमालय ने इसके लिये तपस्या की थी।

जब शंकर को दक्ष के यज्ञ में सती के देहत्याग की बात विदित हुई और यह भी बात विदित हुई कि च्यवनपुत्र दधीचि का भी शाप है, तो उन्होंने क्रोधवश अपनी जटा से वीरभद्र को उत्पन्न किया और उन्हें दक्ष के यज्ञ को विध्वस्त करने की आज्ञा दी। वीरभद्र रथारूढ होकर हरिद्वार के पास कनखल के लिये प्रस्थान किये जहाँ दक्ष का यज्ञ हो रहा था।[२] उनके साथ शिव-गणों की विशाल वाहिनी भी थी। वीरभद्र के रथ का संचालन ब्रह्मा कर रहे थे। वीरभद्र ने कनखल में पहुँचकर दक्ष के यज्ञ को समूल विध्वस्त कर डाला। उसके सभी सहायकों को पराजित किया, अपमानित किया।[३]

वाराहमहापुराण

प्रजापति ब्रह्मा प्रजा की सृष्टि के लिये चिन्ता कर रहे थे। जब उनकी चिन्ता का अन्त नहीं हुआ तब वे क्रुद्ध हो उठे। उनके उसी कोप से अत्यन्त प्रतापी रुद्र का प्रादुर्भाव हुआ। उत्पत्ति की बेला में रो रहे थे। अत: उनका नाम रुद्र पड़ा। फिर ब्रह्मा ने अपने शरीर से उत्पन्न एक कन्या, भार्या बनाने के लिये, रुद्र को प्रदान

---

१. स भागाख्या जगद्धात्री लिङ्गमूर्तेस्त्रिवेदिका ॥
लिङ्गस्तु भगवान् द्वाभ्यां जगत्सृष्टिर्द्विजोत्तमा: ।
लिङ्गमूर्ति: शिवो ज्योतिस्तमसश्चोपरि स्थित: ॥ *लिङ्गमहापुराण* १/९९/६-७

२. यज्ञवाटस्तथा तस्य गङ्गाद्वारसमीपत: ।
तद्देशे चैव विख्यातं शुभं कनखलं द्विजा: ॥ *वही,* १/१००/७

३. लिङ्गमहापुराण, १-९९-१००

की। उसका नाम था 'गौरी'। उसे भारती भी कहते हैं। उस परम सुन्दरी को पाकर रुद्र की प्रसन्नता का पारावार न था। ब्रह्मा ने रुद्र को बार-बार प्रेरित किया प्रजा की सृष्टि के लिये। किन्तु इस कार्य में वे अपने को असमर्थ पा रहे थे। वे यह जानते थे कि तपस्या के बिना सृष्टि-कार्य संभव नहीं है। अत: तपस्या करने के लिये जल में प्रविष्ट हो गये। रुद्र के तपस्या में निमग्न हो जाने पर ब्रह्माजीने गौरी को पुन: अपने शरीर में प्रविष्ट कर लिया। फिर उन्होंने मानसिक सृष्टि की। दक्ष को भी उत्पन्न किया। ब्रह्मा ने गौरी को पुन: प्रादुर्भूत करके दक्ष की बेटी के रूप में प्रदान कर दिया। यह वही गौरी थी जिसे पहले रुद्र ने पत्नी के रूप में अङ्गीकार किया था।[१]

दक्ष सृष्टि-कार्य की वृद्धि में संलग्न थे। एक बार प्रजापति ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिये उन्होंने यज्ञ प्रारम्भ किया। महनीय ऋषि-मुनि यज्ञ निष्पन्न करा रहे थे। सारे देव-पितर यज्ञ-स्थल में उपस्थित थे। इसी समय रुद्र दश सहस्र वर्ष जल में तपस्या करके वहाँ से निकले। उन्होंने देखा पृथिवी शस्य-सम्पन्न है। मानवों और पशुओं से यह भरी हुई है। उन्होंने दक्ष-यज्ञ के ब्राह्मणों द्वारा उच्चरित मन्त्र-जाल को भी सुना। इसे सुनते ही वे क्रोध से भर उठे। उन्होंने कहा—'ब्रह्मा ने सर्वप्रथम मेरी सृष्टि की थी। सृष्टि करके उन्होंने कहा था—'सृष्टि करो।' फिर इस समय यह सृष्टि आदि कर्म किसने किया?' ऐसा कहकर वे क्रोध से गर्जन करने लगे। उस समय उनके कानों से ज्वाला की मालाएँ निकलने लगीं। उनसे भूत, बैताल और प्रेत आदि की उत्पत्ति हो गई। वे नाना प्रकार के आयुध हाथ में लिये थे। फिर रुद्र ने एक अद्भुत रथ की सृष्टि की। उस पर आरूढ होकर वे दक्ष के यज्ञस्थल पर गये। वहाँ रुद्र एवम् उनके गणों के साथ यज्ञकर्ताओं का भीषण-युद्ध हुआ। किसी के दाँत तोड़ दिये गये और किसी की आँखे निकाल ली गईं। यज्ञ छिन्न-भिन्न हो गया। इसी समय हरि-हर, विष्णु और रुद्र, का रोंगटे खड़ा कर देने वाला भीषण संग्राम हुआ। यह युद्ध दिव्य सहस्र वर्ष तक चलता रहा। न किसी की हार हो रही थी और न किसी की जीत। उस समय ब्रह्मा ने आकर दोनों को युद्ध से विरत किया। यज्ञ में रुद्र का भाग दिलवाया और देवों द्वारा रुद्र की स्तुति भी करवाई।[२]

---

१. सापि दक्षाय सुश्रोणी गौरी दत्ताथ ब्रह्मणा ।
दुहितृत्वे पुरा या हि रुद्रेणोढा महात्मना ॥ *वाराहमहापुराण २१/११*

२. ब्रह्मा लोकानुवाचेदं रुद्रभागोऽस्य दीयताम् ।
रुद्रभागो ज्येष्ठभाग इतीयं वैदिकी श्रुतिः ।
स्तुतिश्च देवा: कुरुत रुद्रस्य परमेष्ठिन: ॥ *वही, २१/६४-६५*

देव-स्तुति से रुद्र प्रसन्न हो उठे। उन्होंने लोगों के विकल-विकृत अंगों को यथापूर्व बना दिया और यज्ञ भी पूर्ण करने की आज्ञा प्रदान की। इस स्थिति से ब्रह्मा प्रसन्न हो उठे। उन्होंने रुद्र को 'पशुपति' इस नाम से लोक में सुप्रसिद्ध होने की बात कही और यह भी कहा कि रुद्र सबके आराध्य होंगे। ऐसा कहकर ब्रह्मा ने दक्ष से कहा कि गौरी रुद्र को समर्पित कर दो। वह पहले रुद्र के लिये ही उत्पन्न की गई थी। फिर क्या था ? ब्रह्मा ने इस प्रकार दक्ष को प्रेरित करके गौरी दिला दी। तदनन्तर ब्रह्मा ने रुद्र के निवास के लिये कैलाश पर्वत प्रदान कर दिया। रुद्र गौरी और गणों के साथ कैलास पर्वत पर चले गये। देवमण्डली भी प्रसन्नता के साथ अपने लोकों को गई। ब्रह्मा दक्ष को साथ लेकर उस स्थल पर गये जहाँ यज्ञ-नगरी का निर्माण हुआ था, जहाँ यज्ञ प्रारम्भ किया गया था।

रुद्र गौरी के साथ कैलाश पर निवास कर रहे थे। उस समय अपने पिता दक्ष के साथ रुद्र के वैर का स्मरण कर देवी का मन क्रुद्ध हो उठा। वे सोचने लगीं—'इन्होंने यज्ञनगरी पर अधिकार कर मेरे पिता के यज्ञ का विध्वंस कर दिया। उनके बन्धु-बान्धवों का विनाश किया। अब मैं पिता दक्ष के घर कैसे जा सकूँगी? अत: मैं अपना यह शरीर ही छोड़ दूँगी। पुनः तपस्या से शंकर को प्राप्त करूँगी।' ऐसा सोचकर गौरी तपस्या करने के लिये पर्वतराज हिमालय पर चली गईं। वहाँ उन्होंने दीर्घकाल तक तपस्या कर अपने शरीर को भस्म कर दिया।[१]

स्कन्दमहापुराण

स्कन्दमहापुराण का प्रारम्भ ही सती-प्रसंग से होता है। यहाँ शिवमहापुराण की भाँति सती के जन्म और शिव की पतिरूप में प्राप्ति के लिये उनकी तपस्या आदि का वर्णन न करके दक्ष-शिव-विद्वेष से ही सती-कथा का प्रारम्भ किया गया है । कुछ भिन्नताओं के अतिरिक्त दोनों महापुराणों की कथाओं में अति सन्निकट का साम्य है।

शिवमहापुराण में दक्ष-शिव-कलह की जन्म-स्थली है—'त्रिवेणी, प्रयाग की पावन भूमि। किन्तु स्कन्दमहापुराण के अनुसार दक्ष-शिव-कलह का सूत्रपात हुआ था नैमिषारण्य में। वहाँ भी शिव का दक्ष को प्रणाम न करना ही विद्वेष का बीज बना था। शिवमहापुराण की तरह स्कन्दमहापुराण में शिव-सती-वियोग के गर्भ में रामकथा की चर्चा नहीं की गई है। दोनो पुराणों में दक्ष-यज्ञ की स्थली कनखल है। स्कन्दमहापुराण के अनुसार कथा का संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

---

१. तत्र कालेन महता क्षपयन्ती कलेवरम् ।
स्वशरीराग्निना दग्धा ततः शैलसुताभवत् ।। *वारामहापुराण, २२/४*

गन्धमादन पर्वत पर सखियों के साथ सती विराजमान थीं। वहीं चन्द्रमा से दक्ष-यज्ञ की बात उन्हें ज्ञात हुई। उन्होंने भगवान् शिव से अपने पिता के यज्ञ में पधारने की प्रार्थना की। शंकर ने सती को समझाया—'शुभे, जो लोग दूसरों के गृह बिना बुलाये जाते हैं, वे वहाँ मृत्यु से भी अधिक कष्टदायक अपमान को प्राप्त होते हैं। दक्ष ने विद्वेषवश मुझे और मेरे कारण तुझे भी आमन्त्रित नहीं किया है।' किन्तु सती यज्ञ में जाना चाह रही थीं। अत: शिव ने उन्हें सप्रेम भेज दिया। वहाँ सती ने पिता से वाक्कलह किया और रुद्र आदि नामों का उच्चारण करती हुई अग्नि में प्रवेश कर गईं। किन्तु इसी पुराण के ब्रह्माण्डखण्ड के चातुर्मास्य-माहात्म्य में कहा गया है कि—'सती ने प्राणायाम में तत्पर हो अग्निमयी धारणा के द्वारा अपना शरीर त्याग दिया।' मरते समय उन्होंने हिमालय का मन से स्मरण किया था। अत: पर्वतराज की पुत्री पार्वती के रूप में अगला अवतार लिया।

सती के शरीर के विनाश की बात को ज्ञात कर शंकर ने जटा से वीरभद्र और काली को प्रकट किया। शिव की आज्ञा से वीरभद्र ने देव-मण्डली को पराजित कर दक्ष-यज्ञ को विध्वस्त कर दिया। उन्होंने तलवार से दक्ष के शिर को काट कर यज्ञ कुण्ड में डाल कर जला दिया।[१]

यज्ञ के विध्वस्त हो जाने पर दु:खी ब्रह्मा के नेतृत्व में देव-मण्डली ने शंकर को स्तुति से प्रसन्न किया। शंकर कनखल के यज्ञ में पधारे। बकरे का शिर दक्ष के शरीर से जोड़ा गया। फिर तो भगवान् शंकर की कृपा से उसे नव-जीवन प्राप्त हुआ। दक्ष का गर्व जाता रहा। अपने समक्ष शिव को देखकर उसने ज्ञान से भरी हुई दिव्य स्तुति की। फिर तो शिव की आज्ञा से यज्ञ पूरा किया गया। तदनन्तर दक्ष को वहीं कनखल में रहने का आदेश देकर भगवान् शिव अपने निज स्थान कैलाश पर्वत पर चले गये।[२]

वामनमहापुराण

सती दक्ष की बेटी थीं। जब उन्होंने पिता के यज्ञ में अपने शरीर का परित्याग कर दिया तब दक्ष-यज्ञ का विध्वंस कर शंकर चतुर्दिक् विचरण करने लगे।[३] उस समय शंकर को अपत्नीक देखकर कन्दर्प ने उनपर उन्मादनास्त्र से प्रहार किया। उस अस्त्र से ताडित होने पर शंकर उन्मत्त होकर जंगलों में,

१. शिवमहापुराण के अनुसार अस्त्र-शस्त्रों से शिर के न कटने पर वीरभद्र ने दक्ष की गर्दन मरोड़कर तोड़ डाली और उसे अग्नि-कुण्ड में डाल दिया था।

२. स्कन्दमहापुराण, माहेश्वरखण्ड, अध्याय- १-५

३. यदा दक्षसुता ब्रह्मन् सती याता यमक्षयम् ।
विनाश्य दक्षयज्ञं तं विचचार त्रिलोचनः ॥ वामनमहापुराण, ६/२६

जलाशयों के तटों पर, इतस्तत: भ्रमण करने लगे। वे सर्वदा सती का ही चिन्तन करते थे। उन्हें कहीं भी शान्ति न मिलती थी। उनकी यह दशा देखकर काम ने पुन: उनपर सन्तापनास्त्र से प्रहार किया। इससे शंकर का सन्ताप अत्यधिक बढ़ गया। इस प्रकार अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ कन्दर्प कतिपय बार शंकर पर प्रहार करता रहा। एक समय शंकर चित्रवन में भ्रमण कर रहे थे। उसी समय कामदेव सम्मुख आकर उनपर पुन: बाण-प्रहार के लिये उद्यत हो गया। शंकर ने काम की यह धृष्टता देखी। फिर तो क्रोधभरी दृष्टि से उन्होंने कामदेव को देखा। फलत: वह उसी क्षण जल कर राख हो गया।[१]

कूर्ममहापुराण

क—पूर्वपीठिका—हविर्धान की पत्नी का नाम था—आग्नेयी। उसका पुत्र था—प्राचीनबर्हीं। इनका विवाह सागर की बेटी के साथ हुआ था। इनके दश पुत्र थे। सभी प्रचेता कहे जाते थे। इन सबकी एक पत्नी थी—'मारिषा'। इससे दक्ष प्रजापति का जन्म हुआ था। प्रजापति दक्ष पहले ब्रह्मा के बेटे थे। एक बार उन्होंने रुद्र से विवाद कर लिया। रुद्र ने इन्हें शाप दे दिया। उसी के फलस्वरूप यह प्रचेता-पुत्र हुये।

कथा—घटना इस प्रकार है—'एक् बार दक्ष अपनी बेटी से मिलने शंकर के घर पहुँचा । शंकर ने स्वयं उसकी यथोचित पूजा की। किन्तु वह तो इससे बड़ी पूजा, बड़ा सत्कार चाहता था। अत: असन्तुष्ट एवं कुपित होकर अपने घर लौट गया।

इसके बाद सती कभी अपने पिता दक्ष के गृह गईं। दक्ष को बदला लेने का अच्छा अवसर मिला। उसने सती से कहा—'हमारे अन्य जामाता तुम्हारे पति पिनाकी से कहीं श्रेष्ठ हैं। तुम भी हमारी बेटियों में अधम हो। अत: जैसे आई हो वैसे ही हमारे घर से चली जाओ।'[२]

पिता की अप्रत्याशित अप्रिय बात सुनकर शंकरप्रिया सती को महती ग्लानि हुई। उन्होंने पिता की भरपूर निन्दा की और अपने को अपने से ही भस्म कर डाला।[३] आगे चलकर यही सती हिमालय की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उसकी पुत्री पार्वती के रूप में जन्मी ।

---

१. आलोकितस्त्रिनेत्रेण मदनो द्युतिमानपि ।
प्रादह्यत तदा ब्रह्मन् पादादास्भ्य कक्षवत् ॥ *वामनपुराण,* ६/९६

२. अन्ये जामातर: श्रेष्ठा भर्तुस्तव पिनाकिन: ।
त्वमप्यसत्सुताऽस्माकं गृहाद् गच्छ यथागतम् ॥ *कूर्ममहापुराण,* १/१४/५९

३. तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सा देवी शङ्करप्रिया ।
विनिन्द्य पितरं दक्षं ददाहात्मानमात्मना ॥ *कूर्ममहापुराण,* १/१४/६०

ख—भक्तों के कष्टों को निवारण करने के व्रती शंकर को जब सती के देह-त्याग की घटना विदित हुई तो वे कुपित हो उठे। वे जा पहुँचे दक्ष के घर। वहाँ जाकर उन्होंने दक्ष को शाप दिया—'तुम ब्राह्मण के, अथवा ब्रह्मा से प्राप्त, इस शरीर को छोड़कर क्षत्रियों के कुल में जन्म ग्रहण करो। मूढ, वहाँ तुम अपनी बेटी से ही पुत्र पैदा करोगे।'[१]

मत्स्यमहापुराण

बात प्राचीनकाल की है। दक्ष प्रजापति ने एक विशाल यज्ञ का अनुष्ठान किया था। सारे देव-गण आमन्त्रित होकर सोल्लास अपना भाग ग्रहण करने के लिये उस यज्ञ में उपस्थित थे। किन्तु दक्ष ने द्वेषवश शिव को आमन्त्रित नहीं किया था। जब सती ने देखा कि यज्ञ में उनके पति का भाग नहीं है, तब उन्होंने पिता से इसका कारण पूछा। इस पर दक्ष ने कहा—'बेटी, तुम्हारा पति त्रिशूल धारण कर रुद्ररूप से जगत् का उपसंहार करता है। अत: वह अमङ्गल है। यही कारण है कि वह यज्ञों में भाग पाने के लिये अयोग्य है।' पिता की इस प्रकार की बातको सुनकर सती क्रुद्ध हो उठी और बोली—'तात, अब मैं तुम्हारे पापी शरीर से उत्पन्न हुए अपने शरीर का परित्याग कर दूँगी।'[२] भविष्य में तुम दस पितरों के एकमात्र पुत्र होओगे और क्षत्रिय-योनि में जन्म लेने पर अश्वमेध-यज्ञ के अवसर पर रुद्रद्वारा तुम्हारा विनाश हो जायेगा।

ऐसा कहकर सती ने योगबल का आश्रय लिया और स्वत: शरीर से प्रकट हुए तेज से अपने शरीर को जलाना प्रारम्भ कर दिया। यह देखकर चतुर्दिक् हाहा-कार मच गया। इससे दक्ष भी दु:खी होकर सती के निकट गये और प्रणाम करके बोले—'देवी, तुम इस जगत् की जननी तथा जगत् को सौभाग्य प्रदान करने वाली देवता हो। तुम मुझ पर अनुग्रह करने की कामना से ही मेरी पुत्री होकर अवतीर्ण हुई हो। तुम्हारी सत्ता सर्वत्र व्याप्त है। मुझ पर कृपा करो। सम्प्रति तुम्हें मेरा त्याग नहीं करना चाहिये।' दक्ष की बात सुनकर देवी सती ने कहा—'दक्ष, मैंने जिस कार्य का प्रारम्भ किया है, उसे तो निश्चय ही पूर्ण करूँगी। किन्तु त्रिशूलधारी शिव के द्वारा यज्ञ का विध्वंस हो जाने पर उनको प्रसन्न करने के लिये तुम मृत्यु-लोक में, लोक-सृष्टि की कामना से, मेरे निकट तपस्या करना। उसके प्रभाव से तुम प्रचेता नाम के दश पिताओं के एकमात्र पुत्र होने पर भी प्रजापति

---

१. त्यक्त्वा देहमिमं ब्राह्मं क्षत्रियाणां कुले भव ।
स्वस्यां सुतायां मूढात्मा पुत्रमुत्पादयिष्यसि ॥ *कूर्ममहापुराण, १/१४/६२*

२. अयोग्य इति तामाह दक्षो यज्ञेषु शूलभृत् ।
चुकोपाथ सती देहं त्यक्ष्यामीति त्वदुद्भवम् ॥ *मत्स्यमहापुराण, १३/१३-१४*

बनोगे। उस समय मेरे अंश से तुम्हें साठ कन्याएँ होंगी तथा मेरे समीप तप करने से तुम्हें उत्तम योग की प्राप्ति होगी।

उक्त बातें कहकर सती ने दक्ष के उस यज्ञ-मण्डप में अपने-आप ही अपने शरीर को जलाकर भस्म कर दिया। आगे चलकर यही सती देवी शिवजी के अर्धाङ्ग में विराजमान होने वाली पार्वती के रूप में मेना के गर्भ से प्रादुर्भूत हुईं।'[१]

देवीभागवत

भगवती को प्रसन्न कर दक्ष ने वर माँगा—'देवि, अम्बे, मेरे कुल में तुम्हारा अवतार होना चाहिये, जिससे मैं कृतकृत्य हो जाऊँ।' जगदम्बा ने दक्ष की प्रार्थना स्वीकार की और कहा—'मेरी शक्तियों का अपमान करने से शिव और विष्णु को शक्तिहीनता की अप्रिय स्थिति प्राप्त हुई है। अच्छा, अब मेरी कृपा से उनमें स्वस्थता—शक्ति आ जायेगी। गौरी और लक्ष्मी नामक मेरी शक्तियों का तुम्हारे और क्षीरसागर के यहाँ जन्म होगा। मेरे प्रेरणा करने पर वे शक्तियाँ उनके पास चली जायेंगी। तुम मेरी पूजा और ध्यान में सदा निमग्न रहना।'

कुछ काल के अन्तराल पर भगवती जगदम्बा की एक ज्योति दक्ष के घर अवतार ली। मंगलमयी भगवती के प्रकट होने पर सम्पूर्ण जगत् मंगलमय बन गया। परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती जगदम्बा के सत्यांश से प्रकट होने से उन देवी का नाम 'सती' रख दिया गया। समय आने पर सती शंकर की पत्नी बनीं; क्योंकि पहले भी वे उनकी शक्ति रह चुकी थीं। दैव के प्रभाव से प्रभावित होकर सती ने अपने शरीर को दक्ष की प्रज्वलित अध्वराग्नि में भस्म कर दिया था।

दक्ष की अध्वराग्नि में सती के आहुति बनने का कारण कुछ और ही था। एक समय की बात है—मुनिवर दुर्वासा जम्बूनद के तट पर विराजनेवाली प्रधान देवता भगवती जगदम्बा के पास गये थे। वहाँ उनके जप से प्रसन्न हुई देवी ने मुनि को अपने गले की पुष्पमाला प्रसाद के रूप में दे दी। उसे सादर शिरोधार्य कर दुर्वासा दक्ष प्रजापति के घर पहुँचे। मुनि ने माँगने पर वह दिव्य माला दक्ष को दे दी। तदनन्तर अन्तःपुर में पति-पत्नी के आनन्द के लिये जो अत्यन्त सुन्दर शय्या थी, उस पर दक्ष ने उस माला को रख दिया और उसी शय्या पर रात्रि की बेला में उन्होंने स्त्री-सुख का आनन्द लिया। इसी पाप कर्म के प्रभाव से भगवान् शंकर तथा देवी सती के प्रति दक्ष के मन में द्वेष उत्पन्न हो गया। उसी अपराध

---

१. एवं वदन्ती सा तत्र ददाहात्मानमात्मना ।
पार्वती साभवद् देवी शिवदेहार्धधारिणी ॥
मेनागर्भसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ *मत्स्यमहापुराण,* १३/५९, ६०-६१

का परिणाम यह हुआ कि सती ने सती-धर्म को प्रदर्शित करने के विचार से दक्ष से उत्पन्न अपने शरीर को योगाग्नि द्वारा भस्म कर दिया।[१] फिर वही ज्योति हिमालय के घर प्रकट हुई।

सती के दग्ध हो जाने पर शंकर की कोपाग्नि ने त्रिलोकी में प्रलय मचा दिया। जब वीरभद्र प्रकट हो भद्रकाली को साथ लेकर त्रिलोकी को नष्ट करने के लिये प्रस्तुत हो गये, तब ब्रह्मादि देवों ने शंकर की शरण ली। दक्ष को मार दिया गया था। उनका यज्ञ सब प्रकार से नष्ट हो गया था। तब करुणावरुणालय शिव ने देवों को अभय प्रदान किया। साथ ही बकरे का शिर जोड़कर दक्ष को जीवित भी कर दिया। तत्पश्चात् वे महात्मा महेश्वर यज्ञस्थल में पधारे। वहाँ उन्होंने देखा कि सती का शरीर जल रहा था। 'हा सती' इस शब्द को बार-बार दुहराते हुए शिव ने उस शरीर को उठाकर अपने स्कन्ध पर आरोपित कर लिया। फिर वे भ्रान्तचित्त हो देश-देश में भ्रमण करने लगे। ब्रह्मादि देव चिन्तित हो उठे। उस समय भगवान् विष्णु ने अतिशीघ्र धनुष उठाया और जिस-जिस स्थान पर भगवती सती के अंग गिरे थे, वहाँ-वहाँ अन्वेषण करके उन को काट डाला। तदनन्तर जहाँ कहीं भी शरीर के टुकड़े थे, वहीं शंकर की अनेक मूर्तियाँ प्रकट हो गईं।

सती के अंग जिन स्थानों पर गिरे थे, वे सभी शक्तिपीठ या सिद्धपीठ कहे जाते हैं। जैसे वाराणसी में गौरी का मुख गिरा था। अत: उस पीठ-स्थान में रूप धारण करने वाली देवी का नाम 'विशालाक्षी' है। नैमिषारण्य में विराजमान देवी 'लिंगधारणी' नाम से प्रसिद्ध हुई। देवी को प्रयाग में 'ललिता' कहा जाता है। आदि आदि।[२]

●

---

१. **टिप्पणी**—पीछे कहा गया है कि सती ने दक्ष की अध्वराग्नि में अपने शरीर को होम दिया था—'सा पुनर्ज्वलने दग्धा दैवयोगान्मनोर्नृप ॥' (७/३०/२४) और यहाँ कहा जा रहा है कि उन्होंने योगाग्नि से अपने शरीर को भस्म किया था—'सत्या योगाग्निना दग्धः सतीधर्मदिदृक्षया।' एक ही पुराण के दो स्थलों में, उसमें भी एक ही अध्याय में, एक घटना का दो प्रकार से वर्णन पुराण की असमञ्जस-स्थिति का द्योतक है।

आगे कहा जा रहा है कि जब शंकर जी वहाँ यज्ञवाट में पहुँचे तो सती का शरीर जल रहा था। शंकर ने उसे अपने स्कन्ध पर रखकर नाना प्रदेशों में भ्रमण प्रारम्भ कर दिया। यहाँ कतिपय बातें शंका के रूप में मन में उदित होती हैं । क्या कैलाश से जब शंकर यज्ञ-भूमि में पहुँचे तब तक सती का शरीर जल ही रहा था ? और क्या जलते हुए सती-शरीर को शंकर ने अपने स्कन्ध पर रखकर भूमण्डल का भ्रमण प्रारम्भ किया था? आदि-आदि।

२. देवीभागवत, ७/३०

आधारभूत महापुराण

महापुराण[१]	संस्करण
१. ब्रह्मपुराण.	खेमराज कृष्णदास, मुम्बई,
२. पद्मपुराण	गीता प्रेस, गोरखपुर, मनसुखराय मोर प्रकाशन, कलकत्ता
३. विष्णुपुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर
४. शिवपुराण	पण्डितपुस्तकालय, वाराणसी, गीताप्रेस, गोरखपुर
५. श्रीमद्भागवतपुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर
६. नारदपुराण	खेमराज कृष्णदास, मुम्बई
७. मार्कण्डेयपुराण	खेमराज कृष्णदास, मुम्बई, मनसुखराय मोर प्रकाशन, कलकत्ता (कोलकाता).
८. अग्निपुराण	मनसुखराय मोर प्रकाशन, कलकत्ता
९. भविष्यपुराण	खेमराज कृष्णदास, मुम्बई.
१०. ब्रह्मवैवर्तपुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर, मनसुखराय मोर प्रकाशन, कलकत्ता
११. लिङ्गपुराण	मनसुखराय मोर प्रकाशन, कलकत्ता
१२. वाराहपुराण	चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी
१३. स्कन्दपुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर, मनसुखराय मोर प्रकाशन, कलकत्ता
१४. वामनपुराण	खेमराज कृष्णदास, मुम्बई
१५. कूर्मपुराण	मनसुखराय मोर प्रकाशन, कलकत्ता
१६. मत्स्यपुराण	मनसुखराय मोर प्रकाशन, कलकत्ता
१७. गरुडपुराण	खेमराज कृष्णदास, मुम्बई
१८. ब्रह्माण्डपुराण	कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
१९. देवीभागवतपुराण	मनसुखराय मोर प्रकाशन, कलकत्ता; गीताप्रेस, गोरखपुर
२० वायुपुराण	खेमराज कृष्णदास, मुम्बई

---

१. पौराणिक वाङ्मय में महापुराणों को पुराण शब्द से ही प्रायः उल्लिखित किया गया है।

ग्रन्थकर्तुः परिचयः

विन्ध्यक्षेत्रान्तरे रम्ये मीरजापुरमण्डले ।
गम्भीरपुरनामास्ति ग्रामः ख्यातो महीतले ॥१॥
तत्र रामप्रसादाख्यस्त्रिपाठी ब्राह्मणो ह्यभूत् ।
तस्यासीत् प्रबला भक्तिर्विष्णोश्चरणपङ्कजे ॥२॥
अतो नामापरं तस्य रामदासेति विश्रुतम् ।
यातः परमहंसोऽयमन्तिमे समये महान् ॥३॥
चत्वार आत्मजास्तस्य बभूवुः कृतिनां वराः ।
ज्येष्ठो गणपतिस्तेषु सोमदत्तोऽपरस्तथा ॥४॥
तृतीयो देवदत्तश्च कृष्णदत्तश्चतुर्थकः ।
कृष्णदत्तस्य तुर्यस्य द्वौ सुतौ संबभूवतुः ॥५॥
दीनान्तः शीतलस्तत्र प्रथमः प्रथितोऽभवत् ।
श्रीमान् रामदयाल्वाख्यो द्वितीयोऽभूत् परः कृती ॥६॥
आद्यः शीतलदीनो यश्चतुरः सुषुवे सुतान् ।
चतुरान् कृतविद्यांश्च चतुरः सागरानिव ॥७॥
आदित्यरामस्तत्रैकः कर्मकाण्डी महायशाः ।
दिवाकरो भास्करश्च प्रभाकर इतीरिताः ॥८॥
आदित्यरामस्यैकोऽभूज्ज्येष्ठः पुत्रः सुधीवरः ।
शिवप्रतापनाम्ना यः प्रसिद्धिं परमां गतः ॥९॥
द्वितीयः शिवसम्पतिर्गुणज्ञो गुणवान् मतः ।
शिवप्रतापस्य पुत्रो द्वेषमात्सर्यवर्जितः ॥१०॥
श्रीमान् रामसुमेरुर्हि पुण्यवान् भाग्यवांस्तथा ।
तस्य भार्याऽञ्जनानाम्नी शङ्करस्य सती यथा ॥११॥
प्रासूत चतुरः पुत्रान् प्राणौपम्येन संस्मृतान् ।
येषां ज्येष्ठो रामरूपो दयाधर्मान्वितः सुधीः ॥१२॥
त्रिवेणीशङ्करः ख्यातः पण्डितोस्ति द्वितीयकः ।
रमाशङ्करनामाऽहं ग्रन्थकृत्तु तृतीयकः ॥१३॥

वात्सल्यभाङ्नः सततं चतुर्थो हरिशङ्करः ।
सहायभूतः सर्वेषामेषां स्नेहानुवर्धितः ।।१४।।
पत्नी सरस्वती भूयात् सौभाग्यबलवर्धिता ।
बालकृष्णानन्दकृष्णौ श्रीकृष्णश्च तृतीयकः ।।१५।।
राधाकृष्णश्चतुर्थस्त्ववरो गोपालकृष्णकः ।
पुत्राः पञ्च सदैवैते वृन्दावनविहारिणः ।
कृपया भवन्तु भव्याश्च विश्वेशनगरे स्थिताः ।।१६।।
पौत्रो नारायणो धीमान् सर्वस्नेहविवर्धितः ।
आह्लादं जनयन् गेहे चिरञ्जीयान्मुदा मम ।।१७।।
पौत्रो वागीशदत्तश्च शिवांशुश्च प्रियंवदः ।
शशाङ्कशेखरस्तुर्यः सर्वज्ञश्चैव पञ्चमः ।।१८।।
सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे दीर्घायुषः सन्तु प्रसादात्परमात्मनः ।।१९।।
पूजा श्रद्धा श्रुतिर्नप्त्र्यस्तिस्रो देवीप्रसादतः ।
तिर्थीकुर्वन्ति सदनं सदा सञ्चरणैः स्वकैः ।।२०।।
सोऽहं सम्प्रार्थये मूलं परमात्मानमीश्वरम् ।
हृदयग्राहिणी भूयात् कृतिः कान्ता विदां मम ।।२१।।

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान
पुस्तकालय
प० सं० 16311
संस्कृत भवन, लखनऊ

लेखक

डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी का नाम संस्कृत-जगत् में विख्यात है, सुविदित है। कर्मयोगी का विशिष्ट परिचय उसका लोकोपकारी एवं लोकोपयोगी कर्म ही होता है। बाह्य प्रचार से विरत रह कर मौन सारस्वत साधना डॉ० त्रिपाठी का जीवन लक्ष्य है। इनकी लेखनी एवं वाणी दोनों ही संस्कृत-विद्या की श्रीवृद्धि में सतत संलग्न हैं। श्रीत्रिपाठी जी की चमकती-दमकती लेखनी जहाँ एक ओर भारतीय दर्शनों, संस्कृत साहित्य एवं पुराण-वाङ्मय को सजाती, सँवारती एवं अलङ्कृत करती है, वहीं इनकी वाणी श्रीमद्भागवत जैसे वैदुष्य के निकषभूत ग्रन्थ-रत्न की विद्वज्जन-चमत्कारिणी अद्भुत व्याख्या प्रस्तुत करती है। सत्य तो यह है कि डॉ० त्रिपाठी जिस विषय को छूते हैं, वही सर्वग्राह्य बन जाता है, अनुपम हो जाता है। इनके जैसे पुराणविज्ञ विद्वान् विरले ही मिलते हैं।

'महापुराण-समकथा-कोश' डॉ० रमाशङ्कर त्रिपाठी की जीवन-व्यापिनी सारस्वत साधना का निर्गलित फल है, हृद्य नवनीत है। महापुराणों का मन्थन कर उनके सार को अपनी परिमित परिमार्जित साहित्यिक भाषा में प्रस्तुत कर श्री त्रिपाठी जी ने लोक का महान् उपकार किया है। भाषा भी ऐसी कि जिसे पढ़ने वाला, बिना पूरा किये, छोड़ना न चाहे। इस ग्रन्थ-रत्न को प्रो० त्रिपाठी ने इसप्रकार सजाया है, सँवारा है, जिससे विद्वानों, अध्यापकों, शोधकर्त्ताओं, विद्यार्थियों एवं पुराण-प्रवचनकर्ताओं का समान रूप से उपकार हो सके।

ग्रन्थ में यत्र-तत्र प्रस्तुत की गईं शोध-परक टिप्पणियाँ, नई नवेली दुलहिन के भाल पर लगी हुई बिन्दी की भाँति, आकर्षण का केन्द्र हैं। धन्य हैं, लेखक जिन्होंने इस एक ही ग्रन्थ से चतुर्दिक् प्रकाश बिखेरने का महान् कार्य तथा गागर में सागर भरने का सफल प्रयास किया है। इसे विद्वानों के, परीक्षकों के हाथों पर समर्पित करते हुए मुझे महती प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है।

- प्रकाशक

BHARATIYA VIDYA SANSTHAN

भारतीय विद्या संस्थान

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

सी. 27/59, जगतगंज, वाराणसी-221002 (उ०प्र०)

महापुराण-समकथा-कोश * **मूल्य-४००/-**